वक्तव्य

इस भारतीय इतिहास को हम बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रिय पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं। इस ग्रन्थ के पूरे विषय को तीन भागों में विभक्त किया गया है, जिन में से पहला अब जनता के सम्मुख है। इसमें हमारे प्राचीन इतिहास का वर्णन है जिसे बहुतेरे लोग यदि बिलकुल नहीं तो मुख्यतः कहानी मात्र मानते हैं। हमें आशा है कि इधर की खोज के सविधि अवलोकन से आलोचकों को विश्वास हो जायगा कि हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में ऐसी प्रचुर सामग्री वर्तमान है, जिसकी सहायता से प्राचीन भारत का सच्चा और क्रमबद्ध इतिहास लिखा जा सकता है।

इस इतिहास का पहला खण्ड, अर्थात् यह जिल्द प्राय. २२ शताब्दियों पर विस्तृत है (बी० सी० २७५० से बी० सी० ५६३ तक)। दूसरा खण्ड बौद्ध काल (बी० सी० ५६३) से चल कर हिन्दू साम्राज्य के अन्त पर समाप्त होगा और तीसरे में मुसलिम तथा अँगरेजी समयों का हाल इस काल तक पाया जायगा। स्मरण रहे कि हिन्दू काल ४००० वर्षों से भी बड़ा है, पर मुसलिम और वृटिशकाल पूरे १००० वर्षों के भी नहीं हैं। द्वितीय समय का अन्त काल विविध प्रान्तों के लिये भिन्न है।

आशा करते हैं कि हमारे इस दीन परिश्रम से कदाचित् विद्वानों की प्रवृत्ति भारतीय प्राचीन इतिहास की ओर कुछ झुक जाय, क्योंकि इस पर श्रम करने से वास्तव में अलौकिक आनन्द आता है। इस ग्रन्थ के विषय तथा आधारों के विवरण भूमिका और ग्रन्थ में मिलेंगे।

लखनऊ, १९९३ — श्यामविहारी मिश्र, शुकदेव विहारी मिश्र, } मिश्र बन्धु

———



भूमिका

हमारे प्राचीन इतिहास के दो प्रधान और एक दूसरे से पृथक् साधन हैं, अर्थात् वैदिक साहित्य और पुराण। वैदिक साहित्य मे संहिता (ऋक्, यजुः, साम और अथर्व), ब्राह्मण, उपनिषत्, आरण्यक, और सूत्र ग्रन्थो की गणना है। मुख्यतया ये सब धार्मिक साहित्य मे माने जा सकते हैं और इनमे ब्राह्मण लेखको का प्राधान्य है तथा विषय बहुत करके धार्मिक हैं। पुराणो मे लौकिक साहित्य की प्रधानता है और आदि मे इसका मूल प्रधानतया अब्राह्मण लेखको और सहायको से भी सम्बन्ध रखता है। वेदो मे सूतो, मागधो, चारणो आदि के कथन आये हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणो ने वैदिक साहित्य को स्मरण-शक्ति द्वारा सुरक्षित रक्खा, उसी प्रकार सूतो आदि ने (स्मरण शक्ति द्वारा) लौकिक साहित्य एवं राजवशो के मूलो की रक्षा की। पुरोहितो आदि ने भी ऐसा ही किया। जब भगवान वेदव्यास ने प्राचीन साहित्य और सामग्री को इतना बढ़ा हुआ पाया कि बिना घरानो के विषय विभाग किये हुये उसके नष्ट हो जाने का भय देख पड़ा, उस काल उन्होने स्वय वेदो का सम्पादन करके उनके चार भाग किये, और एक एक वेद को एक एक प्रधान शिष्य परम्परा मे बांट दिया। उसी समय उन्होने रक्षणार्थ और वर्द्धनार्थ अन्य विषयों को अन्य शिष्यों मे बाटा। इस प्रकार स्वय एक पुराण रचकर आपने इतिहास का विषय लोमहर्षण सूत को दिया। इस के दृढ आधारों का विवरण ग्रन्थ मे मिलेगा। वैदिक साहित्य मे घटनाओं के कथनों मे अत्युक्ति का प्रयोग पुराणो की अपेक्षा बहुत ही कम है। मेगास्थनीज कहता है कि उसने महाराज चन्द्रगुप्त के यहाँ प्रायः ६००० वी० सी० से चलने वाले राजाओ के वशवृक्ष देखे थे। इन बातो से प्रकट है कि हमारा प्राचीन ऐतिहासिक विभाग अत्युक्तिपूर्ण तो है किन्तु निर्मूल नहीं।

इतिहास प्राचीनो के केवल गुणगानार्थ नही लिखा जाता वरन हम लोगो का यह भविष्य के लिये सबसे बड़ा पथ-प्रदर्शक है। हमारे तथा पूर्व पुरुषो के सभी अनुभव बहुत करके इतिहास द्वारा ही सुर-

स्थित रह कर मनुष्य जाति के विचारों को उन्नत बनाते हैं। बिना प्राचीन कर्म समुदाय तथा उसके फलों को जाने हुए मनुष्य भविष्य के लिये नितांत अनभिज्ञ रहेगा। इसलिये इतिहास का अस्तित्व मानव जाति के लिये परमोपयोगी है।

इतिहास की आवश्यकता राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विषयों ही के लिये नहीं है वरन सभी बातों की उन्नति-सम्बन्धी अभिज्ञता के लिये तद्विषयक ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता है। फिर भी केवल "इतिहास" कहने से उपर्युक्त तीनों विषयों ही का कथन माना जाता है, विशेषतया राजनीति का। हमने इस इतिहास में इन्हीं तीनों विषयों की प्रधानता रक्खी है। इनका प्राचीनकालिक ज्ञान बहुत करके भारतीय साहित्य से होता है। इस लिये इन विषयों के साथ साहित्योन्नति-सम्बन्धी भी कुछ कथन कर दिये गये हैं। हमारे ऋषिगण की प्राचीन रचनायें धर्म से ऐसी मिली हुई हैं कि बहुत करके ये दोनों एक ही हैं। अतः इनमें से किसी एक का भी पूर्ण वर्णन करने से वह कथन दोनों के सम्बन्ध में हो जायगा। राजनैतिक वर्णन धार्मिक और सामाजिक विषयों से पृथक् किया जा सकता है। हमने इस भारतीय इतिहास में धार्मिक तथा साहित्यिक वर्णन राजनैतिक से पृथक् अध्यायों में किये हैं। सामाजिक कथन जहाँ राजनैतिक से अधिक सम्बन्ध रखते थे वहाँ वे राजनैतिक अध्यायों में आ गये हैं और जो सामाजिक विषय धार्मिक विवरणों से मिलते हुए देख पड़े, उनका वर्णन धार्मिक अध्यायों में हुआ है।

शुद्ध इतिहास लिखने के लिये गुण-दोष दोनों का उचित कथन होना चाहिये, क्योंकि केवल गुण-कथन से वह अधूरा एवं भ्रमोत्पादक हो जायगा, और ज्ञान-वर्द्धन के स्थान पर उसका संकुचन करेगा। प्रत्येक मिथ्या कथन हमारे ज्ञान को मिथ्या बनाने की ओर जाता है और लोगों में अंध-विश्वास की टेव उत्पन्न कर देता है। हमारे भारतवर्ष में बहुत काल से प्राचीनता का बहुत बड़ा मान होता आया है। इसलिए अपने पूर्व पुरुषों की वास्तविक भूलों तक का कथन हमारे यहां अप्रयुक्त समझा जाता रहा है। वीर पूजन के साथ यहां पूर्व-पुरुष-पूजन भी चला आया है। यह गुण भारत, चीन, जापान आदि

सभी पूर्वी देशो में पाया जाता है। इस ग्रन्थ के लेखक भी इस विषय पर भक्ति रखते हैं और श्राद्ध के विषय पर भी उन्हें श्रद्धा है। फिर भी सत्य से बढ़कर कोई धर्म नही है। जब किसी विषय विशेष का वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से किया जावे तब लेखक को वर्ण्य विषय का यथावत् रूप दिखलाना पड़ेगा, चाहे उसमे उसकी इच्छा के प्रतिकूल बहुत से दोष ही क्यो न आ जावे। जब तक ऐसा वर्णन न होगा तब तक ग्रन्थ इतिहास कहलाने की पात्रता न रक्खेगा।

पूर्वज-पूजन के विचारो ने यहाँ पौराणिक समय मे विशेष बल पाया। इसीलिए उस काल का साहित्य न केवल प्राचीन छिद्रो का गोपन करता है, वरन् अत्युक्तिपूर्ण कथनो की भरमार करके माहात्म्य बढ़ाने का प्रयत्न बहुधा कही भी नही छोडता। फल बिलकुल विपरीत हुआ। जिन लोगो का माहात्म्य बढ़ाने को पौराणिक ऐतिहासिको ने दोष गोपन और अत्युक्तिपूर्ण कथन किये, उन्ही लोगो के अस्तित्व पर भी सभ्य ससार को आज सदेह हो रहा है। यह सदेह इतिहासाभाव से नही है, वरन ऐतिहासिको की अनुचित भक्ति के कारण ही आज यह बुरा दिन हम लोगो के सामने उपस्थित हुआ है कि रामचन्द्र, युधिष्ठिर आदि महापुरुषो को न केवल बहुतेरे पाश्चात्य ऐतिहासिक, वरन् कुछ भारतीय लेखक भी कल्पित पुरुष मात्र मानते हैं।

✓ रावण के दस शिर, तथा नृसिंह का साथ ही साथ मनुष्य और सिंह होना, जनमेजय का सारे ससार के सर्पो को मन्त्रों से पकड बुलाकर अग्निकुण्ड मे डालना, महावीर का शतयोजन समुद्र कूद जाना तथा द्रोणाचल पर्वत उठा लेना, प्रियव्रत द्वारा नौ दिनो तक रात ही न होने देना, किसी का दस हजार वर्ष जीना, वानरो, रीछों, यहा तक कि सांपो का भी मनुष्या की भाँति बातचीत करना और विज्ञान के गूढ़ तत्त्वो का हल करना तथा उनके नर-मादाओं का मनुष्यों मे विवाह तक होना (यथा जाम्बवन्ती और उलूपी), सूर्य या हवा का मानुषी स्त्रियों से पुत्र उत्पन्न करना (यथा कर्ण और भीम), सुरमा साँपिन का १०० योजन (८०० मील) मुँह फैला देना इत्यादि के कथन अनर्गल है ही। वेदादि पूज्य ग्रन्थो मे इनका कहीं पता भी नही है। वेदो, ब्राह्मणो, सूत्रो, तथा पुराणो मे पुराण ही अत्युक्ति पूर्ण हैं।

शेष ग्रन्थों में ऐसे प्रमत्त कथन नहीं पाये जाते और उनमें असंभव घटनाओं का अभाव सा है, किन्तु प्राचीन साहित्य में पुराण ही सब से नवीन हैं और इन्हीं का चलन देश में अधिक है। इसीलिये अधीर लोगों की दृष्टि में हमारा पूरा प्राचीन काल प्रमत्त इतिहास की कोटि से बाहर निकल जाता है।

इस विषय पर परिश्रम करनेवाले पर एक ओर पुराणवाज़ पण्डित तो इसलिये बिगड़ेंगे कि उसने कुम्भकर्ण की मूँछ को एक योजन से तिल भर भी कम क्यों माना, और दूसरी ओर पाश्चात्य शिक्षा ग्रहीत भारतवासी बिना मुसकराये न रहेंगे और यही कहेंगे कि इस पोपलीला को इतिहास के सुन्दर वस्त्र पहिनाने का प्रयत्न सर्वथा व्यर्थ और तिरस्करणीय है। उनके विचार से ऐसे विषय पर परिश्रम करनेवाला मनुष्य अपने समय को नष्ट करता है। अब पंडितों का विचार है कि वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों और पुराणों को ध्यानपूर्वक पढ़कर अथच माहात्म्य-सम्बन्धी अत्युक्तियों को सहज ही में अलग कर, हमारे प्राचीन ग्रन्थों एवं अन्य ऐतिहासिक आधारों से सच्चा बुद्धि-ग्राह्य इतिहास निकल सकता है।

इस विषय पर इन दिनों अँगरेज़ी में तीन महत्तायुक्त ग्रन्थ निकल चुके हैं, जिनके लेखक पार्जिटर महोदय, डाक्टर राय चौधरी, तथा डाक्टर सीतानाथ प्रधान हैं। इन तीनों महाशयों ने हमारे वैदिक और लौकिक साहित्य तथा इतर आधारों का खासा मथन करके अपने साधार विवरणों में सिकन्दर पूर्व भारतीय इतिहास का पूज्य कथन किया है। इनमें से पार्जिटर ने तो पूरा समय लिया है, किन्तु प्रधान ने रामचन्द्र से महाभारतीय युद्ध तक का विवरण उठाकर उसे खूब दृढ़ कर दिया है, अथच राय चौधरी ने महाभारतीय युद्ध से गुप्त काल तक का इतिहास लेकर उसे बुद्ध काल पर्यन्त बहुत दृढ़ बनाया है। सिकन्दर से इधर का इतिहास आपने बहुत संक्षेप में कहा है किन्तु वह इतर अनेक ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक मिलता है। फल यह है कि रामचन्द्र से गौतम बुद्ध तक के समय का इतिहास इन दोनों लेखकों के द्वारा बहुत कुछ पुष्ट हो गया है। ऐसे प्राचीन विषय पर मतभेद बना ही रहेगा, क्योंकि अनेकानेक आधारों तथा अर्थों के सहारे नवीन

कथन होते ही रहेंगे, किन्तु प्रधान और राय चौधरी के परिश्रमों से रामचन्द्र से इधर वाला सन्दिग्ध इतिहास बहुत कुछ दृढ़ हो गया है। इन दोनों महाशयों ने अपने कथनों के आधारों को प्रचुरता पूर्वक लिख दिया है। पार्जिटर महोदय ने भी आधार उसी प्रचुरता से लिखे हैं, किन्तु उन्होंने अयोध्या के मानव कुल की वंशावली में जो प्राय २६ नाम पौराणिक सम्पादकों की भूल से रामचन्द्र के पूर्व या पश्चात् वाली बिरादरी की नामावली से उठकर पूर्वपुरुषों की गणना में आ गये हैं, उन्हें अलग नहीं कर पाया, वरन इन २६ नामों के इस वंशावली में अनुचित प्रकारेण बढ़ जाने से सारी सम सामयिक ऐल वंशावलियों को अधूरी मानकर उनके पूर्व पुरुषों की दस बारह नामावलियों में चौबीस पच्चीस नाम छूटे हुये निराधार समझा। इस कारण से उनके सम सामयिक कथनों में स्वभावश बहुत से भ्रम पड़ गये हैं। उन्हें इसी कारण से अनेकानेक वशिष्ठों और विश्वामित्रों के अस्तित्व की निराधार कल्पना करनी पड़ी है। इसलिये यद्यपि उन्होंने वंशावलियाँ वैवस्वत मनु से अन्त पर्य्यन्त दी हैं, तो भी वे स्थान स्थान पर भ्रमात्मक हैं।

इन सब बातों पर ध्यान देने से निश्चय होता है कि बुद्ध से रामचन्द्र तक के समय की नामावलियाँ तो दृढ़ हैं, किन्तु वैवस्वत मनु से रामचन्द्र तक के समय वाले वंश वृक्षों पर अब तक उतनी दृढ़ता नहीं आई है। इसलिये हमें वंशावलियों के इस भाग पर विशेष छान-बीन करनी पड़ी है। वैवस्वत मनु से पूर्व वाले जो छै और मन्वन्तर हैं, उनमें से स्वायम्भुव मन्वन्तर की वंशावली तो प्राय. सभी पुराणों में है, किन्तु इतर पाँचों मनुवों में से चार के वंश मात्र ज्ञात हैं तथा चाक्षुष मनु का वंश वृक्ष यद्यपि दिया हुआ है तथापि है वह अधूरा। यह पुराणों से प्रकट है कि ये पाँचों मनु स्वायम्भुव मनु के ही वंशधर थे। इन छवों मन्वन्तरों का पार्जिटर महोदय ने न तो विवरण लिखा है, न वंश वृक्ष। प्रधान और राय चौधरी के विषय रामचन्द्र से पहले जाते ही नहीं, सो उनके द्वारा इन मन्वन्तर कालों का कथन न होना स्वाभाविक ही है। हमने मन्वन्तरों के समयों का भी विवरण, जहाँ तक पुराणों में मिलता है वहाँ तक दे ही दिया है। इस काल को

अनिश्चित समझकर छोड देना अनुचित है, क्योकि जिन पौराणिक और वैदिक आधारो पर इतर कालो का इतिहास दृढ किया गया है, वही दोनो आधार इन मन्वन्तर कालो का भी कथन करते ही हैं।

हमारे विवरण मे यह प्राचीन काल चार भागो मे विभक्त है, अर्थात् सत्ययुग या मन्वन्तर काल, त्रेता या मनु-रामचन्द्र काल, द्वापर या राम-युधिष्ठिर काल, और आदिम कलिकाल या युधिष्ठिर-बुद्ध काल। ऊपर के तीनो आधारो द्वारा बुद्ध से द्वापरान्त तक का इतिहास निर्णीत है, तथा सत्ययुग और त्रेतावाले पर हमे अधिक परिश्रम करना पडा है, क्योकि सत्ययुग का हाल तो इधर किसी ने कहा ही नही, और त्रेता के सम्बन्ध मे उपर्युक्त २६ पुश्तो के बढ़ जाने मे पार्जिटर कृत समकालीनताओ के कथन बिगड गये है। आशा है कि पाठक महाशय इन २६ पुश्तो सम्बन्धी कथनो एव समकालीनताओ के विवरणो पर विशेष ध्यान देगे। इन २६ नामो के मुख्य वशावली से अलग करने का सूत्रपात प्रधान और राय चौधरी मे प्रस्तुत है, केवल अन्य विषयो के विवरण लिखने के कारण उन्होने इस विषय पर विशेष कथन नही किया है। फिर भी प्रधान महाशय के ग्रन्थ मे इसका कुछ वर्णन है भी। इन २६ नामो को हमने दक्षिण कोशल, हरिश्चन्द्र और सगर सम्बन्धी राजकुलों मे विभक्त किया है। इस विभाजन के कारण ग्रन्थ मे यथास्थान मिलेंगे। इसके मान लेने से सारी पौराणिक समकालीनताओं का सामजस्य बैठ जाता है। वशावलियो के लिखने तथा आधारो के खोजने मे हम को इन तीनो ग्रन्थ-रत्नो से बहुत कुछ सहायता मिली है।

विनीत

लखनऊ
स० १९९३

मिश्र बन्धु

विषय सूची

भारतवर्ष का इतिहास



पहला अध्याय

भूगोल एवं अन्य जानने योग्य बातें।

भारतवर्ष एशिया महाद्वीप के तीन दाक्षिणात्य प्रायद्वीपो मे से एक है। इसका क्षेत्रफल १८,०२,६२९ वर्गमील है और १९३१ मे इसकी जन-संख्या बर्मा छोड़ कर ३३,८३,४०,९०७ थी। उत्तर से दक्षिण तक इसकी बडी से बडी लम्बाई प्राय: १९०० मील है और अधिक से अधिक चौड़ाई भी बहुत करके इतनी ही है। इसके उत्तर में हिमाचल नामक भारी पहाड है, दक्षिण में हिन्द महासागर, पूरब मे बर्मा और बङ्गाल की खाडी, तथा पश्चिम मे सफेद कोह, सुलेमान पहाड़, बलोचिस्तान एव अरब का समुद्र। हिमालय पहाड़ प्राय: १,५०० मील लम्बा और २०० मील चौडा है। इसकी ऊँचाई बहुधा २०,००० फ़ीट के लगभग है और कही कहीं इससे भी अधिक है यहाँ तक कि ऊँची से ऊँची चोटी गौरीशकर २९,००२ फ़ीट ऊँची है। इसकी अन्य ऊँची चोटियो के पहाड़ किंचिचगा, धौलागिरि, नन्दादेवी और नंगा पर्वत कहलाते हैं। इस पहाड़ मे कई देश बसे हैं जिनमें कश्मीर, गढ़वाल, तिब्बत, नेपाल, भूटान और शिकम की मुख्यता है। तिब्बत का सम्बन्ध प्राचीनकाल से भारत से न रहकर चीन से रहा है और शेष उपरोक्त पार्वतीय देश भारत से सम्बद्ध रहे आये हैं। हिमाचल की वृहदंश लम्बाई बर्फ़ से ढकी रहती है। इसीलिये इसका नाम हिमालय पड़ा। इसका जल-वायु पाश्चात्य देशो के समान ठंढा एव स्वास्थ्यकर है। यहाँ के रहने वाले भारतीय शेष प्रांतों के निवासियों से गोरे भी हैं। यहाँ केसर, मृगमद, पश्मीने आदि का अच्छा व्यापार होता है।

भारत में हिमालय के अतिरिक्त विन्ध्याचल, पूर्वी घाट, पश्चिमी-घाट, नीलगिरि आदि पहाड़ हैं। हिमाचल पर एक छोटा सा ज्वालामुखी भी है और सीताकुण्ड आदि कुछ गरम जल के सोते हैं। भारत में नदियाँ बड़ी और लम्बी हैं। इनमें सिन्धु, सतलज, व्यास, रावी, चनाब, झेलम, सरस्वती, गंगा, जमुना, सरजू, गोमती, गण्डक, धसान, चम्बल, कन, सोन, ब्रह्मपुत्र, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा और ताप्ती की मुख्यता है। भारतीय नदियों में गंगा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी, सरयू, गोमती, चर्मण्वती (चंबल). क्षिप्रा, वेत्रवती, महानदी और गण्डकी विशेष पुनीत समझी जाती हैं।

भारत के इस समय दो मुख्य भाग हैं अर्थात् अंग्रेजी-राज्य और देशी रियासतें। बर्मा अब भारत का भाग नहीं है। देशी रियासतें भी अङ्गरेजी रक्षा में हैं किन्तु नैपाल, भूटान और तिब्बत स्वतन्त्र हैं। अँगरेजी सरकार द्वारा भारतीय शासन का भार भारत सचिव को सौंपा गया है, जिनका उत्तरदायित्व अँगरेजी पार्लीमेंट को है जिसके हाथ में उनकी बहाली तथा बर्खास्तगी है। इन्हीं की सलाह से ब्रिटेन के बादशाह भारत का शासन करते हैं। भारत में सम्राट् के प्रतिनिधि स्वरूप एक वाइसराय नियुक्त रहते हैं जिन्हें बड़े लाट कहते हैं। एक वाइसराय प्रायः पांच वर्ष तक रहता है। उनकी दो सभायें हैं। बड़े लाट का एक मन्त्रिमडल भी है। आईन इन्हीं सभाओं की सम्मति से बनता है और और भी कई बातों में इन्हें मुख्य मुख्य अधिकार प्राप्त हैं। अँगरेजी भारत में इस काल १६ प्रांत हैं, अर्थात् मद्रास, बम्बई, बङ्गाल, युक्तप्रांत, पञ्जाब, विहार, मध्यदेश व बरार, आसाम, वायव्य सीमाप्रान्त, सिंध उड़ीसा, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, बलोचिस्तान, दिल्ली और अंडमन नीकोबार टापू। उपर्युक्त प्रथम ११ प्रान्तों के शासक एक एक गवर्नर हैं। शेष छोटे छोटे प्रान्तों का पृथक प्रबन्ध है। प्रत्येक प्रान्त में कई ज़िले हैं जिनके शासक ज़िला अफसर कहलाते हैं। सारे ब्रिटिश भारत में प्रायः २६७ ज़िले हैं। प्रति गवर्नर के यहाँ भी एक सभा तथा मन्त्रिमण्डल है।

देशी भारत मे प्राय: ७०० रियासतें हैं जिनमे हैदराबाद, बडौदा, मैसूर, ग्वालियर, कश्मीर, उदयपुर, ट्रावंकोर, इन्दौर, जयपुर, पटियाला, कोल्हापुर, जोधपुर, भरतपुर, भूपाल, भाऊनगर, अलवर, रीवां, आदि की प्रधानता है। इन रियासतो को अन्तरग शासन मे बहुत करके स्वतत्रता प्राप्त है किन्तु ये बाहरी रियासतो से सन्धि विग्रह आदि नही कर सकती।

मुख्य प्रान्तों एवं रियासतों का क्षेत्रफल तथा सन् १९३१ की जनसंख्या नीचे दी जाती है:—

नाम प्रान्त या रियासत	रकबा वर्गमीलो मे	सन् १९३१ की जनसंख्या
बङ्गाल .	७८९९९	८,१७,१३७६९
बिहार उड़ीसा ...	८३, १८१	३,७६,७६,५७६
बम्बई सिंध	१,२३,०६४	२,१८,५४,८४१
मध्यदेश बरार ...	८१,३९९	१,५५,०७,७२३
मद्रास ...	१,४२,३३०	४,६५,७५,६७०
पजाब ..	९९,७७९	२,३५,८०,८५२
युक्तप्रान्त	१,०७,२६७	४,८४,०८,७६३
देशी रियासतें ..	भारत का प्राय: २/५	८,१७,१३,७६९
योग भारत का	१८०२६२९	३३,८३,४०,९०७

देशी भारत फैलाव मे भारत का प्राय: २/५ है और जनसंख्या में १/५। समस्त भारत का फैलाव १८ लाख वर्गमील ऊपर लिखा जा चुका है। इसमे से ७,०९,५५५ वर्गमीलो मे देशी रियासतें हैं।

भारतवर्ष एक प्रकार से संसार भर का सारांश है। इसमें सभी प्रकार की जलवायु है और दुनिया भर की प्राय: सारी वस्तुयें यहाँ कहीं न कहीं पाई जाती हैं। भारत पहाड़ो तथा समुद्रों द्वारा सारी दुनिया से पृथक् सा है। इसमें घुसने के लिये खैबर, बोलन घाटियां आदि मानो फाटक हैं। इन्हीं मार्गों से समय समय पर यहाँ कई जातियाँ आई, अर्थात् आर्य, सीदियन, शक, कुशान, हूण और मुसलमान। इनमें से अब आर्य और मुसलमान ही पृथक् रह गये हैं, तथा शेष जातियाँ और भारत के आदिम निवासी आर्यों में ही मिल गये हैं। आसाम तथा तिब्बत की ओर से भी भारत में आने के मार्ग हैं किन्तु इन मार्गों से आर्य तथा कुछ मगोल जातियो को छोड कर भारत में कोई विजयिनी धारा आई नहीं। यूरोपीय जातियाँ समुद्र मार्ग द्वारा दक्षिण से आईं। पहले विजयिनी जातियाँ उत्तर से प्रारम्भ होकर दक्षिण तक फैलती थीं किन्तु यूरोपीय जातियाँ दक्षिण से चल कर उत्तर फैलीं। हिमालय पहाड ने हमारे लिये हजारों वर्षों तक एक दुर्गम दुर्ग का काम दिया और आज भी दे रहा है। संसार के सभी पहाडों से यह ऊँचा है। रक्षक होने के अतिरिक्त मेघों को रोक कर हमारे लिये जलप्रद भी है। भूगर्भ विद्या विशारदों ने जाना है कि किसी समय यही हिमालय पहाड समुद्र का पेंदा था। जो जो बातें समुद्र के पेंदे में मिलती हैं वही हिमालय के ऊँचे से ऊँचे शिखरों पर पाई जाती हैं। जाना गया है कि प्राचीनकाल में दक्षिणी भारत ही देश था और शेष समुद्र का पेंदा। दक्षिणी भारत से लेकर मडागास्कर तथा पूर्वी अफ़रीका तक खुला हुआ भूभाग था। जिस प्रकार के जीवजन्तु मडागास्कर और पूर्वी अफरीका में पाये जाते हैं तथा पृथ्वी के अन्य देशो में नहीं मिलते, वे भी दक्षिणी भारत में वर्तमान हैं। इन्हीं बातों एवं अन्य कारणों से जाना गया है कि पूर्वी अफ़रीका तथा दक्षिणी भारत कभी एक देश था। समय के साथ समुद्रीय पेंदे का उतार चढ़ाव आरम्भ हुआ और धीरे धीरे पूर्वी अफरीका तथा दक्षिणी भारत के बीच की भूमि समुद्र गर्भ में लीन होगई एवं हिमाचल सागर गर्भ से इतना ऊँचा उठ गया। पूर्वी अफरीका से दक्षिणी भारत पर्यन्त समुद्र के नीचे अब भी पृथ्वी की एक ऊँची रीढ़ सी बनी है जो दक्षिणी ध्रुव के

बर्फीले ठंडे पानी को उत्तर की ओर न आने देकर उत्तर का जलवायु तादृश ठंढा नहीं होने देती। हिमाचल और दक्षिणी भारत के बीच में फिर भी समुद्र भरा रहा, किन्तु यह पृथ्वी भी धीरे धीरे उठती गई तथा सिन्धु, गंगा, जमुना, ब्रह्मपुत्रा, घाघरा आदि नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी यहाँ जमती गई, यहाँ तक कि समुद्र बंगाल की खाड़ी तक ढकेल दिया गया और पूरा देश बनकर तैयार हो गया। गगा जी के मुहाने पर सुन्दरबन के पास अब भी नई भूमि निकलती आती है। एक समय वह था कि मध्य यूरोप तथा मध्य एशिया में भारी समुद्र लहराता था। धीरे धीरे वहाँ की भी भूमि उठकर जर्मनी आदि देश बन गये। इसी समुद्र के विषय मे छाया समान कुछ कुछ कथन प्राचीन ग्रंथो में पाये जाते हैं।

भारत में तीन ऋतुएँ प्रधान हैं अर्थात् जाडा, गर्मी और बर्सात। कार्तिक से आधे फाल्गुन तक जाडा समझा जाता है, चैत्र से आषाढ़ तक गर्मी और श्रावण से क्वार तक वर्षा। मुख्य बर्साती महीने सावन भादों हैं। माघ में भी प्रायः १५ दिन बर्सात होती है। भारतवर्ष में कितने ही देशी तथा विदेशी संवत् थोड़े या बहुत प्रचलित हैं। विशेषतः विक्रमी सवत्, सन् ईस्वी एव शालिवाहन शाके का अधिक प्रचार है। धर्म कार्य सकल्पादि में सृष्टि सवत् का हवाला दिया जाता है। भूमि सम्बन्धी हिसाब के कागजों में फ़सली सवत् पूर्व भारत में प्रायः लिखा जाता है। विक्रम-संवत् चांद्र वर्ष है और शक सवत् सौर। अधिकाश भारतनिवासी हिन्दू हैं जिनके मतानुसार द्वारिका, बद्रीनाथ, जगन्नाथ और सेतुबन्ध रामेश्वर चारों दिशाओं में चार धाम हैं तथा अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जैन और द्वारका सप्त पुरियों मे हैं। ये दशो स्थान परम पवित्र माने जाते हैं। भारत में १२ ज्योतिर्लिङ्ग परम पवित्र हैं। इनमें विश्वनाथ, घृष्णेश्वर, बद्रीनाथ, केदारनाथ, वैद्यनाथ, श्रीनाथ, महाकालेश्वर, सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, त्र्यम्बकेश्वर, ओंकारेश्वर तथा रामेश्वर की गणना है।

धान्य में पूर्वी देशों मे चावल की प्रधानता है। शेष भारत में धनी पुरुष विशेषतया गेहूँ का व्यवहार करते हैं और साधारण लोग जौ, जुआर, चना, बाजरा आदि का। अधिकांश लोग मांस नहीं खाते।

उनके यहाँ दाल और दूध का अधिक व्यवहार होता है। पशु पक्षी भारत में हजारों प्रकार के पाये जाते हैं। प्राचीनकाल मे सुगन्धित पुष्पो ही की महिमा थी किन्तु अब योरोपीय लोगो की देखा देखी सुन्दर निर्गन्ध पुष्पो का भी माहात्म्य बढ रहा है। मृदुल स्वभाव भारतीयो का मुख्य गुण है। प्राचीन काल मे इनमे धर्म का बडा मान रहा है। यहाँ के धर्मों में हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसल्मान और ईसाई मतों की प्रधानता है। वेद हमारे परम पूज्य और प्राचीन ग्रथ हैं। बौद्धो का धर्म-ग्रन्थ त्रिपिटक है, मुसल्मानो का कुरान और ईसाइयों का बाइबुल। हिन्दू मत के मुख्य आधार स्वरूप कृष्णद्वैपायन व्यास, बादरायण व्यास तथा शंकराचार्य हैं, बौद्ध मत के गौतम बुद्ध, मुसल्मानो के मुहम्मद. ईसाइयों के जीजस क्राइस्ट, तथा जैनो के आदि नाथ।

भारतवर्ष इस काल ८ जातियो का मिश्रण स्थल है। इसने प्राचीनकाल से नवागन्तुको का आदर किया है। फिर भी अद्यपर्यन्त इसके ऊपर सबसे बड़ा प्रभाव आर्यों का पडा है क्योकि उन्होने न केवल आदिम निवासियो को अपनाया वरन् सीदियनो, शको, कुशानो और हूणों को भी अपना बना कर सारे देश मे एकता स्थापित की। अंग्रेजो के पूर्व सारा भारत कभी एक शासनाधीन नही रहा। बंगालियों पंजाबियो, कौशलो, महाराष्ट्रो और मद्रासियो में इतना अतर है कि उन्हें कोई एक जाति के मनुष्य नही कह सकता। उनकी सूरत शकल, पहिनाव उढ़ाव, बोली भाषा सभी कुछ भिन्न हैं और राजनैतिक भिन्नता भी उनमें कम नहीं है। सब के इतिहास अलग अलग हैं और सब के देशों में एक दूसरे से पृथ्वी आकाश का अन्तर है। एक जल प्रधान है तो दूसरा रेगिस्तान, एक समथल है तो दूसरा पहाडी, एक की पृथ्वी लाल है तो दूसरे की काली, एक अग्नि के समान तपता है तो दूसरा हिम के समान गलानेवाला है। इन सब भिन्नताओ के होते हुये भी इन सब प्रान्तों मे भारतीयता क्या है सो बहुत से विदेशी पण्डित नही जान पाते, किन्तु इन भिन्नताओ को रखते हुए भी इन सब प्रान्तों में ऐक्य धर्म, सभ्यता और विचारो का है। भारतीयता का मुख्य साधन हमारे सारे प्रान्तो की सभ्यता एव विचारो का साम्य है। देश में २००० शासक होते हुए भी बिना किसी लेजिस्लेटिव कौन्सिल के

विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा को सभी शिरोधार्य मानते आये हैं। यदि कुरुक्षेत्र के द्वैपायन व्यास एक प्रधान आचार्य थे तो ठेठ दक्षिण के शंकराचार्य दूसरे। उत्तरी गौतम और दाक्षिणात्य आपस्तंब के कथन समभाव से सारे देश मे माने गये और लोगो ने यह जानने की कभी इच्छा न की कि यह किस प्रान्त के निवासी थे। शेषनाग, काश्मीरी मम्मट और कान्यकुब्जीय भरत समभाव से काव्याचार्य माने गये हैं। उनकी जातीय भिन्नता मे किसी प्रान्त ने उनके कथनो में अश्रद्धा न दिखलाई। वेदो, ब्राह्मणो, सूत्रो स्मृतियो. और पुराणो का सभी कहीं समभाव से मान होता आया है। अतः यदि राजनैतिक सम्बन्ध, भाषा और जलवायु हमे पूरी एकता नही देते, तो सभ्यता और विचार साम्य उसके पूर्ण सहायक हैं। इन्ही बातो पर भारत की भारतीयता निर्भर है। आशा है कि आगे के पृष्ठावलोकन से इन कथनो के पुष्टी करण मे कुछ विचार मिलेंगे।

हमारा भारत एक ऐसा अनोखा देश है जो एक साथ ही वृद्ध और बालक है। प्राचीन सभ्यता की उन्नति प्रदर्शन मे यह वृद्ध भारत है किन्तु वर्तमानकाल की पाश्चात्य सभ्यता के लिये, कला कौशल और व्यापारिक गरिमाओं के विचार से, यही बूढ़ा आज कल बाल भारत हो रहा है। पयफेन सी श्वेत पगडी के साथ अब इसे मलमे सितारे की टोपी भी पसद आने लगी है। धार्मिक विचारो तथा दर्शनशास्त्रो मे यह आज आधी दुनिया का गुरु है और शेषार्द्ध भी थोडे ही दिनो मे इसका महत्व मानती हुई देख पड़ती है। राजनैतिक उन्नति भी इसने ८वी शताब्दी पर्यन्त सब से अच्छी की किन्तु पीछे समय के उलट फेर से इसने अपना पाठ भुला दिया और अब बाल भारत होकर पाश्चात्य राजनैतिक प्रणाली की प्रवेशिका परीक्षा मे उत्तीर्ण होने का यत्न कर रहा है। कला कौशल और व्यापार मे भी यही आशा है कि यह वृद्ध बालक थोड़े ही दिनो मे अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त होगा। अङ्गरेजो के सम्बन्ध से इसने थोडे ही दिनो मे नवीन विचारो मे भी अच्छी उन्नति करली है और आगे भी उत्तरोत्तर वृद्धि की आशा है। इन दिनो थोडे ही वर्षो से उन्नति की धारा इस वेग के साथ प्रवाहित हो रही है कि जिसमे शीघ्र सारे देश के आप्यायित होजाने की दृढ़ आशा है।

दूसरा अध्याय

भारतीय इतिहास के आधार

विनसेट स्मिथ महाशय ने भारतीय इतिहास के आधारो को चार भागो मे विभक्त किया है, अर्थात् स्वदेशी ग्रथ, विदेशियो की रचनाएँ, पाषाण लिपि, सिक्के, आदि और सम सामयिक ऐतिहासिक ग्रन्थ। इन दिनो मोहंजोदड़ो और हड़प्पा की खोदाइयों से भी परमोत्कृष्ट ऐतिहासिक मसाला प्राप्त हुआ है। स्वदेशी ग्रंथों मे स्मिथ ने राजतरङ्गिणी, महाभारत, रामायण, जैन पुस्तकें, जातक और अन्य बौद्ध-पुस्तकें, लका के पाली मे ऐतिहासिक ग्रन्थ, पुराण आदि का वर्णन किया है। राजतरङ्गिणी १२वीं शताब्दी का ग्रन्थ है और स्मिथ साहब का विचार है कि उसमे कथित समय से थोड़े ही पहले का वर्णन ऐतिहासिक सत्यता रखता है, शेष अनिश्चित है। कई महाशयो ने व्याकरण एवं अन्य ग्रन्थों के साधारण वर्णनो से इतिहास की पुष्टि की है। ऐसे अनेक वर्णन खोज निकाले गए हैं जिनसे इतिहास की भारी पुष्टि हुई है। मुख्यतया जैन और जातक ग्रन्थों से सातवी वा छठवीं शताब्दी बी० सी० का अच्छा चित्र मिलता है। लका के उपयोगी ग्रंथो में द्वीपवश और महावंश प्रधान हैं। यह तीसरी चौथी शताब्दी के हैं। विद्वान लोग वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवश, पद्म और मत्स्य पुराणों का विशेष प्रमाण मानते हैं। स्मिथ महाशय छठी शताब्दी बी० सी० से ऐतिहासिक काल मानते हैं, उससे पहले से नहीं। इसलिए आप वेदों और ब्राह्मण ग्रंथों का हवाला नहीं देते। वास्तव में वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों और स्मृतियो से भी बहुत कुछ ऐतिहासिक मसाला उपलब्ध होता है, किन्तु इनसे सन् सवतो का ब्योरा दृढ़ होते न देख कर आपन वैदिक को ऐतिहासिक काल से निकाल डाला है। हमारी समझ में ६०० बी० सी० से ही भारत का वर्णन बहुत अधूरा है, क्योंकि हिन्दुओं की वास्तविक महत्ता इसके

पहले ही बहुत रही है। आपने महाभारत और हरिवंश पर विशेष ध्यान नहीं दिया है, यद्यपि इन ग्रंथो से भी इतिहास लेखक को बहुत बड़ी सहायता मिलती है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक मैकडानल महाशय ने महाभारत के मूलरूप को बौद्धकाल से भी पुराना माना है। तिलक महाशय ने भी इस विषय पर अनेक प्रमाण दिये हैं। पार्जिटर महाशय ने पुराणो पर अच्छा श्रम किया है। पुराणो की प्राचीनता आपने मानी है। हम इन ग्रन्थो को भी बहुत करके प्रमाणनीय मानते हैं। स्मिथ महाशय का भी मत है कि योरोपीय लेखकों ने पुराणो की उचित से अधिक अवहेलना की है। विष्णु और मत्स्य पुराणो ने मौर्य्य तथा आन्ध्र घरानो का इतिहास बहुत करके शुद्ध दिया है। जैसा कि भूमिका मे हमने लिखा है, संहिता, ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थ वैदिक तथा बहुत कर के ब्राह्मण साहित्य के अंग हैं और पुराण मूलतः बहुधा अब्राह्मण के।

विदेशी लेखकों मे भारत का सब से पहला कथन फ़ारस के बादशाह हिस्टस्पस के पुत्र डेरियस ने परसेपुलिस और नक़्श रुस्तम मे किया। इस दूसरे ग्रन्थ का समय ४८६ बी० सी० है। इससे कुछ पीछे हेराडोटस ने और भी कुछ अधिक वर्णन किया। सिकन्दर का धावा ३२५-२३ बी० सी० मे हुआ। इसके थोड़े ही पीछे सीरिया और मिश्र के राजदूत मौर्य्य-महाराजाओं के यहाँ पटना मे रहने लगे। इन लोगों ने अपने विवरण छोड़े हैं जिनमे मेगास्थनीज का सर्व प्रधान है। दूसरी शताब्दी के एरियन का वर्णन भी अच्छा है। यह यूनान और इटली का राजसेवक था। पहली शताब्दी बी० सी० मे चीनी लेखक सोमाचीन ने भारत का बहुत अच्छा वर्णन किया। ३९९ मे चीनी यात्री फाहियेन और ६२९ मे ह्यूयन त्सान भारत मे आये। इन दोनो के कथन बहुत ही उपयोगी हैं विशेष कर के ह्यूयन्-त्सान के। इस यात्री ने भारत मे १६ वर्ष रह कर अपना अनमोल ग्रंथ रचा जिसका ऐतिहासिक मूल्य वर्णनातीत है। इन्होंने कन्नौज वल्लभी, दक्षिण और कांची के राज्यो का वर्णन किया और बहुत सी ऐसी बहुमूल्य कथाये भी लिख दीं जो बिना इस प्रकार रक्षित हुए नष्ट हो जातीं। आठवीं शताब्दी का मंजुश्री मूलकल्प

नामक एक उत्कृष्ट बौद्ध ग्रन्थ निकला है जिस में प्राय: ३०० श्लोकों में प्राचीन से तत्कालीन पर्य्यन्त इतिहास कथित है। महमूद गजनवी के साथ अलबरूनी नामक एक ऐसा अरबी पंडित आया था, जिसने संस्कृत भाषा पढ़कर भारत का वर्णन लिखा जो बहुत उपयोगी है। मुसलमानी ऐतिहासिक फरिश्ता आदि ने भी भारत का इतिहास रचा है किन्तु इन्होंने मुसलमानी बल बढ़ा हुआ कहने के विचार से हिन्दुओं का प्रताप घटा कर लिखा। बनियर मनूची आदि ने भी मुगल भारत का आँख देखा कथन किया और हाल मे प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार ने औरङ्गजेब का विशद इतिहास पाँच भागो मे रचा है। पाश्चात्य विद्वानो में से सर विलियम जोन्स, कोलब्रुक, विल्सन, डा० मिलर, पार्जिटर, प्रिंसेप, डा० बरनल, डा० फ़्लीट, प्रोफ़ेसर कीलहार्न और रायल एशियाटिक सोसायटी तथा एशियाटिक सोसायटी आफ़ बङ्गाल, भारतीय विषयो पर प्रामाणिक माने जाते हैं।

शिला लेखों, ताम्रपत्रो, सिक्कों आदि से भारतीय इतिहास का बहुत विशद पता चला है । अशोक, समुद्रगुप्त आदि ने पाषाणो पर अपने हाल खुदवाए। दक्षिणी भारत में ऐसी सामग्री बहुत प्रचुरता से मिलती है। प्राचीन ग्रन्था मे भी इतिहास का वर्णन है, किन्तु इनसे अधिक लाभ नहीं हुआ है क्योंकि इनमें से बहुतो में अत्युक्ति की मात्रा बहुत अधिक है। कशमीरी ग्रन्थ राजतरंगिणी भी कुछ अत्युक्ति पूर्ण है। राजतरंगिणी सन् ११४८ में लिखी गई। उसकी प्रत्यक्ष भूलें यह हैं कि उसमें अशोक का समय १२०० बी० सी० तथा मिहिर कुल का ८१८-७४८ बी० सी० लिखा है और रणादित्य का भी समय सन् २२२-५७२ ई० अर्थात ३०० वर्षों का दिया है । मिहिर कुल के पिता तोडमन को मिहिर कुल के उपरांत ७ वीं शताब्दी का लिखा है। बाणकृत हर्षचरित्र और बिल्हण-कृत विक्रमाङ्कदेव चरित्र अच्छे ग्रन्थ हैं । रामचरितम् में बंगाली पाल राजाओ का वर्णन एव जैन ग्रथों में पश्चिमीय चालुक्य राजकुल का कथन है। भारत में बहुत से संवत् होने के कारण यहाँ का समय निरूपण एक कठिन काम है। कनिंघम ने बीस से ऊपर संवतों का वर्णन किया है। अलबरूनी ने १०३० ई० मे विष्णु पुराण में लिखित १८ पुराणों के नाम लिखे और कहा कि भारत का कोई

क्रम बद्ध इतिहास नहीं है। बाणभट्ट ने ६२० के ग्रन्थ हर्षचरित्र में भी १८ पुराणों कहीं तथा अग्नि, भागवत और स्कन्द पुराणों का व्यवहार किया। "मिलिन्द के प्रश्न" नामक बौद्ध ग्रन्थ ३०० ई० से प्रथम का है। इसमें भी पुराणो के किसी न किसी रूप का कथन आया है। गुप्त राजाओ के समय मे पुराणो को बहुत करके वर्त्तमान रूप मिला। उस समय कुछ घटा बढ़ा कर इनका जीर्णोद्धार हुआ।

उपर्युक्त सामग्री के अतिरिक्त बहुत से अन्य आधार भी मिलते हैं। इनमे पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, परमाल रासो, टाड राजस्थान, गुजराती राष्ट्र माला आदि प्रधान हैं। सरकारी ग्रन्थ गजेटियरो मे भी प्रायः प्रत्येक स्थान का इतिहास थोड़े मे दे दिया गया है। राजपूताने की रियासतो मे भी अच्छे इतिहास-ग्रन्थ उपलब्ध हैं विशेषतया मेवाड तथा जैसलमेर मे। इनके अतिरिक्त हिन्दी, मराठी, बंगला आदि के प्राचीन साहित्य ग्रंथो मे ऐतिहासिक सामग्री प्रचुरता से मिलती है। भारत मे ऐतिहासिक सामग्री की कमी नहीं है पर समय निरूपण एवं अत्युक्ति और पक्षपात पूर्ण वर्णनो से उचित ऐतिहासिक घटनाओं का निकालना कुछ कठिन काम है। मुसलमानी लेखक अपने पक्ष मे खीचतान करते हैं और हिन्दू रजवाड़े अपना प्रभाव बढाकर लिखते हैं। कुछ हिन्दू धर्म ग्रन्थ प्राचीन घटनाओं को लाखो वर्षो की प्राचीनता देना चाहते हैं और यूरोपीय लेखक प्राचीन से प्राचीन घटनाओं को कल की प्रमाणित करते हैं। इन सब झगडो से बचकर कोई सर्वमान्य इतिहास लिखना बहुत सरल नही है। इसीलिए स्मिथ महाशय ने ६०० बी० सी० से ही ऐतिहासिक काल माना है। इससे प्रथम वाले इतिहास के आधार स्वरूप बहुत करके हिन्दू धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रन्थ ही मिलते हैं। इनमे वेदो, ब्राह्मणो, स्मृतियो, सूत्रो, पुराणो आदि की प्रधानता है। वेदो मे घटनाएँ घटा बढा कर नही लिखी गयी हैं, वरन् सच्चे और प्रामाणिक कथन उनमे पाये जाते हैं। यदि देवताओ के माहात्म्य एवं प्रकट धार्मिक अत्युक्तियो को निकाल डालिये, तो वेदो का एक एक अक्षर सच्ची ऐतिहासिक सामग्री देता है। वस्तुतः वेदों का सब से बड़ा मूल्य ऐतिहासिक है। फिर भी इतनी कठिनाई है, कि वेद इतिहास

कथन के लिए नहीं बनाये गये वरन् उनमें ऐतिहासिक सामग्री अप्रासगिक प्रकार से है। उनके मुख्य विषय कुछ और ही हैं और उपमा, रूपक, उदाहरण, महिमा-कथन आदि के सहारे हम लोगो को ऐतिहासिक सामग्री वेदो मे मिलती है। फिर भी इतनी त्रुटि रह जाती है कि पूरा ऐतिहासिक वर्णन नही मिलता वरन् उनके इशारे मात्र उपलब्ध हैं। वेदो मे मनु, इक्ष्वाकु, पृथु, दिवादास, सुदास, ययाति, यदु, पुरु, त्रैतन, शम्बर, वृत्र, नमुचि, बलि, पुरोचन, प्रह्लाद आदि सैकडो महाशयो के नाम आए हैं और बहुतो के सम्बन्ध मे कुछ कुछ घटनाएँ भी लिखी हैं, किन्तु पूर्वापर क्रम, मिलित वर्णन आदि कुछ भी नहीं है। उनमे ऐतिहासिक रीति पर कुछ नहीं कहा गया है वरन् स्फुट प्रकार से घटनाएं कथित हैं।

यह त्रुटि ब्राह्मण ग्रन्थों मे गाथाओ द्वारा कुछ कुछ दूर की गयी है, किन्तु इनमे भी गाथाएँ हैं अप्रासंगिक मात्र, क्योंकि इतिहास से इतर विषयो की पुष्टि मे वे स्फुट प्रकार से कही गयी हैं। शास्त्रों का कथन है कि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद ही हैं। हमे इस कथन पर मत प्रकाश करने की कोई आवश्यकता नही क्योंकि हमारा विषय धार्मिक नही है। हम सहिता मात्र को वेद कहेंगे और ब्राह्मणो को ब्राह्मण। सूत्रों और स्मृतियों मे भी सामाजिक ज्ञान प्रदायिनी प्रचुर सामग्री मिलती है। सब से पहले ऐतिहासिक ग्रन्थ जो हमारे यहाँ लिखे गए वे पुराण हैं। ब्राह्मण ग्रन्थो से ही धार्मिक विषयो की महिमा बढ़ने लगी। यह परिपाटी सूत्रो तथा स्मृतियों मे बढी और पुराणो मे पराकाष्ठा को पहुँच गयी। जहाँ वेदो मे मानुष जीवन सौ से सवा सौ वर्षों का माना गया और कोई मनुष्य अमर नही कहा गया, वही पुराणों मे कही कहीं वह दश हज़ार वर्षों का होगया और कई मनुष्य अमर कहे गए। इस एक भूल ने पौराणिक ग्रन्थों के ऐतिहासिक मूल्य को बहुत घटा दिया है। देखन मे पुराणो के कथन वेदो से दृढ़तर अथच पूर्ण मिलते हैं, किन्तु संहिता का जो प्रत्येक शब्द दृढ़ है, यही उसकी महत्ता है। शेष वैदिक साहित्य भी इसी कारण से पुराणो की अपेक्षा अधिक मान्य है। गुप्त काल पर्य्यन्त पुराणो मे सम्पादको द्वारा घटाव बढाव हुये, जिससे उनका प्रत्येक भाग वैदिक साहित्य के समान

प्रामाणिक नहीं है। इसलिए सत्यता की जांच मे सारा वैदिक साहित्य पौराणिक से दृढ़तर है। फिर भी पुराणों के शुद्ध कथन मान्य अवश्य हैं। उनमे सामग्री प्रचुर तथा अच्छी है। समय सम्बन्धी अभाव अवश्य कठिन आपत्ति है, किन्तु प्रसिद्ध राजघरानो के वंशवृक्ष मिलाने से और समकालिक नामो के सहारे उनका पूर्वापर क्रम स्थिर करने से मोटे मोटे समय मिल जाते हैं जिनमें इतिहास का वर्णन हो सकता है। फिर भी प्रत्येक राज्य के सम्बन्ध में सन् संवतो का व्योरा खोज निकालना अभी तक असाध्य समझ पड़ता है। इसलिए आदिमकाल से ६०० बी० सी० तक के समय को हम भी अनैतिहासिक काल कहेंगे। अपने ग्रंथ को ३ भागो मे हमने विभक्त किया है जिसमे पहला भाग यही अनैतिहासिक काल सम्बन्धी है, दूसरे भाग मे ६०० बी० सी० से प्राय: १३१४ ई० तक का वर्णन होगा और तीसरे मे १३१४ से अब तक का। हम ऊपर वेदो, ब्राह्मणों, सूत्रों तथा पुराणो का इतिहासाधार कह आये हैं। कोई ग्रन्थ उसी समय के इतिहास का आधार हो सकता है जब कि वह बना हो या उससे कुछ पहले का। वेद, ब्राह्मण और सूत्र विशेषतया ब्राह्मणो द्वारा कहे और रक्षित किये गये। इस प्रकार यह वैदिक साहित्य बहुधा ब्राह्मण कृत है। पौराणिक साहित्य का मूल बहुधा चारणों, सूतों, मागधों आदि के द्वारा रक्षित हुआ जैसा कि भूमिका मे कहा गया है। इसके व्यास कृत पुराण तथा इतरों के चार मीमांसा ग्रन्थ प्राचीन काल मे बने। अब हम कुछ अन्य आधारो का कथन करके यह अध्याय समाप्त करेंगे।

डाक्टर राय चौधरी के विचार

ऐतिहासिक ज्ञान के लिए हमारे निम्नलिखित ग्रन्थ मान्य हैं:—

अ—परीक्षित के पीछे दृढ किया हुआ हिन्दू साहित्य।

१—चारो वेद, मुख्यतया अथर्ववेद की अन्तिम पुस्तक।

२—एतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय एवं अन्य प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ।

३—बृहदारण्यक, छान्दोग्य तथा अन्य प्राचीन उपनिषत्।

आ—बिम्बिसार के पीछे का हिन्दू साहित्य, रामायण, महाभारत, और पुराणग्रन्थ।

इ—बिम्बिसार के पीछे का निश्चित कालीन हिंदू साहित्य।
कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र, पातजलि महाभाष्य, पाणिनीय अष्टाध्यायी।

ई—बौद्ध सुत्त, विनय सुत्त तथा जातक ग्रन्थ। ये प्रायः शुग पूर्व के हैं।

उ—जैन ग्रन्थ ४५४ ई० मे लिपिबद्ध हुए।

श्रीयुत पार्जिटर के विचारानुसार सूत पौराणिक हैं, मागध वश वृत्त के ज्ञाता तथा वन्दिन प्रशसक। जहां इतिश्रुतिः लिखा रहता है वहाँ वेद से प्रयोजन है। व्यास ने पहले पुराण बनाई, फिर महाभारत, जिसका नाम उन्होने जय रक्खा। वर्तमान पुराणो मे वायु और ब्रह्माण्ड सबसे पुराने हैं। पहले ये दोनो एक थीं और पीछे दो हुई। उग्रश्रवस रोम हर्षण के पुत्र थे तथा छः शिष्यो में पाँच ब्राह्मण थे। वायु के पीछे मत्स्य, ब्रह्म और हरिवश बनी। पुराणज्ञ, पुराणवित, पौराणिक और वशवित् प्राचीन हाल जानते थे। ब्युलरके अनुसार आपस्तम्ब तीसरी शताब्दी बी० सी० में थे या डेढ़ दो सौ वर्ष और पूर्व। वे भविष्यत और मत्स्य पुराणो से उद्धरण देते हैं, जिससे ये ५०० बी० सी० से पूर्व चली जाती हैं। भविष्य का प्रारम्भ शाम्ब से होता है। वायु पुराण अधिसीम कृष्ण को सुनाई गई। कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र चौथी शताब्दी से पहली बी० सी० तक का है। इस समय पुराणें भली भाँति ज्ञात और सर्वमान्य थीं। पहली व्यास कृत पुराण पाण्डवो के समय बनी, तथा भागवत् नवीं शताब्दी में। वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवश, पद्म और मत्स्य पुराण औरों से अधिक मान्य हैं। उनमें मूल वृतान्त है। विष्णु पुराण में बौद्धों तथा जैनों के पराजय भी कथित हैं, जिससे वह ५०० ई० तक आ जाती है।

डाक्टर प्रधान के विचार

प्राचीन कथनों में सूत, मागध, पौराणिक, पुराणज्ञ, पुरावित, गाथा आदि के विवरण आते हैं। पुराणे इस प्रकार हैं:—पहला व्यास

कृत, दूसरे ग्रंथ मागध नरेश सेनजित के समय के, तीसरे नन्दवंश के समय के और चौथे गुप्त कालीन। भागवत बहुत पीछे की। वायु अन्य पुराणों से पहले की है।

इतर आधारों के अनुसार कथन

वायु, ब्रह्माण्ड और विष्णु पुराणों का कथन है कि व्यास ने चारो वेद पेल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु को दिये। अनन्तर आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्प जोक्तियां बांटी। कल्प वाक्यो के आधार पर उन्होने एक पुराण बनाई, तथा उसे एव इतिहास को अपने शिष्य रोम हर्षण या लोम हर्ष को सिखलाया। रोम हर्षण ने उसको छः रूपों में अपने निम्न षट शिष्यो को पढाया:—आत्रेय सुमति, काश्यप-कृतव्रण, भरद्वाज, अग्निवर्चस, वशिष्ठ, मित्रयु, सावर्णि, सोमदत्ति और सुदर्शन शांशपायन। इनमे से काश्यप सावर्णि, और शांशपायन ने एक एक सहिता बनाई। पहली सहिता रामहर्षण कृत थी। इनमे से शाशपायन की सहिता का आकार नहीं दिया हुआ है; शेष तीनो सहितायें चार चार हजार श्लोको की थी।



तीसरा अध्याय

भारतीय इतिहास का महत्व

कुछ इतिहासज्ञों ने लिखा है कि भारतीय इतिहास बहुत फीका है। इसमें बार बार एक बडा साम्राज्य क़ायम होकर तथा कुछ दिन भारी रियासत चला कर टूट जाता है और विविध प्रान्तो मे छोटी छोटी रियासतो में बँट कर छिन्न भिन्न हो जाता है। सुदास, रामचन्द्र, जरासन्ध, युधिष्ठिर, अजातशत्रु, अशोक, प्रवरसेन, समुद्रगुप्त, शर्ववर्मन, हर्षवर्द्धन, अलाउद्दीन, औरंगजेब, माधवराव आदि अवश्य भारी सम्राट थे, किन्तु इन सब के पीछे समय पर देश की एकता छिन्न भिन्न हो गयी और वह छोटी छोटी रियासतो मे बँटकर मांडलिक राजाओ से भर गया। एक दो नही बारह पन्द्रह बार ऐसे दृश्य देख कर भी स्वतन्त्रता, प्रतिनिधि बल, प्रजा के अधिकार आदि में समय के साथ कोई विशेष वृद्धि न होने से यदि कोई आलोचक हमारे राजनैतिक इतिहास को फीका बतलावे तो हम उसे वक्रालोचक नही कह सकेंगे। यह नहीं कि हमारे यहाँ स्वतन्त्रता आदि के विचार उत्पन्न हुए ही नहीं और उनकी उन्नति का सूर्य्य कभी चमका ही नही, किन्तु फिर भी इतना दुःख के साथ मानना पडेगा कि समय के साथ इन सुविचारों की समुचित उन्नति नहीं हुई, विशेषतया बारहवीं शताब्दी के पीछे।

यदि हिन्दू राजाओं का प्राचीन इतिहास देखा जावे तो प्रत्यक्ष प्रकट होगा कि "राजा करै सो न्याव, पाँसा पडै सो दाँव" वाली कहावत हमारे यहाँ कभी चरितार्थ नही हुइ। यहाँ राजा लोग सदैव सनातन विचारों और धर्मों को मानते रहे। आज तक देशी रियासतों में प्रजा को जब कोई बात अनुचित जान पडती है तब वह हाकिमों से यही कहती है कि "अब तुम नई नई बातें करने लगे।" हाकिम लोग भी प्रायः ऐसे ही उत्तर देते हुये देखे जाते हैं कि "कौन नई करियति है? सनातन से का यही नाईं चली आई है?" प्राचीनता का इतना मान है कि

खंड मे आज तक लगान को रीति कहते हैं। यदि कहीं नेवते जावे तो जो साधारण मान मरातब होता है उसे दस्तूर कहते हैं।

हमारे यहाँ प्राचीन और नवीन राजाओ मे से प्राय: किसी ने घर जानी मन मानी नही की। सब लोग लोक प्रचलित विचारो तथा आचारो पर शासन करते रहे। धार्मिक सहनशीलता इतनी रही है कि हिन्दू, जैन, बौद्धादि सभी हिल मिल कर एक ही जगह बने रहे और पारसी भी यही आ बसे, किन्तु कभी धार्मिक महा सग्राम नही हुए। सभी को अपने विचारो एव आचारो पर चलने का पूरा अधिकार रहा। हमारे सभी प्रधान शासकों मे से अशोक बडा धर्म फैलानेवाला था, किन्तु उसने भी बौद्धो तथा ब्राह्मणो का सदैव प्राय: समभाव से सत्कार किया और धर्म फैलाने मे कभी बल का प्रयोग नही किया। यही दशा गुप्तवशी हिन्दू शासको की रही। प्रसिद्ध महाराज हर्षवर्द्धन का भी यही हाल था। केवल एक मात्र राजा वेन ऐसा हुआ जिसने अपने को ब्राह्मणों से पुजवाने की आज्ञा प्रचारित की। उसको प्रजा ही ने उसका वध कर डाला और फिर भी राज्य लोभ न करके उसी के पुत्र प्रसिद्ध राजा पृथु को शासक बनाया, जिसने इस उत्तमता से राज्य किया कि धरणी उसी के नाम पर पृथ्वी कहलाने लगी। क़ानून बनाने के लिये हमारे यहाँ राजा को कभी प्रयत्न नही करना पडता था और विद्वान ब्राह्मणो के रचे हुये ग्रन्थ अपनी भलाई अथच लोक-मान्यता के कारण राज्य सभा मे कानून की भाँति माने जाते थे। यही दशा पेशवाओ के राज्य तक मे रही। इतनी भारी उन्नति प्राप्त करने के लिए थोडी शिक्षा अथवा थोडा प्रभाव पर्याप्त नही हो सकता।

योरोप तथा अमेरिका मे दास प्रथा उठाने के लिये भारी-भारी सग्राम हुए किन्तु हमारे यहाँ यह प्रथा कभी बलवती हुई ही नही। जितनी उन्नति हिन्दू राज्य ने शासन पद्धति, प्रजा-अधिकार, स्वतन्त्रता आदि के विचारो मे कर ली उतनी तत्कालिक किसी साम्राज्य ने पृथ्वी-मडल मे नही कर पाई। यदि समय मिलता तो अन्य उन्नत देशो की भाँति भारत भी बारहवी शताब्दी के पीछे इन विचारो को दृढ़ करता,

किन्तु हिन्दू मुसलमानो की सामाजिक एवं धार्मिक भिन्नता ऐसी पड़ गई कि प्रजा और राजा मे एकता का भाव मुसलमानी राज्य में नही आया। इसी से मुसलमान लोग अपने को सदा विजयी समझते रहे और उनकी पाँच शताब्दियों मे प्रजा के अधिकार समुचित प्रकारेण उन्नत नही हुए। यह दशा राजनैतिक विचारो एव अधिकारो की रही और एक प्रकार से कुछ फीकी कही जा सकती है, किन्तु अन्य बातों मे भारतीय इतिहास फीका नहीं है। गौतम बुद्ध के पूर्व मे हमारे यहाँ कुछ प्रजातन्त्र राज्य थे। ऐसे कुछ राज्य गुप्त काल तक चले। किसी देश की ऐतिहासिक गरिमा उसके द्वारा सांसारिक सभ्यता की उन्नति पर निर्भर है, अर्थात् इस उन्नति मे उसने जितनी सहायता पहुँचाई होगी उसी के अनुसार उसका इतिहास अच्छा अथवा बुरा कहा जावेगा। संस्कृत के इतिहास-लेखक मैकडानल महाशय ने इस विषय पर २० पृष्ठों का एक अध्याय लिख कर भारत को बहुत बाधित किया है। उन्होंने दिखलाया है कि किन किन बातो मे भारत ने सांसारिक सभ्यता को वर्द्धमान किया। उन्ही के आधार पर यहाँ कुछ वर्णन करके तब हम आगे बढ़ेगे।

५०९ बी० सी० मे स्किलैक्स नामक एक यूनानी भारत मे आया और उसने सिन्ध नदी पर नाव चलाई। उसके वर्णनो से हेरोडोटस ने भारत का हाल जाना। ४८० बी० सी० मे जर्कसीज जो सेना ग्रीस को ले गया उसमें भारतीय दल भी था। इस फारसी सेना का वर्णन इतिहास लेखक हेरोडोटस ने किया। सिकन्दर ने जब ३२५ बी० सी० में भारत पर धावा किया तब यूनानियो ने झेलम और सिन्ध के बीच जोगियों को देखा। यूनानी एलची मेगास्थनीज ३०५ बी० सी० के पीछे कुछ साल पटना मे रहा। उसने टा इन्डिका नाम्नी एक पुस्तक लिखी जिसमे भारत का वर्णन किया। उसमे लिखा है कि हिन्दुस्तानी लोग इन्द्र और गङ्गा की पूजा करते थे। उसके लेख से विदित है कि उसके समय मे सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के विचार दृढ हो चुके थे तथा विष्णु, शिव एव कृष्ण का पूजन होता था। अन्तिम पूजन मेगास्थनीज मथुरा मे लिखता है। उसका यह भी कथन है कि भारत में कोई दास न था। इधर कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र मे दास कल्प

का विवरण इसी काल मे है। इससे जान पड़ता है कि दास थे अवश्य किन्तु गणना मे वे इतने कम थे तथा उनके साथ ऐसा सुव्यवहार था कि मेगास्थनीज को समाज मे उनका अस्तित्व ही न समझ पड़ा। इसके बाद प्रायः २०० वर्ष तक यूनानियो का आना जाना भारत मे रहा।

डिओक्रिसास्टुमस नामक एक यूनानी का समय ५१ से ११७ ई० तक का है। इसने लिखा कि हिन्दुस्तानी लोग अपनी भाषा मे होमर-कृत इलियड के वीरो का गीत गाते हैं। इससे उसका प्रयोजन महाभारत से समझ पड़ता है और जान पड़ता है कि यह लोग उस समय महाभारत को जानते थे। महमूद गजनवी के जब धावे हुये तब उसके साथ अलबरूनी नामक एक पंडित आया।

कुछ पादरियो ने श्रीकृष्ण सम्बन्धी बहुत सी घटनाओ को ईसा वालियो मे मिलती देखकर कृष्ण पूजन की उत्पति उन से मानी है, किन्तु कृष्ण पूजन मेगास्थनीज के समय भी चलता था, जिसके ३०० वर्ष पीछे ईसा उत्पन्न हुए। दूसरी शताब्दी बी० सी० मे रचित महाभाष्य मे लिखा है कि कृष्ण सम्बन्धी नाटक भी खेले जाते थे। इन बातों से प्रकट है कि ईसा की जीवनी मे घटना वर्णन पर कृष्ण की जीवनी का प्रभाव पड़ा है। बालकृष्ण पूजन पीछे का है और इसके विवरण मे ईसाई कथनों का कुछ प्रभाव असम्भव नही है।

भारतीय पर यूनानी नाटको का कोई प्रभाव नही पडा, ऐसा मैकडानल महाशय ने दिखलाया है। फिर भी यूनानी लोगों का भारत मे बहुत आना जाना था जिससे सभव है कि भारतीय का यूनानी नाटको पर प्रभाव पडा हो। शकुन्तला नाटक की प्रस्तावना के आधार पर प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटी ने फाउस्ट की प्रस्तावना बनायी। भारतीय भूत प्रेतो की कथा कहानियो तथा उपन्यासो का प्रभाव योरोप मे बहुत अधिक पड़ा। छठवी शताब्दी मे पचतत्र के समान एक बौद्ध ग्रथ का अनुवाद फारसी वैद्य बरजोई ने पहलवी भाषा में सासानी बादशाह

खुसरो अनुशीरवाँ की आज्ञा से किया। यह बौद्ध ग्रन्थ और अनुवाद अब दोनों लुप्त हो गये हैं, किन्तु इस पहलवी पुस्तक का अनुवाद अरबी भाषा में ८ वीं शताब्दी में हुआ, जो अब भी प्रस्तुत है। इसका नाम कलैला दमना है। इसमें लिखा है कि विदबा नामक एक हिन्दुस्तानी दार्शनिक ने एक दुष्ट राजा को भला बना दिया। विदबा विद्यापति था। इसी कलैला दमना से समय पर फारसी ग्रन्थ अनवार सुहेली निकला और मध्य कालिक योरोप में अनेकानेक भाषाओं में कई ग्रन्थ रचे गये। छान्दोग्य उपनिषत् में भी ऐसी ही कहानियाँ पाई जाती हैं जिससे प्रकट है कि यह भारत में बहुत काल से प्रचलित थीं। शतरंज का खेल भी योरोप में भारत से गया। इसे संस्कृत में चतुरंग कहते हैं, क्योंकि इसमें चतुरंग सेना होती है, अर्थात् रथी, गजी, हयमादी और पदाती।

दर्शन शास्त्र में भारत का प्रभाव यूनान पर बहुत पड़ा। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक पिथैगुरस के प्रायः सभी सिद्धान्त छठी शताब्दी बी० सी० से ही भारत में ज्ञात थे। जान पड़ता है कि पिथैगुरस ने फारस में हिन्दुस्तानियों से मिलकर वे सिद्धान्त जाने थे। प्लाटनस और उसके शिष्य पारफ़्री (२३२-३०४ ई०) के सिद्धान्तों में योग और सांख्य के प्रभाव देख पड़ते हैं। दूसरी और तीसरी शताब्दियों में ईसाई दर्शन शास्त्र पर सांख्य का प्रभाव पड़ा। १९ वीं शताब्दी में शोपिनहार और हार्टमैन के सिद्धान्तों पर भारतीय दर्शन का प्रभाव देख पड़ता है।

विज्ञान में भी योरोप हिन्दुस्तान का थोड़ा ऋणी नहीं है। आठवीं और नवीं शताब्दी में हिन्दुस्तानियों ने अरबवालों को गणित एवं बीज-गणित सिखलाया। रेखागणित में कैन्टर महाशय के अनुसार यूनानी विचारों और हमारे शूल्व सूत्रों में इतना मेल है कि वे इन सूत्रों को यूनानी ग्रन्थों पर आश्रित समझते हैं। कैन्टर महाशय गणित शास्त्र के ऐतिहासिक हैं और जिस ग्रन्थ को वे शूल्व सूत्र का आधार मानते हैं वह २०५ बी० सी० का है किन्तु हमारे शूल्व सूत्र श्रौत सूत्रों के अङ्ग हैं जो ५०७ बी० सी० से भी पुराने हैं। अतः यूनानी रेखागणित का

शूल्व सूत्रो पर ही अवलम्बित होना सिद्ध होता है। ज्योतिष शास्त्र में भारतीय ऋषियो ने यूनान आदि से कुछ सहायता ली, जैसा कि हेली, होरा शास्त्र, रोमक सिद्धान्त आदि शब्दो से भी प्रकट होता है। फिर हिन्दुस्तानियो ने स्वतन्त्र उन्नति बहुत की और इसका प्रभाव पश्चिम पर भी पड़ा है। ८वी एवं ९वीं शताब्दी मे भारतीयो ने अरबों को ज्योतिष विद्या सिखलाई और हिन्दू ज्योतिष ग्रन्थो का अनुवाद अरबी मे हुआ। यवनाचार्य्य आदि ब्राह्मण ज्योतिषी अरब मे हुये। बगदाद के खलीफा ने कई बार हिन्दू ज्योतिषाचार्य्यों को इस काम के लिये अपने यहाँ बुलाया। आयुर्वेद मे हिन्दुओ के कई ग्रन्थ खलीफ़ा बगदाद द्वारा ७ वी शताब्दी के लगभग अनुवादित कराये गये। चरक और सुश्रुत के कई ग्रन्थ ८ वी शताब्दी मे अरबी में अनुवादित हुये। १० वी शताब्दी का अरबी वैद्य अलरजी इनको प्रमाण स्वरूप लिखता है। चरक महाराजा कनिष्क का राजवैद्य था। १७वी शताब्दी तक अरबी आयुर्वेद इस योरोपीय शास्त्र का आधार स्वरूप रहा। अरबी आयुर्वेदीय ग्रन्थो के जो लैटिन मे अनुवाद हुये उनमे चरक का नाम बहुधा आया जिससे प्रकट है कि अरबी वैद्यगण चरक का बड़ा आदर करते थे। वर्तमान योरोप ने कृत्रिम नाक का बनाना भारत से ही सीखा। जब सिकन्दर का धावा हुआ तब उसके वैद्य सर्पदंश निवारण नही कर सकते थे। इसलिये इस काम पर उसने भारतीय वैद्य रक्खे। अनेकानेक योरोपीय साहित्यिक भाव बौद्ध ग्रन्थो से निकले। यहाँ तक इस विषय पर जो विचार लिखे गये हैं व मैकडानल महाशय के आधार पर है।

बाबू गंगाप्रसाद एम० ए० पेंशनर डेपुटी कलेक्टर युक्त प्रान्त ने "धर्मों का मूल स्रोत" (Fountainhead of Religion) नामक ग्रन्थमे बड़ी विद्वत्ता पूर्वक सिद्ध किया है कि संसार के सारे भारी धर्म अन्त मे वैदिक पर अवलम्बित है। यह तो प्रकट ही है कि बौद्धमत वैदिक धर्म का सन्तान है। बाबू साहब ने अकाट्य तर्कों से सिद्ध किया है कि मुसलमानी मत का आधार ईसाई है तथा ईसाई का बौद्ध। वे यहूदी का पारसी और इसका वैदिक मत आधार स्वरूप सिद्ध करते है।

ख़ुसरो अनुशीरवाँ की आज्ञा से किया। यह बौद्ध ग्रन्थ और अनुवाद अब दोनों लुप्त हो गये हैं, किन्तु इस पहलवी पुस्तक का अनुवाद अरबी भाषा मे ८ वी शताब्दी मे हुआ, जो अब भी प्रस्तुत है। इसका नाम कलैला दमना है। इसमे लिखा है कि विदवा नामक एक हिन्दुस्तानी दार्शनिक ने एक दुष्ट राजा को भला बना दिया। विदवा विद्यापति था। इसी कलैला दमना से समय पर फारसी ग्रन्थ अनवार सुहेली निकला और मध्य कालिक योरोप मे अनेकानेक भाषाओ मे कई ग्रन्थ रचे गये। छान्दोग्य उपनिषत् मे भी ऐसी ही कहानियाँ पाई जाती हैं जिससे प्रकट है कि यह भारत मे बहुत काल मे प्रचलित थी। शतरञ्ज का खेल भी योरोप मे भारत से गया। इसे सस्कृत मे चतुरग कहते हैं, क्योकि इसमे चतुरग सेना होती है, अर्थात् रथी, गजी, हयसादी और पदाती।

दर्शन शास्त्र मे भारत का प्रभाव यूनान पर बहुत पडा। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक पिथैगुरस के प्रायः सभी सिद्धान्त छठी शताब्दी बी० सी० से ही भारत मे ज्ञात थे। जान पड़ता है कि पिथैगुरस ने फारस में हिन्दुस्तानियों से मिलकर वे सिद्धान्त जाने थे। प्लाटनस और उसके शिष्य पारफ्री (२३२-३०४ ई०) के सिद्धान्तो मे योग और सांख्य के प्रभाव देख पड़ते हैं। दूसरी और तीसरी शताब्दियो मे ईसाई दर्शन शास्त्र पर साख्य का प्रभाव पडा। १९ वी शताब्दी में शोपिनहार और हार्टमैन के सिद्धान्तो पर भारतीय दर्शन का प्रभाव देख पडता है।

विज्ञान में भी योरोप हिन्दुस्तान का थोडा ऋणी नही है। आठवीं और नवी शताब्दी मे हिन्दुस्तानियो ने अरबवालो को गणित एव बीज-गणित सिखलाया। रेखागणित मे कैन्टर महाशय के अनुसार यूनानी विचारो और हमारे शूल्व सूत्रों में इतना मेल है कि वे इन सूत्रो को यूनानी ग्रन्थो पर आश्रित समझते हैं। कैन्टर महाशय गणित शास्त्र के ऐतिहासिक हैं और जिस ग्रन्थ को वे शूल्व सूत्र का आधार मानते हैं वह २०५ बी० सी० का है किन्तु हमारे शूल्व सूत्र श्रौत सूत्रो के अङ्ग हैं जो ५०७ बी० सी० से भी पुरान हैं। अतः यूनानी रेखागणित का

शूल्व सूत्रो पर ही अवलम्बित होना सिद्ध होता है। ज्योतिष शास्त्र में भारतीय ऋषियो ने यूनान आदि से कुछ सहायता ली, जैसा कि हेली, होरा शास्त्र, रोमक सिद्धान्त आदि शब्दों से भी प्रकट होता है। फिर हिन्दुस्तानियों ने स्वतन्त्र उन्नति बहुत की और इसका प्रभाव पश्चिम पर भी पड़ा है। ८वी एवं ९वी शताब्दी मे भारतीयो ने अरबों को ज्योतिष विद्या सिखलाई और हिन्दू ज्योतिष ग्रन्थो का अनुवाद अरबी मे हुआ। यवनाचार्य्य आदि ब्राह्मण ज्योतिषी अरब मे हुये। बगदाद के खलीफा ने कई बार हिन्दू ज्योतिषाचार्य्यों को इस काम के लिये अपने यहाँ बुलाया। आयुर्वेद मे हिन्दुओ के कई ग्रन्थ खलीफ़ा बगदाद द्वारा ७ वी शताब्दी के लगभग अनुवादित कराये गये। चरक और सुश्रुत के कई ग्रन्थ ८ वी शताब्दी मे अरबी में अनुवादित हुये। १० वी शताब्दी का अरबी वैद्य अलरजी इनको प्रमाण स्वरूप लिखता है। चरक महाराजा कनिष्क का राजवैद्य था। १७वी शताब्दी तक अरबी आयुर्वेद इस योरापीय शास्त्र का आधार स्वरूप रहा। अरबी आयुर्वेदीय ग्रन्थो के जो लैटिन मे अनुवाद हुये उनमे चरक का नाम बहुधा आया जिससे प्रकट है कि अरबी वैद्यगण चरक का बड़ा आदर करते थे। वर्तमान योरोप ने कृत्रिम नाक का बनाना भारत से ही सीखा। जब सिकन्दर का धावा हुआ तब उसके वैद्य सर्पदंश निवारण नही कर सकते थे। इसलिये इस काम पर उसने भारतीय वैद्य रक्खे। अनेकानेक योरोपीय साहित्यिक भाव बौद्ध ग्रन्थो से निकले। यहाँ तक इस विषय पर जो विचार लिखे गये हैं वे मैकडानल महाशय के आधार पर हैं।

बाबू गंगाप्रसाद एम० ए० पेंशनर डेपुटी कलेक्टर युक्त प्रान्त ने "धर्मों के मूल स्रोत" (Fountainhead of Religion) नामक ग्रन्थमें बड़ी विद्वत्ता पूर्वक सिद्ध किया है कि संसार के सारे भारी धर्म अन्त मे वैदिक पर अवलम्बित हैं। यह तो प्रकट ही है कि बौद्धमत वैदिक धर्म का सन्तान है। बाबू साहब ने अकाट्य तर्कों से सिद्ध किया है कि मुसलमानी मत का आधार ईसाई है तथा ईसाई का बौद्ध। वे यहूदी का पारसी और इसका वैदिक मत आधार स्वरूप सिद्ध करते हैं।

अत: ऐसा प्रकट होता है कि ससार के सारे मत अन्त मे वैदिक धर्म पर अवलम्बित हैं। ज़ुगास्टर और आब्रह्म के मत वैदिक पर अवलबित माने जा सकते हैं अथवा कम से कम इन के मूल एक थे। "जान दि वैपटिस्ट" ईसा के गुरु बौद्ध सिद्धान्तो मे अभिज्ञ थे। उन्ही से ईसा ने बौद्ध मत जाना होगा। बाबू साहब ने बहुत से बौद्ध और ईसाई सिद्धान्त एक ही जगह रख कर उनकी समानता दिखलाई है। रमेशचन्द्र दत्त ने दिखलाया है कि बौद्ध और ईसाई गिरजाओं मे बहुत बडी समानता है। ह्वेह्यू नामक ईसाई पादरी ने तिब्बत में जो बौद्ध रीतियाँ देखीं, उनसे उसे ईसाई रीतियो की इतनी बडी समानता देख पडी कि उसे जान पड़ा कि वे इस मत से ली गयी, किन्तु इतिहास मे सिद्ध हुआ है कि वह रीतियाँ ईसा के पूर्व से इसी प्रकार चली आयी हैं। इसलिये बौद्ध मत का ही आधार स्वरूप होना सिद्ध होता है। ईसा से बहुत दिन पूर्व से बौद्धमत की एक शाखा पैलेस्टाइन मे स्थापित थी। मध्य एशिया, लङ्का, बर्मा, तिब्बत, चीन, जापान, स्याम आदि मे भारतीय बौद्धमत फैला सो प्रत्यक्ष ही है। वाल्गानदी पर आष्ट्राखान मे एक हिन्दू बस्ती अद्यापि वर्तमान है और कैस्पियन सागर के पश्चिमी तट पर हिन्दू अग्नि मन्दिर बना हुआ है। मेक्सिको मे एक हाथी के सरवाले मनुष्य रूपी देवता का पूजन होता था। हाल ही मे वहाँ एक पत्थर की मूर्ति मिली, जो कदाचित श्रीकृष्ण या बुद्धदेव की है। अत: भारत ने एक प्रकार से सारी दुनिया को धर्म सिखलाया, और मनुष्य जाति में आधी से अधिक आज भी सीधा सीधा भारती मत मानती है।

जो कोमलता, दयालुता, पर-दुख-हानीच्छा आदि भारतीय मत समुदाय ने सिखलायी, वे अन्यत्र देख नही पडती। कारीगरी भी हमारे यहाँ की लोकमान्य है। ताजमहल आज भी ससार के सात आश्चर्यों में गिना जाता है। इसी भाति कांची, मदुरा, साँची, खजुराहा, भुवनेश्वर एलीफैन्टा, अजेन्टा, इलोरा कार्ली आदि की कारीगरी आज भी ससार को चकित करती है। १७ वीं शताब्दी तक बगाली कपड़े की बारीकी योरोपीय महिलाओ को मुग्ध करती थी और उसका प्रचार रोकने को

इङ्गलैण्ड में क़ानून बनाने की आवश्यकता पड़ी। कपडे की बारीकी यहाँ बहुत प्राचीन काल से स्थिर थी। दर्शन शास्त्र का तो भारतवर्ष मानो केन्द्र ही रहा है और यहाँ का साहित्य संस्कृत, प्राकृत एवं देशी भाषाओं मे बहुत ही प्रशंसास्पद है। ऋषियों तथा योगियों की यहाँ इतनी भरमार मची रही है कि इनका बाहुल्य उचित से बहुत अधिक कहा गया है। ऐसी ऐसी अनेकानेक अन्य बाते दिखलाई जा सकती हैं। अतः केवल पूर्ण राजनैतिक उन्नति न होने के कारण ही भारतीय इतिहास को फीका कहना नहीं फबता जब कि उपरोक्त अन्य उन्नतियाँ इसे गौरव प्रदान करती हैं।



चौथा अध्याय



पौराणिक राजवंश

पौराणिक इतिहास लिखने में सबसे बडा गडबड़ सन् संवतों का न मिलना है। किसी स्थिर सन् संवत् के अभाव मे हम लोगो को अपनी ओर से बड़े बडे समय दृढ़ करके इतिहास लिखना पड़ता है। इन समयों के स्थिर करने के लिये पौराणिक राजवशो का ज्ञान आवश्यक है। इसी के सहारे हम ऐतिहासिक काल स्थिर करेगे। प्राचीन मनु, सूर्य्य तथा चन्द्र कुल के राजघरानो का वर्णन सभी पुराणो मे आया है। उन्ही को देख और मिलाकर यहाँ राजकुलों की पीढ़िया का हाल कहा जावेगा। इन पीढ़ियो के कथन मे यह गडबड भी है कि कोई कुछ कह सकता है और कोई कुछ, क्योकि पृथक् पुराणो मे पीढ़ियो की सख्या और नामो मे बहुत कुछ अन्तर पडता है। उदाहरण के लिये हम यहाँ उस राजवश का हाल कहेगे जो पुराणो मे वैवस्वत मनु से चलकर सुमित्र पर समाप्त हुआ, जिसमे रामचन्द्र हुये और युधिष्ठिर के समय मे राजा वृहद्बल थे। इसकी पीढियो की सख्या विविध ग्रंथों के अनुसार इस तरह से है। यह सख्या वैवस्वत मनु से जोड़ी जाकर रामचन्द्र, वृहद्बल और सुमित्र तक दिखलाई जाती है।

ग्रन्थ	मनु से राम- चन्द्र तक पीढी	मनु से बृहद्बल तक	मनु से सुमित्र तक	विवरण
विष्णु पुराण	६३	९२	१२१	इसमेसुमित्रसुरथ तक का नाम है, सुमित्र का नही।
शिव पुराण	५६	८२	११०	
भविष्व पुराण	६२	९१	११९	
वाल्मीकीय रामायण	३६	—	—	रामके आगे वंश नहीं कहा गया।
श्री भागवत	६०	८८	११५	

इस चक्र के देखने से प्रकट है कि रामायण को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थों की सख्याएँ बहुत मिलती हैं। रामायण में केवल ३६ नाम हैं। कुछ लोगों का विचार है कि वाल्मीकि महाराज ने पूरा वश वृत्त न कह मुख्य मुख्य नाम ही दिये हैं। बाकी चारों ग्रन्थो मे नामो के लिखने में भी कुछ कुछ अन्तर है, अर्थात् कोई उसी नाम को कुछ ऊपर लिखता है और कोई नीचे। इसी तरह कोई उसी पीढ़ी के लिये औरो से अनमिल नाम देता है। बहुत से राजाओ के कई नाम थे, जैसे एक श्रीकृष्ण के ही नाम यदि गिनाये जावे तो बहुत बड़ी सख्या हो जावे। इसलिये जहाँ एक ही नाम में भेद है वहाँ प्राय: उसी राजा के कई नाम होने से ऐसा हुआ है। फिर भी मुख्य मुख्य नाम सब ग्रन्थों मे एक ही हैं और मामूली नामों में भी बहुत थोडा भेद है। इसलिये ध्यान पूर्वक पढकर मानना पड़ेगा कि कुल ग्रन्थों का मिलान करने से भी पौराणिक राजवंश वर्णन मे ऐसा गडबड नहीं देख पडता कि कोई प्रवीण पुरुष उसे प्रामाणिक न माने। सब पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों की गवाही जोडने से राजवश दृढ़ जँचते हैं।

पुराणो के लक्षण कहने में पंडितों ने पाँच मुख्य बातें मानी हैं जिनका वर्णन अन्यत्र होगा। उनके अनुसार जाँचने पर विष्णु पुराण एक बहुत ही माननीय ग्रन्थ ठहरता है। इसमे राजवशो का कथन है भी बहुत अच्छा, बडा और पूरी पीढियो तक। यह ग्रन्थ कहने को तो विष्णु पर है, किन्तु साम्प्रदायिक ग्रन्थो की भांति इसमे कट्टरपन कहीं नहीं है और सर्वत्र गम्भीरता देख पडती है। इसलिए हम अपना पौराणिक राजवश मुख्यतया विष्णु पुराण के ही आधार पर कहेंगे, किन्तु फिर भी ऊपर लिखे हुये ग्रन्थो तथा महाभारत, हरिवश, अग्नि पुराण आदि को भी मिलाकर जहां तक हो सकेगा शुद्ध राजवंश लिखे जावेंगे। विष्णु पुराण और हरिवश के कथन पूर्ण हैं।

जैन पडिता ने भी पुराणो के महत्व को माना है। ५ वीं शताब्दी की जैन पुस्तक शत्रुजय माहात्म्य मे लिखा है कि "पुराणो के तीन भेद हैं, अर्थात हिन्दू, जैन और बौद्ध। उनमे वायु, मत्स्य और विष्णु पुराणों की राजवशावलियाँ माननीय हैं और कितने ही विषयों के सम्बन्ध मे कुछ लोगों को विष्णु पुराण अन्य दो पुराणो से कम प्रामाणिक प्रतीत होता है।" तत्रो की ऐतिहासिक तथा भौगोलिक टिप्पणियो से भी अच्छी ऐतिहासिक सामग्री मिलती है।

पौराणिक राजवश मुख्य करके तीन ही हैं, अर्थात स्वायम्भुवमनु वश, सूर्यवश और चन्द्रवश। हमने सुभीते के लिये दैत्यो; दानवो आदि का भी कुछ कथन कर दिया है तथा प्रद्योतन, शिशुनाग और महापद्म के वशों का भी कथन मिला कर कुल सात राजवश कहे हैं। सूर्य्य और चन्द्रवशियो की शाखाओ को अलग नम्बर न देकर नम्बर के साथ अ, आ, आदि करके कहा है, जिसमे हर एक वंश की एकता पाठक के ध्यान से न उतरे।

द्वितीय सस्करण तक हमने विष्णु और हरिवंश के आश्रय पर वंशावलियाँ लिखी थी। दूसरा संस्करण सन् १९२३ में निकला था, और पहला सन् १९१९ मे। इधर पौराणिक राजवशो पर दो और प्रधान ग्रन्थ निकले हैं अर्थात् पहला पार्जिटर कृत Ancient Indian Historical Tradition 1922 का, और दूसरा डा० सीतानाथ प्रधान कृत chronology of Ancient India १९२७ का। डा०

रायचौधरी महाशय का एक तीसरा ग्रंथ इन्ही दोनो के बीच मे निकला है। उसमे परीक्षित के समय से गुप्त काल के पूर्व तक का हाल दृढ़ है। प्रधान ने रामचन्द्र के समय से महाभारत काल तक का वर्णन बड़े परिश्रम के साथ वैसा ही अच्छा लिखा है, जैसा कि रायचौधरी ने परीक्षित से पीछे वाला हाल कहा। इन दोनो ग्रन्थो से भगवान रामचन्द्र के समय तक का इतिहास दृढ़ हो जाता है। उसके पूर्व के विवरण मे अब तक सन्देह उपस्थित है। रामचन्द्र से महाभारत पर्यन्त वंशावली निरूपण करके प्रधान महाशय ने बड़ा ही भारी कार्य किया है। उन्होने तेरह वंशावलियाँ प्राचीन पौराणिक ग्रन्थो से निकाल कर यह प्रमाणित कर दिया है कि उपर्युक्त समय मे १२ से १५ तक पीढियाँ हुई थीं। पुराणों में जो वंशावलियाँ दी हुई हैं, उनमे से प्रधान की विधि पूर्वक जाँच मे कई पीढ़ियाँ अशुद्ध हो गयी हैं। वे सब कारण यहाँ भी कहने से हमारे ग्रन्थ की अनावश्यक वृद्धि होगी। वह ग्रन्थ कलकत्ता विश्वविद्यालय ने छपवाया है। उसकी कारण माला हमे भी दृढ़ मालूम पड़ती है। अतएव यहाँ प्रधान महाशय के निष्कर्ष मात्र दिए जावेंगे। पार्जिटर महाशय ने जितने कथन किए हैं, वे कोई आधार शून्य नही हैं। उन्होंने अपने प्रत्येक कथन के आधार-पाद नोटों मे दे दिये हैं। फिर भी वंशावलियो के कथन में प्रधान के तर्कों से उनकी बहुतेरी पीढ़ियाँ अशुद्ध हो जाती हैं। भेद मिटाने के विचार से हम यहाँ पार्जिटर और प्रधान को मिलाकर पीढ़ियाँ लिखेंगे। राम से पहले वाली पीढ़ियाँ प्रधान में सब हैं नहीं, तथा पार्जिटर वाली बहुतेरी (पुराणो पर अवलम्बित होकर भी) गडबड़ हैं। इसलिए सब बातो पर विचार करके हमको इस ग्रन्थ में कुछ नवीनता के साथ वंश-वृत्त लिखने पड़े हैं। इनमें प्रधान से तो प्राय: पूरा का पूरा साम्य है, किन्तु प्रकट कारणो से अन्यो से थोड़ा सा भेद है। भेद के कारण यथा स्थान दे दिए जायँगे। अब मुख्य विषय उठाया जाता है। पार्जिटर ने मनु वैवस्वत से वंश-वृत्त उठाया है, किन्तु पुराणो में स्वायम्भुव मनु का भी वंश है। हम उसका तथा दैत्यो आदि का भी कथन करेंगे।

ब्रह्मा विष्णु के अवतार थे (वि० पु०)। उन्होने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार नामक चार मानस पुत्र उत्पन्न किये, अर्थात्

साधारण रीति से न रचकर इन्हे मन से बनाया। इन चारों ने उनके कहने पर भी सृष्टि न चलाई। तब ब्रह्मा ने और दस मानस पुत्र उत्पन्न किये, अर्थात् अत्रि, क्रतु, मरीचि, अंगिरा, पुलह, भृगु, प्रचेता, पुलस्त्य, वशिष्ट और नारद। इनके अतिरिक्त स्वायम्भुव मनु, इन्द्र और दक्ष नामक तीन और ब्रह्म पुत्र हुये। इन्ही से प्रसिद्ध पौराणिक वंश चले, जिनका वर्णन अब किया जाता है। पुराणों के अनुसार मनुष्यों की सृष्टि दो बार करके हुई। इस कथन से भारत मे आनेवाली आर्य्यों की दो धाराओं का पता पडता है।

मनु स्वायम्भुव वंश।

वंश नं० (१)

(१) स्वायम्भुव मनु—प्रियव्रत (उत्तानपाद भाई)—अग्नीध्र—नाभि (किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्यवान, कुरु, भद्राश्व, केतुमाल भाई)—(५) ऋषभ—भरत-सुमति-इन्द्रद्युम्न परमेष्टि-(१०) प्रतिहार-प्रतिहर्ता—भुव--उद्‌गीथ्य—प्रस्तार—(१५) पृथु—नक्त--गय--नर-विराट—(२०) महावीर्य्य—धीमान—महान--मनुस्य—त्वष्टा—(२५) विरज—रज—(२७) विषग्ज्योति।

मनु स्वायम्भुव की कन्यायें प्रसूति, आकूति और देवहूति थी। आदिम बटवारे मे भारत नाभि को मिला। भारत नाम भरत (न० ७) पर पडा। विष्णु पुराण के अनुसार स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत मनु सब प्रियव्रत के वंशधर थे। इन चारो मन्वन्तरों मे चार ही और नाम मानने से स्वायम्भुव मनु की प्रियव्रत वाली शाखा मे ३५ राजे पाये जाते हैं। इनके पीछे उत्तानपाद के वंशज चाक्षुष छठवें मनु हुए। ये मनुवंशी ३६ वे नरेश थे।

वंश नं० (१ अ)

(१) स्वायम्भुव मनु—उत्तानपाद--ध्रुव (उत्तम भाई)--श्लिष्टि (भव्य भाई)—रिपु (ऋपु)—(न० ६ से ३५ तक अज्ञात नाम)-

(३६) चाक्षुष मनु—ऊरु (सुद्युम्न भाई)–अंग--(३९) वेन—(४०) पृथु (निषाद भाई)--अन्तर्द्धान (पालित भाई)-हविर्द्धान--प्राचीन बर्हिष (प्रभावशाली, प्रजा की वृद्धि हुई।) शुक्ल (कृष्ण भाई)—(४४) प्रचेतस—(४५) दक्ष।

सूर्य्य वंश।

ब्रह्मा के मानस तनय मरीचि के पुत्र कश्यप हुये जिन्होंने दक्षपुत्री अदिति में सूर्य्य को उत्पन्न किया। वैवस्वत मनु इन्हीं सूर्य्य के पुत्र थे। इसीलिये मनुवंशी सूर्य्यवंशी कहलाते हैं। इन्हीं मनु से सूर्य्य और चन्द्र दोनों वंशों वाली पीढ़ियों की गिनती होगी। यह सूर्य्य वंश इस प्रकार है :—

वंश नं० २ सूर्यवंश।

१. मनुवैवस्वत—इक्ष्वाकु (नृग या नाभाग, धृष्ण या धृष्ट, शर्याति, प्रांशु, प्रषध्र, नाभानेदिष्ठ, सुद्युम्न, करुष, नरिष्यन्त आदि भाई)—विकुक्षि उपनाम शशाद (निमि दंड आदि कई भाई) —पुरंजय उपनाम ककुत्स्थ—५ अनेनस—पृथु—विष्टराश्व (विश्वगश्व)—आर्द्र—युवनाश्व (प्रथम)—१०. श्रावस्त— बृहदश्व—कुवलयाश्व (उपनाम धुंधमार)—दृढाश्व—प्रमोद—१५. हर्यश्व (प्रथम)—निकुम्भ—संहताश्व—अकृशाश्व –प्रसेनजित—२० युवनाश्व (दूसरे)—मान्धातृ—पुरुकुत्स (अम्बरीष, मुचकुन्दभाई)—त्रसदस्यु—सम्भूत (वेद में तृक्षि)—२५, रुरुक – वृक--श्रुत—नाभाग—अम्बरीष—३० सिन्धु द्वीप– शतरथ (कृतशर्मन)—विश्वशर्मन-विश्वसह (विश्वमहत) प्रथम—दिलीप खट्वांग—३५ दीर्घबाहु—रघु—अज—दशरथ—३९ राम— ४० कुश—अतिथि—निषध– नल—नभस--४५ पुण्डरीक--क्षेम धृत्वन –देवानीक — अहीनगु— (रूप—रुरुभाई पारिपात्र के) पारिपात्र (सहस्राश्व छोटेभाई) शल—दल– ५० बल (शल और दल बल के बड़े भाई, तथा उनसे पूर्व राजा थे)—उक्थ—वज्रनाभ – शंखन—व्युषिताश्व—५५, विश्वसह—हिरण्यनाभ—

नं०२ (अ)—कुशवंशी नं० ४९ पारिपात्र के भाई सहस्राश्व का वंश।

४९ सहस्राश्व—५० चन्द्रावलोक—तारापीड—चन्द्रगिरि—भानुश्चन्द्र—५४. श्रुतायुस।

नं० २ (आ) सूर्यवंशी नं० ३९ के पुत्र लव का वंश, श्रावस्तीराज्य।

३९ राम—४०. लव—पुष्प—ध्रुवसन्धि—सुदर्शन—अग्निवर्णशीघ्र—४५. मरु—अशुश्रुत—सुसन्धि— अमर्ष— विश्रुतवन्त--५०. विश्ववाहु—प्रसेनजित--तक्षक — वृहद्वल—वृहत्क्षण —५५ उरक्षय-वत्सव्यूह्—प्रतिव्योम (प्रतिव्यूह)—दिवाकर —सहदेव — ६० वृहदश्व —भानुरथ—प्रतीताश्व—सुप्रतीक—मरुदेव—६५ सुनक्षत्र — किन्नर (पुष्कर)-अन्तरिक्ष—(सुषेण)—सुवर्ण (सुषेण इनके वड़े भाई थे-तथा सुपर्ण और सुतपस छोटे)--अमित्रजित (सुमित्र भाई)—७० वृहद्राज (भरद्वाज भाई)—धर्मिन —(वर्हिष भाई) कृतजय (व्रात)—रणंजय, (व्रात इनके वड़े भाई थे)—सजय—७५ महाकोशल (शाक्य भाई)—प्रसेनजित— विदूदभ (क्षुद्रक भाई)—क्षुलिक—सुरथ - ८० सुमित्र।

प्रधान का कथन है कि वृहद्वल न० ५३ से प्रसेनजित न० ७६ तक २३ पीढ़ियां पडती हैं। प्रसेनजित ५३३ बी० सी० मे गद्दी पर थे। वृहद्वल महाभारत युद्ध में लडे थे। आप एक पीढ़ी के २८ वर्ष जोडते हैं। अतएव ५३३ + २३ × २८ = ५३३ + ६४४ = ११७७ बी० सी० महाभारत युद्ध का समय इस हिसाब से पड़ता है।

नं० २ (इ) लववंशी महाकोशल, नं० ७५ के भाई शाक्य का विष्णुपुराण के अनुसार वश।

७५—शाक्य-शुद्धोदन—गौतमबुद्ध—राहुल—क्षुद्रक—८०. कुण्डल—सुरथ—८२. सुमित्र।

नं० २ (ई) हरिश्चन्द्र का राजवंश।

३०, अनरण्य, त्रसदस्व (पृषदश्व)—हर्यश्व—वसुमनस (वसुमत)

—तृधन्वन—३५ त्रय्यारुण—सत्यव्रत (त्रिशंकु)—हरिश्चन्द्र—रोहिताश्व—हरित—४०. चचु—४१. विजय।

यह वंश पुराणो तथा पार्जिटर मे उपरोक्त सूर्यवश के न० २४ सम्भूत के पीछे चलता है, और हमारे न० २५ रुरुक। हमारे हरिश्चन्द्र वंश के नं० ४१. विजय चचु के पुत्र लिखे हैं। इसमे कठिनता यह पड़ती है कि पुराणो तथा एतरेय ब्राह्मण मे लिखा है कि हरिश्चन्द्र के शुनःशेप वाले बलिदान सम्बन्धी यज्ञ मे विश्वामित्र और जमदग्नि मौजूद थे। यही विश्वामित्र रामचन्द्र तथा उत्तर पांचाल महीप सुदास के समकालीन थे। वेद के तृतीय एव अन्य मडलो से भी विश्वामित्र और जमदग्नि की मित्रता, शुनः शेष से उनका सम्बन्ध तथा सुदास के यहाँ होना प्रकट है। वशिष्ठ की म्लेच्छ सेना से हार कर ही विश्वामित्र तपस्या करने लगे। उसी दशा मे त्रिशकु द्वारा अपने कुटुम्ब पर उपकार होने से आप इनके सहायक बने। फिर वशिष्ठ को हटा कर आप तृशंकु को राज्य दिला उनके पुरोहित बने। अनन्तर तृशकु पुत्र हरिश्चन्द्र के अश्वमेध में आप वशिष्ठ से पराजित हो कर फिर तप करने पुष्कर चले गये। अतएव हरिश्चन्द्र के समय वाले विश्वामित्र वही कौशिक कान्यकुब्ज नरेश थे। उनके तृतीय मडल वेद में इनके पिता गाथिन (गाधि) के भी मत्र हैं। इनका सुदास का पुरोहित होना तृतीय मडल ऋगवेद में प्रकट है। वहाँ कुशिक भी इनके पितामह या पूर्व पुरुष हैं। सुदास और राम प्राय: समकालीन थे। इसके कारण इस ग्रन्थ में अन्यत्र हैं। ऐसी दशा में यदि हरिश्चन्द्र राम के पूर्व पुरुष हों, तो विश्वामित्र का जीवन काल सूर्य वशी २० पीढ़ियों के बराबर पर जावेगा, तथा सूर्यवश मे ये १२ पीढ़ी जुड़ जाने से राम की सुदास से समकालीनता नष्ट हो जावेगी, जो दृढ प्रमाणों पर आधारित है। अतः यह हरिश्चन्द्र का वंश राम के पूर्व पुरुषो का न होकर विगादगी वालो का था।

न० २ (उ) सगर का राजवंश।

३८. बाहु—सगर—४० असमजस—अंशुमंत—दिलीप—४३. भगीरथ।

काशीराज प्रतर्दन ने हयहय वंशी वीतिहोत्र को पराजित किया जिससे वह राज्य छोड कर भरद्वाज के साथी भार्गव ऋषि हो गये। उनके पुत्र अनन्त, पौत्र दुर्जय और प्रपौत्र सुप्रतीक के नाम हैहय भूपालो मे लिखे है। सगर ने इस वंश का राज्य ही नष्ट कर दिया। (प्रमाण आगे सगर के वर्णन मे मिलेंगे।)

उनके द्वारा सुप्रतीक का राज्य जीता जाना सिद्ध है। अतएव सगर प्रतर्दन के पौत्र अलर्क के प्राय: समकालीन होगे। उधर रामायण के अनुसार अलर्क के पितामह प्रतर्दन रामाभिषेक के समय अयोध्या में नेवते आए थे। हरिवंश के अनुसार अगस्त्य की स्त्री लोपामुद्रा ने अलर्क को आशिर्वाद दिया। उधर रावण को जीतने मे अगस्त्य ने राम की शस्त्रास्त्रो द्वारा सहायता की। अतएव अलर्क, प्रतर्दन, सगर और राम प्राय: समकालीन बैठते हैं। सगर ने हैहयो का हराकर वैदर्भ राज-कुमारी से विवाह भी किया। प्रशस्ति के पूर्व वे और्व अग्नि ऋषि के आश्रम मे रहते थे। ये अग्नि और्व ऋचीक के पिता और्व के वंशधर थे। अतएव बाहु और सगर राम के बहुत पहले नही हो सकते थे। सगर मध्य भारतीय भूपाल समझ पडते हैं। कम से कम वे रामचन्द्र से २३ पीढी ऊँचे पूर्व पुरुष नही हो सकते, जैसा पौराणिक वंशा-वलियो मे दर्ज है। वहाँ बाहु, (मुख्य वंश नं० २६) वृक के पुत्र लिखे हुए हैं। सम्भव है, बाहु और सगर हरिश्चन्द्र के वंशधर हो, जैसा कि पुराणो मे कथित है, किन्तु वे राम के पूर्व पुरुष न थे। उपर्युक्त वीति-होत्र सुदास के पिता के समकालीन भरद्वाज के साथी थे। उससे भी वे बहुत पुराने न थे।

नं० २ (ऊ) दक्षिण कोशल का राजवंश।

३५ अयुतायुस (उपनाम भगस्वर) ३६. ऋतुपर्ण—सर्वकाम—सुदास—३९ मित्रसहकल्मापपाद—अश्मक—४१. उरकाम—४२. मूलक।

नं० ३९. कल्मापपाद का (दूसरा वंश)—सर्व कर्मन—अनरण्य—निघ्न—४३. अनमित्र (रघुभाई)। दक्षिण कोशल वर्तमान जिलो राय-पुर, विलासपुर, और सम्भलपुर तथा कभी कभी गंजाम के भी अंश पर

विस्तृत था। उसकी राजधानी रायपुर जिले मे श्रीपुर थी। ऋतुपर्ण के यहाँ प्रसिद्ध नैषध राजा नल रहे थे। नल उत्तर पांचाल नरेश (नं० ३५) के सम्बन्धी थे, क्योंकि इनकी पुत्री इन्द्रसेना उनके पुत्र मुद्गल को ब्याही थी। नल विदर्भ के यादव नरेश भीम रथ न० ३४ के दामाद थे। इसलिए इनका स्थान दो समकालीनताओं से दृढ़ होता है। नल की पुत्री इन्द्रसेना को वैदिक साहित्य मे नलायनी कहा है। मुद्गल वेदर्षि भी थे। नल श्रेष्ठ रथ सचालक थे। उनकी पुत्री नलायनी ने भी रथ संचालन द्वारा एक युद्ध मे अपने पति को विजय दिला कर उनका प्रायः खोया हुआ प्रेम फिर से प्राप्त किया। नल मुद्गल के श्वसुर होने से उनसे एक पीढ़ी ऊचे थे। इधर मुद्गल के पुत्र वध्यूश्व के पुत्र एवं कन्या दिवोदास एवं अहल्या थी। अहल्या शरद्वन्त गौतम को ब्याही थी और उसे राम ने पवित्र किया। तिमिध्वज शम्बर को जीतने मे राम के पिता दशरथ ने दिवोदास की सहायता की। इन्ही दिवोदास के चचेरे भाई पिजवन के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक विजयी सुदास थे। ऋतुपर्ण नल के साथी होने से दिवोदास से चार पीढ़ी ऊँचे के समकालीन थे। अतएव कल्माषपाद राम के प्रायः समकालीन बैठते हैं। पौराणिक वशावलियो मे उनके प्रपौत्र मूलक राम से आठ पीढ़ी ऊचे पूर्व पुरुष हैं जो बात उपरोक्त कारणो से असिद्ध है। कल्माषपाद राम के समकालीन विश्वामित्र और वशिष्ठ के भी समकालीन थे। रामायण मे दशरथ का शम्बर के जीतने मे भाग लेना लिखा है। इधर वेद में दिवोदास शम्बर को जीतते ही हैं। समझ पड़ता है कि गुप्त काल के पौराणिक सम्पादकों ने सगर, हरिश्चन्द्र तथा दाक्षिण कोशल का पूरा हाल जाने विना ही उनकी वंशावलियाँ मुख्य सूर्यवश मे मिला दी हैं। महर्षि वाल्मीकि ने इस वशावली को निम्न प्रकार से लिखा :—

१. वैवस्वतमनु—इक्ष्वाकु-कुक्षि--विकुक्षि—५. बाण—अनरण्य—पृथु—त्रिशंकु—धुन्धमार—१०. युवनाश्व—मान्धातृ—सुसन्धि—ध्रुवसन्धि—(प्रसेनजित भाई)—भरत—१५. असित—सगर-असमञ्जस-दिलीप—भगीरथ—२०. काकुत्स्थ—रघु—कल्माषपाद—शखण—-

सुदर्शन—२५. अग्निवर्ण—शीघ्रग—मनु—प्रशुश्रुक—अम्बरीप—३०. नहुष—ययाति—नाभाग—अज—दशरथ—राम ।

यह वश वृत्त बालकाण्ड के ७०वे अध्याय मे रामचन्द्र के वैवाहिक शाखोच्चार मे लिखा हुआ है। इसमे हरिश्चन्द्र तथा दक्षिण कोशल के वश तो प्राय: नही हैं, किन्तु सगर उपस्थित हैं, तथा लववशी ध्रुवसन्धि, सुदर्शन, अग्निवर्ण आदि भी राम के पूर्व पुरुषो मे लिखे हैं। चन्द्रवशी नहुष और ययाति भी यहीं आ गए हैं। यह वश वृत्त व्यासों द्वारा सुरक्षित न था, वरन इक्ष्वाकुवों मे प्रचलित था, जिनमे प्राय: छठी सातवीं शताब्दी बी० सी० मे इसे वाल्मीकि ने पाया। तो भी यह मनु से राम तक केवल ३० पीढियाँ मान कर कम से कम ६३ पीढी मानने वाले वश वृत्त के बहुत प्रतिकूल है।

उपरोक्त वंशावली में हमने दक्षिण कोशल की शाखा अलग करने में प्रधान का भी अनुगमन किया है। सगर और हरिश्चन्द्र की शाखायें सर्वमान्य घटनाओ के आधार पर अलग की गई हैं। सुदास तथा राम की शाखाओं की समकालीनता प्रधान ने भी दिखलाई है। वंशावली में राम पर्य्यन्त बहुत करके पार्जिटर, विष्णु पुराण और हरिवंश का अनुगमन है। राम के पीछे प्रधान के निष्कर्ष माने गये हैं। वे सब वैदिक अथच पौराणिक साहित्य पर आधारित हैं। उपर्युक्त कई स्थानो पर जो विविध घटनायें अंकित है, उनके आधार उनके यथा-स्थान वर्णनो मे दिये जायँगे। सुदास और राम की समकालीनता के कारण उत्तर पांचाल वश के नीचे भी लिखे जावेगे—

नं० २· (ए) विदेह का सूर्यवंश—मैथिल शाखा

मुख्यवश का (न० २) इक्ष्वाकु—(३ स १४ तक नाम अज्ञात)—निमि—१६ मिथि—जनक—उदारवसु--नन्दिवर्द्धन--२० सुकेतु—देवराट-२२.बृहदुक्थ—महावीर्य—धृतिमन्त-सुधृति—धृष्टकेतु --२७ हर्यश्व—मरू-प्रतिन्धक—कीर्तिरथ—देवमीढ—विबुध—महाधृति—कीर्तिराट--महारोमन--स्वर्ण रोमन--३७. ह्रस्वरोमन—सीरध्वज (कुशध्वज भाई)—३९. भानुमन्त--शतद्युम्न--मुनिशुचि—४२ उरजवह—सनद्वाज—शकुनि—४५ स्वागत (ऋतुजित भाई)—

सुवर्चसश्रुत ४७ सुश्रुतजय -विजय- ऋतु--सुनय—वीतहव्य—५२. धृति -५३ बहुलाश्व—५४ कृति।

नं० २ (ऐ) मैथिल सांकाश्य शाखा।

वंश नं० २ ए का (नं० ३७) ह्रस्वरोमन--कुशध्वज —धर्मध्वज—कृतध्वज (मितध्वजभाई जिसका पुत्र खांडिक्य था) ४१. केशिध्वज।

नं० २· (ओ) मैथिल वंश की ऋतुजित शाखा

वंश नं० २, ए, का नं० ४४ शकुनि—ऋतुजित—अरिष्ट नेमि—४७ श्रुतायुस सूर्याश्व संजय—क्षेमारि—अनेनस—मीनरथ—सत्यरथ ५३. सात्यरथी—उपगुरु—श्रुतअग्नि—५६ उपगुप्त (शायद उग्रसेन हो)। सीरध्वज जनक, नं० २ ए ३८. (सूर्यवंशी ३८) दशरथ के समधी समकालीन थे। इस शाखा में वंशावलियों से प्रायः १२ नाम छूट रहे हैं, ऐसा समझ पड़ता है। सम्भव है कि इक्ष्वाकु से ही निमि अथवा मिथि कई पीढ़ी नीचे हों।

नं० २· (औ) वैशाली का सूर्यवंश

१. मनुवैवस्वत -नाभानेदिष्ठ—भलन्दन —वत्सप्री—५. प्रांशु—प्रजाति—खनित्र—क्षुप—विंश—१०. विविंश—खनीनेत्र—करन्धम—अवीक्षित—१४. मरुत्त--१५,नरिष्यन्त -दम—राष्ट्रवर्द्धन--सुधृति—नर—२०, केवल—बन्धुमन्त—वेगवन्त—बुध--तृणबिन्दु—२५, निश्रवस—विशाल--हेमचन्द्र—सुचन्द्र--धूम्राश्व- ३० संजय--सहदेव—कृशाश्व—सामदत्त—जनमेजय - ३५. उपरोक्त वंश वृत्त पार्जिटर महाशय ने कई पुराण मिला कर लिखा। अश्वमेधपर्व म० भा० में यही निम्नानुसार लिखा है — -

१. मनु—प्रसन्धि—क्षुप—इक्ष्वाकु—५. विंश (९९ भाई और)—विश्वास—खनिनेत्र (चौदह और भाई)—सुवर्चस—१० कारन्धम—अवीक्षित् ११ मरुत्त।

पहला वंश वृत्त प्रमाणनीय समझ पडता है।

अब चन्द्रवंश का कथन चलता है। ब्रह्मा के मानसपुत्र अत्रि

के पुत्र चन्द्रमा थे, जिनके पुत्र बुध का विवाह मनु वैवस्वत की पुत्री इला से हुआ। इसी विवाह से पुरूरवस पुत्र उत्पन्न हुआ जिससे चन्द्रवंश चला। सूर्यवंश से पीढ़ी गिनने के लिए यह वंश भी मनु से चलाया जाता है। चन्द्र और मनु वैवस्वत समधी और समकालीन थे ही।

वंश नं० ३. पौरवचन्द्रवंश

१—मनुवैवस्वत—इला (बुध की स्त्री)—पुरूरवस—आयु—५. नहुष—ययाति—पुरु—जनमेजय (प्रथम)—प्रचिन्वन्त—१० प्रवीर—मनस्यु—अभयद सुधन्वनधुन्य— १४ सुदुम्न—वहुगव—१६. सयाति—अहयाति—१८. रौद्राश्व—ऋचेयु—मतिनार—२१ तंसु (अनिल या सुरोध) २२ दुष्यन्त—भरत—विदथिन भरद्वाज—वितथ—२७ अमुवमन्यु—२८ बृहत्क्षत्र—२९ सुहोत्र—हस्तिन—अजमीढ—३२ ऋक्ष—३३— चित्ररथ—जह्नु—३५. सुरथ—३६. विदुरथ—३७ सवर्ण—३८ कुरु—३९ सार्वभौम (ऋक्ष छोटा भाई)—जयत्सेन—अपराचीन आराधि--४२ महाभौम—अयुताताइन ४४. अक्रोधन—देवातिथि ऋक्ष--भीमसेन—४७ दिलीप प्रतिसुत्वन—प्रतीप—४९ अरिष्टशेण--शतनु या शान्तनु (देवापि और वाह्लीक बड़े भाई)—विचित्रवीर्य (भीष्म तथा चित्रांगद बड़े भाई) पांडु (धृतराष्ट्र बड़े भाई)—५३ अर्जुन (युधिष्ठिर बडे भाई व राजा)—अभिमन्यु--परीक्षित ५६ जनमेजय (दूसरे) -५७ शतानीक (प्रथम)—(भाई चन्द्रापीड-तत्पुत्र श्वेतकर्ण, तत्पुत्र अजयाश्व) - अश्वमेधदत्त-अधिसीम कृष्ण—६० निचक्षु (विवक्षु भाई) - उष्ण (उक्त भाई)—चित्ररथ—शुचिरथ—६४ वृष्णिवन्त--सुषेण - सुनीथ—६७ नृचक्षु—सुखीदल—६९ परिप्लुत - सुनय—७१ मेधाविन--७२ नृपजय--७३ तिग्म—बृहद्रथ--वसुदामन—शतानीक (दूसरे)—७७. उदयन (५०० बी० सी० में गद्दी पर बैठे)—वहीनर (नर वाहन, बोधि भाई)--७९ दण्डपाणि—निर मित्र—८१. क्षेमक। अरिष्टिषेण वैदिक साहित्य मे देवापी के पिता लिखे हैं, पुराणों में नही। किसी किसी का मत है

कि वे देवापी के गुरु अथवा ब्राह्मण दत्तक पिता मात्र थे, शान्तुन के भी पिता नही।

परीक्षित से उदय तक २२ पीढियां हैं = ६१६ वर्ष (२८ वर्ष प्रति पीढी के हिसाब से)। परीक्षित से ३६ वर्ष पूर्व भारत युद्ध हुआ। उदयन ५०० बी० सी० मे गद्दी पर बैठे। इस प्रकार भारत युद्ध का समय प्रधान के अनुसार ५००+६१६+३६=११५२ बी० सी० आता है। नं० २७ सवर्ण, नं० ३२. ऋक्ष के पुत्र कहे गए हैं, किन्तु, न० ४० उत्तर पांचाल नरेश सुदास से हारते हैं। इसलिए उनका स्थान ३७ पर समझ पडता है।

वंश नं० ३. (अ) विदर्भ का द्विमीढ़ वंश

(वंश न० ३ का नं० ३०) हस्तिन – द्विमीढ़—यवीनर—(३३ से ३९ तक अज्ञात नाम)—४० धृतिमन्त—सत्यधृति- दृढनेमि—सुधर्मा (या सुवर्मन)—सार्वभौम –४५ महन्तपौर—रुक्मरथ—सुपार्श्व—सुमति—सन्ततिमन्त—५०. सनति- कृत-उग्रायुध—क्षेम्य—सुवीर-५५. नृपंजय—५६. बहुरथ।

इस वश मे ७ नामों की जगह बढ़ानी पडी है। इसका नं० ५२ उग्रायुध चन्द्रवश के नं० ५१ भीष्म से लड कर मारा गया। उसी ने उत्तर पांचाल के नं० ५० पृषत् को तथा दक्षिण पांचाल के नं० ५४ जनमेजय को हराया था। इसी लिए उसका भी न० इन्ही तीनों के प्राय: बराबर होना चाहिए। पुराणों में मुख्यवंश तो पूर्ण हैं किन्तु अमुख्यों की बहुतेरी पीढियां छूट भी रही हैं। इसलिए अज्ञात नाम की पीढियां बढ़ा कर समकालीनों की पीढियां मिलानी पड़ती हैं।

वंश न० ३ (आ) उत्तर पांचाल का वैदिक सुदासवंश।

(वश न० ३ का नं० ३०) हस्तिन—अजमीढ—सुशान्ति—पुरुजानु—३४ ऋक्ष (तृक्ष)—भरत (भृम्यश्व भाई)—देववात—सृंजय (चयमान भाई। इनके पुत्र अभ्यावर्तिन चायमान थे)—३८. महदेव (प्रस्तोक, पिजवन भाई। पिजवन के पुत्र प्रसिद्ध राजा सुदास थे)—३९. सामक—अर्कदन्त (४१ से ४७ तक प्रधान के अनुसार

अज्ञात नाम) —४८ दुष्टरीतु—४९. पृषत—५० द्रुपद—५१ धृष्टद्युम्न—५२. धृष्टकेतु। हरिवंश में लिखा है कि मुद्गल, सृंजय, बृहदिषु क्रिमेलाश्व और जयीनर का बसाया हुआ देश पांचाल कहलाया। इस काल इस वंश में राजबल मुद्गल, काम्पिल्य, दिवोदास, प्रस्तोक और सहदेव में बटा हुआ समझ पड़ता है। सुदास के पिता पिजवन थे और सुदास का दिवोदास से इतना मेल था कि दूर के चचा हो कर भी दिवोदास वेद में सुदास के पिता कहे गए हैं। यादव नं० ४४ भजमान को उत्तर पांचाल नं० ३७ सृंजय की दो पुत्रियां व्याही थीं। भजमान के पितामह सत्वन्त राम के समकालीन थे। इससे भी सुदास का समय राम के निकट आता है। भजमान के विवाहों के प्रमाण यादववंश के कथन में हैं। उपरोक्त नं० ३४ ऋक्ष के पुत्र भृम्यश्व के पुत्र मुद्गल और काम्पिल्य थे। मुद्गल को निषधनाथ प्रसिद्ध नल की बेटी इन्द्रसेना नलायनी व्याही थी। मुद्गल अच्छे युद्धकर्ता तथा वेदर्षि थे। इनके बेटे वेद में ख्यात वध्र्यश्व के पुत्र दिवोदास थे, तथा कन्या शरद्वन्त गौतम की स्त्री अहल्या। राम ने अहल्या को पुनीत किया, तथा उनके पिता दशरथ ने शम्बर को जीतने में दिवोदास की सहायता की। वेद में सुदास, पिजवन और दिवोदास दोनों के पुत्र लिखे हैं। सम्भवतः दिवोदास ने इन्हें गोद लिया हो, या काका होने के कारण वे पिता लिखे हों। एक स्थान पर यह भी लिखा है कि प्रसिद्ध पौरव भीष्म ने अपने ताऊ वाल्हीक को पिता कहा था। दिवोदास के पुत्र थे मित्रयुस, पौत्र सोम, और प्रपौत्र मैत्रेयस। वाजिनेय भरद्वाज वैदिक ऋषि थे। उनके मन्त्रों में आया है कि दिवोदास प्रस्तोक तथा अभ्यावर्तिन चायमान ने उनका मान किया। दशरथ उनके समकालीन थे। अभ्यावर्तिन चायमान के पुत्र थे। भरद्वाज के बेटे थे पायु और शुनहोत्र। प्रसिद्ध वैदिक ऋषि गृत्समद शुनहोत्रात्मज थे। अहल्या के पुत्र शतानन्द, सीरध्वज जनक के पुरोहित थे। हरिवंश सत्यधृति को शतानन्दात्मज बतलाता है। द्रोण की स्त्री कृपी और साले कृपाचार्य सत्यधृति के वंशधर थे। हरिवंश में यह सत्यधृति की पुत्री और पुत्र ही कहे गए हैं, किन्तु पुश्तों का बीच पड़ता है, सो वास्तव में थे दूर के वंशधर। द्रोणाचार्य से उत्तर हार कर द्रुपद उत्तर से दक्षिण पांचाल मात्र के राजा रह

गए, तथा उत्तर पांचाल के शासक द्रोणाचार्य और फिर अश्वत्थामा हुए। बौद्ध ग्रन्थ मजु श्री मूलकल्प मे अश्वत्थामा प्रसिद्ध मन्त्री लिखे हैं।

वंश नं० ३ (इ) दक्षिण पांचाल वंश।

(वंश न० ३ का न० ३०) हस्तिन—अजमीढ़—बृहद्वसु—बृहदिषु ३४ बृहद्धनुष—बृहद्धर्मा (हरिवश के अनुसार)—जयद्रथ—३७. विश्वजित—सेनजित—३९ रुचिराश्व—४० पृथुषेण—पौरपार (प्रथम)—नीप—समर—पार (दूसरे)—४५. पृथु—सुकृति—विभ्राज—४८ अगूह (इनको किसी शुकदेव की कन्या ब्याही थी)—ब्रह्मदत्त—५० विश्वसेन—दृढसेन—(उदग्रसेन)—भल्लाट—५३. जनमेजय। इनके पीछे दक्षिण पाचाल मे द्रुपद का राज्य हुआ। पहले दोनो पांचाल द्रुपद के हुए, किन्तु द्रोण से हारने पर केवल दक्षिण पांचाल द्रुपद के पास रहा। प्रधान मे इसकी कुछ पीढ़ियाँ निम्नानुसार हैं:—बृहदनु—बृहन्त—बृहन्मनस—बृहद्धनुष—बृहदनुहषु—बृहत्कर्मेन—जयद्रथ।

वंश नं० ३ (ई) मागध शाखा।

(वश न० ३ का न० ३८) कुरु—सुधन्वन (प्रथम। चित्ररथ भाई। हरिव श मे सुधन्वन कुरु के पुत्र लिखे हैं किन्तु प्रधान उन्हे चित्ररथ का पुत्र कहते हैं)—४० सुहोत्र—४१ च्यवन—कृतयज्ञ—४३ उपरिचरवसु—४४ बृहद्रथ—कुशाग्र—वृषभ (या ऋषभ)—पुष्पवन्त—सत्यहित (या सत्यधृति)—४९ सुधन्वन (दूसरे)—उर्ज—सम्भव—५२ जरासन्ध—सहदेव—५४ सामाधि—श्रुत श्रवस—अयुतायुस—निरमित्र—सुक्षेत्र—५९ बृहत्कर्म—सेनजित—श्रुतजय—महाबाहु (विभु, विप्रभाई)—शुचि—६४ क्षेम—भूव्रत—(अनुव्रत, सुव्रतभाई)—६६ धर्मनेत्र (सुनेत्र भाई)—विवृति (नृपति भाई)—सुव्रत—(सुश्रय, सम, तृनेत्र भाइ)—६९ दृढसेन (द्युमत्सेन भाई)—महीनेत्र (सुमति भाई)—सुचल (अचल भाई)—सुनेत्र—७३ सत्यजित—विश्वजित (५८८ बी० सी० मे गद्दी पर बैठे)—७५ रिपुञ्जय (५६३ बी० सी० में गद्दी

पर बैठे, तथा ५१३ बी० सी० में अपने मन्त्री पुणिक द्वारा मारे गए)।

प्रधान के अनुसार सोमाधि न० ५४ से रिपुञ्जय न० ७५ तक २२ पीढ़ियों का भोगकाल २८×२२=६१६ वर्ष होता है। न० ६० सेनजित के समय वायु पुराण सुना कर कहा गया कि १६ भविष्यत् वार्हद्रथ राजे होंगे। ये सेनजित (लववशी न० ५९) दिवाकर तथा (पुरुवशी न० ७९) अधिमीम कृष्ण के समकालीन थे। सोमाधि न० ५४ से विश्वजित नं० ७४ तक २१ पीढ़ियाँ (२१×२८=५८८ वर्ष) हैं। इनका अन्त काल ५६३ बी० सी० मे है, सो भारत युद्ध ५६३+५८८=११५१ बी० सी० में आता है। सोमाधि के पिता सहदेव उसी युद्ध मे मारे गए थे। पुराणो में सोमाधि से रिपुञ्जय तक ६३८ वर्ष लिखे हैं। पौरव तथा मागध वशों में प्रधान और पार्जिटर मे काफी अन्तर है। यहाँ प्रधान माने गये हैं, क्योकि इन्होंने कई पुराणो को मिला कर तथा दृढ़ विचार करके अपने कथन किए हैं। वे अभी तक अकाट्य हैं। इतिहास के लिए सौर, पौरव, और मागधवश बहुत उपयोगी हैं, क्योकि ये महाभारत के पीछे भी कई पीढ़ियो तक चले हैं। महाभारत के समय पौरव न० ५३ अर्जुन के समकालीन लववंशी न० ५४ बृहद्बल, कुशवशी न० ५४ श्रुतायुस तथा मागधवशी नं० ५३ सहदेव थे।

वंश नं ३ (ड) चेदिशाखा।

(वंश न० ३ का न० ३८) कुरु--सुधन्वन—४०. सुहोत्र—४१ च्यवन—४२. कृतयज्ञ—चेदि--४४ वसुचैद्य—प्रत्यग्रह—(४६ से ५० तक अज्ञात नाम) ५१ दमघोष --५२. शिशुपाल—५३. धृष्टकेतु। मागधवशी न० ४३ उपरिचर वसु ने चेदि न० ४४ की सहायता से मगध जीत कर राज्य प्राप्त किया। शिशुपाल चैद्यसे तीन ही पीढ़ी नीचे लिखे हैं, यद्यपि वे पौरव न० ५३ अर्जुन तथा मागध न० ५३ सहदेव के समकालीन थे। इससे जान पडता है कि चेदिवश की प्राय: पाच पीढ़िया पुराणो से छूट गई हैं। नैषधनल के चैद्य सुबाहु समकालीन थे। वे दमयन्ती के मौसिया थे

(वनपर्व)। इनका नाम ही उपरोक्त वशावली में न होकर उसका अधूरापन प्रकट करता है।

वंश नं० ३ (ऊ) काशी शाखा।

(वंश न० ३ का न० २४) भरत—विदथिनभरद्वाज, २६—वितथ—सुहोत्र—काशिक—काशेय—३० दीर्घतमा—धन्वन्तरि—केतुमान (प्रथम) —भीमरथ—३२ दिवोदास (प्रथम) (अष्टारथ, भाई)—३५ हर्यश्व—सुदेव दिवोदास (दूसरे)—प्रतर्दन—वत्स (अन्यनाम ऋतध्वजक्षत्रपी या कुवलयाश्व)—४० अलर्क—सन्तति—सुनीथ—क्षेम्य—केतुमान (दूसरे) ४५ सुकेतु—धर्मकेतु—सत्यकेतु—विभु (सुविभु) आनर्त—५० सुकुमार—धृष्टकेतु—वेणहोत्र—५३ भग—अजातशत्रु—भद्रसेन—५५ दिवोदास (राक्षसो के नाशक लिखे हुये हैं, हरिवंश मे)। प्रतर्दन ने भद्रशेण्यवश का नाश किया। उपयुक्त वश हरिवश मे कथित है। अन्य पुराणों तथा हरिवश में भी यही वश दूसरे प्रकार से भी लिखा है। वहाँ सुहोत्र उपनाम सुनहोत्र के पिता क्षत्रवृद्ध और पितामह नहुष लिखे हैं। इस प्रकार जोडने से अलर्क मनु से केवल बीसवी पीढी पर पड़ते हैं, यद्यपि वे ३९वी पीढ़ी वाले राम के समकालीन थे। अतएव पहले लिखा हुआ वश ही मान्य है।

वंश नं० ३ (ए) कान्यकुब्ज शाखा।

वश न० ३ ऊ, का (न० २७) सुहोत्र—अजमीढ—३० जह्नु—अजक-(सिन्धुद्वीप म० भा० शान्ति पर्व) बलाकाश्व—वल्लभ (म० भा० शान्तिपर्व)—कुशिक— गाधि—३५ विश्वामित्र—अष्टक—३७ लौहि।

उपरोक्त वशावली हरिवश में है। यही कुछ अन्य पुराणो में निम्नानुसार है:—

वश न० ३ का न०३ पुरूरवस—अमावसु—५ भीम—कांचन-प्रभ— सुहोत्र—जह्नु—सुनह—१० अजक—बलाकाश्व—कुश—कुशाश्व— कुशिक—१५ गाधि— विश्वामित्र— अष्टक— १८ लौहि।

पुराणों मे उपर्युक्त काशी वंश मे कथित दूसरी वशावली के आधार पर विश्वामित्र का न० १६ आता है। उत्तर पांचाल के (न० ३९) सुदास के पुरोहित विश्वामित्र, ऋग्वेद के अनुसार थे। अतएव विश्वामित्र का न० १६ बिलकुल गडबड बैठता है, अथच, ३५ ठीक आता है। इस प्रकार पहली वशावली यहाँ भी ठीक उतरती है, और दूसरी अशुद्ध। शान्ति पर्व दान धर्म म० भा० मे यही शुद्ध वशावली अजमीढ से विश्वामित्र तक है। इसमे केवल एक पीढी अधिक है, अर्थात् कुशिक के पिता वल्लभ है, और पितामह बलाकाश्व। विश्वामित्र वशिष्ठ से लडकर राज छोड ब्राह्मण होगए। उनके पौत्र लोहि का राज्य हैहयो द्वारा छिन कर कान्यकुब्ज राज्य उस काल गिर गया। ब्राह्मण होकर विश्वामित्र ने वेद का तीसरा मण्डल गाया। उसमे गाधि की भी ऋचायें हैं। कुशिक की ऋचाएँ दशवें मण्डल मे हैं। शुनःशेप थे तो विश्वामित्र के भागिनेय, किन्तु राजा हरिश्चन्द्र की नरबलि से उसे बचा कर आपने पुत्रत्व मे ले लिया। भागिनेय जमदग्नि भी आपको परम प्रिय थे। इन दोनों का जन्म भी प्रायः साथ ही हुआ। प्रसिद्ध परशुराम इन्हीं जमदग्नि के पुत्र होने से, थे तो विश्वामित्र से दो पीढी नीचे, किन्तु आयु के विचार से केवल एक पीढी नीचे थे। इन्ही ने हैहयराज अर्जुन को मारा।

विश्वामित्र के मुख्य ब्राह्मण पुत्रो मे मधुच्छन्दस वेदर्षि, कतियाकत, ऋषभ, रेणु, गालव, शुनःशेप (देवराट) के नाम हैं। कुछ बडे पुत्रो ने शुनःशेप के पुत्रत्व को न माना, जिससे विश्वामित्र ने उन पुत्रों को छोड़ दिया। विश्वामित्र वंशियो मे निम्न गोत्र हैं:—

बभ्रु, देवराट, गालव, हिरण्याक्ष, जावाल, करीशि या कौशिक, लोहित, मधुच्छन्दस, कात्यायन, पाणिनि, सैन्धवायन शालंगायन, सुश्रुत, तारकायण और याज्ञवल्क्य। वाशिष्ठ मे भी एक याज्ञवल्क्य गोत्र है। याज्ञवल्क्य वैशम्पायन के भागिनेय और शिष्य थे। महाभारत शांति पर्व दान धर्म में विश्वामित्र के उपर्युक्त सतानों का कथन है। ये वश मत्स्य पुराण में भी कथित हैं। निरुक्त, ऐतरेय तथा पंचत्रिंश ब्राह्मणों द्वारा वेदर्षि विश्वामित्र का आदिम राजत्व प्रमाणित है। इन्होंने देवराज वशिष्ठ को जीत कर सत्यव्रत त्रिशंकु को गद्दी दिलाई।

(वायु पु० ८८, ७८—११६, हरिवंश १२, ७१७ से १३,७५३ तक विष्णुपुराण, IV ३, १३, १४, भागवत IX ७, ५-६; म० भा० XIII १३७, ६२५७)

वंश नं० ३ (ऐ) यदुवंश माथुर शाखा ।

मनुवैवस्वत—इला—पुरूवस—आयु—५.नहुष—ययाति—७ यदु—क्रोष्ट,—वृजिनीवन्त—१०. स्वाहि—रुषग्दु—चित्ररथ—पृथुश्रवस—अन्तर (तम)—१५. सुयज्ञ—उशनस—काशिनेयु—मरुत—कम्बल वर्हिष—२० शशिबिन्दु—रुक्म कवच—परावृत—ज्यामत—विदर्भ २५ क्रथभीम—कुन्ति—धृष्ट—निवृति विदूरथ—३०. दशार्ह—व्योमन—जीमूत—विकृति—भीमरथ—३५. दशरथ (रथवर या एकादशरथ) शकुनि—करम्भ—देवराट—देवक्षत्र (या देवन)—मधु—४०. पुरुद्वन्त (या पुरवश)—जन्तु (या अंशु)—४२ सत्वन्त, ४३. भीम सात्वत—अंधक (भाई भजमान, देववृद्ध तत्पुत्र बभ्रु)—४५ कुकुर—वृष्णि—कपोत रोमन—रेवत (विलोमन या तित्तिरि)—भवरैवत—५० अज्ञात नाम (प्रधान के अनुसार)—पुनर्वसु—आहुक—उग्रसेन (देवक भाई, देवकी भतीजी)—कंस—५५ श्रीकृष्ण (भागिनेय)।

उपर्युक्त नं० ५२ आहुक के समकालीन देवमीढ़स थे, जो नं० ४६ वृष्णि से इतर किसी वृष्णि के वंशज थे। इनके पुत्र सूर, पौत्र बसुदेव, और प्रपौत्र नं० ५५ श्रीकृष्ण थे। इनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र क्रमशः प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और वज्र नं० ५८ थे। श्रीकृष्ण ५५ पौरव नं० ५३ अर्जुन के समकालीन और साले थे। अन्धक के भाई भजमान ने उत्तर पाँचाल नरेश संजय की दो कन्याओं के साथ विवाह किया। (वायु पु० ९६, ३, हरिव० ३८, २०००१, मत्स्य ४४, ४९, पद्मपथ १२७३३)

वंश नं० २ (ओ) यदुवंशी हैहय का माहिष्मती वंश दक्षिण मालवा में ।

(वंश नं० ३ ऐ का नं० ७) यदु—सहस्रजित—९ शतजित—(१० से २४ तक अज्ञात नाम)—२५ हैहय—२६ धर्मनेत्र—कुन्ति—

२८. साहंज—महिष्यमन्त—३०. भद्रश्रेण्य—दुर्दम—कनक—३३. कृतवीर्य—३४. अर्जुन—जयध्वज—३६. तालजंघ—३७. वीतिहोत्र (या वीतिहव्य)—अनन्त—दुर्जय—४०. सुप्रतीक। प्रतर्दन और सगर ने हैहय वंश को नष्ट किया, और वह राज्यच्युत हो गया। सुप्रतीक के पीछे इस वंश का पता न रहा। इस काल दो हैहय वंश थे। वे दोनों गिर गए।

वंश नं० ३ (औ) की वैदर्भ चेदि शाखा।

(वंश नं० ३ ए का नं० २४) विदर्भ—२५. क्रथ कैशिक—चिदि—वीरबाहु—२८. सुबाहु। इस वंश मे केवल मुख्य नाम हैं, सब नहीं। शेष का पता नहीं है।

वंश नं० ३ (क) तुर्वश का मरुत्त वंश (उत्तरी विहार)।

(यादववंश ३ ऐ का नं० ६) ययाति—तुर्वश (या तुर्वसु)—वन्हि—गर्भ—१० गोभानु — (११ से १९ तक अज्ञात नाम) २० तृसानु—करन्धम—२२ मरुत्त—२३. दुष्यन्त।

राजा मरुत्त बड़े प्रसिद्ध यज्ञकर्त्ता थे। बृहस्पति के भाई संवर्त ने इन्हें यज्ञ कराया। पुत्र के अभाव मे आप ने पौरववंशी दुष्यन्त को गोद लिया। यह पौरव वंश प्रायः नं० २१ तंशु के समय मान्धाता द्वारा राज्यच्युत किया गया था। पीछे से उत्तरी विहार का राज्य पाकर दुष्यन्त ने अपना पौरव राज्य फिर से प्राप्त किया। इसी से पौरव कुल में आप वंशकर कहलाये। यद्यपि दुष्यन्त गोद से तुर्वश वंशी होगए थे, तथापि इनका वंश कहलाया पौरव ही। किसी विश्वामित्र की मेनका अप्सरा से उत्पन्न पुत्री शकुन्तला से आपको भरतपुत्र प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध कौशिक विश्वामित्र इन्हीं भरत के वंशधर थे। प्रसिद्ध ऋषि गौतम दीर्घतमस ने भरत का ऐन्द्र महाभिषेक किया। दीर्घतमस आनव नरेश वलि के भी समकालीन थे।

वंश नं० ३ (ख) द्रुह्यु वंश, पंजावी नरेश।

(यादव वंश ३ ऐ का नं० ६) ययाति—द्रुह्यु—वभ्रु (नं० ९ से नं० १९ तक अज्ञात नाम)-सेतु— २१ अंगार—अरुद्ध—गान्धार—धर्मधृत—दुदम—२६. प्रचेतस— २७ सुचेतस।

नं० २१ अगार से सूर्यवशी, न० २१ मान्धाता का युद्ध हुआ। (ह० वं० ३२, १८३७, ८, म० भा० १२६, १०४६५)

वंश नं० ३ (ग) आनव वंश अंग शाखा।

(यादव वश ३ ए का नं० ६) ययाति—अनु—सभानर—कालानल—१०. सृ जय—(११ से १७ तक अज्ञात नाम) १८. पुरञ्जय—जनमेजय—महाशाल—महामनस-२२. तितिक्षु—उशद्रथ—हेम (फेन) सुतपस—२५. वलि—२६ अग-दधिवाहन—२८. दिविरथ-(२९ से ३५ तक अज्ञात नाम)—३६ धर्मरथ—चित्ररथ—सत्यरथ—३९. लोमपाद—चतुरग—पृथुलाक्ष—४२ चम्प—हर्यंग—४४ भद्ररथ—बृहत्कर्मन—बृहद्रथ—(बृहद्रथ के भाई थे बृहत्कर्मन तथा बृहद्भानु)—बृहन्मनस (बृहद्रथ के पुत्र) ४८. जयद्रथ (विजय भाई)—दृढ़रथ—५० विश्वजित—अंग—५२. कर्ण—वृषसेन—५४. पृथुसेन।

दूसरा वंश।

उपर्युक्त नं० ४७ बृहन्मनस— विजय—धृति—धृतिव्रत—५१ सत्यकर्मन—अधिरथ—५३ कर्ण वृषसेन—५५ पृथुसेन।

समझ पडता है कि कर्ण अधिरथ और अग दोनो के द्वैमुष्यायन पुत्र थे। वे वास्तव मे कुन्ती से सूर्य नामक किसी व्यक्ति द्वारा कानीन पुत्र हुये थे। फिर अधिरथ द्वारा पाले जाकर उसके पालित पुत्र हुए। माता का नाम राधा होने से आप राधेय भी कहलाते थे। इस वश के किसी पूर्व पुरुष ने एक ब्राह्मणी से विवाह कर लिया था जिससे अनुलोमपन के कारण वश सूत हो गया। जान पडता है कि जब कर्ण ने जरासन्ध को जीत कर खोया हुआ अग राज्य फिर से प्राप्त किया, तब अंग ने भी इन्हें अपना पुत्र मान लिया।

वंश नं० ३ (घ) आनव कुल (उत्तर पश्चिमी शाखा)

(वश न० ३ ग का न० २१) महामनस— २२ उसीनर—२३. शिवि (नृगभाई)—(नं० २४ से ३६ तक) अज्ञात नाम—३७. केकय (कैकेयी कन्या सूर्यवंश न० ३८. दशरथ को व्याही गई) युधाजित (कैकेयी के भाई थे)।

इसके पीछे यह वंश शत्रुओ द्वारा नष्ट हो गया और इनका राज्य राम के भाई भरत के दानो पुत्रो पुष्कर और तक्ष ने पाया। तक्ष का राज्य तक्षशिला मे हुआ और पुष्कर का पुष्करावती मे। इनके वंशधर उधर ही के क्षत्रियों में मिल गए, अथवा शायद राज्य खो बैठे। (वायु पु० ८८, १८९—९०, विष्णु पुराण ४, ४७, पद्म २७१, १०, अग्नि, ११, ७, ८, रघुवंश ८८—८९)। दोनो आनव शाखाओ मे जो अज्ञात नाम की पीढियाँ जोडनी पडी हैं, वे समसामयिक अन्य नामों के कारण। केकय राजा दशरथ के ससुर थे तथा लोमपाद इन्हीं दशरथ के मित्र थे। बलि की स्त्री मे उन्ही की आज्ञा से दीर्घतमस ने पुत्र उत्पन्न किए। अनन्तर उन्हीं दीर्घतमस ने पौरव वंशी नं० २४ भरत को यज्ञ कराया। ये कथन म० भा० और रामायण पर आधारित हैं।

अब कुछ ऋषियो के भी व श वृत्त दिए जाते हैं। प्राचीन भारत मे राजा के पीछे पुरोहित का ही दर्जा होता था। इन व शो मे भी कुछ राजाओ के समय सिद्ध होते हैं।

वंश नं० ४ कान्यकुब्ज का विश्वामित्र वंश।

१ गाथिन (गाधि)—विश्वामित्र—सामकाश्व—(देवराट मधुच्छन्दस भाई) व्यश्व—५. विश्वमनस—उद्दालक—सुम्नुपु बृहद्दिव—९. नाम अज्ञात—१०. प्रतिवेश्य—सौम प्रतिवेश्य—अज्ञात—१३. सौमाप्य—प्रियव्रत सौमपि—१५ अज्ञात—उद्दालक आरुणि—कहोड—कौशीतकि—गुणाख्य शाखायन—२० शांख्यायन आरण्यक के कर्ता। ऋषि इमावर्त के पुत्र प्रतिदर्श थे। ये विश्वामित्र के समकालीन थे।

वंश नं० ४ (अ) काश्यप वंश।

१. विभाण्डक काश्यप—ऋष्य शृङ्ग काश्यप (राम के बहनोई) मित्रभुकाश्यप (ये ऋष्य शृङ्ग के समकालीन थे)—इन्द्रभुकाश्यप—अग्निभुकाश्यप—५. शावस देवतरस—शावसयन—प्रतिथि देवतरस—निकोथक भायजात्य—वृषशुष्म वातावत जातुकर्ण्य—१० इन्द्रोत दैवापशौनक—धृति इन्द्रोत शौनक—पुलुष प्राचीन योग्य—

१३ सत्ययज्ञ पौलुषि। यह शाखा वंश ब्राह्मण में कथित है। शतपथ ब्रा० के अनुसार इन्द्रोतशौनक ने जनमेजय को यज्ञ कराया। ऋष्य शृंग राम के बहनोई थे।

वंश नं० ४ (आ) वेदव्यास का वंश

१ पराशर (दूसरे)—वेदव्यास (कृष्ण द्वैपायन)—शुक--जैमिनि—सुमन्तु—सुत्वन (कबन्ध भाई, तत्पुत्र पथ्य और वेददर्श। अन्तिम के पुत्र मौग्द और प्रश्नोपनिषत् के पिप्पलाद ऋषि) सुकर्मन (सुत्वन के पुत्र) पौष्यंजि (हिरण्य नाभ भाई) लौगाक्षि (कुथुमि, कुसीदिन, लांगलि भाई) पराशर (तीसरे भाविक्ति भाई) पाराशर्य कौथुम—प्राचीनयोग्य (पतजलि प्रथम, आसुरायण भाई)। उपर्युक्त सुकर्मन, हिरण्यनाभ-याज्ञवल्क्य (प्रोतिकौसुर, विन्दि, अश्वल भाई) आसुरि, (त्रैवनि, औप जन्धिनि भाई) हिरण्यनाभ कौशल नरेश थे।

वैशपायन और उपमन्यु चन्द्रवंश ३ के नं० ५६ जनमेजय तथा उपरोक्त पिप्पलाद के समकालीन थे। प्राचीन शाल उपमन्यु के पुत्र थे, तथा याज्ञवल्क्य वैशपायन के भागिनेय और शिष्य। सत्यकाम जाबाल जनमेजय के पौत्र अश्वमेध दत्त के समसामयिक थे। उपरोक्त नं० १६ पतजलि के समकालीन यास्क थे, जिनके भाई पंचशिख थे। यास्क का वंश यों चलता है— १६ यास्क—जातूकर्ण्य—पाराशर्य—बादरायण—२० तांडि (शाख्यापति भाई)।

ये वंश लिखने में प्रधान ने पराशर के पितामह शक्ति और वशिष्ठ को नहीं लिखा है। प्रधान ने जिस वशिष्ठ के पुत्र शक्ति और पौत्र पराशर कहे हैं, उन्हें दक्षिण कोशल नरेश सुदास का समकालीन माना है।

वंश नं० ४ (इ) नवीन भार्गव वंश।

वीतहव्य (या वीति होत्र हैहयवंशी नं० ३७) गृत्समद (वेद के दूसरे मण्डल के ऋषि)—सवेतस—४० वर्चस सावेतस—विहव्य—वितम्त्य (वितस्य भाई)—सत्य—शिवस्त—सन्तस—४५ श्रवस—

तमस—प्रकाश—वागिन्द—प्रमति—५० रुरु—शुनक—देवापि शौनक —इन्द्रोत दैवापि शौनक ५४. धृति ऐन्द्रोत दैवापि शौनक।

वंश नं० ४ (ई) उद्दालक आरुणिवंश।

१ तुरकावषेय—यज्ञवचसराजस्तम्बायन—कुश्रि (वाजश्रवस के पुत्र)—उपवेश अरुण आपव्शी—५ उद्दालक, आरुणि (शिष्यपुत्र, वेद-भाई) शिष्य याज्ञवल्क्य विनयसेन (शिष्य तथा पुत्र) गरुकावशेय पौरव वंश न० ५६ जनमेजय के समय मे थे। ऐतरेय पुराण मे आया है कि इन्ही तुरकावशेय से जनमेजय ने महाभिषेक पाया।

वंश न० ४ (उ) अष्टावक्र का वंश।

१ अम्भण—वाक—कश्यपैनधुवि—शिल्पकश्यप—५. हरि कश्यप—असितवार्ष गण—जिह्वावन्त वाध्योग—वाजश्रवस कुश्ट वाजश्रवस—उपवेश—१०. अरुण—कुशीतक [उद्दालक, ब्रह्मराट,
| |
श्वेतकेतु याज्ञवल्क्य

अश्वतराश्व भाई] कहोड़ १३. अष्टावक्र।
|
वुडिल

वंश नं० ४ (ऊ) पैल और भारद्वाज वंश।

१ वेदव्यास पैल—इन्द्रप्रभति (वास्कल भाई) मांडूकेय (शूरवीर)—सत्यश्रवस—५ सत्यहित—सत्यश्री—शाकल्य (रथीतर शाकपुणि भाई) ८ सुकेश—भारद्वाज (कात्स आश्वलायन भाई)।

वंश न० ४ (ए) माण्डव्य का वंश।

वश न० ४ ई का ३ कुश्रि वाजश्रवस—शाण्डिल्य—५ वात्सुण—कामकक्षायण—माहित्थि—कात्स—मांडव्य-१०. मांडूकायनि—११. सांजीवीपुत्र।

बृहदूारण्यक मे कथित उद्दालक आरुणि और याज्ञवल्क्य मैथिल सम्राट जनक के दरबार में थे। उद्दालक आरुणिवश नं० ४ ई मे नं०

५ है, तथा तुरकावशेय नं० १ है। अतएव जनक जनमेजय से पांच पीढ़ी नीचे थे।

वंश नं० ४ (ए) शिष्य गुरुवंश नकि पिता पुत्र।

१. अमास्य के शिष्य—पाथिन—वत्मनपात—विदर्भि—कौडिन्य—५. गालव—कुमार हारीत—कैसार्य—शांडिल्य—९. वात्स्य (वृहदारण्यक वाले)।

वंश नं० ४ (ऐ) शिष्य वंश।

वंश नं० ४ ई का नं० १, तुरकावशेय का शिष्य—यज्ञवचस—कुश्रि—शांडिल्य—५ वत्स्य—वामकक्षायण—माहित्थि—कौत्स—९ मांडव्य।

ये उपर्युक्त ब्रह्मवंश प्रधान तथा पार्जिटर के ग्रन्थों में साधार प्रमाण से कहे गये हैं।

वंश नं० ५ दैत्य वंश।

१ मरीचि (ब्रह्मा के मानसिक पुत्र)—कश्यप—हिरण्य कशिपु (हिरण्याक्ष, वज्रांग, अन्धक भाई)—प्रह्लाद (अनुह्लाद, ह्लाद, सह्लाद भाई)—५. विरोचन—बलि—बाण।

हिरण्याक्ष के उत्कुर, शकुनि, भूत संतापन, महानाभि, महाबाहु, कालनाभ. ये पुत्र हुये। वज्रांग का पुत्र तारक था। उपर्युक्त वंश कश्यप की स्त्री दिति का है। इन सबकी दैत्य संज्ञा है। कश्यप की अन्य स्त्री दनु थी, जिसके वंश की दानव संज्ञा है। दनु के शम्बर, शकर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, वृषपर्वा, पुलामा, विप्रचित्ति आदि पुत्र हुये। वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से राजा ययाति के पुरुनाम प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। पुलामा और कालिका नाम्नी कन्यायें दनु के वंश में थीं, जिनके वंशज प्रसिद्ध दानव पौलोम और कालिकेय कहलाये। दिति की पुत्री सिंहिका विप्रचित्ति को ब्याही थी। इन दोनों के पुत्रों के नाम शल्य, वातापी, नमुचि, इल्वल, नरक, कालनाभ, चक्रयोधी आदि थे। प्रसिद्ध दैत्य निवत कवच तपस्वी थे। ये सह्लाद के वंश में हुये। ये सब चाक्षुष मन्वन्तर में थे (वि० पु०)। यहाँ जो पुत्र कहे गये हैं वे कभी कभी दूर के भी वंशधर हैं।

वंश न० ६।

शुनक—प्रद्योतन—पालक—विशाखयूप—जनक—नन्दि-वर्द्धन। पुराणानुसार इन लोगों ने १३८ वर्ष मगध में वंश नम्बर (३ ई) के पीछे राज्य किया।

वंश नं० ७।

शिशुनाग—काकवर्ण—क्षेमधर्म्मा—क्षत्रोज—बिन्दुसार—अजात शत्रु—दर्भक—उदयन—नन्दिवर्द्धन—महानन्दी। इन लोगों का राज्य मगध मे वंश नम्बर ६ के पीछे हुआ। विष्णु पुराण इनका राजत्व काल ६६२ वर्ष कहता है, किन्तु यह काल उचित से अधिक है जैसा कि आगे विदित होगा।

वंश नं० ८।

महापद्म (यह राजा शूद्रा से उत्पन्न था)—सुमाली (७ भाई)। इन लोगो ने वंश नम्बर ७ के पीछे मगध में राज्य किया। विष्णु पुराण इनका राजत्व काल १०० वर्ष मानता है।

इन सब राजवंशो और नामों का ब्योरा चाहे कुछ पाठको को फीका लगे पर विचारने से इसमें बहुत सी जानने योग्य बातें मिलेंगी।

पांचवां अध्याय

वेद पूर्व का भारत।

समय १९०० बी० सी० से पूर्व।

प्राचीन समय मे इस विषय का विवरण प्रायः वैदिक आधारों पर ही किया जाता था, किन्तु सन् १९२२ से २७ तक जो खोदाई मोहन्जो दड़ो (सिन्ध) तथा हड़प्पा, पञ्जाब, में हुई, उससे परम प्राचीन भारतीय सभ्यता की प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है। उसके विषय में पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर-जनरल सरजान मार्शल ने कई भागो में एक भारी ग्रन्थ बनाया है, जिसमें फ़ोटो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उसी के आधार पर हम यहाँ कथन करेंगे। इसी विषय पर जनवरी सन् १९३५ मे लखनऊ विश्व-विद्यालय के इतिहासज्ञ श्रीयुत डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने एक छोटा सा व्याख्यान भी दिया। पहले उसका सारांश कह कर हम सरजान के विचारो का विवरण देवेंगे।

डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी के आधार पर कथन

शिकागो ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट ने इराक़ में जाँच कराई तो प्रायः २५०० बी० सी० के एक अखद राजा की कुछ सामग्री बग़दाद के निकट मिली। इसमे भारत से तत्काल कुछ मोहरें मिलीं जो मोहन्जो-दड़ो के बीचवाले परतों में प्राप्त हुई मोहरों के समान थीं। इसमें सात तहें निकली थीं जिनमें से प्रत्येक नीचे वाली तह ऊपर वाली तह से सैकड़ो वर्ष पुरानी है। जब २५०० बी० सी० में प्राप्त मोहरें बीच की तहों में हैं, तब मुकुर्जी महाशय का विचार है कि मोहंजो दड़ो की सब से नीचे वाली तह प्राय. ४००० बी० सी० के निकट की होगी। बगदाद की इन मोहरो में, सिन्ध (मोहंजो दड़ो) की लिखावट है तथा बैबिलोन में अप्राप्त भारतीय जानवर हाथी और गैंडे इनमें खुदे हैं। सभ्यता की दृष्टि से मोहन्जोदड़ो के लोग बहुत बातों में संसार

सभ्यता मे सर्व प्रथम थे। शहरो मे रहना, शहर बनाना, पक्की ईटें बनानी, पत्थर पर खोदाई और कारीगरी, गेहूँ और जौ की उत्पत्ति, ऊन एव सूत कातना और बुनना, मिट्टी के बर्तनो पर ग्लेज का काम करना, गाडी बनाना, लेख लिखना (जो अब तक पढा नही गया है), दूर देशो मे व्यापार आदि के ऐसे काम हैं जिन मे वे ससार मे प्रायः प्रथम थे। सोना, चाँदी, हीरा जवाहिरात आदि के अलकार उनके पास थे। हाथी, गाय, ऊँट आदि पालते तथा चाते, गैंडे या बनैले सुअर का शिकार खेलते थे। उनके सोना, ताँबा, टीन और जवाहिरात कोलर, अनन्तपुर, फारस, जैसलमेर, नीलगिरि, बदख्शाँ, खुरासान, तुर्किस्तान, तिब्बत आदि से आते थे।

जानवरो के होने से उनके यहाँ जगलो का होना सिद्ध है, जिससे जलबाहुल्य प्रकट है। मोहरो और समय से प्रकट है कि उनकी कारीगरी ससार मे प्रथम थी। उन्होंने पत्थर और जस्ते मे मनुष्य की मूर्तियाँ बनाईं। धर्म मे वे आदिम मातृ देवी, शिव और शक्ति का पूजन करते थे। जानवर देवताओ के वाहन थे, तथा तरु पूजन भी चलता था। उनमे ध्यानमग्न शिव मूर्तियाँ मिली हैं, तथा नासिका पर दृष्टि लगाये हुये ध्यान धारे योगियो की मूर्तियां है। इन बातों से इतने प्राचीन काल मे ऐसे विचारो का अस्तित्व मिलता है।

सर जानमार्शल के ग्रन्थ के आधार पर।

उस काल सिन्ध देश की उपज बहुत बढिया थी, किन्तु आबहवा निकृष्ट। गर्मी Zero (शून्य) के नीचे से १२० तक होती थी। समय के साथ सिन्ध की आबहवा बहुत बदली है। चौदहवीं शताब्दी तक (अरबो के राज्यकाल मे) सिन्ध मे निहरान या हकरा और सिन्ध नाम की दो नदियाँ थीं, जिनमें पञ्जाबी नदियो का पानी बहता था। अनन्तर अकेली सिन्ध रह गई। इन नदियों के मार्ग प्रायः बदला किए हैं। यहाँ की लिपि दायें से बायें ओर चलती है। ब्राह्मी लिपि शायद इसी से निकली हो। इनमे पृथ्वी या सिंहवाहिनी मातृदेवी बहुत पाई जाती हैं। त्रिनेत्र शिव के तीन सर हैं। शायद इसी प्राचीन भाव से हिंदू त्रिमूर्ति का विचार निकला हो। त्रिशूल है। योग का विचार

भी पुराना था। शिव के निकट हाथी, चीता, गैंडा, और भैंसा हैं। नाग उनकी पूजा करते हैं, और वे दो मृग चर्मों पर बैठे हैं। पशुपति वे उस काल भी समझ पड़ते हैं। वहाँ लिंग और योनि के पूजन थे। सिन्ध और बलोचिस्तान में वर्तमान अरघों (जलेरियों) के समान लिंगयुक्त अर्घे मिले हैं। जानवरों का भी पूजन था। सींग देवत्व का चिन्ह था। आराम की सभ्यता में वे आर्यों से बढ़े हुये थे। भाषा उनकी अब तक पढ़ी नहीं गई है, सो उसमें लिखित विचार अज्ञात हैं। उनके सम्बन्ध का अब तक जो ज्ञान है, वह वस्तुओं मात्र से प्राप्त है। हिन्दुओं में पीछे से शिव मातृदेवी, कृष्ण, नाग, जानवर, वृक्ष, पत्थर लिंग, योग, शक्ति, संसार भक्ति आदि के पूजन-विधान जो उठे, उनके मूल इनमें पाये जाते हैं। स्नान पर बड़ा जोर था। शायद यह धार्मिक हो। मोहजोदड़ा में शव प्रायः जलाए जाते थे, कुछ पूरे शव पाये भी गए हैं। इस सभ्यता का समय ३२५० बी० सी० से पुराना नहीं है और २७५० बी० सी० से नया भी नहीं। आजकल के पंडित इसे २८वीं शताब्दी बी० सी० मानते हैं। यहाँ ५९० मोहरें मिली हैं, जिन सब की तसवीरें ग्रन्थ में हैं। स्त्रियों का नाच, अच्छी मूर्त्ते मिट्टी के बर्तन कारीगरी, स्नानागार-प्राचुर्य आदि प्राप्त हैं। पूजनालय शायद न थे। बूड़ा का भय था। नदियों के पेंदे समय पर ऊँचे होगए। इमारतों में मकानात, खम्भोदार हाल, छोटे-बड़े हम्माम और अनिश्चित कामों के कमरे मिले हैं। शायद ये अन्तिम मन्दिर या पूजनालय हों। ये लोग गेहूँ और जौ खाते थे। नंगी नर मूर्ति भी मिली हैं। कारीगरी अच्छी है। मोहजोदड़ो में जो मनुष्यों की पूरी हड्डियाँ मिली हैं, उन पर विद्वानों के विचार से जाना गया है कि वहाँ चार प्रकार के मनुष्य थे, अर्थात् प्रोटो आस्ट्रेल्वायड, मेडिटरेनियन, आल्प्स शाखा के मंगोलियन तथा शुद्ध आल्प्स शाखा। पहली शाखा भारत की थी, दूसरी दक्षिणी एशिया से, तीसरी पाश्चात्य एशिया से, और चौथी प्राच्य एशिया से। यह सभ्यता वैदिक आर्यों से असम्बद्ध थी, किन्तु द्राविडों तथा सुमैरियनों का सम्बन्ध सोचा जाता है। मोहजोदड़ो में ताँबे के सिक्के भी हैं। कोई गोल खम्भा नहीं है, कुएँ हैं। बांट छेददार हैं। धातुओं के

छड़े, अँगूठी और सुइयाँ मिली हैं। मनुष्य की ऊँचाई ६१ से ६७ इञ्च तक थी। मार्शल साहब के ग्रन्थो मे जो यहाँ के सैकडो चित्र है, उनके देखने से बहुत सी बाते ज्ञात होती हैं। यहाँ की प्रचुर सामग्री जो शिमले मे रक्खी था, उसे भी हमने जाकर देखा। इस चित्रमय ससार से उस काल का जो परमोत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त है, वह बहुत अनमोल है। वेदो की सभ्यता का चित्र हमारे सामने लेखो से आता है, और यहाँ का चित्रो द्वारा।

योरोपियन लेखकों का विचार है कि भारत मे सबसे पहला आर्यागमन २५०० बी० सी० के निकट हुआ। उनका दो धाराओं मे आना लिखा है। उसका उत्कृष्ट विवरण मुख्यतया ऋग्वेद मे प्राप्त है।

उस समय यहां कैसे मनुष्य रहते थे और उनकी सभ्यता तथा देश की दशा क्या थी, इन बातो को जानने के लिये सिवा उपयुक्त खोदाई तथा आर्य्य ग्रथावलोकन के और कोई उपाय हम लोगों के पास नहीं है। आर्य्यों का प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद है जिसमे भारतीय आदिम निवासियो को अनास, भाषाहीन, और केवल चिल्लाने वाले कहा गया है। आदिम निवासियो मे पिशाच जाति चिल्लाती बहुत थी। जिस समय मे यह लिखा गया तब आर्य्यों का उनमे युद्ध होता था और इन दोनों जातियो मे सामाजिक सम्बन्ध बिल्कुल स्थिर नहीं हुआ था। ऐसी दशा में आर्य्यों का उनकी भाषा को चिल्लाना मात्र कहना स्वाभाविक था। आदिम निवासियो ने आर्य्यों से जैसा प्रचंड सग्राम किया और अपनी जातीयता एव स्वतन्त्रता स्थापित रखने के जो-जो उपाय किये, उनके देखने से अनार्य्यों की सभ्यता बहुत ओछी नहीं मालूम पडती। उन लोगो ने भाषाहीन वनमानुषों की भाँति कभी व्यवहार नही किया, वरन् सैकड़ों वर्षों तक दल बाँध बाँध कर आर्य्यों से युद्ध किए और हर प्रकार से यथा साध्य इनकी गति रोकी। उनके कई बडे बड़े नेता भी थे। इन बातो से प्रकट है कि उनमें भाषा अवश्य थी। मोहजोदड़ो से भाषा और लिपि दोनों प्राप्त हैं किन्तु वे अभी पढी नही जा सकी हैं। वर्तमान समय में ज्ञात आर्य्यों की प्राचीनतम भाषा आसुरी कहलाती है, जिसमे वेदो का निर्माण हुआ। धीरे धीरे अनार्य्यो की भाषा पर यह आर्य्य भाषा अपना प्रभाव डालती गई,

यहाँ तक कि समय पर उसका एक रूप बन गया, जो अब पहली प्राकृत या पाली कहलाती है और जिसका वर्णन आगे आवेगा। भारत की जो दशा थी उसका अनुमान उपर्युक्त खोदाई तथा ऋग्वेद के कथनों से होता है।

भारत की स्थिति उस काल आज से बहुत ही भिन्न थी। नदियाँ, पहाड आदि तो प्राय. ऐसे ही थे, किन्तु ग्राम आदि बहुत कम थे और सारा देश प्राय: जगल से भरा हुआ था। अनार्यों में खेती का प्रचार बहुत कम था। जिस काल आर्य्य लोग देश मे बसने लगे, तब उन्हे जगल जला कर खेती और निवास के लिये भूमि निकालनी पड़ी। जङ्गल की बहुतायत से समझ पडता है कि उन दिनो जङ्गली जीव अधिकता से होंगे। व्यापार इत्यादि की क्या दशा थी सो हम नही जान सकते। ऊन और खाल का चलन बहुतायत से था। अनार्य्य लोग धनुष बाण से शिकार खेलते और प्राय: जङ्गलो ही मे रहते थे। मोहनजोदडो आदि बडे बडे नगर भी थे, किन्तु अधिकतर मनुष्य उस उच्च सभ्यता से असम्बद्ध होगे। पहाडो पर उनके किलों का भी होना वेद में लिखा है, किन्तु यह निश्चय नही है कि इन लोगों ने आर्य्यों की नकल करके अपनी रक्षा के लिए दुर्ग रचे थे अथवा वे पहले ही से थे। आर्य्यो से सघट्ट होने पर यह लोग पहाडों और जङ्गलों मे छिपे रहते थे और वही से सहसा धावा करके जानवर छीन ले जाते और खेती उजाड जाते थे। जान पड़ता है कि दूध आदि के लिए यह जानवर पालते और उनका भक्षण भी करते थे। देश के जङ्गली होने से आर्य्य लोग बहुत धीरे धीरे आगे बढ़े।

इसलिए अनार्य्यो ने पूरे देश में विजित होने से पूर्व आर्य्यों से बहुत कुछ सीख लिया था। अत: हम साथ ही साथ इन लोगो के परम ओछे और गर्भार वर्णन पाते हैं। जान पडता है कि ओछे वर्णन आदिम काल के हे और गर्भीर उस समय के जब यह लोग आर्य्य सभ्यता से बहुत कुछ सीख चुके थे। हिरण्य कशिपु, बलि, शुम्भ, निशुम्भ, आदि के समय मे इन लोगों ने अच्छी उन्नति कर ली थी। किसी किसी का यह भी विचार है कि देवासुर सग्राम फ़ारस में हुआ और तब आर्य्यों का दूसरा धारा भारत आई।

अनार्य्यों की कई जातियाँ थीं, जिनका हाल वेदो, इतिहासो और पुराणो से विदित होता है। इन मे महिप, कपि, नाग, मृग, ऋच्च, राचस, व्रात्य, आर्जिक, दैत्य, दानव, कीकट, महावृष, वाल्हीक, मूजवन आदि प्रधान हैं। कीकट गया प्रान्त को कहते हैं। वही के निवासी कीकट अनार्य्य थे। इन सब को अनार्य्य कहते हैं और पौराणिक काल मे इनमे कुछ जातियाँ असुर भी कहलाती थी। वैदिक समय मे पहले असुर देवताओं को कहा गया और इन लोगो को राचस, यातुधान, दस्यु, सिम्यु आदि नामो से पुकारा गया। कुछ ऐतिहासिको का विचार है कि जो अग्नि पूजक पार्सी ईरान मे थे, उनके तथा भारतीय आर्य्यों के पूर्व पुरुष एक ही थे और साथ ही फारस आदि मे रहते थे। युद्ध के पीछे भारतीय होने वाले आर्य्य इधर चले आये। इन विचारो का कथन आगे होगा।

ऐतिहासिको ने आर्य्यों से पहले वाले भारतियो की दो प्रधान शाखाये कही हैं, अर्थात कोल और द्रविड। नाग नाम्नी एक और प्राचीन जाति थी। ये कोल या द्रविड़ो की शाखा थे या स्वतन्त्र जाति, सो अनिश्चित है। ये तीनो जातियाँ श्याम वर्ण की थी। भील और सन्थाल कोलो की पशाखायें हैं। इस काल भारत मे ३० लाख कोल हैं। ये लोग मुडा भाषा बोलते हैं। कोल पत्थर और हड्डी के आयुध बनाते थे। ये वीर, चतुर, प्रसन्नचित्त, आलसी और सन्तोषो थे। कोलो के पीछे द्रविड भारत मे आये। इन्होने कोलो को हराया। खांड और गोड़ इनकी उपशाखायें हैं। आज कल प्राय: ५,७०,००००० द्रविड़ भारत में हैं। यह लोग खेती और व्यापार करते, नगरो और ग्रामो मे वसते, सूती कपड़े पहनते, सोने के गहने धारण करते और ताँवे के आयुधो का व्यवहार करते थे। ये भूमि, वृक्ष, सर्प आदि की पूजा करते और अपने देवताओं से डरते थे। मगोल लोग पाल नरेशो के समय भारत मे आसाम होकर आये और आसाम, बगाल आदि में बसे। आसामी मगाल आहम कहलाते हैं। योरोपियनो की कल्पना है कि आधुनिक भारतवासियो मे केवल कश्मीर, पञ्जाब और राजपूताना मे असली आर्य्य लोग हैं। गगा यमुना की घाटियो और बिहार आदि में आर्य्यों और द्रविडों का मिश्रण पाया जाता है। गुजरात,

सिन्ध, बम्बई मे सीदियनो तथा द्रविडो का मिश्रण है, नैपाल, भूटान आसाम आदि मे मगोलो का प्राधान्य है, बगाल, छोटानागपूर और उडीसा मे मगोल द्रविडो का मिश्रण है और वायव्य सीमा प्रांत के लोग तुरुष्क (तुर्की ईरानी) है। यह योरोपीय अनुमान ऐतिहासिक घटनाओं पर निर्भर है। जहाँ जहाँ जो जो जातियां बसी हैं वहीं वही उन सब का मिश्रण देशवासियो मे माना गया है। कोलो के कारण भारत मे परम पाचीन समय कोलैरियन काल कहा गया है और उसके पीछे वाला द्रविड काल। द्रविडो के विषय मे अभी पूरी दृढ़ता नही है कि वे कौन थे और कहां से आये, जैसा कि आगे कहा जायगा।

अब हम उपर्युक्त महिष, कपि आदि के विषय मे कुछ हाल लिखते हैं जो वेद, पुराणादि प्राचीन ग्रन्थो मे पाया जाता है।

महिष—इनको दुर्गासप्तशती मे महिषासुर करके कहा गया है। यह आर्यो के शत्रु थे और इसी लिये देवी ने इन्हे पराजित किया। कुछ पंडितो का मत है कि इस जाति के लोग दक्षिण मे अब भी पाये जाते हैं। मैसूर प्रान्त को प्राचीन ग्रन्थो मे महिष मडल कहा है।

कपि अथवा वानर—इन लोगा ने रामचन्द्र की सहायता की। किष्किन्धा में इनका राज्य था और बालि, सुग्रीव, हनुमान आदि नेता थे। कुछ लोगो का विचार है कि दक्षिण की वर्तमान टोडा जाति के लोग शरीर पर केश बाहुल्य के कारण उस काल कपि करके पुकारे गये। रामायण मे जा इनकी पूँछ आदि के वर्णन हैं वे अत्युक्ति पूर्ण एव प्रक्षिप्त समझने चाहिये। ऋक्ष भी इसी प्रकार के लोग समझ पडते है। इनकी सभ्यता समय पर इतनी बढ़ गई थी कि जाम्बवत नामक एक ऋक्ष की कन्या के साथ स्वयम् श्रीकृष्ण चन्द्र ने विवाह किया। इन लोगों का वास्तव मे बन्दर, भालू, भैंसा आदि समझना भारी भूल है, क्योंकि कोई रीछ रामचन्द्र का मत्री तथा श्रीकृष्ण का ससुर नही हो सकता था। इन लोगो की सभ्यता के जैसे वर्णन ग्रन्थों मे आए हैं, उनसे प्रकट है कि यह लाग वन्यजन्तु न होकर द्रविड जातियों के मनुष्य थे।

नाग—इस जाति के लोगो का वर्णन पहिले पहल समुद्र मन्थन के समय मे आया है। इन लोगों ने देवताओ की सदैव सहायता की। राजा जनमेजय को छोड़ और किसी आर्य राजा से इनका भारी युद्ध नही हुआ। शेष, वासुकि, तक्षक, धृतराष्ट्र आदि इनके सरदार थे। इनका वैवाहिक सम्बन्ध आर्य्यों से हुआ अवश्य किन्तु बहुतायत से नही। विशेषतया पाताल मे नाग लोक कहा गया है। सिन्धप्रान्त मे पाताल नगर था जहाँ वासुकि वशी एक नाग राजा का शासन था। वहाँ से बैबिलोन का भारतीय व्यापार चलता था। ये कथन आरियन के हैं। कहीं कही पूर्वी बगाल के समुद्र तट वाले भाग को भी पाताल कहा है। भारत मे भी यह लोग रहते थे और गगा, सरजू आदि नदियो के सहारे इनके देश मे पहुँचने के वर्णन आए हैं। वहाँ जल का बाहुल्य समझ पड़ता है। समुद्र मन्थन मे इन लोगो ने आर्यों की सहायता की, जिससे इनका समुद्र तट वासी होना अनुमान सिद्ध है। बंगाल में कुछ जातियो की नाग सज्ञा अब तक है और बिहार मे शिशु-नाग वंशियों का कुछ दिन राज्य भी रहा। इन सब बातो से इन लोगो का आदिम निवास स्थान बगाल समझ पड़ता है। छोटा नाग-पुर के उत्तर इनका मुख्य केन्द्र था। आर्य वशी राजा युवनाश्व और हर्यश्व की बहिन धूम वर्ण नामक नाग को व्याही थी। उसी की ५ कन्याओ का विवाह हर्यश्व के दत्तक पुत्र यदु के साथ हुआ था। युधिष्ठिर के भाई अर्जुन ने नाग सुता उलूपी के साथ व्याह किया था, जिससे इरावान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वासुकि की बहिन जरत्कार का विवाह इसी नाम के एक ऋषि से हुआ। आस्तीक इन्हीं का पुत्र था जिसने जनमेजय के यज्ञ मे नागों की रक्षा की। रामचन्द्र के पुत्र कुश ने भी एक नाग कन्या के साथ विवाह किया। दाक्षिणात्य ग्रन्थ मणि मेगलय के अनुसार चोल राजा वेण ऋवेयर किल्ली ने पील वलय नाम्नी नाग कन्या के साथ विवाह किया। श्रीकृष्ण ने वृन्दावन के समीप से कालीय नाग को सपरिवार खदेर कर आज्ञा दी कि वह समुद्र के निकट जाकर वास करे। इससे भी अनुमान होता है कि नाग लोक समुद्र के निकट था। नागों के वैवाहिक सम्बन्ध और भी यत्र तत्र राजाओ से निकलेंगे। ऋषिवर उत्तक ने अपने खोए हुए

कुंडल नागो से ही छीने। सुरसा नाम्नी नाग माता ने उदधि उल्लंघन के समय देवताओ के कहने से हनुमान के बल की परीक्षा की। राजा बलि को कैद करके जब भगवान बामन ने पाताल भेजा था, तब उनके निरीक्षक नाग लोग नियत हुए। कुशान वश को पराजित करके नागो ने भारत मे अपना साम्राज्य स्थापित किया अथच हिन्दू सभ्यता की रक्षा की। उसी वश का दौहित्र तृतीय वाकाटक नरेश पीछे शासक हुआ, जिससे वाकाटक राज्य चला। इनके पीछे गुप्त साम्राज्य जमा। इतनी बातो के होते हुए भी पुराणो मे बहुत स्थानों पर ऐसे वर्णन मिलते हैं कि नाग लोग वास्तव मे सर्प ही थे। ऐसे वर्णन अग्राह्य हैं।

मग—इन लोगो का वर्णन भविष्य पुराण मे कई अध्यायो द्वारा हुआ है, जहाँ इनकी पृथक् जाति सी मानी गई है। वहाँ लिखा है कि यह लोग सूर्य के उपासक थे। इनके कई राजा सरदारो आदि के नाम भी वहाँ पर आए हैं। मग शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। इन्हे कृष्ण पुत्र शाम्ब ने बाहर (फारस) से लाकर मुल्तान मे बसाया था और वहाँ एक सूर्य मन्दिर भी बनवाया जो ह्यूयन्त्सांग के समय तक प्रस्तुत रहा।

दैत्य—इनका वर्णन वेदों मे कुछ है और पुराणो में बहुत अधिकता से आया है। इनके सरदार हिरण्यकशिपु, वज्रांग, अंधक, वज्रनाभि आदि थे। इनकी माता दिति थीं, जिससे इनकी दैत्य सज्ञा हुई। इनके पिता कश्यप ऋषि कहे गए हैं, किन्तु ये ही दैत्य, दानव, देवता, पशु, पक्षी यहाँ तक कि वृक्ष आदि के पिता हैं। इससे यह पितृत्व का वर्णन दार्ष्टान्तिक है। इन लोगों की देवताओं से बहुत काल पर्य्यन्त शत्रुता रही। देवताओं से ऐसे स्थानों पर रूपक द्वारा आर्य्यों का प्रयोजन समझना चाहिए। समझ पडता है कि यह केवल अनार्य्य ही अनार्य्य न थे, वरन् अनार्य्यता के साथ इनमें कुछ आर्य्य रुधिर भी मिला हुआ था। यह लोग आर्य्य सभ्यता गृहीत थे। प्रह्लाद विष्णु भक्त थे और बलि बहुत बडे दानी और यज्ञकर्त्ता। आर्य्यों से इनका वैवाहिक सम्बन्ध अधिकता से था। पुलोमा दैत्य

की पुत्री शची पौलोमी इन्द्र को ब्याही थी। उनकी कन्या जयन्ती का विवाह भार्गव शुक्राचार्य्य और फिर ऋषभ देव से हुआ। मधुदैत्य की कन्या मधुमती सूर्य्यवंशी हर्यश्व को ब्याही थी। इसी प्रकार वृषपर्वा दैत्य की कन्या शर्मिष्ठा से सम्राट् ययाति का विवाह हुआ। जगत् प्रसिद्ध पुरुवंश इसी शर्मिष्ठा से चला। बाण दैत्य की कन्या ऊषा से कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का ब्याह हुआ। इसी प्रकार वज्रनाभि दैत्य के कुटुम्ब की तीन कन्याओं के विवाह प्रसिद्ध यादवों से हुये। सूर्य्यवंशी राजा जनक से जब रावण ने विवाहार्थ उनकी कन्या सीता माँगी, तब उन्होंने उसके राक्षस होने के कारण इस बात से इनकार नहीं किया।

दानव—इन लोगों की उत्पत्ति दनु से है जो कश्यप की एक दूसरी स्त्री कही गई हैं। इनमें भी विप्रचित्ति आदि कई बड़े बड़े सरदार हुये हैं। इन लोगों का सदैव दैत्यों से बड़ा मेल रहा, और जो बातें उनके विषय में लिखी गई हैं वे इन पर भी घटित होती हैं। यह भी सोचा जाता है कि फारस में रह जाने वाले प्राचीन पारसी दैत्य, दानवादि थे।

राक्षस, यातुधान - यह दोनों नाम प्राय हिले मिले रहते हैं और यह नहीं समझ पड़ता कि दोनों पृथक् जातियाँ हैं अथवा एक ही। इनका एक ही होना अधिक दृढ समझ पड़ता है। मय दानव की कन्या मन्दोदरी रावण राक्षस को ब्याही थी। इनमें और दैत्य, दानवों में सभ्यता की दृष्टि से बड़ा अन्तर था, क्योंकि यह लोग नरभक्षक थे किन्तु वे नहीं। आर्य्य धर्म से विशेष शत्रुता राक्षस ही रखते थे। दैत्य दानवों की आर्य्यों से लड़ाई बहुत करके जातीय थी, धार्मिक नहीं। राक्षस लोग यज्ञ आदि के कट्टर विरोधी थे किन्तु दैत्य स्वयं यज्ञ करते थे। कुछ राक्षस भी यज्ञ करते थे।

व्रात्य—इन लोगों का वर्णन पृथक् जाति के स्वरूप में अथर्ववेद में आया है। वहाँ इनके पहनाव, उढाव चाल ढाल के भी कुछ कथन हैं। उन वर्णनों से यह भी ध्वनि निकलती है कि यज्ञ द्वारा सब से पहले आर्य्यमत ग्रहण करनेवाले ये ही लोग थे।

महावृष, मूजवन, वाल्हीक आदि के विषय मे अथर्ववेद मे ज्वर रोग को सम्बोधन करके कहा गया है कि हे ज्वर ! तुम हम लोगो मे न रह कर इन लोगो मे जाओ। ऐसे ही ऐसे कथनो से यह लोग अनार्य्य समझ पडते हैं। दैत्यो का निवास स्थान फारस या पजाब मे जान पडता है। अथर्ववेद से विदित होता है कि अग और मगध देशो मे भी अनार्य लोग बहुतायत से रहते थे। यह निष्कर्ष भी ज्वर के ही सम्बोधन मे निकला है। राक्षस लोगों का बल विशेषतया लका और दक्षिणी भारत जनस्थान मे था। वाल्हीक लोग पश्चिमी पजाब और पूर्वी अफगानिस्तान मे रहते थे। अत· जिस काल आर्यों ने भारत मे पदार्पण किया तब अनुमान से पजाब मे दैत्य और दानवो का प्राबल्य था, अफगानिस्तान में वाल्हीको का बङ्गाल मे नागो का, मगध मे मागध अनार्यों का और दक्षिण, मध्य एव पश्चिमीय भारत मे वानरों, ऋक्षो; महिषो और राक्षसो का। व्रात्य, मूजवन, महावृष आदि कहाँ रहते थे इसका कोई अनुमान हम नही कर सके हैं। यह भी एक प्रश्न है कि आर्य भारत मे खैबर दर्रा होकर आये या तिब्बत होकर।

कीकटो का राजा प्रमगड था। यह लोग दक्षिणी अवध मे भी रहते थे। पारावत लोग रावी नदी के किनारे बसनेवाले आर्य अथवा अनार्य थे यह निश्चित नही है। आर्जिक भारत के उत्तर पश्चिम मे रहते थे। इन तीनो जातियो का हाल ऋग्वेद मे मिलता है।

अनार्य्यों के धार्मिक सिद्धान्त कैसे थे इस प्रश्न पर कथन मोहजादडा के विषय मे हो चुका है और अन्यत्र भी।

यहा भील गोड सथाल, सौर आदि के नाम पृथक् नही आए हैं। इन लोगो के ये वर्तमान नाम प्राचीन महिष, कपि, ऋक्ष, राक्षस आदि जातियो के होगे। दक्षिण के द्रविड, तामिल आदि लोग अनार्य हैं अथवा नही इस विषय पर कुछ कहना मतभेद से खाली नही है। बहुतो का मत है कि उत्तर के पच गौड ब्राह्मण आर्य्य हैं और दक्षिण के पच द्राविडो मे बहुतायत से अनार्य्य रुधिर पाया जाता है। द्राविडो का यह मत नही है। द्राविड लोग वास्तव मे कौन हैं और भारत मे कैसे आये या हुये इस विषय पर पण्डितो मे अभी कुछ भी दृढता नही

हुई है। अब तक की जाँच से यह विषय पूर्णतया अज्ञात है। पाश्चात्य पण्डितो का विचार है कि उत्तर से ब्राह्मण इतनी संख्या मे दक्षिण कभी नही गये कि वहाँ आर्य्यों की इतनी भारी बस्ती होती जैसी आज पाई जाती है। हम को इस मत के ग्रहण करने मे सकोच है। महाराजा रामचन्द्र के समय से कुछ ही पहले वीर वर अगस्त्य मुनि के नेतृत्व मे आर्य्यों का एक बडा उपनिवेश दक्षिण में स्थापित हुआ था। शरभंग ऋषि भी वहाँ पहुँच चुके थे तथा परशुराम भी वहीं के हैं। जनस्थान मे बहुत से ऋषि राम से मिले। राक्षसो द्वारा जो ब्राह्मण खाये गये थे, उन की अस्थि का टीला सा राम ने देखा। पुलस्त्य ऋषि के वंशी भी बहुतायत् से वही रहे। रामचन्द्र के समय में दक्षिण का उत्तर से घनिष्ट सम्बन्ध हो गया। युधिष्ठिर के समय मे दक्षिण मे आर्यों के कई राज्य स्थापित थे। गौतम बुद्ध, अशोक, समुद्रगुप्त आदि के समयों मे भी यही दशा थी। इन सब बातों के होते हुये भी महाकान्तार वन इतना बिकराल नही माना जा सकता कि कोई उसको पार ही न कर सकता। इसलिये आर्य्यों का बहु सख्या में दक्षिण जाना कुछ असंभव नहीं है। मिश्र अथवा उत्तरी भारत की इस आर्य शाखा की सभ्यता पहुँचने के पूर्व ही वहां हिन्दू सभ्यता स्थापित हो चुकी थी। ब्राह्मणों की दस प्रधान शाखाये हैं, जिनमे उत्तरवाली पञ्चगौड कहलाती हैं और दक्षिणवाली पचद्राविड। कम से कम कुछ ब्राह्मणों का दक्षिण जाना सर्वमान्य है। इन सब बातों से पंचद्राविड ब्राह्मण आर्य्य सभ्यता गृहीत और कुछ अशो में आर्य्य रुधिर सम्पन्न द्रविड़ समझ पडते हैं। दक्षिण के क्षत्रियों और वैश्यों में अनार्य्य रुधिर अवश्य पाया जाता है जैसा कि वहां के ब्राह्मण भी कहते हैं। तामिल जाति की अनार्य्यता के विषय में बहुत से पडितो का मत है कि ये आर्य्य नही हैं।

मत्स्यपुराण के अनुसार निम्न जातियां आदिम काल मे निम्न-स्थानों में बसी थीः—दैत्य दानव (श्वेत पर्वत या सफेद कोह पर), देवगण [सुमेरु (पामीर) पर], राक्षस पिशाच, यक्ष (हिमालय पर), गन्धर्व और अप्सरस (हेमकूट अर्थात् कराकुरम पर), नाग और तक्षक (निषध अर्थात् निस्सा पहाड़ पर), ऋषि (नीलाचल

मे) और पितृ शृङ्गवान पर्वत पर जो सुमेरु से पश्चिम कास्पियन समुद्र के निकट है । ये स्थान किसी समय मे इन लोगो के निवास-स्थान थे । समय पर इनमे बहुत से हेर फेर भी हुये जैसे कि स्थान स्थान पर दिखलाये जावगे ।

आर्य्य लोग कौन थे और भारत मे कहां से आये इन प्रश्नों के जानने के लिये सांसारिक जातियो का कुछ वर्णन करना ठीक समझ पड़ता है । मानव-शास्त्र-वेत्ताओ ने मनुष्यो को पांच जातियो मे विभक्त किया है, अर्थात् काकेशियन, मगोलियन या तातार, हबशी, मलय और अमरीकन । रगों के अनुसार यही लोग क्रमशः गोरे, पीले, काले, बादामी और लाल हैं । गोरे लोग प्रधानतया योरोप, पश्चिमी और दक्षिणी एशिया तथा उत्तरी अफरीका मे रहते हैं और उत्तरीय एवं दक्षिणीय अमरीका मे हाल मे बस गये हैं तथा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में बसते जाते हैं । मगोल लोग प्रधानतया चीन, जापान, बर्मा, स्याम आदि मे रहते हैं । हबशी लोगो का स्थान अफरीका है तथा मलयो का मलक्का, मडागास्कर, न्यूजीलैण्ड आदि । अमरीकन लोग जो लाल इंडियन कहलाते हैं दोनों अमरीकाओ मे रहते हैं ।

इन सब मे गोरी जाति प्रधान है । मिश्र, असीरिया, बैबिलोनिया, फिनिशिया, फारस, यूनान, इटली आदि के लोग सब गोरे थे । हिन्दू और हिब्रू लोग भी गोरे हैं । इस गोरी जाति की तीन प्रधान शाखाएँ हैं, अर्थात् आर्य, सेमेटिक और हैमेटिक । सेमेटिकों मे हिब्रू लोगो, अरबो एव फिनिशिया, वैबिलोनिया और असीरियावालो की गिनती है, तथा हैमेटिको मे मिश्रवालो की । यह दोनों नाम नूह के पुत्रो शेम और हेम के नामों से निकले हैं ।

आर्य्य जाति ससार मे सर्वप्रधान है । इसी में भारतवासियों, जर्मनो, रूसियों, अग्रेजो, फ्रांसीसियों आदि की गणना है । सब योरोपवासी आर्य्य नही हैं । पाश्चात्य पडितों में से कुछ का विचार है कि आर्य्य लोग मध्य एशिया मे रहते थे और कुछ लोग उन्हें पूर्वीय योरोप का निवासी मानते हैं । पडितवर मैक्समुलर का मत है कि एक वह समय था कि जब हिन्दुओं, जर्मनों, रूसियो, यहूदियों, अफगानों,

अँगरेजो, फारसियो आदि के पूर्व पुरुष सेमेटिक और हैमेटिक जातियों से पृथक् एक ही स्थान पर रहते थे। यह एक छोटी सी जाति थी और इसकी भाषा वह थी जो तब तक सस्कृत, यूनानी अथवा जर्मन नही हुई थी, वरन् इन सब का मूल अपने मे रखती थी। योरोपीय पडितो के अनुसार सामाजिक जातियो का विभाग उपर्युक्तानुसार है। यही मत ठीक भी समझ पडता है।

ज्यो ज्यो आर्यों की सख्या तथा साहस मे वृद्धि होती गयी, त्यों त्यो यह अपने निवास स्थान से आगे बढते गये। इन लोगो ने क्रमश. भारत, पश्चिमी एशिया और सबसे पीछे योरोप मे फैलकर इन देशो मे आर्य्य सभ्यता का विस्तार किया। केल्ट भी आर्य्य थे जो फ्रांस और ब्रिटेन मे पाये जाते हैं। इन लोगो ने पहले मध्य और दक्षिणी योरोप को अपना निवासस्थान बनाया। धीरे धीरे यूनानियो, रूमियो एव ट्यूटनो ने केल्टो को इटली, ग्रीस, मध्य-योरोप, डेन्मार्क, स्वीडन और नार्वे से निकाल दिया। इसके पीछे स्लाव लोग रूस, पोलैण्ड, बोहेमिया, सर्विया आदि मे फैल गए। लिथुएनियावाले रूस मे बाल्टिक के किनारे रहते हैं।

समग्र आर्य्य जाति की आदिम एकता की साक्षी स्वरूपा बहुत करके अब आर्य्य भाषा ही है। सस्कृत, जींद, अँग्रेजी, यूनानी, लैटिन, फारसी, अरबी आदि भाषाओ के मिलाने से प्रकट होता है कि इन सब की मूल स्वरूपा कभी एक ही भाषा थी। इन सब मे साधारण बातो, औजारो, कामो, रिश्तो आदि के लिये प्रायः एक ही से शब्द हैं। इन भाषाओ को बोलनेवाली जातियाँ हजारो वर्षों से पृथक् हैं, सो एक दूसरी से शब्द नकल नही कर सकती थी और न ले सकती थी। अत इनकी आदिम एकता प्रमाणित होती है। इसी भाषा सम्बन्धी जाँच से इस प्रभावशालिनी जाति को उस काल तक की उन्नतियो का परिचय मिलता है जब तक कि उसने अपना आदिम निवास स्थान नही छोडा था। पडितो ने निष्कर्ष निकाला है कि उस समय भी आर्य्य लोग मकानो मे रहते, पृथ्वी जोतते और चक्कियो से अनाज पीसते थे। वह भेड, गाय, बैल, कुत्ता, बकरा आदि को पालते और शहद से निकाला हुआ मद्य पीते थे। वे ताँबा, चाँदी, सोना आदि का व्यवहार करते

और धनुष बाण तथा तलवार से लड़ते थे। उनमें राज्य शासन प्रणाली का आरम्भ हो चुका था। वे आकाश अथवा आकाशवासी देवता का पूजन करते थे।

कुछ पाश्चात्य पडितो का विचार है कि प्राचीन संसार का सब से बडा इतिहास स्थल मेडेटरेनियन समुद्र का किनारा है। वे समझते हैं कि चीनी स्वपांडित्याभिमानी मात्र रहे हैं, हिन्दू स्वप्नवत् विचाराश्रयी मात्र, ग्रीक विचारशील तथा कारीगर और रूमी पूरे मनुष्य। अभिमानी कुछ सिखला नही सकता था, स्वप्नाश्रयी ने कुछ नही किया, कारीगर ने अपनी और अपने पड़ोस की उन्नति की और पूर्ण मनुष्य ने ससार पर शासन किया। आशा है कि ऐसे ओछे विचारो का कुछ सशोधन इन पृष्ठों के अवलोकन से हो जायगा, क्योंकि हिन्दुआ ने बहुत सी उन्नति अवश्य की थी। मिश्र, शे (चै) ल्डिया, भारतवर्ष और चीन मे अति प्राचीन समय से यथेष्ट सभ्यता वर्तमान थी। इनमे आर्य जाति सब से अधिक सभ्य थी। मिश्र और असीरियावासियो ने कई बार भारतवर्ष पर चढाइयाँ कीं।

भारतीय इतिहास आरम्भ करने के पूर्व यह ठीक समझ पड़ता है कि अपने पडोसी फारस का कुछ सूक्ष्म दिग्दर्शन करा कर तब आगे बढे। दलाल महाशय ने १९१४ के निकट प्राचीन भारत पर एक ग्रन्थ अँगरेजी मे प्रकाशित किया। उसमे आर्यों के विषय मे उनके जो विचार हैं उन में से कुछ का सारांश यहाँ दिया जाता है। ८००० से ७००० बी० सी० तक ग्लेशियरो (समुद्र मे तैरनेवाले बर्फ के पहाडो) से शीताधिक्य एव जनवृद्धि के कारण आर्य लोग अपने प्राकृति कसदनो को छोड कर नीचे उतरे। अनन्तर वे योरोप और एशिया मे बँट गए। ७००० से ६००० बी० सी० तक वे मध्य एशिया मे बसे, तथा ४००० बी० सी० मे फारस एव भारत पहुँचे। ८००० से ६००० बी० सी० तक वे खाद का हाल नही जानते थे, किन्तु रथ, नाव, बुनाई का काम, यव और मधुपान से अभिज्ञ थे। उनके देवता उषस, द्युस और वरुण थे और वे यज्ञ करते थे। ६००० से ४००० बी० सी० तक वे वैबिलोन के निवासियों से मिले। उनकी सभ्यता उच्च थी, सो आर्यों की गति

अवरुद्ध हुई और इन्होने उनसे बहुत कुछ सीखा । तदनन्तर आर्यों का फ़ारस और भारत से सबंध प्रारम्भ हुआ । फारसी और भारतीय आर्य प्रायः एक ही थे । उनमे बहुत कुछ साम्य था । जन्दावस्ता के शब्द और विचार बहुत कुछ ऋग्वेद से मिलते हैं । यथा:—

वृत्रघ्न (इन्द्र) ईरानी वैरेथ्रघ्न । जैतन = थइटौन ।

तृत, वेदों का, थृत ईरानी । प्रथम वैद्य मित्र = मिथ्र ।

शतपथ ब्राह्मण ९, ५, १ से निष्कर्ष निकलता है कि देव तथा असुर प्रजापति के पुत्र थे । देव सत्य पर रहे, असुर असत्य पर । देवासुर युद्ध होने से देव ईरान के उत्तर पूर्व मे बसे, और वहां से भारत आये । यह युद्ध दीर्घ कालीन और भारी था ।

भारत मे आने पर आर्यों ने यहां द्रविड़ो तथा कोलो को पाकर उन्हे दास या दस्यु कहा । कोल उत्तर पूर्व से और द्रविड उत्तर पच्छिम से आये थे । काई कोई इन्हे बलूचिस्तान से आनेवाले समझते हैं । कोलैरियनो को विन्ध्य के निकट पराजित करके द्रविड़ दक्षिण चले गए । कुछ लोगों का विचार है कि कोल आदिम भारतीय थे । द्रविडो का वैबिलोन से अच्छा व्यापार था । वे पृथ्वी और शेषनाग को पूजते थे । ग्राम्य समाजों का चलन द्रविडो ने चलाया । तरु पूजन भी उनका था । खेती का अच्छा प्रचार दक्षिण में हुआ । उनके कुटुम्ब माताओं पर थे । ऋग्वेद में ये राक्षस और यातुधान हुए । पिशाच लाली लिए हुए बहुत चिल्लाने वाले थे । बृहत्कथा मूलतः पैशाची भाषा में थी । नागों और यक्षों की भी दो जातियां थी । कुबेर यक्ष थे । दक्षिण में नागों के चित्र मनुष्यों के हैं न कि सर्पों के। आर्यो की दूसरी धारा गिलगिट और चितराल होकर आयी । पहले देव असुरो से हार गए, किन्तु पीछे पुरंजय की सहायता से विजयी हुए । पुरकुत्स नर्मदा तक बढ़े ।

पार्जिटर महाशय का विचार हिन्दू शास्त्रो के अनुसार चलता है । हिन्दुओ में तिब्बत गन्धमादन आदि तो पवित्र देव देश हैं, किन्तु पंजाब अफ़ग़ानिस्तान आदि ऐसे नही हैं । इससे आपका कथन है कि आर्य लोग भारतवर्ष में उत्तर पच्छिम से न आकर इधर ही से आये ।

फ़ारस का राज्य—यह राज्य पहले पहल पारसियो के अधीन हुआ। ये लोग आर्य्य थे और हमारे पूर्व पुरुषो की भाँति मध्य एशिया अथवा पूर्वीय रूस से आए थे। इनकी भाषा जन्द पुरानी सस्कृत से मिलती-जुलती है। इस भाषा मे जन्दावस्ता नामक इनका प्राचीन धर्म ग्रन्थ मात्र रह गया है। हेरोडोटस ने बी० सी० १४०० के लगभग वाले फ़ारस राज्य के भारतीय सम्बन्ध का हाल कहा है। पारसियो ने कई जातियो को पराजित किया, किन्तु ये लोग उनका एकीकरण न कर सके। फारस पहले मीडिया के अधीन रहा, किन्तु ७०० बी० सी० के लगभग इन लोगों का शासक पृथक हो गया। फिर भी वह रहा मोडियो के अधिकार मे, किन्तु ५५० बी० सी० मे साइरस ने मीडिया को जीत कर फारस का राज्य स्थापित किया। यह शासक बहुत बडा विजयी था। इसने ५४६ में लिडिया और ५३८ में बैबिलोनिया को भी जीत कर फारस में मिला लिया। पूर्व मे इसने हिन्दूकुश तक अपना राज्य फैलाया। यह बड़ा प्रतापी राजा था, किन्तु ५२९ मे सीरिया वालो से युद्ध करने मे मारा गया। इसके पुत्र कम्बोसिस ने ५२९ मे मिश्र देश को जीत लिया। ५२१ से ४८५ बी० सी० तक इसके पुत्र दारा ने राज्य किया। इसने फारस के विशाल राज्य को दृढ़ करके उसे कई प्रान्तों मे विभाजित किया। प्रत्येक प्रान्त का शासक सट्रैप कहलाता था। दारा ने सडकें बनवायी और डाकखानों का अच्छा प्रबन्ध किया। इसने योरापीय प्रान्त, थ्रेस और मैसिडोनिया को भी जीत कर फारसी राज्य मे मिलाये। इसके पीछे दारा ने यूनान (ग्रीस) जीतने का प्रबन्ध किया, किन्तु ४९० मे माराथान के जगत्प्रसिद्ध युद्ध में फारसी लोगों ने करारी पराजय पायी और योरापीय पंडितो के अनुसार एशिया की योरोप विजय वाली कामना सदा के लिये अस्त हो गयी। इसके पुत्र ने फिर यूनान विजयार्थ युद्ध किये किन्तु फल यह हुआ कि उसके हाथ से मैसिडोनिया और थ्रेस भी जाते रहे। ४१४ मे मिश्र स्वतन्त्र हो गया। ३३६ मे तीसरा दारा गद्दी पर बैठा। इसने ३३१ में सिकन्दर के हाथ अर्बला में वह करारी पराजय पायी कि जिससे फारस का राज्य ध्वस्त हो गया। इसके पीछे फारस साम्राज्य पद से गिर कर एक साधारण

राज्य रह गया। फारस का भारत से कभी कोई ऐतिहासिक भारी युद्ध नही हुआ। भारत के वहुत से शक राजे अपने को सट्रैप (क्षत्रप) कहते थे, जिससे अनुमान किया जाता है कि वे लोग फ़ारस के अधीन थे, क्योकि फ़ारस के प्रान्तीय शासक सट्रैप कहलाते थे, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं।

भारतीय इतिहास के लिये यह वर्णन कुछ कुछ अप्रासगिक समझा जा सकता है, किन्तु प्राचीन भारत का इस देश मे वहुत कुछ सम्बन्ध रहा है। तिलक महाशय ने अपने 'ओरियन' ग्रन्थ मे सिद्ध किया है कि आर्य्य लोग सब से पहले उत्तरीय ध्रुव के निवासी थे। हमारे शास्त्रो मे लिखा है कि देवताओ के दिन रात छः छः महीनो के होते हैं। यह वात उत्तरीय ध्रुव के विषय मे आज भी घटित है। आइसलैण्ड नामक टापू मे भी यही दशा है। जब तक सूर्य्य उत्तरायण रहते हैं तव तक वहाँ बराबर दिन रहता है। इसी प्रकार दक्षिणायन सूर्य्य मे छ. मासो तक रात वनी रहती है। इस प्रकार ध्रुव प्रदेशो मे वर्ष मे एक ही दिन रात होती है। हिन्दू शास्त्र देवताओ का यही दिन मानते हैं। इससे कुछ ध्वनि निकलती है कि आदिम आर्य्य लोग उत्तरीय ध्रुव मे रहते थे। सम्भवतः वही से चल कर वे पूर्वीय रूस और मध्य एशिया होते हुए भारत, पश्चिमी एशिया और योरोप मे फैले। तिलक महाशय के अनुसार आर्य्यों का पदार्पण भारत मे ६००० बी० सी० के लगभग हुआ और ४००० से २५०० तक ऋग्वेद तथा सामवेद की रचना हुई। यजुर्वेद और अथर्ववेद इस से कुछ पीछे क हैं। इसलिये इस अध्याय में वदो का वर्णन न करके हम उसे यथा स्थान कहेगे। यहाँ वेदा एव अन्य ग्रन्थो के सहारे से आर्य्यों के आगमन का कथन किया जायगा और पुराणो आदि के आधार पर शेष इतिहास कहा जायगा। वायु पुराण का कथन है कि भूत, पिशाच, नाग और देव उत्तर से भारत को आये। भूतगण भूत स्थान (भूटान) मे वसे। भविष्य पुराण वतलाता है कि आर्य उत्तर कुरु (साईबेरिया) मे रहते थे और वही से मध्य भूमि (युक्त प्रान्त) में आए।

आर्य्यों की सख्या आगमन के समय वहुत अधिक न थी। ऊपर दिखलाया जा चुका है कि भारत में आने के पूर्व आर्य्य लोग खेती

तथा राज्य व्यवस्था से कुछ कुछ अभिज्ञ थे। अपने देश मे स्थानाभाव तथा देशान्तरो मे भ्रमण का चाव उन्हे हिन्दुस्तान तक ले आया। यहाँ की भूमि को बहुत उपजाऊ देख वे जङ्गलो को जला और मैदानो को साफ कर यही बस गए। अनार्य्य लोगो ने धनुष बाणो से उनका सामना किया, किन्तु बढ़ी हुई आर्य्य सभ्यता के सम्मुख भारतीय शिकारीगण बलवान होने पर भी ठहर न सके। उस काल अधिकतर भारतीयो को सेना बना कर लडने की प्रथा ज्ञात न थी। वे बिना दल जोड़े और बिना मत्रणा किए सौ सौ दो दो सौ के झुडो मे आर्य्यों से लड लड कर हारते गये। जो जहा हुआ वह वही लड़ पड़ा। ये लोग घोड़े का हाल नही जानते थे। आर्य्यों के घुडसवार देख कर इन लोगो ने घोडा और सवार को एक ही व्यक्ति समझा। ऐसे भयानक व्यक्ति से विजय की कुछ भी आशा न रख कर बेचारे अनार्य्य हाय हाय करके भागे। यही भ्रम अमरीका मे स्पेन वालों के घुडसवार देखकर वहाँ के आदिम निवासियो (रेड इंडियनो) को हुआ। घोड़े से विशेष कार्य्य सिद्ध होने के कारण आर्य्यों मे उसका मान बहुत बढा, यहाँ तक कि दधिक्रवण के नाम से वेदों में उसकी पूजा तक हुई। इसी अवसर पर आर्य्यों ने प्राचीन भारतीयो को भाषाहीन पशु मात्र समझा। ये लोग रङ्ग मे काले और सभ्यता के सभी अगो मे आर्य्यो से बहुत नीचे थे। अत. आर्य्यों और अनार्य्यों के भेद को वर्ण भेद की उपाधि मिली। इसी से समय पर जाति भेद निकला जैसा कि आगे दिखलाया जावेगा।

अनार्य्यो ने बहुत शीघ्रता से अपनी हार नही मान ली, वरन् वे जङ्गलों, पहाडो आदि मे छिप जाते थे और मौका पाकर आर्य्यो को भारी हानि पहुँचाते थे। इसी प्रकार इन दानो जातियो मे सैकडों वर्षों तक युद्ध होता रहा। ज्यों ज्यो आर्य्य आगे बढते जाते थे त्यों त्यो अनार्य्य लोग पीछे हटते जाते थे, किन्तु प्रत्येक जङ्गल और पहाड को उन्होन कठिन युद्ध करके छोडा और प्रत्येक नदी पार करने मे आर्य्यो को पूरी अडचन डाली। इसलिए नदियाँ पार करने के वास्ते आर्य्यों को बहुत बडे बडे जलयान बनाने पडे। १०० मस्तूलों तक के जलपातो का वर्णन वेदो मे कई स्थानो पर आया है। इस

चिरकालिक युद्ध के कारण आर्य्यों तथा अनार्य्यों मे भारी शत्रुता हो गयी। इसीलिए ऋग्वेद मे जहाँ कही अनार्यों का कथन आया है, वहाँ वह विद्वेषपूर्ण शब्दो मे है। प्रार्थनाओ मे यहाँ तक कहा गया है कि हे इन्द्र तू इनकी काली चमडी उधेड दे। यह दशा यजुर्वेद और अथर्ववेद के समयो मे नही रही थी, क्योकि उन मे अनार्य्यों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार का परिचय मिलता है। हडप्पा मोहञ्जोदड़ो आदि के समान कुछ उन्नत नगर और प्रान्त भी थे। वेदो में भी शम्बर, वृत्र आदि के पाषाण दुर्ग लिखे हैं। और भी अनेकानेक भारी अनार्य्य नेता थे। उनके जीतने मे आर्य्यों को कठिनता पडी, किन्तु अन्त मे ये ही विजयी हुये।

इस लम्बे समय मे आर्य्यों का जीवन बहुत करके वैसा ही था जैसा कि ऋग्वेद में पाया जाता है। इन आर्य्यो ने वेदमंत्रो तक न पहुँचने वाले गद्य पद्य मय साहित्य की भी रचना की, जिसे निविथ कहते हैं। यह अब हम लोगो के पास प्रस्तुत नही है, किन्तु इसके तात्कालिक अस्तित्व की खोज पडितो को वेदो मे ही मिली है। इस लम्बे समय में आर्य्यों की भाषा भी अन्य बातो के साथ उन्नति करती तथा बदलती रही, यहाँ तक कि इस समय के पीछे ऋग्वेद जिस भाषा मे लिखा गया वह आर्य्यों की प्राचीन भाषा जन्द से मिलती होने पर भी बहुत कुछ भिन्न हो गयी थी। यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि आर्य्यों की प्राचीन भाषा जन्द ही थी। हम लोगो को केवल इतना ज्ञात है कि आर्य्यो की दूसरी धारा जो फारस मे रही, उसकी प्राचीन भाषा जन्द थी। आर्य्यों का कथन कुछ विस्तार के साथ वैदिक वर्णन में आवेगा। यहा केवल उतना ही कहा गया है जो उनको अवैदिक समय वाली दशा का दिग्दर्शन करा सके। पूर्वोक्त कथन विशेषतया वेदो के आधार पर किये गए हैं। अब हम पुराणो के आधार पर इस काल का इतिहास लिखते हैं।

हमारे यहाँ पौराणिक विवरणो मे समय का विभाग मन्वन्तरो के अनुसार किया गया है। पूरा भूत भविष्य काल चौदह मन्वन्तरों में बाँटा गया है, जिसमे से ६ मन्वन्तर हो चुके हैं और ७ वां इस समय चल रहा है, तथा सात आगे आने वाले हैं। एक मन्वन्तर

७१ चतुर्युगियो से कुछ अधिक होता है। प्रत्येक चतुर्युगी मे सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं। सत्ययुग की सख्या ४००० वर्षों की है और चार-चार सौ वर्षों की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश होते हैं। त्रतायुग ३००० वर्षो का है और उसकी सन्ध्या-सन्ध्यांश मे ६ सौ वर्ष लगते है। द्वापर मे २००० वर्ष और चार सौ वर्षो की सध्या-सध्याश हैं तथा कलियुग मे १००० वर्ष और दो सौ वर्षो की सध्या-सध्यांश है। प्रयोजन यह है कि जितने हजार वर्षों का युग होगा उतने ही सौ वर्षों की सन्ध्या होगी और उसी के बराबर सध्यांश होगा। अत. एक चतुर्युगी मे १२००० वर्ष होते हैं।

यह गणना अच्छी थी, किन्तु पौराणिक पडितो न इस काल को देवताओं का समय कह कर बहुत बढ़ा दिया। इस पौराणिक मत के अनुसार उपर्युक्त प्रत्येक वर्ष हमारे ३६० वर्षों का होता है, क्योकि देवताओ का एक दिन हमारे एक वर्ष के बराबर है। अत: एक चतुर्युगी ४३२०००० वर्षो की हो जाती है और एक मन्वन्तर मे ऐसी ऐसी ७१ चतुर्युगिया पड जाती है। इसलिए यह पौराणिक समय सख्या बिलकुल बेकार हो गयी है। फिर भी मन्वन्तरों के कथन से इतना लाभ अवश्य है कि वैवस्वत मनु के पहले हमे छ मन्वन्तर मिलते हैं और जिस मन्वन्तर मे जो कथाएँ पुराणो मे वर्णित हैं, उनके अनुसार घटनाओ का पूर्वापर क्रम मिल जाता है। युगो के अनुसार घटनाओ का कथन भी कुछ कुछ सहायता देता है. किन्तु प्रत्येक राजत्व काल के विषय में निश्चयपूर्वक यह नही ज्ञात होता है कि वह किस युग मे था। मोटे प्रकार से बलिबन्धन सत्ययुग मे हुआ, रामावतार त्रेता मे, महाभारत युद्ध द्वापर में और इधर की घटनाएँ कलियुग मे हुई। महाभारत का काल बहुत लोग ६०० गत कलि मे भी मानते हैं, यद्यपि पुराणों में कृष्ण के शरीर-त्याग, महाभारत युद्ध अथवा परीक्षित के समय से कलि का प्रारम्भ लिखा है। जो हो. हम युगो, मन्वन्तरों तथा राजवशों के सहारे इतिहास लिखना श्रेष्ठतर समझते हैं।

चौदहो मनुओ के नाम ये हैं—स्वायम्भुव, स्वारोचिप, उत्तम, तामस. रैवत, चाक्षुप, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि,

धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि। इन सब में सावर्णि वाले मन्वन्तर भविष्य से सम्बन्ध रखते हैं, न कि भूत और वर्त्तमान कालों से। अत: इनका कथन अनावश्यक है और इनके नाम केवल वर्णन पूर्णता के विचार से यहाँ लिख दिए गये हैं। इन सब का भोग काल समान मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। पृथक् पृथक् राजघरानों के समान इनका समय भी न्यूनाधिक अवश्य होगा। स्वायम्भुव मनु पहले थे। इनके वंश का वर्णन राजवंश कथन वाले अध्याय में नं० १ पर दिया हुआ है। ऋग्वेद का निर्माण काल मोटे प्रकार से चाक्षुष मन्वन्तर से प्रारम्भ होता है। इसी में समुद्र मन्थन भी हुआ जैसा कि आगे कहा जायगा। अत. समझ पड़ता है कि चाक्षुष मन्वन्तर आर्यों के लिये बहुत ही गौरवपूर्ण समय था। सातों मनुओं में से केवल चाक्षुष और वैवस्वत वेदर्षि थे, शेष कोई नहीं। इससे भी चाक्षुष मन्वन्तर से ही मुख्यतया वैदिक समय चलने की झलक मिलती है। वेदों में आर्यों की बहुत छोटी छोटी बातों तक के वर्णन हैं, किन्तु यह साफ कहीं नहीं लिखा है कि वे लोग कहीं बाहर से आकर भारत में बसे। इससे प्रकट होता है कि आर्य लोग वेद निर्माणारम्भ के समय इतने दिन पहले से भारत में बसते थे कि वे अपना बाहर से आना बिलकुल भूल चुके थे। यह बात तिलक महाशय के इस सिद्धान्त को पुष्ट करती है कि आर्य लोग वैदिक समय से बहुत वर्ष पूर्व भारत में आए थे। यहां जैसे जैसे उनकी संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई, वैसे ही वैसे वे आगे बढ़ते गए।

स्वायम्भुव मन्वन्तर

स्वायम्भुव से चाक्षुष पर्य्यन्त छवों मन्वन्तरों में जो विवरण है, वह श्रीभागवत, विष्णु पुराण, हरिवंश और दुर्गा सप्तसती के आधार पर है।

ऋग्वेद में कहा गया कि हे इन्द्र तू ने यह देश मनु को दिया। इस से स्वायम्भुव मनु का प्रयोजन समझ पड़ता है। वैवस्वत मनु का कथन वेदों में जहाँ हुआ वहाँ वैवस्वत भी कह दिया गया है। वेदों में घटनाओं का पूर्वापर क्रम नहीं कहा गया है। पुराणों से हमें ज्ञात

होता है कि स्वायम्भुवमनु १४ मनुओं मे पहले थे। इनकी ४५ पीढ़ियों ने भारत मे राज्य किया। इस कारण से यह मन्वन्तर कई सौ वर्षों का समझ पड़ता है। इनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र थे। ये दोनों बडे प्रतापी राजा हो गए हैं। आर्यों के सब से पहले राजा स्वायम्भुव मनु थे। इन्ही से नरवंश का चलना कहा गया है, किन्तु वास्तव मे यह कई भारी राजवंशो मात्र के पूर्व पुरुष थे। उत्तानपाद और प्रियव्रत साथ ही साथ भिन्न भिन्न प्रदेशों के स्वामी हुए।

मनु के दो पुत्रो के अतिरिक्त आकूति, प्रसूति और देवहूति नाम्नी तीन कन्याये भी थीं। देवहूति का विवाह पुलह के पुत्र कर्दम ऋषि के साथ हुआ जिनसे कपिल का जन्म हुआ। कर्दम की कन्या के साथ मनु पुत्र प्रियव्रत का विवाह हुआ जिससे दस पुत्र और दो कन्याओं का जन्म हुआ। कहा गया है कि प्रियव्रत ऐसे प्रतापी राजा थे कि उन्होंने राज्य मे कई दिन तक रात्रि नही होने दी थी। इन्होने राज्य अपने पुत्रों मे बांट दिया। अग्नीध्र को जम्बू द्वीप (शायद एशिया) मिला, द्युतिमान को क्रौंच द्वीप, भव्य को शक द्वीप (शायद योरोप) तथा औरो का अन्य प्रान्त। बुढ़ापे मे इस प्रकार पुत्रो मे राज्य बांट कर प्रियव्रत गृहत्यागी हो गये। षष्ठी देवी की पूजा इन्हीने चलाई। बंगाल मे स्त्रिया पुत्र कामना से अब भी षष्ठी का पूजन करती हैं। अग्नीध्र के नौ पुत्र थे जिनमे इन्होंने अपना राज्य बाट दिया। नाभि को हिम वर्ष मिला जो हिमालय से अरब समुद्र पर्य्यन्त कहा गया है। हरि को नैषध उपनाम हरि वर्ष (रूसी तुर्किस्तान), इलाव्रत को इला वर्ष (पामीर), रम्यक को चीनी तातार, हिरण्मय को मंगोलिया, कुरु को कुरु वर्ष (साइबेरिया), किम्पुरुष को उत्तरी चीन, भद्राश्व को दक्षिणी चीन और केतुमान को रूसी तुर्किस्तान मिले। महाराजा नाभि भारत का शासक हुआ। इसके पुत्र ऋषभदेव थे। हरि वर्ष को कहीं कही अरब या तिब्बत भी कहा है। इन्द्र की कन्या जयन्ती का विवाह ऋषभदेव से हुआ।

ऋषभदेव न केवल भारी सम्राट थे वरन् भारी धर्मोपदेशक भी हो गये हैं। आप जैनो के प्रथम तीर्थंकर होने से आदिनाथ भी कहलाते

हैं। इनके सिद्धान्त निम्नानुसार कहे जाते हैं:-(१) ईश्वर सम्बन्धी विचारों से इतर भी मुक्ति संभव है। (२) संसार स्वयं भुव और नित्य है। (३) अहिंसा, आत्म-शिक्षण और दिगम्बरपन सदाचार हैं। इनसे "कवल ज्ञान" प्राप्त होता है। पुराणों मे लिखा है कि बुढ़ापे में ऋषभदेव आँय बाँय बकने लगे। इस कथन से उनके हिन्दुओ के प्रतिकूल विचारों की झलक मिलती है। ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित जो मत ऊपर कहे गये हैं वे ऐतिहासिक ज्ञान-वृद्धि के विचार से उस काल के लिये अयुक्त हैं। जान पड़ता है कि उन्होने कुछ नव विचारोत्पादन किया था जिनका मूल समय के साथ उन्नति करता हुआ अब उपर्युक्त रूप मे उन्हीं के विषय में कहा गया है। कहते हैं कि उत्तानपाद के वंशधर वेन को ऋषभदेव ने स्वमत मे दीक्षित किया। यह कथन दो कारणो से अयुक्त समझ पड़ता है। एक तो ऋषभदेव मनु से पाँचवीं पीढ़ी पर थे और वेन ३९वीं पर, सो इन दोनो का समकालिक होना असंभव था। दूसरे वेन ने जो मत चलाना चाहा था वह ऋषभदेव के मत से भिन्न था, क्योंकि वेन राजा अपने को प्रजा द्वारा पुजवाना चाहता था जो ऋषभदेव के मत से इतर मत है।

ऋषभदेव के पुत्र महाराजा भरत हुये जिनके नाम पर देश भारतवर्ष कहलाया। भरत बड़े ही पुण्यवान और वीर थे। इन्होने अष्ट द्वीप जीते जिससे इनका राज्य नौ भागों मे कथित है। वायुपुराण कहता है कि इनके नवो द्वीप समुद्र द्वारा एक दूसरे से पृथक थे। उनके नाम ये हैं:—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गोभस्तिमान. नागवर, सौम्य, गन्धर्व, वरुण और भारत। मजुमदार महाशय इन्हें सिन्धु, कच्छ, सीलोन, अंडमन, नीकोबार, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो और भारत समझते हैं। भरत ने यज्ञ किया। अनन्तर आप राज्य छोड़ कर योगी हुये और योग में आपने इतना मन लगाया कि शरीर तक को भुला दिया जिससे उपाधि जड़ भरत हुई। वन में एक बार सिंह की गरज सुन कर एक मृगी का गर्भपात हो गया और वह मर गई। भरत ने दया से उस मृगशावक को पाला। उसमे ये इतने अनुरक्त हुये कि जप तप सब भूल बैठे। एक बार अन्य मृगो मे मिल कर वह उनके साथ जंगल मे चला गया और फिर इनके पास न पलटा। उसके

विरह से इन्हें इतना कष्ट हुआ कि अन्त मे इनका शरीर ही छूट गया। भरत के पीछे इस वंश का राज्य निर्बल हो गया। किसी ने कोई ख्याति प्राप्त न की।

मनु के दूसरे पुत्र उत्तानपाद के दो स्त्रियाँ थीं। बडी स्त्री सुनीति से ध्रुव पुत्र उत्पन्न हुआ और कनिष्ठा सुरुचि से उत्तम। उत्तानपाद निर्बल चित्त के मनुष्य थे। आप छोटी रानी से अधिक स्नेह करते थे जिससे ध्रुव का भी उचित सम्मान नही होता था। इस कारण बाल-वय मे ही पिता से रुष्ट होकर ध्रुव तपस्या करने के लिए जगल को चले गये। श्रेष्ठ भक्तो में इनका नाम ऊँचा है। इनके चरित्र गौरव से माहात्म्य संसार में बहुत बढ़ा। उधर उत्तम को युद्ध मे यक्षो ने मार डाला। तब उत्तानपाद ने ध्रुव को राजा बना कर स्वय जंगल का रास्ता लिया। कही कहीं यह भी लिखा है कि उत्तम को जीत कर ध्रुव ने अपना राज्य पाया। आपने यक्षो को पराजित करके बहुत दिनों तक सुख पूर्ण, शान्ति पूर्ण और प्रजा-प्रिय-शासन किया। इनको ब्रह्म-ज्ञान भी प्राप्त होना लिखा है यद्यपि यह कथन काल विरुद्ध दूषण से रहित नहीं है। उत्तरी ध्रुव नक्षत्र में इनका लोक समझा जाता है और उत्तानपाद, प्रियव्रत एवं सप्तर्षि नक्षत्र इनकी सदा परिक्रमा किया करते हैं।

उत्तानपाद के वंश में ४५ पीढ़ी राज्य चला। इन राजाओं में ध्रुव, चाक्षुष मनु, वेन, पृथु, प्रचेतस और दक्ष प्रधान थे। दक्ष के पीछे इस घराने में राज्य नहीं रहा। अग ने यज्ञ किया, किन्तु पुत्र वेन के कुव्यवहार से राज छोड़ वे जगल चले गये। राजा वेन एक दुश्चरित्र पुरुष था। इसने शायद अच्छे घराने की रानी के अतिरिक्त एक नीच वश की स्त्री भी अपने घर में डाल ली थी जिससे निषाद नामक इस का बडा पुत्र उत्पन्न हुआ। वेन का छोटा पुत्र पृथु कुलीन रानी से था। यह बड़ा सुयशी राजकुमार था। राजा वेन ने एक नया धर्म चलाना चाहा और आज्ञा प्रचारित करदी कि सारी प्रजा देवभाव से राजा ही को पूजे, और किसी को नहीं। उस काल तक जन्म से जाति-भेद स्थापित नही हुआ था और लोग अपने अपने कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्री आदि माने जाते होगे। ब्राह्मणों के कर्म करनेवाले लोग प्रजा

द्वारा शायद पुजते थे यहाँ तक कि राजा लोग भी उनका मान करते थे। उन लोगों को यह आज्ञा बुरी लगी और उन्होंने जाकर राजा वेन को समझाया, किन्तु उसने एक न मानी। इस पर क्रुद्ध होकर इन ब्राह्मणों ने उसी स्थान पर वेन का वध कर डाला और निषाद को राज्य के अयोग्य समझ कर उसके छोटे भाई पृथु को राजा बनाया। पृथु ने बड़ी ही उत्तमता पूर्वक शासन किया और अपने राज्य को इतना बढ़ाया और उसकी ऐसी उन्नति की कि भूमि ने इनकी कन्या का पद पाकर पृथ्वी नाम पाया। इन्होंने जङ्गल जला, टीले आदि खोद तथा गढ़े पूर कर पृथ्वी को समथर बनाया। इन्हीं के विषय में कहा गया है कि

"बीते पृथु जिन पुहुमि सिंगारी। परबत पाँति धनुष सों टारी।"

पृथु ने कई यज्ञ किये और दान दिये तथा भारी कोष भी छोड़ा जिससे इनके पुत्र पौत्रों ने भी यज्ञ करके दान दिये। स्वायम्भुव मनु के वंशजों ने बहुत धर्म पूर्वक राज्य किया और देश की बहुत बड़ी उन्नति की। पृथु वंशी राजा प्रचेतस ने भी बहुत से जंगलों को जला कर नई भूमि निकाली। इन्हें जङ्गल ही में एक परम सुन्दरी कन्या प्राप्त हुई, जिससे इनका पुत्र दक्ष उत्पन्न हुआ। प्रचेतस संख्या में दस थे। वे सब राज छोड़ ब्राह्मण होगए और उनके पुत्र दक्ष प्रजापति हुये। राजा प्रियव्रत के समय आर्यों को भारत में आए हुए बहुत काल नहीं बीता था। इसलिये इन का बाहर के लोगों से सम्बन्ध नहीं टूटा था। इसी कारण से इन्होंने अपने पुत्रों में सारी पृथ्वी का बटवारा किया और उन सब में अकेला अग्नीध्र भारत में रह गया। इसने भी एशिया को अपने ९ पुत्रों में बाँटा। इस बटवारे में अरब, पामीर, तिब्बत आदि दूर के देश भी शामिल थे। इस प्रकार के बट-वारे और किसी पौराणिक राजा के विषय में नहीं कहे गए हैं। अग्नीध्र के ९ पुत्रों में अकेला नाभि भारत में रह गया। जान पड़ता है कि प्रियव्रत और नाभि के समयों में कई आर्य धाराएँ भारत से निकल निकल कर अन्य देशों में शासन करने लगी थीं। इनका वर्णन उन उन देशों के इतिहासों में इस कारण नहीं मिलता कि वहाँ का तात्कालिक इतिहास ज्ञात नहीं है। स्वायंभुव-मन्वन्तर का उपर्युक्त

विवरण विशेषतया विष्णु पुराण और महाभारत के आधार पर किया गया है।

स्वारोचिष मन्वन्तर

यह मन्वन्तर कितने दिन का है सो हम निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते।

स्वारोचिष मन्वन्तर मे स्कन्द पुराण के अनुसार सुरथ नामक एक सार्वभौम राजा हुआ। दुर्गापाठ मे यह भी लिखा है कि भविष्य मे राजा सुरथ ही सावर्णि मनु होगा। सुरथ चैत्र वंश में उत्पन्न हुआ था। यह वश कहाँ से निकला और इस मे कितने और राजा हुए सो अकथित है। सुरथ के राज्य मे कोला नामक एक अच्छा शहर अथवा प्रान्त था। इसके शत्रुओ ने कोला को विध्वस कर डाला और सुरथ को युद्ध मे पराजित कर दिया। फिर भी यह अपने देश मे कुछ दिन तक राज्य करता रहा। अनन्तर इसके वैरियों ने इसकी राजधानी पर भी चढाई करके इसके कोष और बहुत से दल का अपहरण कर लिया, जिससे घबडा कर यह अकेला जंगल को भाग गया, किन्तु इसके मत्रियो ने कुछ दिनो मे कोला विध्वसियो को पराजित करके इसे जगल से लाकर फिर गद्दी पर बिठलाया। इसके राज्यच्युत होते समय कुछ मत्री भी शत्रुओं से मिल गये थे। इसका कोष अच्छा था और यह मितव्ययी था। जगल में राजा सुरथ को ३ वर्षो तक मेधस ऋषियो के आश्रम मे रहना पड़ा। इससे प्रकट होता है कि ऋषि लोग उस काल से ही जगलों मे रहने लगे थे, यहाँ तक कि यह परिपाटी स्वारोचिष मन्वन्तर मे बहुत दृढ़ थी। उनके शिष्य भी वही रहते थे। ऋषियो ने सुरथ से कुछ ऐतिहासिक घटनाओ का भी वर्णन किया, जिससे उनका भी इसी मन्वन्तर में अथवा इसके पूर्व होना समझ पडता है। जान पड़ता है कि दक्षिण वाली महिष जाति का इस समय मे आर्य्यों से घोर युद्ध हुआ। आर्य्य लोग उस समय दक्षिण तक नही पहुँचे थे, इससे महिषो का ही पजाब में आकर इन से युद्ध करना सिद्ध होता है। इनका नेता महिषासुर नाम

से पुकारा गया है। उस समय आर्यों की नेत्री देवी नाम्नी एक प्रसिद्ध आर्य महिला थी। इन्होंने महिषासुर का वध किया।

थोड़े दिनो के पीछे शुम्भ निशुम्भ नामक दो भारी अनार्य राजे हुये। इन्होंन आर्यों को कई युद्धो मे पराजित किया, किन्तु देवी ने इनको भी ससैन्य मार कर आर्य सकट दूर किया। चड मुंड नामक दो प्रसिद्ध सेनापति शुम्भ के सहायक थे। इनका भी देवी ने वध किया। महिषासुर तथा इन लोगो के नाम वेदों मे नहीं आये हैं। स्वारोचिष मन्वन्तर की और कोई प्रधान घटना नही मिलती, केवल इतना और लिखा है कि उपर्युक्त राजा सुरथ से मधु कैटभ का हाल कहा गया। ये दोनो प्रलय के समय मे विष्णु से लड़े थे। इससे जान पड़ता है कि महाप्रलय स्वारोचिष मन्वन्तर के पहले हुआ। जिन मनु को मत्स्य देव ने भारी जहाज़ पर चढा कर बचाया था उनका क्या नाम था सो शतपथ ब्राह्मण मे नहीं लिखा हुआ है। वहां केवल मनु का बचाया जाना कहा गया है और यह भी लिखा है कि उन्हीं मनु के हवन से इडा नाम की एक कन्या हुई थी, जिससे मनु ने सृष्टि उत्पन्न की। ब्राह्मण ग्रथो से इन मनु का इससे अधिक कुछ परिचय नहीं मिलता और न वेदों मे इसका कुछ हाल कहा गया है। पुराणो मे महा प्रलय वाले मनु कही कहीं वैवस्वत मनु कहे गये हैं, किन्तु स्कन्द पुराण के अनुसार वे या तो स्वायभुव मनु हो सकते हैं अथवा स्वारोचिष। श्री भागवत में महा प्रलय सम्बन्धी राजा का नाम सत्यव्रत था, वही प्रलय के पीछे इसी जन्म में वैवस्वत मनु हुये। स्वायंभुव की इडानाम्नी कोई कन्या कही नही लिखी है, वरन् उनकी कन्याओं के नाम आकूति, प्रसूति और देवहूति थे। अत: महाप्रलय से सम्बन्ध रखने वाले स्वारोचिष ही समझ पडते हैं। महाप्रलय का कोई ऐतिहासिक विवरण मिलना सर्वथा असम्भव है, किन्तु इसका कथन हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी के धार्मिक ग्रथो मे पाया जाता है। इसलिये इसका सूक्ष्म विवरण यहाँ लिख दिया गया। कुछ पडितों का मत है कि महाप्रलय तथा मार्कण्डेय का विवरण केवल काल्पनिक था। विष्णु पुराण में लिखा है कि चैत्र, किम्पुरुष आदि स्वारोचिष के पुत्र थे।

उत्तम और तामस मन्वन्तर

उत्तम मन्वन्तर के विषय मे कोई विशेष घटना नहीं ज्ञात है। तामस मनु उत्तम के पुत्र थे। इस (तामस) मन्वन्तर मे गजेन्द्र मोक्ष की कथा कही जाती है। ख्याति, शतहय, जानुजघ आदि तामस के पुत्र थे।

रैवत मन्वन्तर

इसमे वैकुण्ठ निर्माण कहा गया है। वैकुण्ठ स्वर्गलोक को भी कहते हैं, किन्तु इस मन्वन्तर मे उसका बनना भी श्री भागवत मे लिखा है। इससे जान पडता है कि यह पृथ्वी पर कोई स्थान था। कश्मीर या तिब्बत में वैकुण्ठ का होना अनुमान होता है। फारसी कवियो ने भी कश्मीर के विषय मे कहा है कि "अगर फिरदौस बर रूए जमीनस्त। हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त ॥" तिब्बत को भी वैकुण्ठ मानना युक्तियुक्त है। सस्कृत मे वैकुण्ठ को त्रिविष्टप भी कहते हैं जो नाम तिब्बत से बहुत कुछ मिलता है। जो हो, राजा बलि का इन्द्र से शायद इसी लोक के लिये युद्ध हुआ था। हरिवश में कहा गया है कि जिस काल राजा बलि की फौज वैकुण्ठ विजयार्थ गयी थी, तब वह आसमान में छा गयी थी। इससे उसका किसी पहाड़ पर जाना अनुमान सिद्ध है। विष्णु पुराण के अनुसार स्वारोचिष, उत्तम, तामस तथा रैवत मनु प्रियव्रत के वशज थे।

चाक्षुष मन्वन्तर

चाक्षुष मनु उत्तानपाद के वशज कहे गये हैं। ये छठवे मनु हैं। उपर्युक्त चारो मनु प्रियव्रत की २७ वी पीढी के पीछे के हैं, सो चाक्षुष मनु का ३६ वाँ नम्बर योग्य समझ पड़ता है। इनके वश वृक्ष से प्राय: तीस नामो का छूट जाना पाया जाता है। इस गिनती में इन चारों मन्वन्तरो मे आठ राजे माने गये हैं, अर्थात् चार स्वयं मनु तथा उन चारो मन्वन्तरो मे चार और राजे। श्री भागवत के अनुसार समुद्र मन्थन और बलि बन्धन चाक्षुष मन्वन्तर की मुख्य घटनाएँ हैं। बलि बन्धन के थोड़ा ही पीछे वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ होता है।

इससे जान पड़ता है कि हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु के भी युद्ध चाक्षुष मन्वन्तर के ही अन्तर्गत हैं, क्योंकि बलि हिरण्यकशिपु के प्रपौत्र थे, सो इन दोनो का अन्तर १०० वर्षों से अधिक का नहीं हो सकता, और बलि बन्धन चाक्षुप मन्वन्तर के अन्त मे होने से यदि यह मन्वन्तर प्राय: २०० वर्षों का हो, तो हिरण्याक्ष आदि की कथाएँ इसी के अन्तर्गत पड़ेंगी।

पुराणो मे कहा गया है कि देवताओं की माता अदिति हैं और दैत्यो की दिति तथा दानवों की दनु। ये तीनो बहने थी और अदिति के देवमाता होने से इन तीनो का आर्य महिलाएँ होना अनुमान सिद्ध है। इन तीनो के पति भी एक ही व्यक्ति कहे गये हैं अर्थात कश्यप। यदि यह बात मान ली जावे तो दैत्यो, दानवों और देवताओ मे कोई भी जाति भेद नही रह जाता, क्योंकि उनके मातृ और पितृ दोनो कुल एक ही हो जाते हैं। फिर भी यह बात सभी पौराणिक ग्रन्थों से प्रकट है कि देवताओं का दैत्यो तथा दानवो से भारी जाति भेद था। इससे जान पडता है कि दिति और अदिति के पतियो के नाम कश्यप अवश्य थे, किन्तु वे दो व्यक्ति थे न कि एक ही। पुराणों मे अदिति के पति का नाम सब जगह कश्यप लिखा हुआ है और वे इन्द्र के पिता कहे गये हैं, किन्तु ऋग्वेद में अदिति के पति का नाम द्युस है। इन्द्र का वर्णन अनेक ऐसे समयो मे हुआ है जिससे सभी स्थानो पर उन्हे एक ही व्यक्ति मानने से काल-विरुद्ध दूषण आ जावेगा। वेदो में इन्द्र देवता माने गए हैं किन्तु विनतियो में आर्यों द्वारा किये हुए बहुत से कर्म भी इन्द्र द्वारा किये हुए माने गये हैं, जैसे कि भक्त लोग सभी के कर्म ईश्वर कृत मानते हैं। वेदों मे प्राय: ऐसे कथन हैं कि इन्द्र, अग्नि आदि ने अमुक के लिये अमुक कार्य किया। ऐसे स्थानों पर वे कार्य उन्हीं राजाओ आदि के हैं और इन्द्रादि के नाम भक्ति के कारण कहे गये हैं। पुराणो में इस विचार का बहुत बड़ा विस्तार हुआ है। वहाँ इन्द्र की बडी सेनाएँ हैं और उनके कार्य महाराजाओं के समान हैं। वैदिक इन्द्र कभी पराजित नही हुये किन्तु पौराणिक इन्द्र कई बार हारे हैं। वैदिक इन्द्र के प्राय: सभी कर्म उच्चाशय पूर्ण हैं, किन्तु पौराणिक इन्द्र बहुत

से गर्हित कर्मों के कर्त्ता हुये हैं। फिर भी वैदिक इन्द्र के प्रायः सभी गुण पौराणिक इन्द्र मे वर्त्तमान है। इन सब बातो से समझ पड़ता है कि पुराणों मे इन्द्र का विचार वैदिक इन्द्र से उठकर आर्यों के प्रधान सम्राट मे परिणत हो गया। महाभारत के शान्ति पर्व मे आया है कि कोई सदा को इन्द्र नही रहता। बहुत से इन्द्र पहले हो चुके हैं और बहुतेरे आगे होगे। यह बलि ने इन्द्र से कहा था। दुर्गा सप्तशती मे आया है कि देवताओ को जीतकर महिषासुर इन्द्र हो गया। उसके पीछे वह पराजित हुआ।

दैत्यो, दानवो आदि के वशो का कुछ कथन पौराणिक राजवशो के अध्याय मे हो चुका है। कुछ योरोपीय विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद के समय पर्यन्त आर्य्य लोग सरस्वती नदी के पश्चिम तक रहे और उसके पूर्व नही आये। इस कथन के प्रमाण मे वे ऋग्वेद की उस ऋचा का सहारा लेते हैं जिसमे लिखा है कि सरस्वती नदी के पूर्व अनार्य्यो की बस्ती है। हमारी समझ मे इससे केवल इतना सिद्ध होता है कि उस काल सरस्वती के पूर्व आर्य्यों का राज्य न था और वे इधर बसे कम थे, न यह कि वे इस ओर आते जाते ही थे। ऋग्वेद मे यह भी लिखा है कि आर्य्य लोग सौ सौ मस्तूलो के जहाज समुद्र पर चलाते थे। कुछ योरोपीय विद्वानो का मत है कि ये जहाज समुद्र पर न चल कर केवल सिन्धु नदी पर चलते थे। हमारी समझ मे यह विचार कुतर्क मात्र है। समझ पडता है कि सरस्वती के पूर्व अनार्य्यो की बस्ती बतानेवाली ऋचा चाक्षुष मन्वन्तर के प्रारम्भ काल की है और सारे वैदिक समय से भी सम्बन्ध नही रखती।

पौराणिक वर्णनो से अनुमान होता है कि वृत्र-वध दैत्य अभ्युत्थान से पहले हुआ। कहते हैं कि ९९ वृत्रों को इन्द्र ने मारा। कही कही वेदो मे वृत्र के पहाडी दुर्गो का कथन है जिन्हें इन्द्र ने विमर्दित किया। ये घटनाएँ चाक्षुष मन्वन्तर की समझ पडती हैं। इस मन्वन्तर के प्रायः माध्यमिक समय मे दिति पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बड़े प्रतापी हुए। हिरण्याक्ष की सहायता से विशेष बल प्राप्त करके बडे भाई हिरण्यकशिपु ने अपना राज्य बहुत विस्तीर्ण किया। कहा जाता है कि इसका आतङ्क आर्य्य देश मे भी पड़ा और इसने बहुत से

आर्य्यों को पदच्युत कर दिया। पुराणो मे इसके द्वारा तीनों लोकों का जीता जाना कहा गया है, किन्तु बलि के समयवाले देवासुर संग्राम की भाँति कोई युद्ध इसके समय मे नही कथित है। इससे समझ पडता है कि आर्य्यों पर हिरण्यकशिपु का कुछ आतङ्क अवश्य पडा, किन्तु वे पूर्णतया पराजित नही हो पाये। इसका प्रभाव दिनो दिन बढ रहा था कि इतने ही मे अद्वितीय वीर हिरण्याक्ष का वन मे किसी बराह से सामना हो पडा, जिसके द्वारा वह मारा गया। इस बात से हिरण्यकशिपु का राज्य कुछ बलहीन होकर डगमगाने लगा और आर्य्यों का प्रभाव बढा। कुछ पण्डितो का विचार है कि वेद तथा जेदावस्ता के विवरणो से समझ पडता है कि देवासुर झगडा फारस और अफगानिस्तान मे हुआ होगा। सम्भवत. हिरण्यकशिपु और बलि उत्तर पच्छिमी फारस या अफगानिस्तान के शासक हो। ऐसी दशा में समुद्र मन्थन भी उसी ओर की घटना निकलेगी और नागो का भी उस ओर समर्ग बैठेगा। योग वाशिष्ठ मे आया है कि विष्णु ने प्रह्लाद नामक किसी दैत्य को अन्तिम राजा बनाकर कहा कि उस दिन से दैत्य रुधिर पृथ्वी पर नही गिरने को था। बलि के बाबा प्रह्लाद राजा न थे, सो ये प्रह्लाद कोई दूसरे भी हो सकते है। जान पडता है कि विष्णु द्वारा इस सन्धि के पीछे आर्य्य भारत मे चले आये। आगे कथा का डोर फिर से उठाया जाता है। इन्द्र इस काल एक आर्य्य सम्राट्-वंश की उपाधि समझ पडती है। भविष्य मे प्रह्लाद भी इन्द्र होगे। इससे उनकी उन्नति की झलक मिलती है। पद्म सृष्टि खण्ड ७३ मे उनको सुरत्व प्राप्ति भी लिखी है। ये बलि के ही बाबा थे, सो इन्ही की उन्नति ग्राह्य है।

श्री भागवत मे लिखा है कि हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद बडा ही विष्णुभक्त था और इसी बात पर पिता पुत्रो मे विरोध हुआ, जिसमे नृसिंह भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु मारा गया। इस कथा मे दो प्रधान आपत्तियाँ हैं। एक तो यह कि एक थोडे से मतभेद पर इतना भारी राजा अपने पुत्र को मारने ही को क्यो उद्यत होता? दूसरे जिस काल का यह वर्णन है तब तक विष्णु भक्ति का विचार ही भारत मे भली-भाँति नही उठा था। यह विचार वैदिक समय से पीछे का है और

प्रह्लाद वैदिक समय के आरम्भ मे हुये। श्री भागवत पुराण की अपेक्षा हरिवंश बहुत पुराना और अधिक माननीय है। उसमे प्रह्लाद भक्त अवश्य कहे गये है, किन्तु पिता पुत्र का कोई विरोध नही लिखा है। जान पडता है कि जब हिरण्याक्ष के निधन से हिरण्यकशिपु का बल कुछ मन्द पड गया, तब अपने विविध नेताओ मे ऐक्य उत्पन्न करके आर्य्यों ने दल बल समेत इस पर आक्रमण किया। भारी युद्ध हुआ जिसमे दैत्यो की पराजय हो गयी और स्वयं हिरण्यकशिपु नृसिंह नामक एक वीर आर्य्य पुरुष के हाथ मे मारा गया। अब दैत्यो का हत शेष दल पूर्व की ओर भाग गया।

दैत्यो मे प्रह्लाद और तत्पुत्र विरोचन ने कोई राजनैतिक महत्ता प्राप्त नही कर पाई किन्तु विरोचन का पुत्र बलि बडा पुरुषार्थी हुआ। इसने अपने पिता और पितामह के जीवनकाल मे भी प्रबन्ध करना आरम्भ करके दैत्यो के बल को बहुत बढाया और इनके नए निवास स्थान मे एक राज्य सा स्थापित कर लिया। बलि ने इस उत्तमता से प्रबन्ध किया और दैत्यो के मुरझाये हुये बल को ऐसा जागृत किया कि इन सभो ने सर्वसम्मति से उसको राजपद अर्पित किया। विरोचन और प्रह्लाद की भी अनुमति बलि के राजा बनने ही मे थी। बलि ने राजपद पाने के पीछे और भी उत्साह से प्रजापालन तथा दैत्य बल वर्द्धन मे मन लगाया। उसने इस कौशल से काम किया कि दैत्यो तथा दानवो का महत्व दिनो दिन बढने और साम्राज्य सगठित होते हुये भी इन लोगो का नागो तथा आर्य्यों से कुछ भी वैमनस्य न होने पाया। इसका पुत्र युवराज बाणासुर भी बडा प्रतापी युद्धकर्त्ता था। स्वय राजा बलि राजनीतिज्ञता पुरुषार्थ न्यायप्रियता, धर्म, दान आदि गुणो मे एक ही था।

जब तक हिरण्यकशिपु के समय मे पराजित होकर दैत्यों ने बलि के काल मे फिर से उन्नति प्रारम्भ की, तब तक उधर आर्य्यों ने बहुत बडी महत्ता प्राप्त कर ली। नागो से अब तक इनका साधारण मेल था किन्तु अब यातायात के बहुत अधिक बढ जाने से वे इनके प्रगाढ मित्र हो गए। नाग लोग शायद बाहर के निवासी थे और वहीं से आकर बगाल मे बसे। अपने लोक मे समुद्र मार्ग द्वारा प्राय:

जाते आते रहने तथा व्यापार पटु होने के कारण यह लोग समुद्र यात्राओ मे विशेष अभ्यस्त होगे।

जब आर्य्यों का समुद्र पर आना जाना बढ़ा तब नागो की सहायता से इन्होने दूर देशों में यात्रा करने के विचार किये। इस विचार मे दैत्य लोग भी सम्मिलित हुये और आर्य्यों, दैत्यो एवं नागो ने मिलकर समुद्र मन्थन का कार्य प्रारम्भ किया। इसका वर्णन पुराणो मे दार्ष्टान्तिक है। उनमे लिखा है कि शेषनाग ने मन्दराचल उखाड़ कर समुद्र के किनारे रक्खा, वासुकी नाग रस्सी बने, मन्दराचल मथानी और देव दैत्य मथने वाले। इस प्रकार प्रचुर परिश्रम से समुद्र से चौदह रत्न प्राप्त हुये, अर्थात् लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, रम्भा, वारुणी, अमृत, पांचजन्य शख, ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, कामधेनु, शाङ्ग धनुष, धन्वन्तरि वैद्य, विष, और उच्चैः श्रवस घोडा। इसी वर्णन को साधारण गद्य मे लिखने से समझ पडता है कि आर्य्यों, दैत्यो और नागो ने मिलकर समुद्र द्वारा ससार यात्रा का विचार किया। इस पर शेषनाग ने जहाज़ बनाने के लिये मन्दराचल की इतनी लकडी समुद्र के किनारे मॅगाई कि मानो पहाड़ का पहाड ही समुद्र तट पर आ गया। नागो के दूसरे सरदार वासुकि ने रस्सी मस्तूल आदि लगा कर जहाजो को सजाया. और तब नागो की सहायता से दैत्यो और आर्य्यों ने सारे संसार मे समुद्र यात्राएॅ कीं। इन यात्राओं मे उन्हे भाँति-भाँति के पदार्थ प्राप्त हुए जिनमे चौदह रत्न प्रधान थे। इन रत्नो मे चन्द्रमा भी एक था। इससे जान पडता है कि इन्हे चन्द्रमा के समान चमकनेवाला कोई रत्न मिला जिसका नाम चन्द्रमा रक्खा गया, अथवा समुद्र पर चन्द्रोदय देख इन्होंने चन्द्र को समुद्र से ही उत्पन्न मानकर उसे भी यात्रा द्वारा प्राप्त एक रत्न समझा। समुद्र यात्रा द्वारा प्राप्त पदार्थों के बटवारे मे आर्य्यों का दैत्य, दानवो से झगड़ा हो गया यहाॅ तक कि युद्ध भी हो पडा। राजा बलि को इस युद्ध मे पराजित होकर अपने देश मे भाग आना पडा। फल यह हुआ कि समुद्र मथन द्वारा दैत्यो को केवल सुरा प्राप्त हुई और शेष मुख्य मुख्य वस्तुएॅ आर्य्यों को मिली। नागो को भी इन लोगों ने प्रसन्न रक्खा। जान पड़ता है कि यद्यपि नागो ने

समुद्र मन्थन मे आर्य्यों तथा दैत्यों को सहायता दी, तथापि प्रधानता उन्ही लोगो की थी और उन्ही मे झगडा भी हुआ. अथच नाग लोग एक भी रत्न न पाकर केवल अन्य सम्मान से प्रसन्न रहे।

राजा बलि ने अपने प्रपितामह के निधन का वैर छोडकर आर्य्यों का साथ दिया था, किन्तु फल कुछ भो न निकला और पूरा परिश्रम करके समुद्र मन्थन मे दैत्य लोग खाली हाथ रहे। आर्य्यों की इस धींगाधींगी तथा स्वजात्यपमान से रुष्ट होकर बलि ने युद्ध की ठानी। इस विचार मे सारे दैत्य दानवादि सहमत हुए और प्रह्लाद तक ने न केवल इसका अनुमोदन किया वरन् प्रगाढ भक्ति को भी किनारे रखकर अपनी जाति का अपमान मिटाने के विचार से रण स्थल मे स्वय युद्ध करने की सन्नद्धता दिखलायी। राजा बलि ने अब दूना उत्साह पा रणोन्मत्त होकर रणस्थल मे रणचण्डी को तृप्त करने के लिए सेना सजने की आज्ञा दी। दैत्य दल मे प्रधान लोग निम्नानुसार थे—महापद्मिनी, पद्म, कुम्भ, कुम्भकरण, काचनाक्ष, कपिकन्ध, क्षिति कम्पन, मैनाक, ऊर्ध्वक्र सितकेश, विकच, सुबाहु, सहस्रबाहु, व्याघ्राक्ष, वज्रनाभि, एकाक्ष, गजस्कन्ध, गजशीर्ष, कालजिह्वा, कपिलाक्ष धेनुक, युवराजवाण, अनायुषा-पुत्रबलि, नमुचि, यम, पुलोमा, हयग्रीव, प्रह्लाद, शम्बर, अनुह्लाद, (प्रह्लाद का भाई), विरोचन (बलि का पिता), विषपर्वा, विप्र कनकबिन्दु, कुजभ, असिलोमा, एकचक्र, राहु, विप्रचित्ति दानव, केशी दानव, हेममाली, मय, वृत्रासुर आदि। जो ब्राह्मण लोग इनके पुरोहित थे वे भी युद्ध मे गए। इन्द्र के सहायक निम्नानुसार थे—विद्याधर, गन्धर्व यक्ष, डम्बर, तुम्बर किन्नर, नाग, आदि। बडा भारी युद्ध हुआ और देव (आर्य) पराजित हो कर पूर्व दिशा को भाग गए। इसी युद्ध को देवासुर सग्राम कहते है। इसमे मय, शम्बर, प्रह्लाद और बलि की प्रधानता रही। मय और शम्बर विशेषतया मायावी कहे गए हैं। यह शम्बर दिवोदास के समय के शम्बर से इतर मालूम पडता है। देवताओ के पूर्व दिशा मे भागने से विदित होता है कि वे अपने देश मे न जाकर नाग लोक मे या अफगानिस्तान की ओर गए। इस प्रकार बलि ने आर्य्यों और नागो को पराजित करके तीनो लोको की धर्म सहित

पालना की। तीनों लोकों में किस देश का प्रयोजन है सो अनिश्चित है।

बलि से पराजित होकर आर्य्य लोग न केवल दैत्य लोक का वरन अपने देश का भी राज्य खो बैठे। अब इन्हें किसी अच्छे नेता की खोज पड़ी। बहुत ढूँढ खोज के पीछे इन्होंने कश्यप के पुत्र भगवान वामन को परम प्रवीण पुरुष पाकर उनकी शरण ताकी और उन्होंने भी स्वजाति प्रेमवश अपने पराजित भाइयों का पक्ष ग्रहण किया। बहुत मन्त्रणा के पीछे आर्य्यों ने यह निश्चय किया कि भगवान वामन बलि के यहाँ जाकर उसे किसी प्रकार से राज्य च्युत करें। उधर का पता लगाने से इन्होंने जाना कि बलि अश्वमेध यज्ञ करता है। इस अवसर को और भी शुभ समझ कर भगवान वामन ने आर्य्य पुरोहित बृहस्पति को साथ ले दैत्यपति के यज्ञस्थल में जाकर बलि की प्रशंसा करते हुए तत्कालिक प्रचलित रीति से चढ़ी बढ़ी यज्ञ विधि कही। यह सुनकर शुक्राचार्य्य आदि बलि के पुरोहित निरुत्तर हुए। यह देख राजा बलि ने परम प्रसन्न हो वामन की प्रशंसा की और उन्हें यथा-रुचि वर देने का प्रण किया। भगवान ने तीनों लोक दान में माँगे और सभी से मना किए जाने पर भी राजा बलि ने अपना वचन तोड़ना पसन्द न किया और यही कहा कि ऐसा दान पात्र आज तक किसी ने नहीं पाया। यह कह कर उसने अपनी सारी अल्प अनल्प पृथ्वी वामन भगवान को दे दी। अब दैत्यों ने आर्य्यों का अधिकार रोकना चाहा, किन्तु बलि की सहायता बिना वे कुछ कर न सके और आर्य्यों तथा नागों ने मिल कर सारी पृथ्वी पर अधिकार जमा लिया। वामन भगवान ने बलि को नागपाश से बाँधकर सुतल नामक देश में नागों के पहरे में कैद कर दिया। इस प्रकार आर्य्यों का साम्राज्य सारे देश में फिर फैल गया। इस भाँति चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में आर्य्यों का प्रभाव ख़ूब बढ़ गया। पुराणों में लिखा है कि वामन भगवान ने बलि से केवल तीन पैग पृथ्वी मांग कर तीनों लोक तीन ही पैग में नाप लिये। ऋग्वेद में भी विष्णु के तीन पैगों का बहुत कथन है, यद्यपि उसमें वामन का नाम नहीं आया है। जान पड़ता है कि वामन ने

किसी प्रकार लम्बे डगो का प्रभाव दिखलाया। शत पथ ब्राह्मण मे लिखा है कि वामन ने लेट कर सारी पृथ्वी नापी। इसके पीछे किसी दैत्य सरदार प्रह्लाद की अध्यक्षता मे आर्य्यो की दैत्य दानवो से विष्णु द्वारा अन्तिम सन्धि हुई, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। ये प्रह्लाद चाहे बलि के पितामह ही हो चाहे कोई दूसरे। लिखे एक ही प्रह्लाद है। चाक्षुप मन्वन्तर की कथा महाभारत और विशेषतया हरिवश के आधार पर लिखी गई है। आदिम भाग दुर्गापाठ से आया है।

वैवस्वत मन्वन्तर

इसी समय से वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारभ होता है, जो अब तक चल रहा है। वास्तव मे चाक्षुप मन्वन्तर ही अन्तिम है और वैवस्वत मन्वन्तर के प्राय॰ अनन्त होने से चाक्षुष तक ही मन्वन्तरों के अनुसार कालगणना हो सकती है तथा वैवस्वत के आरम्भ से नये प्रकार से गिनती करनी पडेगी। इसी काल से नवीन आर्य्य धारा के आगमन से नया युग भी आरम्भ होता है। महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि प्रसिद्ध अयोध्या नगरी वैवस्वत मनु ही ने बसायी। पुराणो मे कही कही यह भी लिखा है कि मनु पुत्र इक्ष्वाकु ने यह पुरी बसायी। चाक्षुप मन्वन्तर ही मे वैदिक समय प्रारम्भ होता है। हम देखते हैं कि पहले आर्य्यो की यह दशा रही कि स्वायभुव मन्वन्तर मे इन्होंने उत्तरी भारत जीता, अन्य देशो और महाद्वीपो को विजयिनी धाराये भेजी और जङ्गलो को जलाकर निवास योग्य भूमि निकाली एव कृषि की उन्नति की। आर्य शब्द का अर्थ ही कृषक है। स्वारोचिप, उत्तम, तामस तथा रैवत मन्वन्तरो में ये लोग धीरे धीरे फैलते गये, यहाँ तक कि बहुत सा देश आर्य्यों के अधिकार मे आगया और इनकी सभ्यता का अनुकरण करके प्राचीन भारतीयो तथा नागो ने भी कही कही अपने राज्य जमाये। चाक्षुप मन्वन्तर के डेढ दो सौ वर्षो मे आर्य्यों ने और भी बढ़ कर अपना शासन फैलाया तथा दैत्य दानव आदि की अध्यक्षता में अनार्य लोग मध्य और पश्चिमी भारत मे बसने लगे। अब हम वेदो के

सहारे समाज का कुछ वर्णन करके क्रमबद्ध इतिहास को फिर से उठावेंगे। इसी स्थान पर भारत में आने वाली पहली आर्य्य धारा का इतिहास समाप्त होता है, ऐसा हमारा विचार है। अब तक के छवों मनु एक ही घराने के थे। वैवस्वतमनु से इनका वैवाहिक आदि कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। वैवस्वत के पिता सूर्य दक्ष के दौहित्र अवश्य थे, किन्तु ये दक्ष चाक्षुष वंशी अन्तिम राजा ही थे सो अनिश्चित है। पहली धारा ने भारत में बस कर तथा आदिम निवासियों को जीत कर यहाँ अपना प्रभुत्व फैलाया। अन्तिम मन्वन्तर के मनु स्वयं वैदिक ऋषि थे और उनके वंशवर्गों में पृथुवैन्य अवश्य ही ऋषि थे तथा वन और ध्रुव भी हो सकते हैं। पहले पांच मन्वन्तरों में कोई वैदिक ऋषि न था। अतएव हम देखते हैं कि छवों मन्वन्तरों में अन्तिम चाक्षुष न केवल राजनीतिक विस्तार में गरिमापूर्ण था, वरन् उसमें वैदिक गान भी होने लगा। इस काल प्रथम आर्य्यधारा के साथ कुछ दैत्य दानव भी शायद इधर आये हों, किन्तु चाक्षुष मन्वन्तर का देवासुर युद्ध शायद फारस और अफ़-ग़ानिस्तान से ही सम्बद्ध हो। उपर्युक्त अन्तिम सन्धि के पीछे दूसरी आर्य्य धारा का भारत में आना समझ पड़ता है।

छठवां अध्याय

प्रायः २००० बी० सी० से ६५० बी० सी० तक

ऋग्वेद (प्रथम मण्डल) एवं वेदांग

भारत का आदिम इतिहास वेदो के सहारे ही लिखा जा सकता है। इसलिये स्थालीपुलाकन्यायेन इनका कुछ दिग्दर्शन पाठकों को कराना उचित समझ पडता है। इसमे कठिनता यह है कि वेद-मन्त्रों के अनुवादो मे पृथक मत वाले मनुष्य अपने अपने मतानुसार अर्थों मे खींचतान करते हैं, सो असली अर्थ जानना सुगम नही है। हमने विशेषतया सायणाचार्य्य का प्रमाण माना है और यथासाध्य मतभेद वाले स्थानो पर किसी भी मत की ओर न झुक कर निर्विवाद मन्त्रो आदि का अधिक सहारा लिया है। हमारा तात्पर्य किसी भी मत को पुष्ट अथवा अपुष्ट प्रमाणित करने का नही है, वरन् हम पाठकों को निर्विवादात्मक मर्म्म बतलाने की इच्छा रखते हैं कि जिसमे लोग यह जान जावे कि इन पुनीत ग्रन्थों का आशय क्या है अथच इनके वर्णन और विषय कैसे हैं?

जैसा कि सभी लोग जानते हैं, वेद चार हैं अर्थात् ऋक, यजुष, साम और अथर्व। पडितो ने सब से अधिक उपयोगी ऋग्वेद को समझा है और इस पर अधिक परिश्रम भी हुआ है।

चारो वेदो के अतिरिक्त सारे ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदों के अग हैं। [illegible] गणना मे अब प्राय: ७० रह गये हैं। पडितों का मत है कि बहुत [illegible] ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। वेदो के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणा-[illegible]चार्य्य १४ वी शताब्दी मे थे। यद्यपि इनको हुये प्राय: ६०० वर्ष ही [illegible]ये है, तथापि इनके समय मे भी एक वह ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त था जो [illegible]ब अप्राप्य हो गया है। ब्राह्मणो ही के अन्तर्गत उपनिषत् ग्रन्थ [illegible]। इनके विषय ब्राह्मण ग्रन्थो के शेष भागों से बिलकुल पृथक् हैं

क्योकि इनमे ज्ञान कथन है और ब्राह्मणो के शेष भागों मे कर्मकांड की प्रधानता है। उपनिषत् लगभग ११९४ हैं, जिनमे १२५ के लगभग अथर्ववेद से सम्बन्ध रखते हैं। प्राय: १५० उपनिषत् प्राचीन और महत्वपूर्ण हैं। इनमे भी १० की प्रधानता है। इन सब के वेदांश होने पर भी सुगमता के लिये हम केवल सहिता भाग को वेद कहते हैं और ऐसा ही आगे भी करेंगे।

हिन्दू धर्मानुसार वेद अनादि हैं, अर्थात किसी ने इन्हे कभी बनाया नहीं। ये ऋपियो को आप से आप भासित हुये। इसलिये इनका किसी समय मे बनाया जाना कहना हिन्दू धर्म के प्रतिकूल है। पहले तीन ही वेद प्रधान थे और अथर्व की गणना वेदो मे न थी। इसीलिए वेदत्रयी आदि के कथन हिन्दू ग्रन्थो मे प्राय. पाये जाते हैं। धीरे-धीरे अथर्व की भी गणना वेदों मे होने लगी। ऐतेरेय ब्राह्मण, ऐतरेयारण्यक, बृहदारण्यक तथा शतपथ ब्राह्मण मे केवल तीन ही वेद कहे गये हैं। छान्दोग्य मे भी ऐसा ही है और अथर्वको इतिहास माना गया है। साम और अथर्व के आरण्यक नहीं हैं। वेद वर्त्तमान रूप मे सदा से न थे, वरन् वेदव्यास ने इन्हे जनमेजय के समय सम्पादित करके वर्तमान रूप दिया। इसका आधार बारहवे अध्याय के अन्त मे है। वेद के विभाग करने ही से उनको व्यास उपाधि मिली। विष्णु पुराण के चौथे खण्ड मे लिखा है कि द्वापरयुग में कृष्ण द्वैपायन ने वेद को एक से चार किए और इसी प्रकार पहले के व्यास लोग भी करते आये थे। विष्णु पुराण के अनुसार समय समय पर २८ व्यास हुए। यही मत अन्य प्रकार से भी स्थिर होता है जैसा कि आगे दिखलाया जायगा। भगवान वेदव्यास से पहले भी एक बार अथर्वण ऋषि वेदो का सम्पादन कर चुके थे। वेद के चार विभाग होने पर पैल ने ऋग्वेद सीखा, वैशम्पायन ने यजुर्वेद, जैमिनि ने सामवेद और सुमन्तु ने अथर्ववेद। प्रत्येक मत्र का नाम नाक है। समय पर इन ४ ऋपियो के शिष्यो में कई भेद हो गए जिससे वेदों की अनेकानेक शाखाएँ स्थिर हुई। वेदो और ब्राह्मणो से इतर ४ उपवेद, ६ वेदाङ्ग और कई उपाङ्ग हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्ववेद का अर्थ-

शास्त्र। ६ वेदाङ्गो मे शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र नामक चार उपांग हैं। ये विस्तार नवम शताब्दी बी० सी० से पीछे के हैं, किन्तु विषय की पूर्णता दिखलाने को इनका आभास मात्र यहाँ कहा गया है।

आयुर्वेद क विद्वान ब्रह्मा, रुद्र, विवस्वान, दक्ष, अश्विनीकुमार, यम, इन्द्र, धन्वन्तरि, बुद्ध, च्यवन, आत्रेय, अग्निवेश, भेर या भेल, जातुकर्ण, पराशर, शीरपाणि, हारीत, भरद्वाज और सुश्रुत (विश्वामित्र के पुत्र) थे। विदेहराज जनक ने "वैद्य सदेह भंजनम" ग्रंथ लिखा। इसी प्रकार अगस्त्य ने "द्वैध निर्णयतत्रम्", जावाल ने "तन्त्रसारकम्', जाजलि ने "वेदांगसार", पैल ने "निदान", कवथ ने "सर्वधर्मतन्त्रम', काशिराज ने "चिकित्साकौमुदी" धन्वन्तरि ने "चिकित्साबलविज्ञानम्", बनारस के दिवोदास ने "चिकित्सादर्पण" आदि ग्रन्थ लिखे। विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत ने दिवोदास से वैद्यक सीखी। वे शरीरशास्त्र मे निपुण हो गए। गोमांस को सुश्रुत और चरक ने भक्ष्य लिखकर उसको भारतवर्ष की जलवायु के प्रतिकूल बतलाया। नकुल और सहदेव भी अच्छे वैद्य हो गए हैं। धनुर्वेद विश्वामित्र का बनाया हुआ है। उसमे आयुध ४ प्रकार के लिखे हैं, अर्थात् मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त। गान्धर्व वेद के अन्तर्गत ही नाट्यशास्त्र है। गायन के आचार्य नारद थे। महेश के कहने से नृत्य का आरम्भ हुआ। नाट्यशास्त्र को भरत मुनि ने लिखा। अर्थशास्त्र की शाखायें नीतिशास्त्र, शालिहोत्र, शिल्पशास्त्र, सूपशास्त्र आदि ६४ कलाएँ हैं। नीतिशास्त्र के रचयिता शुक्र, विदुर, कामन्दक, चाणक्य आदि हैं।

शिक्षा से उच्चारण की रीति ज्ञात होती है। व्याकरण से शब्दो और वाक्यो के सम्यक प्रयोग की विधि का ज्ञान होता है। पाणिनि ऋषि शिक्षा और व्याकरण के सब से श्रेष्ठ आचार्य हैं। इनकी माता देवल दाक्षी थी। ये शलातुर मे रहते थे। कोई इनका जन्मस्थान तुरी बतलाते हैं। ये अफगान थे। इनका व्याकरण ससार भर में सब से छोटा एव सर्वाङ्गपूर्ण है। कात्यायन और पतञ्जलि भी व्याकरणाचार्य थे। कात्यायन गोभिल गोणिका क पुत्र और सौनक के शिष्य नन्द

वंश के मन्त्री थे। ये चौथी शताब्दी बी० सी० में हुए। इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद पर एक २६ अध्यायों का श्रौत सूत्र भी लिखा। आरम्भ मे इन्द्र, चन्द्र, महेश और ब्रह्मा ने मिलकर अक्षर और व्याकरण बनाये। निरुक्त से वेदो में प्रयुक्त शब्दो की व्युत्पत्ति एव अर्थ का ज्ञान होता है। यास्क इसके प्रथम आचार्य हैं। कल्प मे वेदकर्मों के क्रम का ज्ञान है। कल्प की मुख्य तीन शाखाएँ हैं, अर्थात श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, और धर्मसूत्र। श्रौतसूत्र के आचार्य लात्यायन, द्राह्यायन आदि हैं। आश्वलायन, गोभिल, पारस्कर आदि गृह्यसूत्र के आचार्य हैं तथा बोधायन, आपस्तंब, कात्यायन आदि धर्मसूत्र के। ज्योतिषशास्त्र से समय का समुचित ज्ञान होता है। इसमे तिथि, वारादि जानने की रीति निर्दिष्ट है। सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहो की गतियाँ गणित द्वारा बतलाई गई हैं। पाराशरी संहिता ज्योतिष का पहला ग्रन्थ है। इन्होंने यवनादि जातक का उल्लेख किया है। गर्ग ने इनसे प्रायः १०० वर्ष पीछे शकों के समय मे गर्ग संहिता बनाई। आर्य भट्ट ने सन् ४७६ मे जन्म लिया। इनका ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ये शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। इन्होंने पृथ्वी का घूमना लिखा है और पृथ्वी के विस्तार का प्राय. ठीक ठीक निर्णय करके सूर्य, चन्द्र ग्रहण के उचित कारण भी बतलाये हैं। बराह मिहिर भी शाकद्वीपी थे। ये सन् ५०२ मे मालवे मे हुये। इन्होंन बृहत्संहिता लिखी। इसमें भूगोल, खगोल, गणित, बनस्पति और प्राणि विद्या का भी वर्णन है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के रचयिता कदाचित् ८ वी शताब्दी के हैं। इन्होने गणित और फलित दोनो प्रकार का ज्योतिष लिखा। बारहवी शताब्दी मे भास्कराचार्य ने सिद्धांत शिरोमणि, लीलावती और बीजगणित ग्रथ रचे। उनका कहना है कि जब लका मे प्रात: काल होता है तो रोम में दोपहर। लल्लु, श्रीधर आदि भी अच्छे ज्योतिषकार थे। श्रीधर स्वामी तथा अन्य ज्योतिषियों का कथन है कि महाभारत युद्ध के समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे और नन्द-राज्य के समय पूर्वाषाढ पर आचुके थे। वे एक नक्षत्र पर १०० वर्ष रहते हैं। सप्तर्षियो मे जिस दिशा मे ध्रुव पड़ते हैं, उसकी विपरीत दिशा मे आकाश मे एक सीधी रेखा खीची जाने से वह नक्षत्र राशि में से जिस को काटे उसी

पर सप्तर्षि की स्थिति मानी जाती है। यास्क ने कहा कि चन्द्रमा मे सूर्य से प्रकाश पहुँचता है। संजय ने धृतराष्ट्र से कहा कि जब चन्द्र पर पृथ्वी की छाया पडती है तब उसकी गोलाई जान पडती है। ब्रह्मा, मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, वशिष्ठ, कश्यप, भर्ग, नारद, बृहस्पति, विवस्वान, सोम, भृगु, मनु, च्यवन आदि भी ज्योतिषी थे। पौराणिक भूगोलो मे ७ द्वीप हैं अर्थात् जम्बू, शाक, शाल्मलि, पुष्कर, प्लक्ष, कुश और क्रौंच। छन्द शास्त्र के आचार्य शेषनाग थे। छन्द दो प्रकार के हैं अर्थात् लौकिक और अलौकिक। वेद मे अलौकिक छन्द हैं और साधारण ग्रन्थो मे लौकिक। इन दोनो का वर्णन पिङ्गल नाग ने 'छन्दो निवृति ग्रन्थ' मे किया। इसी से छन्द ग्रन्थों को प्रायः पिङ्गल भी कहते हैं।

पुराण १८ और उपपुराण भी १८ हैं। न्यायशास्त्र के मुख्य आचार्य गौतम और वैशेषिक के कणाद हैं। पुराणो मे कणाद को उलूक और गौतम को अपक्षपाद लिखा है। गौतमीय न्याय पर वात्स्यायन का न्याय है और वैशेषिक पर प्रशस्तपाद का। न्याय शास्त्र के अन्य आचार्यों मे वाचस्पति मिश्र (८ वी शताब्दी) उदयन (१२ वी शताब्दी) रघुनाथ, शिरोमणि व पक्षधर मिश्र (१४ वीं शताब्दी) और गणेश, जगदीश, विश्वनाथ तथा शंकर मिश्र (१६ वीं शताब्दी) प्रसिद्ध हैं। मीमांसा निर्णय को कहते हैं। पूर्व मीमांसा जैमिनि की तथा उत्तर मीमांसा व्यास की है। शवर स्वामी पूर्व मीमांसा के भाष्यकार थे। कुमारिल्ल भट्ट और प्रभाकर भी पूर्व मीमांसावादी थे। शंकराचार्य, रामानुजचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, विज्ञानभिक्षु, निम्बार्काचार्य उत्तर मीमांसा के भाष्यकार हैं। धर्मशास्त्र के सांख्य और योग उपभेद हैं। कपिल भगवान सांख्य के ऋषि थे और पतंजलि योग के। व्यास ने योग सूत्रों पर भाष्य रचा। श्वेताश्वतरोपनिषत् में कपिल को परमर्षि कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है कि ऋग्वेद की उत्पत्ति अग्नि से हुई, यजुर्वेद की वायु से और सामवेद की सूर्य से। इतिहासो और पुराणों को पाचवाँ वेद कहते हैं। यजुर्वेद के शुक्ल और कृष्ण नामक दो भेद है। इनकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई कि वैश्यम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्य

ने अपने गुरु के सामने अहंकार पूर्ण वचन कह दिया। इससे रुष्ट होकर गुरु ने आज्ञा दी, "तू मेरी सब विद्याये छोड दे।" इस पर याज्ञवल्क्य ने अपने पेट से यजुर्वेद उगल दिया। उसमें खून लगा हुआ था। इससे वैशम्पायन के अन्य शिष्यो ने उसे तीतुर बन कर चुन लिया। तब से यह उगला हुआ वेद कृष्ण अथवा तैत्तिरीय कहलाने लगा। फिर सूर्य की आराधना करके याज्ञवल्क्य ने दूसरा यजुर्वेद पाया, जिसमे कुछ ऐसी ऋचाये थीं जो वैशम्पायन भी नही जानते थे। यह शुक्ल यजुर्वेद कहलाया। इन दोनो मे अन्तर बहुत थोडा है।

वेदों के शब्द हज़ारो वर्षों से हमारे यहाँ जैसे के तैसे चले आते हैं। इनमे एक मात्रा की भी तबदीली नहीं हुई है। इन्हे स्थिर रखने के लिये बहुत बड़े प्रयत्न किये गये, क्योकि इन शब्दो तक मे प्राचीन काल से बडी पवित्रता मानी गई है। सब से पहली युक्ति का नाम पद-पाठ है। इसके द्वारा वेदो की प्रत्येक ऋचा का प्रत्येक शब्द अलग अलग लिखा जाकर रक्षित किया गया। दूसरी युक्ति क्रम-पाठ की है। इसमे शब्द के प्रथम और अन्तिम अक्षर को छोड कर प्रत्येक अक्षर दो बार लिखा गया; जैसे यदि "अब दल लिखना हुआ तो अब, बद, दल, इस प्रकार लिखा गया। इससे भी बढकर जटा-पाठ हुआ जिसमे अबदल यो लिखा जाता है:—अब, बअ, अब, बद, दब, बद, दल, लद, दल। इस पर भी ऋषियों को संतोष नहीं हुआ और उन्होने जटा-पाठ से भी बढ कर घन-पाठ निकाला, जिसका क्रम यो हैं:—अब, बअ, अबद, दबअ, अबद, बद, दब, बदल इत्यादि। वेद पाठ के भी कई नियम बनाये गए जिनके नाम उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। इस प्रकार वेदो के उचित प्रकारेण पाठ करने और उनके एक एक अक्षर को यथाक्रम स्थिर रखने मे हमारे ऋषियो ने पूरा परिश्रम किया। पडितो का विचार है कि वेद का अन्तिम पाठ छठी शताब्दी बी० सी० से दृढ है। धीरे धीरे वेदो की शाखाये बढने लगी, यहाँ तक कि पुराणो के अनुसार ऋग्वेद की १६ संहिताएँ हो गयीं, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ९। ऐतिहासिक दृष्टि से ऋग्वेद, अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण परमोपयोगी हैं।

ऋग्वेद सब से पुराना है और इसकी महिमा सभी वैदिक ग्रथों से बढ़ी चढ़ी है। इसलिये वेदो का सविस्तार वर्णन अब हम ऋग्वेद से ही उठाते हैं। इसमे दस मुख्य विभाग हैं जिन्हे मण्डल कहते हैं। इनमें पहले और दसवे मण्डल सब से बडे है। प्रत्येक मडल मे बहुत से सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त मे बहुत सी ऋचाये। छोटे सूक्तो मे चार ही छः ऋचायें हैं, पर एक मडल के एक सूक्त मे ५२ ऋचाये तक हैं। अधिकतर सूक्तो मे प्राय: १२ से १५ तक ऋचाये रहती है। प्रथम मंडल मे १९१ सूक्त हैं जिनका शाब्दिक अनुवाद बिना टीका-टिप्पणियो के यदि लिखा जावे तो साधारण आकार की प्राय: २०० पृष्ठो की एक पुस्तक तैयार हो जायगी। ये सूक्त छन्दो मे लिखे गए हैं, जिनमे प्रथम मडल मे गायत्री, अनुष्टप, त्रिष्टुप, जगती, बृहती, सतोबृहती, द्विपदी, विराज और अत्यष्टि छन्द प्रधानतया आये हैं और अप्रधानतया कई अन्य छन्दो का भी प्रयोग हुआ है। इन १९१ सूक्तो के कवि गणना मे २५ हैं, परन्तु इनमे से दो केवल एक सूक्त के और पॉच केवल एक अन्य सूक्त के कवि हैं। अत: प्रधानतया प्रथम मडल के १८ कवि हैं। इन सब कवियो के नाम और सूक्तो का ब्योरा नीचे दिया जाता है:—

नम्बर	कवि का नाम	सूक्त सख्या	किस नम्बर के सूक्त से आरम्भ	किस विषय के कितने सूक्त
१	मधुच्छन्दस विश्वामित्र के पुत्र	१०	१	अग्नि १, वायु आदि १, आश्विन आदि १, इन्द्र ६, इन्द्र आदि १
२	जेता मधुच्छन्दस के पुत्र	१	११	इन्द्र १।

नम्बर	कवि का नाम	सूक्तसंख्या	किस नम्बर के सूक्त से आरम्भ	किस विषय के कितने सूक्त
३	मेधातिथि कण्वकेपुत्र	१२	१२	अग्नि २, विश्वे देवस १, ऋतु आदि १, इन्द्र १, वरुण १, ब्रह्मणस्पति आदि १, अग्निमरुत् १, तीन ऋतु १, इन्द्र अग्नि १, अश्विन आदि १, वायु आदि १।
४	शुनःशेपअजीगर्त्त के पुत्र	७	२४	वरुण अग्नि १, सवितर १, वरुण १, अग्नि २, इन्द्रविश्वेदेवस् १, इन्द्र १।
५	हिरण्यस्तूप अंगिरस के पुत्र	५	३१	अग्नि १, इन्द्र २, अश्विन १, सवितर् आदि १।
६	कण्व घोर के पुत्र अंगिरस वशी	८	३६	अग्नि १, मरुत ३, ब्रह्मणस्पति १, पूषन् १, वरुणमित्र अर्यमन् आदित्य १, रुद्र आदि १।
७	प्रस्कण्व कण्व के पुत्र	७	४४	अग्नि २, अश्विन २, उषस २, सूर्य १।
८	सव्यअंगिरस के पुत्र	७	५१	इन्द्र ७।
९	नोधस गौतम के पुत्र	७	५८	अग्नि ३, इन्द्र ३, मरुत् १।
१०	पराशर शक्तिके पुत्र वशिष्ठ के पौत्र	९	६५	अग्नि ९।

नम्बर	कवि का नाम	सूक्त संख्या	किस नम्बर के सूक्त से आरम्भ	किस विषय के कितने सूक्त
११	गौतम रहूगण के पुत्र	२०	७४	अग्नि ६, इन्द्र ५, मरुत ४, विश्वेदेवस् २, सोम १, उपस् १, अग्नि, सोम १।
१२	कुत्स अंगिरस के पुत्र	५	९४	अग्नि ४, अग्नि आदि १।
१३	कश्यप मरीचि के पुत्र	१	९९	अग्नि १।
१४से १८तक	वर्षागिरि पाँच भाई राजागिरि के पुत्र	१	१००	इन्द्र १।
१९	कुत्स (दूसरे)	१५	१०१	इन्द्र ४, विश्वेदेवस् ३, इन्द्र अग्नि २, ऋभु २, आश्विन आदि १, उपस् १, रुद्र १, सूर्य १।
२०	कक्षीवान् उशिज के पुत्र पज्रवंशी	११	११६	आश्विन ५, इन्द्र १, विश्वेदेवस् १, उपस् २, स्वनय (एक राजा) २।
२१	परुच्छेप दिवोदास वंशी	१३	१२७	अग्नि २, इन्द्र ३, वायु १, वायु इन्द्र १, मित्र वरुण २, पूषन् १, विश्वेदेवस् आदि १, इन्द्र इन्दु इन्द्र पर्वत १।

नम्बर	कवि का नाम	सूक्त संख्या	किस नम्बर के सूक्त से आरम्भ	किस विषय के कितने सूक्त
२२	दीर्घतमस उचथ्य और ममता के पुत्र	२५	१४०	अग्नि १०, आप्री १, मित्र वरुण ३ विष्णु २, विष्णु इन्द्र १, आश्विन २, आकाश पृथ्वी २, ऋभु घोड़ा १, विश्वेदेवस् आदि २।
२३	अगस्त्य (मान के पुत्र)	२६	१६५	इन्द्र मरुत् ३, मरुत् ४, इन्द्र ७, आश्विन ५, आकाश पृथ्वी १ विश्वेदेवस् १, सोम १, आप्री १, अग्नि १, वृहस्पति १, सावरमंत्र १।
२४ २५	लोपामुद्रा अगस्त्य और एक शिष्य	१	१८०	रति १।

लोपामुद्रा अगस्त्य ऋषि की स्त्री थीं। पांच वार्षागिरो के नाम ये थे:—रिजिराश्व, अंबरीष, सुराधास, सहदेव और भयमान। इन कवियो में मधुच्छन्दस और जेता विश्वामित्र के पुत्र और पौत्र थे। शुनःशेप अजीगर्त्त के पुत्र थे। राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ मे ये बलि दिये जाते थे। इस अवसर पर मंत्र पाठ से बचे। यज्ञ में इनका तीन खम्भों मे बाँधा जाना इस मण्डल में भी लिखा है। इन उपर्युक्त कवियो मे मेधातिथि, हिरण्यस्तूप, कण्व, प्रस्कण्व, सव्य और कुत्स अंगिरसवंशी थे। दीर्घतमस के विषय में महाभारत में लिखा है कि ये अन्धे थे और इनकी स्त्री ने इनके लोक लाज छोड़ कर उसके साथ हर समय रति करने के कारण अप्रसन्न होकर अपने पुत्रो द्वारा बँधवा कर इन्हें एक नदी में बहवा दिया था। इन्हीं दीर्घतमस् ने

(महाभारत) यह मर्य्यादा स्थिर की थी कि यदि स्त्री एक पति से लड कर उसे छोड दे तो दूसरा न कर सके। इस मंडल मे ये स्वय कहते हैं कि ये अन्धे थे और दासो ने इन्हे बाँध कर नदी मे फेक दिया था। त्रैतन नामक कोई व्यक्ति इनसे लडा भी था। महाभारत की पुष्टि इस मडल से होती है। इनके मन्त्रो मे छायावाद विशेष है।

उपर्युक्त व्योरे से विदित होगा कि इस मंडल के १९१ सूक्तों में पृथक् पृथक् देवताओ आदि के विषय मे मन्त्र-सख्या निम्नानुसार है:—अग्नि ४५, आप्री (अग्नि के भेदान्तर) २, वायु १, मरुत् १२, आश्विन १५, इन्द्र ४३, विश्वेदेवस् ८, बृहस्पति या ब्रह्मणस्पति २, ऋभु ४, वरुण १, पूषन् २, रुद्र १, उषस् ६, सूर्य २, सोम (चन्द्र) २, स्वनय राजा २, विष्णु २, घोडा २, रति १, इन्द्रवरुण १, अग्नि मरुत् १, इन्द्र अग्नि ३, अग्नि सोम १, वायु इन्द्र १, मित्र वरुण ५, विष्णु इन्द्र १, आकाश पृथ्वी ३, इन्द्र मरुत् ३, इन्द्र विश्वेदेवस् १, इन्द्र इन्दु १, इन्द्र पर्वत १, वरुण अग्नि सविता १, और सूर्य्य १।

तीन से अधिक देवताओं के नाम १४ सूक्तो में आये हैं। इन १४ सूक्तो एव अन्यो मे अमुख्यतया निम्न देवताओ आदि का कथन है:—

अर्य्यमन्, सरस्वती, सरस्वान्, त्वस्व, दक्षिणा, इन्द्राणी, वरुणानी, आग्नेयी, आदित्य, ऋतु, अदिति, सिन्धु, वाक्, काल, साध्यगण, गन्धर्व, भग, जल, ऊखल, मुशल, मातरिश्वम् और तृत।

सब देवता सोम पान के लिये निमन्त्रित किये जाते हैं और सोम से बल प्राप्त करते हैं। इनके बुलाने में प्राय: ये उपमाएँ दी जाती हैं कि घोडे की भांति जल्दी आओ और बैल की भाँति प्रसन्नतापूर्वक बहुत सा सोम पान करो। उपमाएँ अधिकतर बैल से ही दी जाती हैं, यहाँ तक कि इन्द्र और विष्णु तक की उपमाएँ बैल से महत्व सूचन में दी गई है। कही कही भैंसे और घोडे से भी उपमाएँ दी गई हैं। मेघों की उपमाएँ प्राय. भैंसे से हुई हैं। मेघो का बहुत स्थानों पर गाय कह कर बोध कराया गया है।

अग्नि—यह इन्द्र के पीछे सब से प्रसिद्ध देवता है। यह होतार, बसीठी, तथा देवताओ को यज्ञो मे लानेवाला है। इसकी उत्पत्ति अन्तरिक्ष, आकाश और जल मे हुई। यह दो माताओं का पुत्र

है, अर्थात् दो लकडियो के संघर्षण से उत्पन्न होता है। यह तनूनपात् भी है अर्थात् अपने से भी उत्पन्न होता है। भृगु ने इसे मनुष्यो मे स्थिर किया और मनु ने पुरोहित बनाया। इसकी सात लौ है और इसके विविध रूपो मे आप्री भी है। होत्रा, भारती, वहतृ और धिष्णा इसकी स्त्रियाँ हैं। धिष्णा वाग्देवी है। स्वाहा नाम से अग्नि मे यज्ञ होता है। यह एक स्वरूप से यज्ञों मे सहायता देता है और दूसरे स्वरूप से मो नेत्रो द्वारा जगलो को भस्म करके नये स्थानों मे भूमि को मनुष्यो के निवासयोग्य बनाता है।

वायु—यह नाम दो मन्त्रो मे प्रधानतया लिया गया है और शेष इस विषय के मन्त्रो मे मरुत् का नाम है। वायु के कोई प्रधान गुण नही कहे गये हैं। शम्बर को अतिथिग्व दिवोदास ने मारा।

मरुत्—भग के साथ उत्पन्न हुये ये रुद्र पुत्र रथ मे चितले मृग जोतते हैं। इनके कन्धे पर बरछा और हाथ मे तलवार तथा अँगूठी है। प्रथम ये देवता न थे। इन्द्र इनसे अप्रसन्न थे और इनके यज्ञ भाग पाने से क्रोधित होते थे, परन्तु इन्होंने इन्द्र की युद्ध में सहायता की और बडी दीनता दिखलाई. तब वे इनसे प्रसन्न हो गये और ये यज्ञ में भाग पाने लगे। ये परम अजित, सबल, मेघ भेजने वाले, धन देने वाले और राक्षसो के संहारक हैं।

आश्विन—दो हैं। इनके विषय में पण्डितो मे कुछ सन्देह है। महात्मा यास्क ने लिखा है कि इन्हे पृथक् पृथक् लोग आकाश पृथ्वी, दिन रात, सूर्य चन्द्र और दो राजा कहते हैं। ये उषस् के प्रथम चलते और दिन रात में तीन तीन बार चक्कर लगाते हैं। इनके रथ मे तीन पहिये हैं और उसमे दो गधे जुते हैं। सूर्य्य की पुत्री इनकी स्त्री है। ये परम सुन्दर हैं और दारिद्रय नाश करते तथा बहुत अच्छे वैद्य हैं। इन्होने करकन्धु, वय, वशिष्ठ आदि को प्रसन्न किया और सुदास को उसकी स्त्री सुदेवी ला दी। बाँझ गाय से दूध निकाला, अन्धे तथा लँगड़े परावृज को अच्छा किया, विस्पला की युद्ध मे टूटी हुई टाँग अच्छी कर दी, वद्धमती को हिरण्यहस्त पुत्र, ऋज्रास्व को नेत्र, विश्वक को विश्नायुल पुत्र एवं घोशा को पति दिया। इन्होंने अन्य प्रकार से निम्नलिखित लोगों की सहायता की:—रेभा और बन्दन

(घँधे थे सो निकाले गये), कण्व (रक्षित हुये), अन्तक, भज्यु, सुचन्ती, पृश्निगु, अत्रि (जलते गढ़े से बचाये गये), श्वेतर्य, कुत्स, नर्य्य, वसु, दीर्घश्रवस् औसिज, कक्षीवान, रसा, तृशोक मान्धाता, भरद्वाज, अतिथिग्व दिवोदास, कशोजु, तृषदस्यु (इन अन्तिम चारो के दुर्ग टूट गये थे तब ये बचाये गये), वम्र, उपस्तुत, कलि, व्यस्व, पृथिराजर्षि, सपु, मनु, सर्यात, विमद (इनको स्त्री दी गई), अध्रिगु, सूभर, ऋतस्तूप, कृशानु (ये युद्ध मे बचाये गये), पुरुकुत्स (इनकी घुडदौड़ मे मदद हुई), आरजुनी पुत्र कुत्स, ध्वशान्ति, पुरुषान्ति, अघ्राश्व, च्यवन (ये बूढे से जवान कर दिये गये) जह्नुपुत्र, जाहुश और औसर। इतने लोगो की सहायता करने के अतिरिक्ति इन्होने दस्युओ को भी हराया।

इन्द्र—वेद के सब से बडे देवता हैं। ये देवताओं के राजा और विष्णु के मित्र कहे गये हैं। इनको कुशिक के पुत्र कौशिक भी कहा है जिससे महाभारत की उस कथा का समर्थन होता है जिसमे लिखा है कि कुशिक के पुत्र राजा गाधि इन्द्र के अवतार थे। इनकी कुतिया का नाम सरमा है। त्वष्टार ने दधीचि की अस्थि से इनका वज्र बनाया जिससे इन्होने ९९ वृत्रो को मारा। आपने वृत्र के अतिरिक्त सुश्न, वल, पिप्रु शम्बर, अहि, रौहिन, कुयव, व्यस, कुयवाच, अर्वुद, नमुचि, करज परनय और वगृद को मारा। वृत्र सुश्न आदि जल रोके थे सो उन्हे मार कर इन्द्र ने जल खोल दिया। वंगृद के सौ दुर्ग नष्ट किये और दासो के भी दुर्ग मर्दित किये। ये दस्युओं के नष्ट करनेवाले तथा आर्यों का बल बढानेवाले हैं। सुश्रवस, तूर्य्यवान, यतस्, नर्य, तुर्वश, यदु, तुर्वीत, पुरुकुत्स, पुरु और सुदास की रक्षा की और उन्हे युद्धो मे जिताया तथा कक्षीवान ऋषि को वृचया स्त्री दी। ये अजित जेता और असीम बलधारी है। इन्होन पृथ्वी स्थिर की और सूर्य को आकाश मे उठाया। ये स्वय मन्त्रो और सोम से बल प्राप्त करते और देवताओ मे सर्वोपरि है।

विश्वेदेवस्—सख्या मे १३ है। ये खास देवता भी हैं और यह नाम कुल देवताओ को मिलाकर भी कहा जाता है। ये सर्पो की भाति सूरत बदलने वाले तथा रक्षक है।

बृहस्पति उपनाम ब्रह्मणस्पति—मन्त्रो के देवता और मन्त्र पढने मे सर्वश्रेष्ठ हैं। ये दुष्टो को दड देते हैं। इन्होने मनुष्यो को पृथ्वी आकाश दिखाये।

ऋभु—सख्या मे तीन हैं। इनके नाम ऋभु विभवन और वाज हैं, और ये तीनो मिल कर ऋभवः कहलाते हैं। ये अङ्गिरस वशी सुधन्वा के पुत्र मनुष्य थे, पर इन्द्र की सहायता करने से सवितर द्वारा अमर बनाये गये और ऋतुओ के देवता हो गये। इन्होने इन्द्र का अश्व और आश्विन का रथ बनाया, तथा अमृत देने वाली एक गाय भी बनाई। इन्होंने अपने माता पिता (पृथ्वी आकाश) को फिर से जवान कर दिया।

वरुण—वरुण और मित्र का वर्णन प्रायः साथ ही साथ होता है और वरुण के वर्णन अलग भी हैं। वरुण रात के देवता हैं और मित्र दिन के। ये आकाश पृथ्वी के स्थिर रखने वाले, (ऋत) प्रकृति के शुद्धतापूर्वक सचालक, सत्य और ज्योति के स्वामी, तथा धर्म प्रवर्त्तक हैं। इन्होने सूर्य का मार्ग बनाया और ये ससार भर को मार्ग पर रखने वाले हैं। अवैदिक समय वाले आर्यों मे ये सर्वोपरि देवता थे। यही दशा पार्सियो में भी है। वैदिक समय मे इन्द्र इनसे आगे निकल गये और महत्व मे इनका दूसरा नम्बर हो गया।

पूषन्—१२ आदित्यो मे एक हैं। ये लोगो को ग्रह के संकटों से बचाते और उन्हे सीधे सुखप्रद मार्ग पर ले जाते हैं। ये अज के पुत्र हैं और रथ मे बकरे ही जातते हैं। ये युद्धो मे आर्यों के सहायक हैं।

रुद्र—बली, बड़े बुद्धिमान्, उदार, यज्ञ ओषधियो और मन्त्रो के स्वामी, सूर्यवत् प्रकाशमान, देवताओ मे सर्वोत्तम, घोडो, मेढों, भेडियों, गौओ आदि के रक्षक (पशुपति), कपर्दी (कौडी की भांति गिठादार बाल वाले), शूरवीरों के स्वामी और मनुष्यों तथा पशुओ को स्वास्थ्यदायक हैं। ये मारुतों के पिता और परम प्रचड हैं। इनसे इस प्रकार विनतियाँ की जाती हैं कि क्रोधवश हम लोगों को तथा बूढ़े बच्चों आदि को न मारो और हानि न पहुँचाओ; तुम्हारी घातक साँगी हम लोगो से दूर हो, इत्यादि।

उषस्—आकाश की पुत्री और ज्योति पूर्ण है। यह पुष्ट करने

वाली सौ रथों पर चलती है। यह सब को काम मे लगाती है और सदा अपने प्रेमी सूर्य्य के आगे ही चलती है। इसका वर्णन प्रायः कविता-पूर्ण है।

सूर्य्य—ज्योतिकारक, प्रकाशक, तुरगच्छक और मित्र वरुण तथा अग्नि की आँख है। इनके रथ मे सात घोडे जुते है, और ये प्रेमी की भाँति उषस् के पीछे चलते तथा काँवरि राग का नाश करते हैं।

सोम (चन्द्रमा)—परम बुद्धिमान्, बलदायक नेता, परम पवित्र वीरो के स्वामी, धन देने वाले, रोगशान्तिकारक, पौधा ओषधियो, गाय, जल के उत्पादक, और वृत्र विनाशक हैं। वरुण वाले प्रकृति के नियम इन्ही के हैं। इन्होंने आकाश फैलाया और अन्धकार हटाया, तथा नृशया वशियो को हरा कर नदी छोडा दी। ये अग्नि से मिल कर पणि के पास से गोय लाये।

सोम (रस)—सोम फल से पानी मिला, खल्ल मे पत्थर से पीस, ऊनी छन्ने मे छान कर निकाला जाता था और तब मट्ठे मे मिलाकर पान करने के योग्य बनाया जाता था। यह परम स्वादिष्ट होता था। देवता इसे बहुत पसन्द करते तथा इससे बल प्राप्त करते थे।

स्वनय—भव के पुत्र, सिन्धु नदी के किनारे रहनेवाले एक राजा थे। बडे यज्ञकर्त्ता और उदार दानी थे। इन्होंने कक्षीवान् ऋषि को सौ माला, सौ घोडे हजार गाये, घोडियो से जुते हुए दश रथ, मोतियो के सामान सहित घोडे, और फिर साठ हजार गायें दी।

विष्णु—द्युस के पुत्र है पर यज्ञ मे उनसे प्रथम भाग पाते हैं। ये पृथ्वी, आकाश तथा जीवधारियो के पोषक, कृशानु का वाण हटाने वाले, रक्षक, कष्ट न देने वाले, दयालु और उदार हैं। ये इन्द्र के मित्र हैं और उन्ही के साथ इन्होंने मेघो को छोडाया। ये पुनीत हैं पर इन्द्र इनसे अधिक पुनीत है [सूक्त न० १५६]। विष्णु लोक में अमृत का एक कुआँ और बहुत से तेज बैल है। वह लोक चमकता है।

विष्णु तीन पगो मे संसार फिर आये। इनके पृथ्वी और आकाश वाले डग देख पडे पर स्वर्ग का नहीं। इस मडल मे तीन पगो का वर्णन कई बार आया है, सो प्रकट है कि इस से विष्णु के

वामन अवतार का बहुत मेल जोल है, किन्तु वामन का नाम नही है। वेदो मे विष्णु इन्द्र से कम और एक साधारण देवता थे। पौराणिक समय से इनका प्रताप बहुत बढ़ा यहाँ तक कि अब ये सर्व प्रधान हैं और इनके अवतारो तक का कोई देवता सामना नहीं कर सकता। वामन भी इनके अवतार थे। वामन पहले बौने थे और पीछे से इतने बढ़े कि सारा ससार इनके शरीर से छोटा हो गया। विष्णु सम्बन्धी महत्व की ऐसी ही वृद्धि हुई है जैसे वामन के शरीर की।

घोड़ा—एक पवित्र जानवर माना गया है। इसे यम ने दिया, तृता ने इस पर काठी लगाई, और सब से प्रथम इन्द्र सवार हुए। उस समय गन्धर्व ने इनकी लगाम पकडी। इसे सूर्य ने वसुओं से बनाया। यह यम है, आदित्य है, तृता है, बडा विजयी है, और देवताओं ने इसके बल की नकल की है। यज्ञ मे पहले पूषन् के भाग बकरे का बलिदान होता है तब घोडे का। बलि के पीछे एक मनुष्य मांस काटता और घोड़े की चौतीसो पसलियो का अलग करता है। इस समय दो मनुष्य इसे काटना बताते जाते हैं। इस को ख़ूब पकाना आवश्यक है। बलिदान मे घोड़ा मरता नही, न उसे कष्ट होता, वरन् वह सुखपूर्वक देवताओ के पास चला जाता है।

रति—लोपामुद्रा ने अपने पति अगस्त्य से कहा कि बुढ़ापे से हम लोग कुरूप हो गये हैं पर तो भी पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष के पास जाना चाहिए। अगस्त्य ने यह बात स्वीकार की। कहते हैं कि इस वर्णन में गूढ़ अर्थ छिपे हैं।

आकाश-पृथ्वी—का विविध प्रकार वर्णन किया गया है। इनकी उत्पत्ति अज्ञात कही गई है और ये कहीं बहिनें और कही पिता-माता माने गये हैं। ये स्थित, सबल, सर्वरक्षक, अमृत बनाने वाले, और सब को आनन्द देने वाले हैं।

पर्वत—का नाम इन्द्र के साथ आता है। ये आर्य्यों के लिए लडने और शत्रुओ को भगाने वाले कहे गये हैं।

सविता—सूर्य से मिलते जुलते हैं पर कही पृथक् भी जान पड़ते हैं। इनके हाथ सोने के हैं। ये उत्पादक, जीवप्रदायक, सहायक,

बहुमूल्य पदार्थों के स्वामी और राक्षसो तथा यातुधानों के देखने वाले हैं।

सरस्वती—नदी, गीतो की ओर चित्त ले जाने वाली, उत्तम विचार उत्पन्न करने वाली, विचारो को चमकाने वाली, और यज्ञो की देवी है। इनके पति का नाम सरस्वान है।

भग—धन देनेवाला देवता है। पुराणो मे यह एक आदित्य माना गया है पर इस मण्डल मे आदित्य कहा नही गया है।

त्वष्टार—देवताओ क बढ़ई हैं। एक बार इन्होने नेष्टार [मुख्य ऋत्विज] का काम किया।

मातरिश्वा—भृगु के पास अग्नि को लाये।

तृत—का वर्णन इन्द्र वायु मरुत् के साथ होता है। इन्होने इन्द्र के घोड़े को काठी लगाई।

ऋतु—भी इन्द्र मरुत, त्वष्टा आदि के साथ सोम पीने को बुलाये जाते हैं।

जल—की कुछ देवियाँ हैं जो सूर्य के निकट रहती हैं। इनमे अमृत और सब दवाये हैं और ये रोग तथा पापों को दूर करती हैं। ये यज्ञो को जल्दी करानेवाली जीवधारियो की प्यास बुझाती हैं।

ऊखल और मुशल—के देवता सोम बनाने मे सहायक हैं।

इनके अतिरिक्त इस मण्डल मे निम्नलिखित देवी देवताओ के नाम आये हैं :—

अर्यमन् (परम चतुर), गन्धर्व (आकाशी सोम के रक्षक), दक्षिणा (यज्ञ सम्बन्धिनी देवी), इन्द्राणी, वरुणानी, आग्नेयी, आदित्य (यज्ञो के अगुवा), अदिति, रक्षक, सिन्धु (नदी), वाक्, काल और साध्य (प्राचीन समय के आकाशवासी देवता)।

आर्यो मे मन्त्रकार ऋषियो के अतिरिक्त निम्नलिखित महाशयो के नाम इस मण्डल मे आये हैं:—

मनु, नहुष, इला, ययाति, पुरूरवस, नवग्वघराना (आर्य्यों के लिये युद्ध करनेवाले), दिवोदास, कसोजु, रस, तृसोक, मान्धाता, उग्रदेव, यदु, तुर्वश, अनु, पुरु, द्रुह्यु, भृगु, नववास्त्व, वृहद्रथ, तुर्वीति,

अतिथिग्व, सर्यात, सुश्रव, तुर्वयान, नरय, पुरुवंशी, भरद्वाज, पुरुमीथ, सतवनि, यतस, पुरुकुत्स, रेभा, वन्दन, अथर्वण, दधीच (अस्थि वाले), ऋजिस्वन, अन्तक, भुज्यु, करकन्व के पुत्र, वर्य्य, सुचन्ति, प्रश्निगु, परावृज, वशिष्ठ, वम्र, श्रुतर्य्य, विश्पला, वसु, कलि, पृथि, सयु, सुदेवी (सुदास की स्त्री), अध्रिगु, सुभर, रितस्तुप, कुत्स (आरजुनि पुत्र), दबति, ध्वसान्ति, पुरुशान्ति, अघास्व, च्यवन, हिरण्यहस्त, सेलाराज्य (इनका युद्ध हुआ), जन्हु, ऋचत्क, सर, कृशनु पुत्र विश्वक, विश्नायु, घोशा, नृशपुत्रकण्व, स्वाव, स्वनय, कण्व (अन्धे से अच्छे हुये), मसरसार, आयावस, भाव, पुरुमील्ह, दीर्घतमस और तृण स्कन्द। इन मनुष्यो के विषय मे इस मडल मे कोई कथायें नही है वरन् विनतियो मे प्रसगवश इनके नाम आ गये हैं और कहीं कही एक आध साधारण घटना इनके विषय मे लिखी है जिसका दिग्दर्शन इस नामावली एव देवताओं के वर्णन मे कराया गया है।

निम्नलिखित आर्य्यों के शत्रुओ के नाम इस मडल मे आये हैं:—

वृत्र, दनु (वृत्र की माता), पिप्रु, सुश्ना, शम्बर, अर्बुद, वम्र, नमुचि, करज, परनय, वगृद (के १०० क़िले इन्द्र ने तोड़े,) वल, पणि, ९९ वृत्र (इन्हे इन्द्र ने दधीचि की अस्थि वाले वज्र से मारा), वृषय, व्यस, अहि, रौहिनि, कुप्व, तुग्र, त्रैतन (यह दीर्घतमस् से द्वन्द युद्ध में लड़ा) और कूपवाच।

इस मंडल भर में जितने मन्त्र हैं उन सब मे केवल विनतियाँ हैं और कोई कथा प्रसग नही कहा गया है। कहीं कही प्रसगवश कुछ बातो मे मनुष्यो आदि के कथन आ गये हैं जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है और यथास्थान आगे भी होगा। इन मन्त्रो मे से दो चार विनतियों के अतिरिक्त अन्य बातो का भी वर्णन हुआ है पर वह भी कथा प्रसग का नही। बहुत से मन्त्रो के अनुवादो मे भी अच्छा काव्यानन्द प्राप्त होता है, विशेषतया उषस् के वर्णनो मे। फिर भी यह कह देना चाहिए कि अधिकतर स्थानो मे अनुवाद मात्र पढने से विशेष काव्यानन्द नही मिलता। इस मडल मे थोड़े ही से विषयो पर बहुत बडा वर्णन किया गया है, सो वही बाते दोहरा कर सैकड़ो स्थानो पर आई हैं पर फिर भी इस छोटे से विषय पर ऋषि लोग इतने प्रकार

के नये नये कथन करने मे समर्थ कैसे हुए, इसी बात पर आश्चर्य होता है, क्योकि प्राचीन कथनो के साथ प्राय: प्रत्येक मन्त्र मे कुछ न कुछ नवीनता भी प्रस्तुत है।

वेदो के रचना-काल के विषय मे कुछ मत-भेद है। हमारे यहाँ वे अनादि माने जाते हैं, अर्थात् हम हिन्दुओं का विचार है कि वे सदैव से हैं पर पाश्चात्य विद्वान् उनके निर्माण का कुछ काल बताते हैं। वे कहते हैं कि ऋग्वेद मिश्र एव असिरिया के कुछ ग्रन्थो के अतिरिक्त शेष ग्रन्थो मे प्राचीनतम हैं। हमारे विचार से भगवान वेद का किसी समय मे बनना भी इन्ही के मंत्रो से प्रकट होता है, यथा:—

इस नई विनती से मैं तुझे प्रसन्न करता हूँ (६२वाँ सूक्त)। हे गौतम! बड़े ध्यानपूर्वक बनाये हुये मन्त्र अग्नि को सुनाओ (७९ व सूक्त)।

मेरे पिता ने प्राचीन समय मे तुझे बुलाया।

अतिम मन्त्र मे प्राचीन मन्त्रकारो का वर्णन है, जिससे प्रकट है कि वे मन्त्र इससे प्रथम बने थे और यह उनके पीछे। सो दोनो मन्त्रो का बनना खास खास समयों मे प्रकट है।

हमारे पूर्व उषम को देखने वाले चले गये, अब हम जीवित लोग इसे देखते हैं और हमारे पीछे के लोग आगे देखेगे।

इन उपर्युक्त कथनो से इन ऋचाओं का किसी समय मे बनना स्पष्ट है। इनके अतिरिक्त हजारो स्थानो मे पृथक् पृथक् मनुष्यों एव घटनाओ का वर्णन है जिन मनुष्यो और घटनाओं के पीछे उन ऋचाओं का बनना स्पष्ट है। सो यदि वेदो के अनादि होने का अर्थ यह लिया जाय कि वर्त्तमान समय मे जो शब्द ऋचाओं में हैं वे ही अनादि काल से चले आते है तो साधारण मनुष्यों को इस मत मे विरोध होगा। अब पडितो का मत इस ओर झुकना देख पड़ता है कि वेदो के यही शब्द अनादि नही है वरन् उनके कथन सत्यता पर अवलम्बित हैं और सत्य के अनादि होने से वेद भी अनादि हैं। इस मत के प्रतिकूल किसी हिन्दू का विचार नही हो सकता। इनके कर्त्ताओ के विषयमे यह प्रकट है कि जैसे कुरानशरीफ के कर्त्ता हजरत

मोहम्मद नहीं हैं वरन् उन्हे वह अनुभूत हुई थी, इसी प्रकार वेदो का कोई कर्त्ता नही है, वरन् जिसके नाम से जो मंत्र प्रसिद्ध है उसके द्वारा वह देखा गया और ससार मे फैला। वेदो के पूर्वापर क्रम के विषय मे महाभारत में लिखा है कि भगवान वेदव्यास ने वेदो को एक से चार किया, अर्थात् वर्त्तमान क्रमानुसार उनको विभाजित किया। इस कथन का कुछ समर्थन प्रथम मडल से होता है क्योंकि यदि वेदो की रचना का क्रम वही हो जो आजकल प्रचलित है, तो ऋग्वेद के प्रथम मडल को सब से प्राचीन होना चाहिए, पर इस मडल के पहले ही मन्त्र मे प्राचीन मन्त्रकारो का कथन है, जिससे उन मन्त्रो का इस मन्त्र से प्रथम होना सिद्ध है। फिर इस मडल के मन्त्रकारो मे कई ऋषि विश्वामित्र और वशिष्टवशी हैं, पर इन दोनो ऋषियों के मडल आगे आवेंगे। यह प्रकट है कि विश्वामित्र वाला तीसरा मंडल पहले मण्डल के कई मन्त्रो से प्राचीनतर है। एक स्थान पर इस मडल मे सामवेद के रथन्तर नामक मन्त्र का नाम आया है। वेद मन्त्रो के कई कथनो से उस समय की समाजसम्बन्धी उन्नति का भी कुछ पता लगता है। इस प्रकार के निम्नलिखित कथन इस मडल मे हैं:—

(१) आर्य्यों की पाँच मुख्य शाखाएँ थी, जिनके पूर्व पुरुषो के नाम यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु और पुरु थे। महाभारत मे लिखा है कि ये पाँचों पुरुष राजा ययाति के पुत्र थे।

(२) आर्य्यों से ऐसे लोगो से युद्ध होते थे, जो वैदिक रीतियों को नहीं मानते थे। ये लोग दास, दस्यु सिम्यु आदि कहे गये हैं। ये धूम्र वर्ण के थे और इनके मुख्य मुख्य नेताओं के बडे प्रभाव थे यहाँ तक कि उनमें से एक एक तक के सौ सौ क़िले थे, पर ये लोग आर्य्यो से प्राय: सदैव हारते थे। सुश्न पिप्रु, वृत्र, कुयव, और शम्बर के दुर्ग थे जिन्हे इन्द्र ने नष्ट किये। कुयव के मरने पर इसकी दोनो स्त्रियो के विलाप समय तक ऋषि को दया नही आई और उन्होंने ईश्वर से यही मनाया कि ये सीफा नदी मे डूब जायँ। ऐसे समय में भी ऋषि के क्रोध से प्रकट है कि कुयव बडा ही दुखद और प्रतापशाली था और बड़ी कठिनता से मारा गया होगा।

(३) जो दामाद बुरे होते थे वे धन खूब देते थे तब विवाह होता था (सूक्त न० १०९)।

(४) सौ पतवारो तक के जहाज होते थे। इसमे समुद्र-यात्रा सिद्ध है।

(५) अग्नि द्वारा जगलो को जला कर रहने योग्य स्थान बनाया जाता था। इसमे विदित है कि उस समय देश जगलो से पूर्ण था और आर्य्यों की बस्ती बढ़ती जाती थी।

(६) आर्य्यों मे मत स्थिर करने के लिए सभाएँ होती थी।

(७) घुडदौड भी होती थी। इसका कई बार वर्णन आया है।

(८) इन्द्र दुर्गविमर्दक कहे गये हैं। रथो पर युद्ध होते थे। एक ऋचा मे लिखा है कि जब देवता यज्ञो से प्रसन्न होकर राजाओ की सहायता करे और यह लोग युद्ध जीते तब ऋत्विजों को भी लूट का भाग मिलना चाहिये। राजाओ और सेनाओ का वर्णन भी है।

(९) अश्वमेध प्राय: होता था। इसके विधानो का कुछ कथन घोडे के वर्णन मे मिलेगा।

(१०) साँप से काटे जाने पर अगस्त्य मुनि ने एक बार साबर-मन्त्र बनाया। कहते हैं कि इसके जपने से सर्प-दंशित मनुष्य अच्छा हो सकता है।

(११) नदियो का जहाँ कही वर्णन हुआ हैं वहाँ सात सख्या कही गई है, जिसमे सतलज, व्यास, रावी, चनाब, झेलम, सिन्धु और सरस्वती नामक पजाब की नदियो का बोध हो सकता है। विशेष कर के जहाँ नाम लिये गये हैं, वहाँ सिन्धु और सरस्वती के नाम आये हैं। एक स्थान पर सीफा नदी का भी कथन है। गगा, यमुना, गोमती, गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा आदि का कहीं भी नाम इस मडल मे नही आया है। किसी किसी का कथन है कि सप्त सिन्धव: मे गगा और यमुना भी सम्मिलित हैं। डाक्टर राय चौधरी भी यही कहते हैं।

(१२) पूरी आयु १०० वर्ष की कही गई है। सूक्त न० ८९ मे लिखा है कि हम पूरी आयु सौ वर्ष जिएँ, इसके बीच न मरें, इतने दिनो मे मरें।

(१३) आर्य्य और दस्यु शब्द आये हैं पर इस मडल में जाति-भेद का कथन नही है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आदि इस मंडल मे नहीं है, केवल एक मन्त्र मे बृहस्पति ब्रह्मणस्पति कहे गये हैं। असुर शब्द से सदा देवताओ का बोध कराया गया है।

(१४) इस मडल म असीमबल के देवताआ का वर्णन नही है, क्योकि सोमपान और मन्त्रो से उनके बल की वृद्धि होती है। ब्रह्मा एव ईश्वर का नाम इस मंडल मे नहीं आया है। जल, नदी एव नैसर्गिक पदार्थो मे यत्र तत्र देवभाव माना गया है।

(१५) एक स्थान पर लिखा है कि मैं क्या हू सो मै नही जानता। इससे प्रकट है कि लोग उस समय दर्शन-सम्बन्धी विषयो पर भी विचार करने लगे थे। एक स्थान पर यह भी लिखा है कि पृथ्वी आकाश की उत्पत्ति अज्ञात है।

(१६) इस मडल में उपमाएँ उत्तमता सूचन मे प्रायः बैल से दी जाती हैं। इन्द्र एव विष्णु तक की उपमाएँ बैल से दी गई हैं। मेघो की उपमा गऊ एव भैसे से भी दी गई है, और सोमपान मे शीघ्रता-सूचक उपमा घोडे से है।

उपर्युक्त कथनो मे एक प्रकार से ऋग्वेद के प्रथम मडल की सूची दे दी गई है। जितनी नई बातो का कथन इस मडल मे है वह सब विशेषतया यहाँ आ गया है, केवल ऊपर लिखे हुए मनुष्यो के विषय मे जो छोटी छोटी दो चार बातें यत्र तत्र लिखी हैं उन सब का कथन यहाँ नही किया गया है, क्योकि न तो वे कुछ रोचक ही हैं और न उनका कथन किसी और प्रकार आवश्यक समझ पड़ा। हम एक दो मन्त्रों के अनुवाद उदाहरणार्थ आगे देंगे।

पाठको को विदित हुआ होगा कि उपर्युक्त वर्णन मे कोई विशेष चमत्कार नही हैं, और वेदो पर विशेष श्रद्धा न रखनेवालो के लिए यह बिलकुल साधारण कथन है, क्योकि किसी प्रकार के गूढ अथवा ऊँचे विचार साधारण पाठको का इसमे न मिलेगे। इसका मुख्य कारण यह है कि यदि धर्म्म-सम्बन्धी विचार छोड दिया जावे, तो वेद साधारण मनुष्यो को अरुचिकर होंगे। ये केवल विद्वानो को रुचिकर हैं और धर्म्म के अतिरिक्त, इनका मुख्य महत्व प्रायः सभी

विषयों मे ऐतिहासिक ज्ञान-वर्द्धन का है। वेदो के ध्यानपूर्वक पढ़ने से ही विदित हो सकता है कि ससार मे मानव शक्तियो का पतनोत्थान कैसे हुआ, और समाज, धर्म्म, विज्ञानादि सम्बन्धी विचारो ने संसार मे किस किस प्रकार से धीरे धीरे उन्नति पाई। जो लोग इन विषयो के ऐतिहासिक विस्तारो और आदिम विचारो से भी वेदो के विषयज्ञान का विशेष आदर नही करते, उनके लिये वेद भगवान् फीके है और यह वर्णन अवर्णनीय है।

उदाहरण

सूक्त नम्बर ४९ उषस् सम्बन्धी—हे उषस्! आकाश के तेजोमय उच्च प्रदेशो के ऊपर से आ। तुझे लाल घोडे उसके घर को ले आवे जो सोम देता है। हे उषस् सुन्दरी! जिस सहारे से चलने वाले रथ पर तू सवार होती है उसमे आज हे आकाश की पुत्री! तू बडे सुयशी लोगो की सहायता कर। हे चमकीली उषस्! जब तेरे समय आते हैं, तब सब चौपाये और द्विपद चलते फिरते हैं और आकाश की सब दिशाओ से चारो ओर परदार पक्षीगण उडते है। सब जगमगाते प्रदेशो को उदय होते ही तू अपनी ज्योति की किरणो से चमकाती है। ऐसी जो तू है, उसे कण्ववंशियो ने प्रसन्नतापूर्वक धन प्राप्ति के लिये पुनीत गीतो से बुलाया है।

सूक्त नम्बर ७८ अग्नि सम्बन्धी—हे तीव्र और तुरगच्छक जातवेदस्! हम गोतम लोग पवित्र गीतो से तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते है।

ऐसी जो तू है, उसे धन की इच्छा से गोतम अपने गीत मे पूजता है। हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं। ऐसे जात वेदस को जो सर्वोत्कृष्ट लूट जीतने वाला है, हम अङ्गिरस की भाँति बुलाते है, हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं। तू वृत्र विनाशको मे सर्वश्रेष्ठ है और हमारे दस्यु शत्रुओ को भगाता है। हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं।

हम रहूगण के पुत्रो ने अग्नि के लिये एक सुखद गीत गाया है। हम तेरे महत्व के लिये तेरी महिमा गाते हैं।

इस मण्डल मे कुछ और बाते जो विशेषतया ध्यान देने योग्य हैं, उनके कथन पतों समेत यहाँ किए जाते हैं।

सूक्त १०, ऋचा २, इन्द्र को राम कहा है, ५१...१, मे भी।

१०...११, इन्द्र कुशिक के पुत्र है। पुराणो मे कुशिक पुत्र गाधि-इन्द्र के अवतार कहे गए हैं।

१४, ९, इला देवी थी।

२२, १७, विष्णु के तीन डगो का कथन।

२४ नोट, शुनः शेप की कथा ऐतरेय ब्राह्मण मे है। हरिश्चन्द्र के यज्ञ से उसे विश्वामित्र बचाते हैं।

२४, १२, १३, शुनः शेप तीन खम्भो मे बँधे थे, वरुण से छोड़ने की प्रार्थना है।

३१, ४, पुरूरवस का कथन है।

३१, १७, जैसे पहले मनु के पास आये, वैसे ही हे अग्नि ययाति के पास आइये।

३२, १४, वृत्र को मार कर पाप के डर से इन्द्र भागे। इन्द्र का केवल यही अपमान सूचक वर्णन वेद मे है।

३६, १८, बृहद्रथ और तुर्वीति के कथन कण्व करते हैं। इससे जान पड़ेगा कि ये कण्व दुष्यन्त के समयवालो से पीछे के हैं।

४७, ६, ७ सुदास और तुर्वश के कथन।

५१, ५, ६, ऋजिश्वन ने पिप्रु के दुर्ग नष्ट किए। अतिथिग्व दिवोदास ने शम्बर को जीता। अर्बुद भी जीता गया।

५१, १२, मे शर्यात का कथन है।

(५३, ६, १०) १०,००० वृत्र मारे गए। धोखेबाज नमुचि मरा। अतिथिग्व ने करंज और पर्णय को मारा। ऋजिश्वन ने वंगृदेव के १०० दुर्ग नष्ट किए। सुश्रवस ने २० राजो तथा उनके ६००९९ अनुगामियो को हराया। तूर्वयाण ने कुत्स, अतिथिग्व तथा आयु को हराया।

५, ४, ६, इन्द्र ने नर्य, तुर्वश, यदु और (वय्य के पुत्र) तुर्विति की मदद की।

५८, ६, भार्गवो ने अग्नि को मनुष्यों मे स्थापित किया।

५९, ६, पुरु के पुत्र अग्नि के अनुगामी हैं।

६३, ७, } पुरुकुत्स ने ७ दुर्ग तोडे। सुदास विजयी हुए, पुरु का
१७४, १२, } लाभ हुआ। यहाँ पुरुकुत्स, निश्चय पूर्वक सुदास के समकालीन नही हैं, केवल दोनो के कथन एक ऋचा मे हैं।

८२, १३, दध्यच की हड्डी से इन्द्र ने ९९ वृत्र मारे।

८९,९, हम सौ वर्ष जिये, फिर मरें, इसके बीच न मरे।

९६, २, आयु मनु का भी नाम है।

१०८, ८, यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु के कथन।

१०९, २, बुरे दामाद और साले धन खूब देते थे।

११२, ७, १३, १४, पुरुकुत्स मान्धातृ, शम्बर, अतिथिग्व दिवोदास त्रसदस्यु, उदार विजयी और भरद्वाज के कथन।

११२, १७, १९, शर्यात मनु के पुत्र, सुदेवी पिजवन पुत्र सुदास की स्त्री (नोट मे)।

११६, ५, १०, सौ पतवारो का जहाज, च्यवन बूढे से जवान हुए, झुर्रियाँ निकल गई, स्त्रियाँ विवाही।

११९, १९, २३, जह्न तथा कृष्ण पुत्र विश्वक के कथन।

१४७, ३, अन्धे मामतेय को अग्नि ने विपत्ति मे बचाया।

१५८, दीर्घतमस औचथ्य मामतेय को बाँध कर दासो ने नदी मे डाल दिया, तथा उनको त्रैतन से लडना पडा। वे मनुष्यो की दसवीं उमर (दहाई) को पहुँचे।

१६४, कूट या छायावाद।

१६६, १५, अगस्त्य मानपुत्र मान्दार्य थे। १८०, ८, वे वीरो मे प्रसिद्ध थे। पुराणो मे उन्होने समुद्री लुटेरो का दमन किया, तथा रामचन्द्र को शस्त्रास्त्र दिये।

ऋग्वेद के समय पर विद्वानो के निम्न विचार है :—

नाम विद्वान,	ऋग्वेद सहिता बी० सी० मे. कब से।	कब तक।	विवरण
मैक्डानल्ड	१५००	५००	वर्तमान रूप पाँच छै सौ बी० सी० मे हुए।

नाम विद्वान,	ऋग्वेद सहिता बी० सी० में, कब से।	कब तक।	विवरण
मैक्स मुलर	१५००	१२००	मैक्समुलर ने पहले यही काल १२०० से ८०० बी० सी० तक माना था।
आर० सी० दत्त०	२०००	१४००	मैक्समुलर का पहला काल कथन यों था :— छन्दस १२००-१००० बी० सी० मन्त्र १००० ८०० ' ' ब्राह्मण ८००-६०० " " सूत्र ६०० २०० " " पाणिनि ३०० बी० सी० से पीछे के नही है।
हर्बर्ट यच गोवेन			छठी शताब्दी बी० सी० मे पाठ दृढ।
वेबर	१४००		सिन्ध नदी के देश मे आर्य १६ वी शताब्दी बी० सी० मे आये।
ह्विटनी बेनफ़े	१८३०	८६०	२००० बी० सी० से १५०० बी० सी० तक भी माना है।
यन्साइक्लो पीडिया ब्रिटेनिका	२०००	१५००	
जकोबी	४०००		इसे कई लोग सन्दिग्ध कहते हैं।
राथ	२०००		
यफ़ मुलर	२०००	१५००	
हाग	२५००	१४००	
विल्सन	३५००		
वालगगाधर तिलक	४०००	२५००	

कीथ महाशय का मत:—जे हर्टेल (J Hertel) के अनुसार जूरास्टर का समय ५५९ से ५२२ बी० सी० है, जो सिद्ध नही हुआ है। ६६०-५८३ बी० सी० तक का भी कथन असिद्ध है। हर्टेल इप्सन का कथन

नही मानते हैं कि ईरानी तथा भारतीय आर्यों का साथ प्राय: २००० बी० सी० तक रहा। यह कथन भी असिद्ध है। पीक यही समय १७६० बी० सी० कहते हैं, किन्तु यह भो अनिश्चित समझा गया है। वैदिक ऋषियो मे सबसे प्राचीन ध्रुव, पृथु वैन्य, चाक्षुष मनु, वेन, पुरूरवस, ययाति आदि हैं, और सब से नये खाडव दाह से बचे हुए जरितर, द्रोणादि चार ऋषि तथा युधिष्ठिर के समकालीन नारायण ऋषि। यदि वेन पृथु के पिता हो, तो वे पुराने निकलेगे। यदि वेदर्षि ध्रुव उत्तानपादात्मज पुराने ध्रुव हो, तो यही प्राचीनतम वैदिक ऋषि निकलेंगे, किन्तु इनका वही ध्रुव होना अनिश्चित है। चाक्षुष मनु और पृथु वैन्य अवश्य प्राचीनतम प्राप्त वैदिक ऋषि हैं। यदि महाभारत का युद्ध ९५० बी० सी० के निकट पड़े, जैसा कि पार्जिटर का विचार है, तो ऋग्वेद का अन्ततम समय उसी काल पर आ जावेगा। रामचन्द्र के समय के बहुत से ऋषि है। यदि आर्य्यागमन का प्राचीनतम काल २६०० बी० सी० के लगभग माना जावे, जैसा कि कुछ का विचार है, तो स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत वश का भागकाल ६०० वर्षो का मानने से प्राय: २००० बी० सी० तक बैठेगा। चाक्षुष मन्वन्तर का भोगकाल क्या था, सो अज्ञात है, किन्तु चाक्षुष मनु वेदर्षि है ही, और वैदिक समयारम्भ २००० बी० सी० के निकट मानने से यही समय चाक्षुष मनु का होगा, क्योंकि वे प्राचीनतम ऋषियो मे हैं।

प्राय: चौदहवी शताब्दी बी० सी० का जो सन्धिपत्र मेसोपाटेमिया मे मिला है, और जिसमे कुछ वैदिक देवताओ को नमस्कार लिखा है, उससे इतने प्राचीन समय मे उस दूरस्थ प्रान्त मे वैदिक विचारो की स्थापना मिलती है। यह सन्धि हिटीशिया तथा मितानी के बादशाहो मे हुई, और भारत से असम्बद्ध थी। फिर भी उसमे मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य को नमस्कार और उनकी वन्दना है। इससे वैदिक सभ्यता की प्राचीनता प्रकट है।

पडितो का मत है कि अथर्ववेद चला ऋग्वेद के ही समय मे, किन्तु बनता बहुत पीछे तक रहा। यजुर्वेद ऋग्वेद के पीछे प्रारम्भ

होकर उसके बहुत पीछे तक बनता रहा। सामवेद में केवल ७२ मन्त्र नये हैं, और शेष प्रायः १५०० ऋग्वेद से आये हैं। यजुर्वेद बुद्ध के पूर्व समाप्त हो चुका था, ऐसा सिद्ध है। गौतम बुद्ध के समय चारो वेद प्रस्तुत थे तथा प्राचीन उपनिषदों के समय भी। जनमेजय को पुराण सुनाने वाले वैशपायन के भागिनेय और शिष्य याज्ञवल्क्य के समय ही यजुर्वेद पूर्ण होकर उसकी तैत्तिरीय और शुक्ल शाखाएँ भी स्थापित हुइ।

सातवाँ अध्याय

प्रायः २०००—७०० बी० सी०

ऋग्वेद (शेष मंडल) तथा अन्य वेद ।

ऋग्वेद का पहला मंडल ऊपर कुछ विस्तार के साथ दिखलाया जा चुका है। अब शेष नवो मडलो का कुछ दिग्दर्शन कराना है। जिस विस्तार के साथ पहले मडल का हाल कहा गया है वैसा अन्यो के विषय मे कहने को इस ऐतिहासिक ग्रथ मे हमारे पास स्थान नही है। धार्मिक एवं अन्य विवरण इनके भी प्रायः वैसे ही हैं जैसे कि पहले के। इसलिए इन मडलो से जितनी ऐतिहासिक सहायता मिलती है उसी का हाल सक्षेप रीति से हम यहाँ कहेगे।

ऋग्वेद—दूसरा मंडल

इसमें कुल मिलाकर केवल ४३ सूक्त हैं, जिनके ऋषि गृत्समद, सोमाहुत और कूर्म हैं। कूर्म गृत्समद के पुत्र थे। इनके केवल ३ सूक्त हैं और सोमाहुत के ४। शेष सभी सूक्त गृत्समद के हैं। इस मडल मे अग्नि की प्रधानता है और जगती तथा त्रिष्टुप् छन्द हैं। गृत्समद के नाम पर यह गार्त्समद मडल कहलाता है। आप हैहय वशी (न० ३७) राजा वीति होत्र के दत्तक पुत्र थे। इसमे उपमाएँ प्रथम मडल की अपेक्षा कुछ नयी आयी हैं। इस मडल की मुख्य मुख्य घटनाएँ ये हैं—इन्द्र ने ओर्मवाभ, अर्बुद नामल और वल को मारा, शम्बर को पहाड से निकाल कर उसका वध किया और राहिन को आसमान पर चढते देखकर मार डाला। इन्द्र ने दभीक, उरन शुपुमा, वेंस, कवी, अश्न, अहि, वृकद्वार और सन्यिको के स्वामी को भी मारा। उर्जयन्ती एक राक्षसी थी। जातूष्टिर आर्यों का सहायक था। इन्द्र ने दिवोदास के कारण शम्बरासुर के ९९ किलो को नष्ट किया तथा दस्यो के लोह किलों का भी नहस नहस कर दिया। उन्होंने वल

के पहाड़ी क़िलों का ध्वस्त तथा चुमुरि और धुनि को चूर किया और वर्चित को पुत्रो और सहायको सहित मारा। शम्बर के १०० किलों का भी ध्वस्त होना लिखा है। पणि का ख़ज़ाना कन्दराओं मे छिपा हुआ था। उसे भी इन्द्र ने लूट लिया। इस मडल मे उपमाएँ बहुत हैं। नयी उपमाओं के उदाहरण मे एक यह है कि दो चकवो की तरह आओ। सरस्वती उत्तम माता, उत्तम देवी और उत्तम नदी कही गयी है। गृत्समद महात्र घराने के कहे गए है। ऊपर के वर्णन से विदित हुआ होगा कि दूसरा मडल विशेषतया विजया का वर्णन करता है। शम्बर के सम्बन्ध में (१९-६) दिवोदास का कथन है। गृत्समद (४१-१२,१७) शुनहोत्र वश मे उपजे थ।

ऋग्वेद—तीसरा मडल

यह मडल मुख्यतया विश्वामित्र का है। इनके अतिरिक्त ऋषभ (दो सूक्त), उत्कील (दो सूक्त), कठ (दो सूक्त), गाथिन् (चार सूक्त), देवश्रवस् और देवव्रात (१ सूक्त), और प्रजापति (४ सूक्त) भी १५ सूक्तो के ऋषि हैं। ये लोग विश्वामित्र के ही पिता, पुत्र और पौत्रो मे थे। कुल मिलाकर ६२ सूक्त इस मडल मे हैं। वर्णन विशेषतया अग्नि और इन्द्र के हैं और जगती, गायत्री, तथा त्रिष्टुप छन्दो की प्रधानता है। इस मे प्रथम दो मडलो की अपेक्षा कुछ कुछ नयी उपमाएँ हैं और सख्या मे भी बहुत हैं। इसमे वेदपाठियों का एक देवता कहा गया है। देवताओ की सख्या प्रायः ३३ कही जाती है, किन्तु यहां नवे सूक्त में वह बढ़कर ३३३९ हो गयी है। शायद इसी लिए यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि विश्वामित्र ने नए देवता बनाए। ५४-८ मे तो भी आपने एकेश्वरवाद चलाया। ५४-१७ मे कहा गया कि हे देवताओ ! तुम सब भारत मे निवास करो। सरस्वती और दृषद्वती का वर्णन अधिक आया है। विश्वामित्र ने (२६-१) अपने को कुशिक कहा और अग्नि को इला का पुत्र माना। सिंह की भांति गरजने की उपमा इस मडल मे आयी है। इस मे शतद्रु (सतलज) और विपासा (व्यास) नदियों का वर्णन साथ ही साथ आया है और कहा गया है कि ये दो माताओं की भाँति बहती हैं।

विश्वामित्र का वशिष्ठ से वैमनस्य था। एक बार वशिष्ठ के पुत्र शक्ति ने इन्हे अवाक् कर दिया। ऐसी दशा मे जमदग्नि ऋषि ने इन्हे ससरपरी अर्थात् भाषण देवी को शक्ति दी। (५३-१४,१५) इस प्रकार इन्होंने विश्वामित्र को वाक्ययुक्त करके साहस प्रदान किया। इस स्थान पर विश्वामित्र ने जमदग्नि की प्रशसा और वशिष्ठ की निन्दा की है। (५३-२१) जो हमे घृणा करता है, वह सर के बल नीचे गिरे, तथा जिससे हम घृणा करते है उसके प्राण जावे। यह मडल बडा ही मनोरजक और इतिहास के लिए सहायक है। जगत-प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र विश्वामित्र ने इसी मण्डल मे कहा। आप राजा सुदास के साथ थे। इन्होने भरतो का बहुत वर्णन किया (५३-११,१२) और शर्यात का भी नाम कहा है। जहाँ पर कहा गया है कि विश्वामित्र वाले मन्त्रो के गान से भरतो का वश प्रसन्न रहेगा, वही पर सुदास का भी नाम आया है। भोज लोग सुदास के खानदानी थे। कीकट लोग अवध और दक्षिण बिहार के निवासी अपूजक (५३-१४) थे। प्रमदगन्ध उनका राजा था। विश्वामित्र ने यह भी कहा है कि तुम्हारा धन जह्नु घराने के साथ (५८-३) है। पुराणो से ज्ञात होता है कि विश्वामित्र जह्नु के वशधर थे। प्रथम मण्डल के (११६-१९) मे आया है कि जह्नु वशी आश्विनो के पूजक थे।

इन्द्र के बल-प्रकाश मे इस मडल मे विशेषतया कुनार और अहि का वध लिखा है। कहा गया है 'हे इन्द्र! तुम राक्षसो के वश का निर्मूल कर दो।" कुनार राक्षस के हाथ न थे। वह वृत्रासुर की माता दनु के साथ रहता था। इन्द्र ने जब अहि को मारा तब वह पानी के पास छिपा था। (३३-११, १२) भारत लोग पजाबी नदियो के पार गये। विश्वामित्र ने नदी रोकी। जब वे सुदास के साथ थे (५३-९) तब कौशिक द्वारा इन्द्र प्रसन्न हुये। (५३-११, १२) सुदास पूर्व, पश्चिम और उत्तर जीते तथा अच्छी जगहो पर पूजा करें। विश्वामित्र की यह विनती भारत वश को बचाती है।

पुराणो द्वारा विदित होता है कि परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि विश्वामित्र के भांजे थे। इस मण्डल मे जमदग्नि का नाम कई बार आने और उनके द्वारा विश्वामित्र की मदद होने से इस पौराणिक

गाथा को सहायता मिलती है। पुराणों मे यह भी लिखा है कि सुदास के पुत्र कल्मापपाद द्वारा विश्वामित्र ने वशिष्ठ के पुत्र शक्ति को मरवा डाला। शक्ति से विश्वामित्र की घोर शत्रुता इस मण्डल मे लिखी है।

ऋग्वेद—चौथा मंडल

इस मण्डल मे ५८ सूक्त हैं जिनके ऋपि विशेपतया गौतम पुत्र वामदेव है। इनके अतिरिक्त त्रसदस्यु (१), पुरमीलह और अजमीलह (२) ने केवल तीन सूक्त बनाए। देवताओ मे इन्द्र और अग्नि की प्रधानता है। छन्द विशेषतया गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती आए हैं। इस मण्डल मे रुद्र मनुष्य घातक कहे गए हैं और लिखा है कि अग्नि ने अन्धे मामतेय (४-११, १३) के दुःख दूर किए। इन्द्र ने मृगय और पिप्रु के ५०, ००० सहायकों, वॅस, तथा सरजू के किनारे अर्ण और चित्ररथ को मारा। ये दोनो आर्य्य राजे थे और सरजू नदी पार रहते थे। इन्द्र ने अहि को मार कर सातो नदियाँ खोल दी। शम्बर कुलीतर का लड़का था। इस मण्डल में सहदेव, सोमक, कुत्स, परुशनी (रावी नदी) और कवच के वर्णन आए हैं। राजा पुरु और त्रसदस्यु के वर्णन है और सीता की पूजा (५७-६) लिखी है। त्रसदस्यु ने पौरवो का कुछ दिया (३८-१)। (४२-१८, ९) दुर्गह का पुत्र पुरकुत्स क़ैद मे था, तब उसका पुत्र त्रसदस्यु उत्पन्न हुआ। त्रसदस्यु अपने को भारी राजा कहता है। वह शत्रुओ का जेता अर्द्ध देव था।

१५, ४, ८, ९, सृजय देववात के पुत्र थे। सहदेव के पुत्र सोमक ने वामदेव को दो घोड़े दिए।

१६, १३, विदथिन के पुत्र ऋजिस्वन ने मृगय और पिप्रु को जीता।

ग्रिफिथ के नोट, २५...४, मे है कि वामदेव भारत थे।

२६, ३, दिवोदास अतिथिग्व ने शम्बर के ९९ दुर्ग तोड़े। ३०, १४, १५, शम्बर कुलीतर का पुत्र था। वर्चिन के एक लाख पांच सौ वीर मारे गए।

३०, १७ से २१ तक, तुर्वश और यदु बूडा से बचाये गए, तथा आर्य अर्ण और चित्ररथ सरयू के किनारे मारे गए। दिवोदास ने

पत्थर के सौ किले तोड़े, तथा ३०००० दासों को मारा। यह कार्य दभीति ऋषि की सहायता से हुआ।

५४, १, मनु के वंशधरों ने सविता से धन पाया।

ऋग्वेद—पाँचवाँ मंडल

इसमें ८७ सूक्त हैं। इसके ऋषि कई अत्रिवंशी हैं, जिन में से कुछ के नाम निम्नानुसार है.— बुध और गविष्ठिर (१), गय (२), सुतंभर, (४), पुरु (२), वव्रि (१), त्र्यरुण, त्रसदस्यु और अश्वमेध या अत्रि (१), सम्वरण (२), अत्रि भौम (८), स्यावास्व (१३), अर्चनानस (२), रातहव्य (२), बाहवृक्त (२), पौर (२), सत्यश्रवस् (२), और यवयामरुत (१)। इस मण्डल में विशेषतया अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस्, मरुत, मित्रावरुण और आश्विन के वर्णन हैं। अग्नि ने शुनःशेप को बचाया। अग्नि उत्पत्ति के समय वरुण है, जब जलाई जाती है तब मित्र होती है और आहुति के समय इन्द्र। रोदसी मरुत् की माता और रुद्र की स्त्री और कहीं कहीं मरुत् की भी स्त्री कही गई है। इस मंडल में पृथ्वी का घूमना (८४-२) लिखा है। पुरुमीढ़ एक अच्छे ऋषि थे। सुचद्रथ के पुत्र सुनीथ थे। भरतों का वर्णन इस में आया है। इन्द्र ने नमुचि को मारा। अत्रि उशिज के पुत्र कक्षीवान के पुरोहित थे। मनु ने विसम्भ्रिप्र को जीता। परुष्णी (रावी नदी) का नाम इस मण्डल में आया है। परावत लोग परुष्णी नदी के किनारे रहते थे। ये आर्य्य समझ पड़ते हैं, क्योंकि इन्होंने ऋषियों को बहुत दान दिया। (देखिये आठवां मंडल)। कहा गया है कि यमुना नदी (५२-१७) के किनारे मुझे बहुत सी गाएँ मिलीं। इस बात से आर्यों का उस काल उस नदी तक पहुँचना सिद्ध है। काबुल नदी को उस काल कुभा कहते थे। सरजू (५३-९) नदी का भी नाम आया है। यह अवध में है, किन्तु पंजाब में भी इस नाम की एक नदी थी। इस मण्डल में यह विदित नहीं होता कि कवि पंजाब के विषय में कहता है या अवध के। इसमें छन्द विशेषतया त्रिष्टुप्, गायत्री, अनुष्टुप्, जगती और अतिजगती है। (७-३०) १००० गावों के कारण शुनःशेप बँधे थे जिन्हें अग्नि ने छोड़ाया।

(११-१) भारत पवित्र हैं तथा (१२-६) नाहुप भले। (२७) त्रियरुण त्रिविषन के पुत्र थे। त्रसदस्यु अच्छे राजा थे। (२९-११) विदथिन के पुत्र रिजिश्वन ने पिप्रु को जीता। पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु (३३-८) ने सवरण ऋषि को १० घोड़े दिये। (३३-३९, १०) लक्ष्मण के पुत्र ध्वन्य तथा मारुताश्व ने भो सवरण ऋषि को घोड़े दिये। (४०-५) स्वर्भानु ने सूर्य को अन्धकार मे भेद दिया। यही पीछे राहु हुआ। (४५-६) मनु न विशिशिपु को जीता। (१४-५) च्यवन बूढ़े से जवान हुये।

ऋग्वेद—छठवाँ मण्डल

इसमे ७५ सूक्त हैं जो मुख्यतया भरद्वाज कृत हैं। कवियो का लेखा निम्नानुसार है :—भरद्वाज (४३), भरद्वाज या वीत हव्य (१६), सुहोत्र (२), शुनहोत्र(२), नर (२), शम्य (४), गर्ग (१), रिजिश्वन (४), और पायु (१)। इसमे छन्द मुख्यतया त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती और गायत्री हैं। इस मडल मे विशेषतया अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस्, पूषन्, उषस् और मरुत् के वर्णन हैं। एक सूक्त मे गौओ का कथन है किन्तु पूजनात्मक नही। केवल इतना कहा गया है कि वे वध स्थान को कभी नही ले जायी जाती और कवि ने यह भी कहा है कि मुझको वे भग, सोम और इन्द्र समझ पड़ती हैं। इससे प्रकट है कि सब लोग उन्हे पूजते नही थे, किन्तु यह कवि पूज्य दृष्टि से देखना चाहता था। अतः इस काल तक गो-पूजन स्थापित नही हुआ था, किन्तु अथर्ववेद के समय वह स्थापित था। इस मण्डल मे मुख्य घटनाएँ निम्नानुसार हैं :—अशन एक राक्षस था। भरत और देवदास के नाम आए हैं। अथर्वण ने अग्नि को बाहर निकाला और उनके पुत्र दधीच ने आग जलायी। चुमुरी, धुनि, शम्बर, पिप्र और शुश्नु के दुर्ग थे जिन्हें इन्द्र ने नष्ट किए। दिवोदास को तूर्यवान भी कहते हैं। कुत्स, आयु और अतिथिग्व को इन्द्र ने हराया तथा नमि की रक्षा की। वेतसु, दलौनी और तुग्र हराए जाकर देवताओ के पास लाए गए। इन्द्र ने पुरुकुत्स की सहायता की और मनु को दस्यो से जबरदस्त बनाया तथा राजा नहुष को बल दिया। इन्द्र ने दसद्य

की सहायता की तथा राजा तुज और देवदास को बल प्रदान किया और प्रथीनस को कन्यारत्न दी। देववाढ के पुत्र अभ्यावर्तिन् चायमान को इन्द्र ने जिताया तथा वार्षिक को हराया और वृचनो को मारा। अभ्यावर्तिन् चायमान पृथु के वंशज थे। इन्द्र यदु और तुर्वश को दूर से ले आए। इस मण्डल में गंगा तट का वर्णन आया है और राजा त्रन्नी, दद्दा, द्रुह्यु और पुरु के नाम हैं। शम्बर के क़िले पहाड़ पर थे। नहुष वंशी पराक्रमी कहे गए हैं। इस मण्डल में भी सरस्वती और पंजाब की अन्य नदियों के नाम आये हैं। इस मण्डल से कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनायें मिलती हैं। १५ २, वीतहव्य अग्नि की प्रशंसा करते हैं (१५-३) वीतहव्य और भरद्वाज को धन दो। इससे इन दोनों का समकालीन होना प्रकट है। वीतहव्य हैहयवंशी नरेश, ३७, थे जो पीछे भरद्वाज के साथी ऋषि हो गए। १६,४.५,१९,४,५, भारतों की अग्नि का कथन है। अग्नि ने दिवोदास को वर दिए। दिवोदास भरद्वाज को दान करते थे। भारतों की खोज की गई. १७ ८,१४, भरद्वाज को वीर आश्रयदाता दो। प्रतर्दन का कथन २२ १०, नाहुषों के अस्त्र प्रबल हों, २६,५ शम्बर को मार कर देवता ने दिवोदास की सहायता की।

२७,५ से ८ तक दैववात अभ्यावर्तिन चायमान ने यव्यावती नदी पर वृचीवनों को हराया तथा सृंजय को तुर्वश (देश) दिया। चायमान ने २० घोड़े तथा दासियाँ भरद्वाज को दीं। चायमान पृथु वंशी थे।

३१,४, इन्द्र ने दिवोदास की सहायता करते हुए शम्बर के १०० (४३,१) किले तोड़े। दिवोदास ने भरद्वाज का सम्मान किया।

४५,१ गंगानदी का कथन।

४८,२१ से २५ तक. पानी के निकट दिवोदास ने वर्चिन और शम्बर नामक दासों को मारा। प्रस्तोक ने दान दिया। दिवोदास अतिथिग्व ने शम्बर के धन से भरद्वाज को दान दिया। अशाथ ने पायु को दिया। सृंजय के पुत्रों ने भरद्वाजों का मान किया।

५०,१५ भरद्वाज के पुत्र देवर्षि थे।

६३,२, बध्यश्व दिवोदास के पिता थे।

इस प्रकार इस मण्डल से दिवोदास सृंजय, प्रस्तोक, तथा अभ्यावर्तिन चायमान भरद्वाज के समकालीन सिद्ध होते हैं। ये भरद्वाज भरत के पुत्र विदथिन भरद्वाज से पृथक थे, क्योंकि भारतो, (भरतवंशियो) की आप प्रशसा प्रायः करते है, और उन्हे अपना आश्रयदाता सा मानते हैं। इनके कथनो से भारत लोग इन्ही के वशज नही सिद्ध होते। भरत और दिवोदास मे पीढ़ियो का भी अतर काफ़ी है। यही भरद्वाज रामायण के अनुसार प्रयाग मे राम और भरत से मिलते हैं।

ऋग्वेद—सातवां मण्डल

इसमे १०४ सूक्त हैं। इनमे से २९ के ऋषि मैत्रावरुणि वशिष्ठ कहे गए हैं और शेष के वशिष्ठ। इनमे से एक के ऋषि वशिष्ठ और शक्ति दोनो हैं और एक अन्य के वशिष्ठ तथा उनके पुत्र। देवताओ मे यहाँ अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस्, मित्र, सूर्य आश्विन, उषस्, सरस्वती और विष्णु की प्रधानता है तथा सुदास की महिमा बहुत गायी गयी है। छन्दो मे त्रिष्टुप्, बृहती, जगती तथा गायत्री की मुख्यता है। मुख्य घटनाओ में निम्न बाते आयी हैं.—जरूथ को अग्नि ने जलाया तथा नहुष वशियो को हराकर उन्हे सुदास का कर देने पर बाध्य किया। सुदास ने नदियो के पार होकर सिम्यु लोगो को हराया। विजय के लिये परमोत्सुक तुर्वश परोदास, भृगु लोग और द्रुह्यु लोगो ने सुदास की आज्ञा मानी। पक्थ, भलान, अलिन, शिव और विशात लोगों ने तृत्सुवों के नेता सुदास का सामना किया किन्तु उन्हें बहुत जल्द भागना पडा। सुदास ने २१ जातियों के वैकर्ण लोगो को पराजित किया। सुदास के वैरियों ने नदी से एक नहर निकालकर उसे पार करना चाहा, किन्तु वे नदी में डूब गए। इन डूबने वालों मे काम और द्रुह्युवशी भी थे। भृगु, द्रुह्यु, तुर्वश आदि ने परुष्णी नदी को पारकर उस नदी के दो टुकडे करके सुदास पर धावा करना चाहा किन्तु वे खुद डूब गए। सुदास की सहायता को बहुत से आर्य आए। उसने वैरियों के ७ किले जीते और अनु के पुत्रो का सामान जीतकर त्रस्यु को दिया। अनु और द्रुह्यु, वशियों के ६००० योद्धा तथा ६६ वीर पुरुष मारे गए, किन्तु पुरुव शी नही हारे। शत्रुओ का सारा सामान

लूट लिया गया। यमुना के किनारे सुदास ने भेद का सब खजाना लूटा और उसे प्रजा बना लिया। युध्यामधि को सुदास ने अपने हाथ से मारा। दस राजाओं से युद्ध करने मे इन्द्र ने सुदास की सहायता की। राजा वर्चिन के एक लाख आदमी युद्ध मे मारे गए। विष्णु ने राजा मनु को यह पृथ्वी दी। अज, सिगरु और चतु ने सुदास को कर दिया। पराशर, वशिष्ठ और सत्ययात का सुदास ने बहुत सा दान दिया। सुदास के पिता दिवोदास थे।

इन्द्र ने अर्जुन क वशज कुत्स की सहायता करके कुयव और सुस्न को जीता। पराशर, वशिष्ठ और सत्ययात सुदास के नौकर कहे गए हैं। आर्य्य राजा पार्सद्युम्न सुदास के समकालिक थे। सिमदा एक राक्षसी का नाम था। दीर्घक्रावसा घुडदौड के घोडे को कहते थे। शाल्मली रेशमी रुई का पेड कहा गया है। इससे सेमल का प्रयोजन है। कहते हैं कि वशिष्ठ छोटे से छोटे देवता का भी कभी नही भुलावेगे। सूर्य्य के घोडो मे से एक का नाम इतस है। उषस् आकाश की पुत्री है। आर्य्यों की पाँच शाखाएँ कही गयी हैं। जो दस राजे सुदास से हारे थे वे पूजन न करते थे। वशिष्ठ समुद्र मे नाव पर चलना पसन्द करते थे। इसी दशा मे वरुण ने उन्हे ऋषि बनाया। नहुप और सरस्वती नदी के नाम आए हैं। पुरुवशी सरस्वती नदी के दोनो किनारो पर रहते थे। जमदग्नि का नाम प्रशंसा से लिया गया है। इससे प्रकट है कि यद्यपि जमदग्नि विश्वामित्र के सहायक थे, तथापि उन्होने कोई बुरा बर्ताव कभी नहीं किया, जिससे विश्वामित्र के शत्रु वशिष्ठ भी उनसे प्रसन्न रहे। राक्षस के अर्थ मे यातुधान शब्द आया है और दस्यु लोग जादूगर तथा बेईमान कहे गए है। वशिष्ठ ने विश्वामित्र का नाम लेकर कभी उनकी बुराई नही की किन्तु अपने द्वेपियो का इस प्रकार वर्णन किया जिससे विश्वामित्र का अभिप्राय समझ पडता है।

इस मण्डल से प्रकट होता है कि वशिष्ठ के समय मे आर्य्य लोग सरस्वती नदी से पूर्व भी थे और उनकी सख्या ऐसी बढ चुकी थी कि इनमे आपस मे भी भारी युद्ध होने लगे थे। राजा पुरूरवस का राजस्थान प्रयाग के निकट प्रतिष्टानपुर था, किन्तु सुदास के युद्ध के

इस प्रकार इस मण्डल से दिवोदास सृंजय, प्रस्तोक, तथा अभ्यावर्तिन चायमान भरद्वाज के समकालीन सिद्ध होते है। ये भरद्वाज भरत के पुत्र विदथिन भरद्वाज से पृथक थे, क्योंकि भारतो, (भरतवंशियो) की आप प्रशसा प्राय: करते हैं, और उन्हे अपना आश्रयदाता सा मानते हैं। इनके कथनो से भारत लोग इन्ही के वशज नहीं सिद्ध होते। भरत और दिवोदास मे पीढियो का भी अतर काफी है। यही भरद्वाज रामायण क अनुसार प्रयाग मे राम और भरत से मिलते हैं।

ऋग्वेद—सातवां मण्डल

इसमे १०४ सूक्त हैं। इनमे से २९ के ऋषि मैत्रावरुणि वशिष्ठ कहे गए हैं और शेष के वशिष्ठ। इनमे से एक के ऋषि वशिष्ठ और शक्ति दोनो हैं और एक अन्य के वशिष्ठ तथा उनके पुत्र। देवताओ मे यहाँ अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस्, मित्र, सूर्य आश्विन, उषस्, सरस्वती और विष्णु की प्रधानता है तथा सुदास की महिमा बहुत गायी गयी है। छन्दो मे त्रिष्टुप्, बृहती, जगती तथा गायत्री की मुख्यता है। मुख्य घटनाओ में निम्न बाते आयी है:—जरूथ को अग्नि ने जलाया तथा नहुष वशियो को हराकर उन्हे सुदास का कर देने पर बाध्य किया। सुदास ने नदियां के पार होकर सिम्यु लोगो का हराया। विजय के लिये परमोत्सुक तुर्वश परोदास, भृगु लोग और द्रुह्यु लोगो ने सुदास की आज्ञा मानी। पक्थ, भलान, अलिन, शिव और विशात लोगों ने तृत्सुवों के नेता सुदास का सामना किया किन्तु उन्हें बहुत जल्द भागना पड़ा। सुदास ने २१ जातियों के वैकर्ण लोगो को पराजित किया। सुदास के वैरियों ने नदी से एक नहर निकालकर उसे पार करना चाहा, किन्तु वे नदी में डूब गए। इन डूबने वालो मे काम और द्रुह्युवशी भी थे। भृगु, द्रुह्यु, तुर्वश आदि ने परुष्णी नदी को पारकर उस नदी के दो टुकडे करके सुदास पर धावा करना चाहा किन्तु वे खुद डूब गए। सुदास की सहायता को बहुत से आर्य आए। उसने वैरियों के ७ किले जीते और अनु के पुत्रो का सामान जीतकर त्रस्यु को दिया। अनु और द्रुह्यु, वशियों के ६००० योद्धा तथा ६६ वीर पुरुष मारे गए, किन्तु पुरुवशी नहीं हारे। शत्रुओ का सारा सामान

लूट लिया गया। यमुना के किनारे सुदास ने भेद का सब खजाना लूटा और उसे प्रजा बना लिया। युध्यामधि को सुदास ने अपने हाथ से मारा। दस राजाओं से युद्ध करने में इन्द्र ने सुदास की सहायता की। राजा वर्चिन के एक लाख आदमी युद्ध में मारे गए। विष्णु ने राजा मनु को यह पृथ्वी दी। अज, सिगरु और यत्नु ने सुदास को कर दिया। पराशर, वशिष्ठ और सत्ययात को सुदास ने बहुत सा दान दिया। सुदास के पिता दिवादास थे।

इन्द्र ने अर्जुन के वंशज कुत्स की सहायता करके कुयव और सुस्न को जीता। पराशर, वशिष्ठ और सत्ययात सुदास के नौकर कहे गए हैं। आर्य्य राजा पार्सद्युम्न सुदास के समकालिक थे। सिमदा एक राक्षसी का नाम था। दीर्घक्रावमा घुड़दौड़ के घोड़े को कहते थे। शाल्मली रेशमी रुई का पेड़ कहा गया है। इससे सेमल का प्रयोजन है। कहते हैं कि वशिष्ठ छोटे से छोटे देवता को भी कभी नहीं भुलावेंगे। सूर्य्य के घोड़ों में से एक का नाम इतस है। उषस् आकाश की पुत्री है। आर्य्यों की पाँच शाखाएँ कही गयी हैं। जो दस राजे सुदास से हारे थे वे पूजन न करते थे। वशिष्ठ समुद्र में नाव पर चलना पसन्द करते थे। इसी दशा में वरुण ने उन्हें ऋषि बनाया। नहुष और सरस्वती नदी के नाम आए हैं। पुरुवंशी सरस्वती नदी के दोनों किनारों पर रहते थे। जमदग्नि का नाम प्रशंसा से लिया गया है। इससे प्रकट है कि यद्यपि जमदग्नि विश्वामित्र के सहायक थे, तथापि उन्होंने कोई बुरा बर्ताव कभी नहीं किया, जिससे विश्वामित्र के शत्रु वशिष्ठ भी उनसे प्रसन्न रहे। राक्षस के अर्थ में यातुधान शब्द आया है और दस्यु लोग जादूगर तथा बेईमान कहे गए हैं। वशिष्ठ ने विश्वामित्र का नाम लेकर कभी उनकी बुराई नहीं की, किन्तु अपने द्वेषियों का इस प्रकार वर्णन किया जिससे विश्वामित्र का अभिप्राय समझ पड़ता है।

इस मण्डल से प्रकट होता है कि वशिष्ठ के समय में आर्य्य लोग सरस्वती नदी के पूर्व भी थे और उनकी संख्या ऐसी बढ़ चुकी थी कि उनमें आपस में भी भारी युद्ध होने लगे थे। राजा पुरूरवस का राजस्थान प्रयाग के निकट प्रतिष्ठानपुर था, किन्तु सुदास के युद्ध के

को एक घोडा दिया। इन्द्र अनुवंशियों, तुर्वश तथा राजा रुम पर भी कृपा करते थे। तुर्वश और यदु की प्रशंसा योग्य है। पज्र और कएव से शत्रुता थी। राजा कुरंग का नाम आया है। सुदेव एक बडे भक्त थे। तुग्रपुत्र भुज्यु को अश्विनीकुमारों ने बचाया। चेद पुत्र कसु ने कवि को १०० भैंसें और दस हजार गाएँ दी। चेदि लोग बडे उदार थे। नहुषवंशियों के अच्छे अच्छे घोडे थे। सरयानीवान कुरुक्षेत्र मे एक झील थी। पर्श और तिरिन्दिर के पास के नाम आये हैं। कुकुर लोग यादवों के समान थे। उन्होंने भैंसे दान दिये। यश और दशव्रज को त्रसदस्यु ने सहायता दी। अथर्वण एक ऋषि थे। कक्षीवान और दीर्घतमा नामक ऋषियों के नाम आए हैं। वेन पुत्र पृथु का वर्णन है। आयु पुरुरवा के पुत्र थे। प्रदाकु साम यज्ञ करने वाला था। क्रिवि पञ्जाब के युद्धकर्ता थे। पांचालों मे भी इनका होना कहा गया है। चिनाब नदी के चन्द्रभागा और असिक्नी भी नाम थे। पक्थ, अध्रिव, बभ्रु और चित्र राजा थे। व्यास्व एक ऋषि थे। गोमती नदी का नाम आया है (२५, ३०)। दक्ष के पुत्रों का कथन है। उक्षतयान, हरयान, और सुषामन को एक एक घोड़ा मिला।

इस मण्डल मे ३३ देवताओं के नाम आए है। इन्द्र ने अनर्सनि, श्रीविन्दु, पिप्रु और और्णवाभ को मारा। पारावत एक वंश था जिसने ऋषियों को खूब दान दिया। युवनाश्व पुत्र मान्धाता का (३९-८) नाम दस्युवों के मारने मे आया है। एक मान्धाता राजा थे और दूसरे ऋषि। ४२ वे सूक्त की तीसरी ऋचा मे रूपक द्वारा जहाज का कथन हुआ है। दास बलबूथ एक दानी और आर्य्य पृथुश्रवा के साथी थे। मनु का वर्णन पितामह कर के हुआ है। सूक्त ५६ की पहली ऋचा मे राजपुत्रों को क्षत्री कहा है। अश्विनों के विषय मे लिखा है कि वे बाज की तरह उड गए। श्रुतर्वण ने रावी नदी के किनारे यज्ञ किया। इस मण्डल मे जहाज का वर्णन कई बार आया है। एक स्थान पर लिखा है कि जैसे समुद्र की लहरें जहाज को थपेड़ें लगाती हैं, इस प्रकार हम को कोई थपेडे न लगावे। कृदम और उनके पुत्र विश्वक ऋचाओं के ऋषि थे। अत्रिवंशी अपाला भी वेद की ऋषि थी। इन्द्र को कई स्थानों पर राम कहा है। पृथ्वी के

दस देश कहे गए हैं। शिष्ट लोगो का बयान आया है। [illegible] से ३२ तक वैवस्वत मनु के रचे हुए है। इन मे कोई ऐसा [illegible] नहीं है कि जो मनुओ के विषय मे पौराणिक कथनों के प्रतिकूल हो (४-१) इन्द्र मुख्यतया आनवों और तुर्वशो के साथ है। ([illegible]) कण्व वशी दीर्घतमस पूर्व कालीन कहे गये है। ([illegible]) द्रुह्यु, अनु, यदु और तुर्वश के नाम इन्हीं वंशो के लिये आये हैं। ([illegible] ३६, ७७ ८, ३६-७) पुरुकुत्सात्मज त्रसदस्यु ने सौभरि ऋषि को ५० दासियां दी। त्रसदस्यु के पुत्र तृक्षि थे। त्रसदस्यु विजयी तथा दानी थे।

ऋग्वेद—नवॉं मण्डल

इसमे ११४ सूक्त हैं जिनके ऋषियो मे मुख्य निम्नानुसार हैं:—मधुच्छन्दा मेधातिथि, शुन शेप हिरण्यस्तूप असित कुत्स, देवल, बिन्दु, गोतम रहूगण, कवि, उचथ्य, अवत्सार काश्यप भृगु, भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि पवित्र, रेणु, ऋषभ, हरिमन्त, कक्षीवान, वसु, प्रजापति, वेन, उशना कण्व, प्रस्कण्व उपमन्यु, व्याघ्रपाद, वशिष्ठ-शक्ति, पराशर, अम्बरीष, ऋजिश्वन, ययाति, नहुष, मनु, नारद, शिखण्डी, अग्नि, चाक्षुषमनु, प्रतर्दन, और शिशु। इन सब मे रहूगण, वेन, उपमन्यु, अम्बरीष, ययाति नहुष और चाक्षुषमनु की कई कारणो से मुख्यता समझनी चाहिये। इस मडल भर मे प्राय: सब ऋचाएँ सोम पवमान ही के विषय में हैं, केवल एक मे आप्रिय का वर्णन है और दो मे सोम पवमान के साथ कुछ और देवताओ का भी कथन है। ६७ वें सूक्त मे विद्यार्थियो की भी प्रशसा की गयी है। छन्दो मे ६७ सूक्त पर्य्यन्त गायत्री ही चलती है। इसके पीछे जगती, त्रिष्टुप् और उष्णिक् भी आए हैं। नई उपमाऍ ५० वें सूक्त मे बहुत हैं। इस मडल की मुख्य घटनाओ का हाल सक्षेपतया नीचे लिखा जाता है:—ध्वस्र और पुरुषान्ति दानी राजा थे। सोम पवमान ने दिवोदास के कारण यदु, तुर्वश और शम्बर को (६१-२)मारा। जैसा कि आठवे मण्डल मे यदु, तुर्वश आदि के नाम उन के वशधरों के लिये आये हैं, वही हाल यहां

भी समझ पडता है, क्योंकि ये दोनो दिवोदास से बहुत पहले हुये थे। इस मंडल मे जमदग्नि वशियो का वर्णन बहुत है और व्यास्व ऋषि का नाम बहुतायत से आया है। उत्तर पश्चिम मे आर्जीक नाम्नी एक अनार्य्य जाति रहती थी। उशना बडे बुद्धिमान कहे गये हैं। पेदू के घोड़े ने बहुत से नागो को मारा। इस मडल मे सिंह, धनुष और सप्तर्षि के वर्णन आये हैं। मख एक राक्षस था। दधीचि अथर्वण के पुत्र थे। अथर्वण ने सब से पहले अग्नि पायी और उसे सोमपान कराया। ब्राह्मण पूजा करने वालो को ढूढ़ता है। चाक्षुष मनु के वेदर्षि होने से प्रकट है कि चाक्षुष मन्वतर मे वैदिक ऋचायें बन चली थी।

ऋग्वेद—दसवॉ मण्डल

इसमे १९१ सूक्त हैं जिनके प्रधान ऋषियो का व्योरा निम्नानुसार है:–त्रित, त्रिशिरा, सिन्धुद्वीप, यम, यमी, वृहदुक्थ, हविर्धान, विवस्वान्, शख, दमन, देवश्रवा, च्यवन, विमद, वसुकृत, वसुक्र, कवष, अक्ष, लुश, घोषा, कृष्ण, इन्द्र, वैकुण्ठ, गौपायन लोग और उनकी माता, गय, अयास्य, सुमित्र, बृहस्पति, अदिति, गौरिवीति, जरत्कर्ण, विश्वकर्मा, मन्यु, सूर्या, इन्द्र, इन्द्राणी, वृषाकपि, पायु, रेणु, नारायण, अरुण, शार्यात, तान्व, अर्बुद, पुरूरवा, उर्वशी, देवापि, वम्र, बुध, मुद्गल, अप्रतिरथ, अष्टक, दक्षिणा, दिव्य, सरमा, पणि, जुहू, जमदग्नि या राम, भिक्षु, लव, हिरण्यगर्भ, वरुण, सोम, वाक, कुशिक या रात्रि, प्रजापति, परमेष्ठी, यज्ञ, सुकीर्ति, शकपूत, सुदा, मान्धातार, गोधा, कुमार, सप्तमुनि (जूति, वात जूति, विप्रजूति, वृषाणक, एतश, करिक्रत, ऋष्य शृग) सप्तर्षि, अग, विश्वावसु, अग्नि पावक, अग्नि तापस, जरितर, द्रोण, सारीसृक, स्तम्बमित्र, अत्रि, सुपर्ण, ऊर्ध्वकृषन, पृथु वैन्य, शास, इन्द्र की माताएँ, केतु, चक्षु, शची पौलोमी, पूरण, प्रचेतस, कपात, ऋषभ, विश्वामित्र-जमदग्नि, अनिल, शबर, विभ्राट्, इट, सवर्त, ध्रुव, सूनु, पतग, अरिष्टनेमि, शिवि, प्रतर्दन, वसुमनस, जय, प्रजावान्, त्वष्टा, विष्णु, सत्यधृति, उल, अघमर्षण और सम्वनन। इन वेदर्षियों मे राम उनके पुत्र लव, और बहनोई ऋष्यशृग के नाम आए हैं। सम्भवत: राम से परशुराम

का प्रयोजन हो, क्योकि वहाँ जमदग्नि या राम लिखा है। वेदर्ि जरितर, द्रोण, सारीसृक और स्तम्बमित्र शार्ङ्गी शूद्रा से उत्प मन्दपाल ब्राह्मण के वे पुत्र थे जो अर्जुन के खाण्डव दाह वचे थे । पुरुष सूक्त (न० ९०) के ऋषि नारायण ने नारद क वासुदेव का ऐश्वर भाव बतलाया । उसे नारद से जान कर व्यास युधिष्ठिर से कहा (शान्ति पर्व)। इस प्रकार वेद के ये भाग महाभार काल के पडते हैं। इन ऋषियो मे कई प्रसिद्ध राजा अथवा महापुरु हैं, यथा विवस्वान्, गय, अदिति, पुरुरवा, देवापि, राम, लव, कुशिक सुदास, मान्धाता, पृथु, केतु, ऋषभ, चाक्षुप मनु, ध्रुव, शिवि आदि ऋषियो मे कई देवताओं के भी नाम आये है जैसे इन्द्र, अग्नि आदि अग्नि, प्रजापति विश्वकर्मा आदि देवताओं के नाम अवश्य हैं, किन्तु समझ पड़ता है कि इन्ही नामो के मनुष्य भी थे। ध्रुव भी एक वेदर्षि जान पड़ता है। यह ध्रुव नाम के प्रसिद्ध राजा हो सकते हैं । क स्त्रियॉ भी वेदर्षि हैं । प्राचीनतम वेदर्षियो मे वेन, ध्रुव और पृथु वैन्य हैं।

इस मडल के देवताओ में अग्नि, इन्द्र, यम, पितर, जल, गय विश्वेदेवस्, बृहस्पति, विश्वकर्मा, सूर्य्य आदि की प्रधानता है देवताओ के अतिरिक्त इसमें कई अन्य विषयो पर भी सूक्त हैं, यथा जल, पितृ, मृत्यु, गाय, पांसा, खेती, जीवात्मा, सुबन्धु का पुनर्जीवन हाथ, सावर्ण्य की उदारता, ज्ञान, देवता लोग, नदियाँ, दबाने क पत्थर, सूर्या के विवाह पर आशीर्वाद, पुरुष, उर्वशी-पुरुरवा, इन्द्र के घोड़े, वनौषधि, गदा, सरमा, पनिस, उदारता, वेन, वायु, रात्रि, जग दुत्पत्ति, केशी, प्रतिद्वन्दी (होड करने वाले) का हराना, सपत्नीबाधन, अरण्य, श्रद्धा, नवजीवन, दुर्भाग्य निराकरण, पौलोमी, क्षयीरोग निराकरण, गर्भपात से बचाव, दु:स्वप्नों से बचाव, गोगण, उषा, राजा,माया भेद,तार्क्ष्य, यज्ञकर्त्ता और उसकी स्त्री के गर्भ को आशीर्वाद, अदिति और मेल। इतने विषयो का वर्णन होने से प्रकट होता है कि यह मंडल बहुत ही गम्भीर और सांसारिक सभ्यता की ऐतिहासिक उन्नति जानने में परमोपयोगी है । इस एक मडल के पढ़ने से विविध विपयो पर वैदिक विचारों का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है ।

इस मे व्यवहृत मुख्य छन्द निम्नानुसार हैं:—त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती, अनुष्टुप्, आस्तार पक्ति, प्रस्तार पक्ति, उष्णिक्, महापक्ति, बृहती और द्विपदीविराट्।

यम यमी भाई बहन थी। कुछ योरोपीय पण्डितो का विचार है कि स्त्री पुरुष का यह पहला जोडा था, किन्तु इनकी बातचीत ही से प्रकट होता है कि ससार मे अन्य पुरुष भी थे। यमी ने यम के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। इस पर यम ने उत्तर दिया कि वह बहिन के साथ विवाह करना उचित नही समझता और इसलिये यमी को उचित है कि वह किसी और को अपना हृदय प्रदान करे और प्रीति भाजन बनावे। जान पडता है कि यह उस काल का वर्णन है कि जब तक भाई बहनो मे विवाह का निषेध तो नही हुआ था किन्तु निषेधात्मक विचार उठने लगे थे। यम ने यमी के विचारो को लोक-लाजहीन न कहकर उनसे केवल अपनी असम्मति प्रकट की और कहा कि लोग इसे पातक समझते हैं। किसी सूर्या का विवाह इस मडल मे लिखा है। यमी भी सूर्य्य की कन्या होने से सूर्य्या कही जा सकती थी।

इस मडल मे घटनाओ का वर्णन बहुतायत से आया है। चिता एवं मृत्यु के कथन आये हैं और कहा गया है कि मरने के पीछे मनुष्य यम के यहाँ जाता है। कहा गया है कि हमारे चारो ओर दस्यु लोग रहते हैं जो यज्ञादिक नही करते और पृथक धर्मों पर चलते हैं। इस मडल में सिंह का वर्णन कई बार आया है। दुहृश्शासु एक शत्रु राजा था जिसने त्रसदस्यु के पौत्र कुरुश्रवन को हराया। दिवोदास के मुकाबले में गांगव लोग मारे गये। साप्य ने दिवोदास की सहायता की। श्रुतर्वण ने मृगय और सास्व को हराया। ३३३९ देवताओ ने अग्नि की पूजा की। उशीनर लोग मध्यदेश मे रहते थे। इक्ष्वाकु एक राजा और मनु बडे दानी थे। यदु और तुर्वश ने दो दास दान किये। ययाति नहुष के पुत्र थे। गङ्गा, जमुना का वर्णन आया है और पञ्जाब की नदियो का भी। बैल मघा मे मारे जाते थे और अर्जुनी मे बच्चा पैदा करते थे। ९० वे सूक्त मे ईश्वर के मुख, बाहु, जघा और पैर से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति कही गयी है।

चन्द्रमा ईश्वर के मन से निकला। समझ पड़ता है कि ऋग्वेद के समय मे जाति भेद कर्म से था, किन्तु यजुर्वेद के समय वह जन्म से माना जाने लगा। पुरुषसूक्त नारायण ऋषि का है। यह अच्छे कवि समझ पडते हैं। दु:सीम, प्रार्थिवान्, वेन, राम और तान्वापार्थ्य यज्ञकर्त्ता कहे गये हैं। सम्भव है कि यह राम वही दशरथ पुत्र प्रसिद्ध राम हों। पुरूरवा की स्त्री उर्वशी थी। राजा उसको अधिक प्यार करते थे किन्तु उसे परवाह न थी। यह मनुष्य थे और वह अप्सरा। उर्वशी ने कहा कि स्त्री पूरा प्रेम नही कर सकती और अपने विषय मे कहा, 'मै हवा के समान उडती हूँ सो मेरा पकड़ना कठिन है।" उर्वशी की ये बाते स्त्री जाति के विषय मे वैदिक सम्मति प्रकट नहीं करती। उर्वशी स्वय प्रेमहीना थी और इसीलिये सभी स्त्रियो को ऐसी समझती थी। पुरूरवा इला के पुत्र थे। इस मडल मे स्वर्ग का वर्णन आया है। शान्तनु को देवापि ने यज्ञ कराया। भारत वाले शान्तनु के देवापि भाई थे और इन दोनो के पिता प्रतीप थे, किन्तु वैदिक देवापि के पिता ऋषत्सेन लिखे हैं। जान पडता है कि थोड़े ही काल राज्य करने अथवा पिता के आगे मरने से इनका नाम महाभारत से छूट गया। यह भी सम्भव है कि देवापि के ब्राह्मण होने मे ऋषत्सेन उनके दत्तक पिता बने हों।

इस मडल मे जल के विषय मे एक अच्छा सूक्त है। उसमे जल को शक्तिप्रदायक, पुत्रोत्पादक, बलप्रदायक, स्वास्थ्यकर और पातक-निराकरण करने वाला कहा गया है और यह भी लिखा है कि पानी मे सभी दवाएँ रहती हैं। पितरो के वर्णन में लिखा है कि वे यमलोक मे रहते हैं। वहाँ यम ने उनके लिए ऐसा स्थान नियत किया है जो जल और ज्योति से शोभित है और पितृ लोग यम के साथ प्रसन्न रहते हैं। ५८ वे सूक्त मे जीवात्मा का कथन किया गया है और मृत अथवा मूर्छित मनुष्य से कहा गया है कि जो तेरा जीवात्मा बहुत दूर विवस्वान् के पुत्र यम के यहाँ चला गया था, उसे हम फिर तेरे पास लाते हैं कि तू जीवित रह कर यहीं रह। इस प्रकार शेष ११ मन्त्रो में पृथ्वी और स्वर्ग, चार कोने की पृथ्वी, ससार के चारों स्थानो, तरंगित समुद्र, चमकने और बहने वाली ज्योति,

जलो, पौधों, सूर्य्य और उषा, ऊँचे पहाडो, सब जीवधारी और चलने वाले पदार्थों, हमारे दृष्टिक्षेत्र से बाहर दूर देशों और अन्त मे सब वर्तमान और भूत जीवधारियो मे जीवात्मा का जाना लिखा है।

उशीनरानी, ५९, १०, और ६०, ४, इक्ष्वाकु के कथन। ६०, ६ अगस्त्य के कई भागिनेय थे। ६०, ७, मे सुबन्ध का कथन है। ६१ वाँ सूक्त नाभानेदिष्ठ का है। ६२ मे सावर्ण्य मनु के यज्ञों की प्रशसा तथा चिरायु होने का आशीर्वाद है। ६३, गय का सूक्त है। ६३,१,६,७, १७, विवस्वान के वंशधर मनुष्यों को बहुत प्रिय हैं, तथा दूर तक राज्य फैलाते हैं। ययाति नहुष के पुत्र थे। नाहुषो तथा वैवस्वतो की साथ ही प्रशसा है। मनु ने सात पुरोहितो द्वारा सब से पहले यज्ञ किया। गय प्रति के पुत्र थे। यही बात, ६४, १७ मे भी है। ६४,९, सरयू नदी तथा ६५, १४ मनु के देवतो के कथन हैं। ५९, १ तथा VI ६१,१, वध्यूश्व सरस्वती और अग्नि के पूजक थे। सूक्त, ६९ का ऋषि सुमित्र अपने को बराबर उनका सगोत्री कहता और उनसे प्रसन्नता प्रकट करता है। वे प्राचीन समय मे थे। ७२, २,३, देवताओ के प्राचीन समय मे असत्ता से सत्ता हुई। ७५, ३,५,९, सिन्ध, गङ्गा, यमुना, शतद्रू, परुष्णी, सरस्वती, असिक्नी, वितस्ता, कुभा और गोमती नदियों के नाम आये हैं। ८१, मे जगदुत्पति और एक ईश्वर के कथन हैं। ८२, ईश्वर पिता है, उसी ने सब कुछ बनाया है। एक ही विश्व· कर्मन कर्ता है। वह देवताओ तथा असुरो से पहले का तथा अज है। ९० में पुरुष सूक्त है। यह सूक्त यजुर्वेद मे भी है। ९३, १४, दुःसाम पृथवान, वेन और राम सब यज्ञ कर्ता थे। ९५, पुरूरवस उर्वशी का है। ९८, ऋष्टपेण का पुत्र देवापी अपने भाई शान्तुन के लिए पानी बरसाने की प्रार्थना इन्द्र से करता है।

१०२, मुद्गल का सूक्त है। इन्द्र सेना मुग्दलानी ने रथ हाँक कर पति को विजय दिलाई। पहले वह उनको छोडे हुए सा था, किन्तु पीछे प्रसन्न हो गया। १२१, हिरण्यगर्भ सारे संसार के स्वामी थे। वे सब से पहले हुए। १२३, मे वेन अपनी भारी प्रशसा करते है, शायद ये ही पृथु के पिता हो। १२९, १३०, मे जगदुत्पति उत्कृष्ट हैं। १७१,३, मे वैन्य का कथन है।

इसी स्थान पर ऋग्वेद का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण समाप्त होता है। जो ऐतिहासिक घटनाएँ इसमे कही गयी है उन सब का पूर्वापर क्रम केवल वेदो के सहारे से स्थिर नही हो सकता। इसीलिए ऐसा करने का प्रयत्न न करके हमने यहाँ पर ऋग्वेद के सहिताविभाग से जितना कुछ मुख्य ऐतिहासिक मसाला प्राप्त हो सकता है उसका सक्षिप्त विवरण ऊपर लिख दिया है। यो तो भगवान वेद से हजारों प्रकार के ऐतिहासिक एव अन्य बहुमूल्य भाव प्राप्त होते हैं, किन्तु हमने उन पर ध्यान न देकर केवल राजनैतिक इतिहास का जो मुख्य मूल ऋग्वेद सहिता से प्राप्य है उसे यहाँ पर कहा है। इन ऐतिहासिक घटनाओ का पूर्वापर क्रम जो ब्राह्मणो, इतिहासों, पुराणो आदि के सहारे कहा जा सकता है, उसे दिखलाने का प्रयत्न आगे किया जायगा। यहाँ पर केवल सहिता का सहारा लेकर जो ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है उसका विवरण किया गया है। इसी प्रकार शेष तीनो वेदो के सहिता विभाग का सहारा लेकर हम अपना ऐतिहासिक वर्णन लिखेंगे। इसके पीछे अन्य ग्रन्थो के सहारे इतिहास का क्रम बाँधा जायगा।

सामवेद

यह वेद गणना मे तीसरा किन्तु महिमा मे नम्बर २ समझा जाता है। सामवेद में कुल १५४९ मन्त्र हैं। इनमें से केवल ७२ इसके और शेष सब ऋग्वेद के हैं। इसके दो भाग हैं, जिनमे से पहले में ६ काण्ड हैं और दूसरे में ९। एक एक काण्ड की भी कई कई कण्डिकाये हैं जिन्हे सूक्त कह सकते हैं। सामवेद मे कुल मिलाकर ४५९ सूक्त हैं। ये प्राय: सब ऋग्वेद से लिए गये हैं, किन्तु कुछ नये भी हैं। कुल मिलाकर सामवेद का प्राय: २० वाँ भाग नया होगा, शेष सब ऋग्वेद से लिया हुआ है। इसके जो पाठ हैं उसमें ऋग्वेद से कही कहीं थोड़ा बहुत अन्तर है। कई स्थानो पर अन्तर अर्थ समझाने के लिये किया गया है, किन्तु अधिकतर दशाओं मे यह बात घटित नही होती। कुछ पाश्चात्य पंडितों का मत है कि सामवेद में लिखित मन्त्र बहुत स्थानों पर वर्तमान ऋग्वेद के प्राचीन पाठो पर अवलम्बित हैं, अर्थात् जिस

काल वे ऋचाएँ सामवेद मे रक्खी गयी तब ऋग्वेद मे भी उनका वही पाठ चलन मे था, किन्तु पीछे से बदल गया। जान पडता है कि ऋग्वेद की ऋचाएँ सदा से इतनी ही नहीं थी, वरन सख्या मे वर्तमान ऋचाओ से कुछ अधिक थीं। उन्ही मे से वर्तमान ऋचाएँ सामवेद में रक्खी गयीं। पीछे से ऋग्वेद के सम्पादक व्यास भगवान ने ऋग्वेद वाली वर्त्तमान ऋचाओ को चुन लिया और शेष को छोड दिया। उन्ही छोडी हुई ऋचाओ में से, जो सामवेद मे आगयी थीं वे तो रक्षित रही और शेष नष्ट हो गयी।

सामवेद को किसने सकलित किया इसका पता नही है, केवल इतना ज्ञात है कि चारों वेदो के सम्पादक व्यास भगवान थे। सामवेद के आदि मे लिखा है कि "ओ सामवेद की जय, गणेश की जय।" यह असली सामवेद का भाग नही है वरन् हाल के लेखकों ने लगा दिया होगा। सामवेद मे विशेषतया साम पवमान का वर्णन है। इनके अतिरिक्त अग्नि, इन्द्र, उषा, आश्विन आदि पर भी कुछ कथन आए हैं। जल, वात और वेन के भी कुछ वर्णन हैं। इसमे कुछ ऋचाएँ मनु वैवस्वत की भी हैं। जिन दधीचि की हड्डी से बज्र बना था वे अथर्वण के पुत्र एक ऋषि थे। पुराणों में राजा दधीचि के विषय मे यही बात कही गयी है। इन्द्र को राम कहा है। वय्य के पुत्र सत्यश्रव ऋषि का नाम आया है। नकुल की एक ऋचा है जो ऋग्वेद मे नही है। कुछ ऋचाएँ नहुष, ययाति, मनु, अम्बरीप तथा ऋजिस्वा की भी हैं तथा कुछ आप्सव मनु की। रसा नामक एक नदी है जो पृथ्वी के चारो ओर बहती है। साम पवमान ने दिवोदास के लिए शम्बर, यदु और तुर्वश को हराया। यही विजय वर्णन कई देवताओ के विषय मे किये गए हैं, जैसे शम्बर का मारना इन्द्र, अग्नि और सोम पवमान के विषय मे कहा गया है। श्यावक, ऋजिस्वा और अम्बरीप इन्द्र के कृपापात्रो मे से थे। क्रवि एक असुर था। ईश्वर का वर्णन विश्वकर्मा, स्कम्भ, प्रजापति और पुरुष के नाम से आया है। कहीं कहीं अग्नि, इन्द्र और सूर्य्य से भी ईश्वर का भाव प्रकट किया गया, है। पवीरु रुसमा के राजा थे। सुनीथ सुचद्रथ के पुत्र थे। मनुष्य जीवन अधिकतर १०० वर्षो का

कहा गया है किन्तु कही कहीं ११६ और १२० वर्षों का भी वर्णन है।

यजुर्वेद

यजुर्वेद का शाब्दिक अर्थ यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान का है। इसमे जाति भेद की उन्नति देख पड़ती है, मिलित जातियो का भी वर्णन है तथा दस्तकारी, विज्ञान, व्यापार आदि का कुछ बढ़ा-चढ़ा कथन है। इन बातो से ग्रिफिथ महाशय का विचार है कि यह वेद अथर्ववेद से भी नया है। इसके शुक्ल और कृष्ण नामक दो विभाग हैं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। कुल मिलाकर इसमे ४० अध्याय और प्रायः २००० छन्द हैं और बहुत कुछ भाग गद्य मे भी है। इसका बहुत सा भाग ऋग्वेद से लिया गया है और कुछ अथर्व से मिलता है। यज्ञ आर्यों में सदैव से होते रहे थे, सो उनके विधानो का वर्णन भी बहुत पुराना होना निश्चित है। इसीसे यजुर्वेद का प्रारम्भकाल पुराना समझ पड़ता है। बलि के यज्ञ मे वामन भगवान् ने प्रचलित यज्ञ रीतियो में कुछ विशेषता दिखलायी। इससे रीतियो पर विचार उस काल से ही चले थे ऐसा निश्चित है।

पहले और दूसरे अध्यायो मे नवेन्दु और पूर्णेन्दु सम्बन्धी यज्ञो के वर्णन हैं और तीसरे में अग्निहोत्र का कथन आया है। अध्याय नम्बर ४ से ८ तक सोमयज्ञ का विधान है और नवम एव दशम मे वाजिपेय और राजसूय यज्ञों का कथन हुआ है। ११वें से १८ वें अध्याय पर्य्यन्त वेदी आदि बनाने के विधान कहे गये हैं। १६वे में शतरुद्रीय का विधान है। १९वें से २१वे तक सौत्रामणि यज्ञ का कथन है और २२वें से २५वें तक अश्वमेध का। २६वें से २९वे अध्याय पर्य्यन्त चान्द्रयज्ञो का विधान है और ३०वें तथा ३१वें मे नरमेध का। शतपथ ब्राह्मण के देखने से प्रकट होता है कि नरमेध में मनुष्य का बलिदान नही दिया जाता था, वरन् एक पुतले का। ३२वे से ३४ वें अध्याय पर्य्यन्त सर्वमेध का वर्णन है और ३५वें मे पितृ यज्ञ का। ३६वें अध्याय मे दीर्घजीवी आदि होने की विनतियाँ हैं और ३७वे से ३९वे अध्याय तक प्रवर्ग का विधान है। ४० वाँ अध्याय एक उपनिषत् है, जिसमे ईश्वर का वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद के अध्याय

१६ और ३० मे व्यवसायो के ये नाम दिये हुए हैं:—(१) चोर,(२) सवार, (३) पदाती, (४) नर्तक,(५) काननि,(६) रथवाहक ,(७) रथचनानेवाले,(८) बढई,(९) कुम्हार, (१०) सुनार. (११) कृषक, (१२) बाल बनानेवाला, (१३) धनुप बनाने वाले, (१४) बौने, (१५) कुबड़े (१६) अंधे,(१७) गूँगे,(१८)वैद्य (१९) ज्योतिर्विद, (२०) हाथीवान, (२१) लकडी काटनेवाले,(२२) घोडा और जानवर रखने वाले,(२३) नोकर, (२४) बावर्ची, (२५) फाटक बरदार, (२६) चित्रकार,(२७) नक्काश,(२८) धोबी,(२९) रगरेज, (३०) नाऊ,(३१) विद्वान,(३२) विविध प्रकार की स्त्रियाँ, (३३) चमड़ा कमान वाले, (३४) मछुआ, (३५) शिकारी, (३६)चिडीमार, (३७) जेवर बनाने वाले, (३८) ताजिर, (३९) चक्रवाले, (४०) कवि,(४१) अंगूठी बनाने वाले, (४२) वाद्य शास्त्री, (४३) कार्मा, (४४) और भाषण करनेवाले । इससे तत्कालीन समाज विकसित समझ पडता है ।

यजुर्वेद की कुछ ऋचाएँ ऋग्वेद से ली गयी हैं और कुछ अथर्ववेद से मिलती हैं। ऋग्वेद वाली ऋचाओ के ऋषियो के नाम तो ज्ञात हैं, किन्तु शेष यजुर्वेद के ऋषि ज्ञात नही। केवल अन्तिम ५ अध्याय दधीचि कृत हैं। शेष ३५ अध्यायो के रचयिता प्रजापति, परमेष्ठी, नारायण, पुरुष, स्वयम्भू ब्रह्म, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, आश्विनी, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, मधुच्छन्दा, मेधातिथि, सूर्य्य, याज्ञवल्क्य आदि कहे गए हैं। अधिकांश ऋचाएँ देवताओ की कही गयी हैं, जिससे प्रकट है कि यजुर्वेद की महिमा शेष वेदो से बढ़ी चढ़ी समझाये जाने का प्रयोजन था और इसलिए केवल मानव ऋषि यथेष्ट नही समझे गये। इस वेद मे एक दो स्थानो पर मत्रो का प्रभाव ऋग्वेद की अपेक्षा कुछ बढा हुआ दिखलाया गया है। यजमान को कुल पापों से रहित करने की विनती मात्र नही है, वरन् यह कथित है कि उन से वह रहित हो गया। इसी प्रकार यह कहा गया है कि प्रेत, सब दुष्ट जीव, सब राक्षस, सब कष्टप्रद जीवधारी, मत्रो से जला दिये गये। एक स्थान पर मुर्गे से उपमा दी गयी है। उत्तर पश्चिम के पहाड निवासी मूजवन लाग दुष्ट कहे गये हैं। इस वेद मे

ऋक् और सामवेदो के नाम आये तथा आयु और पुरुरवा के वर्णन हुये हैं। इस मे ऋग्वेद की अपेक्षा विष्णु का वर्णन बहुत आया है। रुद्र की यहां महिमा बहुत कुछ बढी है और वे शिव, शङ्कर, महादेव आदि नामो से पुकारे जाकर ईश्वर हो गये हैं। सन्द और मर्क शुक्राचार्य्य के लडके थे। यह मर्क राक्षसो के पुरोहित कहे गये है। एक स्थान पर तो यह भी कहा है कि सन्द हराये और मर्क भगाये गये। राजा शर्याति का नाम आया है। यह कहा गया है कि आज मुझे ऐसा ब्राह्मण मिले जो पुनीत बाप दादो से उत्पन्न हुआ हो। अच्छा पुरोहित वह है जो स्वय ऋषि हो और ऋषियो की सन्तान भी। इन बातों से बपौती की विचार-वृद्धि का पता चलता है। सिन्धु नदी का वर्णन इस वेद में हुआ है और क्षत्रियो को बल मिलने की प्रार्थना की गयी है। भारतीय क्षत्रियो का भी कथन और जहाज चलने के वर्णन हैं। पुरु एक राक्षस था जिसे भरत ने हराया। उनके लिए १०० वर्षों का जीवन माँगा गया। विश्वकर्म्मा का कथन प्रायः आया और सिंह का भी वर्णन हैं। कहते हैं कि पुरोहितो की जाति पैदा हुई तथा शूद्र और आर्य्य एव तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि उत्पन्न हुए। इस वेद में प्रासगिक छोड अप्रासगिक बाते कम आई हैं। कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चारो को ज्योति प्रदान हो। बिना हाथों का कुनार नामक एक दैत्य दानवो के साथ रहता था। भेड़िया और चीते के कथन कई जगह पर आये हैं। एक अध्याय मे महादेव की बहुत दूर तक प्रशसा है। सुभद्रा कम्पिला के एक राजा की स्त्री थी। अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका के नाम हैं, किन्तु महाभारत वाले नही। अग्नि को तनूनपात् असुर कहा गया है। मागध नाम है जिससे प्रकट है कि मगध देश उस काल तक बस चुका था। लिखा है कि ईश्वर का जाननेवाला ब्राह्मण अपने देवता को स्ववश में रक्खेगा। ईश्वर का वर्णन बहुत साफ है। व्यन्स को इन्द्र ने मारा। कहते हैं कि आर्य्य और दास दोनो ईश्वर ही के हैं। पवीरु एक अच्छा राजा था। सातो नदियो तथा दधिक्रवन और सप्त ऋषियो के कथन हैं। शतानीक और सुरभि के नाम आए हैं।

अथर्ववेद

अथर्व ऋग्वेद के साथ ही अथवा कुछ पूर्व प्रारम्भ हुआ और पीछे तक बनता रहा। इसको अथर्वाङ्गिरस और भृग्वाङ्गिरस भी कहते हैं। अथर्वण पहले ऋषि थे जिन्होंने लकडियो को रगड कर आग पैदा की। अङ्गिरस और भृगु भी प्राचीन ऋषि थे। इन तीनों ऋषियो और इनके वंशधरो का वर्णन ऋग्वेद मे कई बार आया है। कहा जाता है कि इन्ही तीनो ऋषियो के वशधरो को यह वेद भाषित हुआ। ऋग्वेद अन्य वेदो की सहायता लेकर नही चलता, वरन् स्वावलम्बी और ऐतिहासिक दृष्टि से बडा लाभकारी है। यही दोनो गुण अथर्ववेद मे भी पाये जाते हैं। ऋक् और अथर्ववेदो मे प्रधान अन्तर यह है कि पहले मे ब्राह्मणत्व की महिमा स्थापित नही हुई थी, किन्तु दूसरे के समय मे ऐसा भली भाँति हो चुका था। ऋग्वेद मे प्राकृतिक वर्णनो की प्रधानता है। उस काल हमारे ऋषिगण प्रकृति देवी ही पर मुग्ध थे। अथर्ववेद मे वे टोना टनमनो आदि पर भी बहुतायत से विश्वास करते थे और भूत प्रेतो आदि का भी भय मानते थे। भारतीय आयुर्वेद शास्त्र का भी पहला प्रादुर्भाव अथर्व ही मे हुआ। ऐसे अन्तरो को छोड देने से ये दोनो वेद प्रायः सम हैं। कुछ विद्वानो का मत है कि अथर्ववेद के बहुत से अश हैं तो ऋग्वेद के समकालिक, किन्तु ऋक् की अपेक्षा वे कुछ नीचे दर्जेवालो मे प्रचलित थे। ऋग्वेद में भी लिखा है कि अङ्गिरसवशी मायावी थे। इस वश से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के कारण भी अथर्ववेद मे यन्त्र मन्त्रों का बाहुल्य हुआ होगा, ऐसा सम्भव है। मोटे प्रकार से ऋग्वेद मे आदिम हिन्दूमत का चित्र खिचा हुआ है, किन्तु अथर्व मे समय के साथ धर्म का कुछ विकसित रूप देख पडता है। अतः प्राचीन हिन्दू मत मे नवीन सिद्धान्तों का विकास धीरे धीरे किस प्रकार से हुआ, सो इन दोनो अमूल्य वेदो को मिलाकर पढ़ने से प्रकट हो सकता है। कुछ पाश्चात्य पण्डितो का मत है कि आधुनिक विकासो का मूल दिखलाने एव अन्य कारणो से विद्वानों के लिए अथर्व ऋग्वेद से भी अधिक रोचक है। यह बात हर प्रकार से निर्विवाद है कि वैदिक साहित्य मे ऋग्वेद, अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण विद्वानों के लिए सर्वप्रधान हैं।

अथर्ववेद मे २० काण्ड, प्राय: ७६० सूक्त और ६०१५ छन्द हैं। इनमें से १२०० ऋचायें ऋग्वेद से ली गई हैं । अथर्ववेद के ऋषियो के नाम पृथक् पृथक् नही दिये गये हैं । इसके प्रत्येक मण्डल मे कई अनुवाक हैं और प्रत्येक अनुवाक मे कई सूक्त तथा प्रत्येक सूक्त मे कई ऋचाएँ हैं । ऋग्वेद आदिम हिन्दूसमाज का वर्णन करता है किन्तु अथर्ववेद मे वर्द्धमान समाज देख पडता है । स्त्रियों का वर्णन इसमे कम है तथा झाडने फूँकने के मन्त्र बहुत से हैं । उस काल हम लोगो मे द्यूतक्रीडा का बहुत प्रचार था । अथर्व में जुए मे जीतने के लिए सूक्त कहे गए हैं। जगत के रचयिता के विषय मे विश्वकर्मा का नाम आया है। काण्ड ३ सूक्त २२ मे गाय और बैल के मांस खाने का कथन हुआ है। लड़का पैदा होना अच्छा माना जाता था और लड़की की उत्पत्ति कम माँगी जाती थी । कुटुम्ब मे सुमति रहने और सब के कुशलपूर्वक निर्वाह होने के विषय मे सूक्त हैं । भेड़िया, बाघ आदि दुष्ट जीवो के हटाने के विषय मे ऋचाएँ हैं । ब्राह्मण जब पैदा हुआ तब उसके दस हाथ और दस पैर थे । इस कथन से प्रकट है कि उस काल से ही पोपलीला का आरम्भ हो चला था । ऐसे वर्णन ऋग्वेद मे नहीं आए हैं। स्वर्ग का वर्णन सब वेदों में है, किन्तु इस वेद में उसकी बहुत प्रचुरता है, यहाँ तक कि एक पूरे सूक्त में विशेषतया स्वर्ग का ही कथन है। लिखा गया है कि तेरहवाँ महीना अर्थात् लौद इन्द्र का पैदा किया हुआ है। वभ्रु एक राजा थे । अरात का वर्णन एक सूक्त में आया है। सूमों की निन्दा और उदार लोगों की प्रशंसा है। ब्रह्मचारी और सप्तर्षि के वर्णन हैं । लिखा है कि शूद्र अपनी गुरुता से आर्य्य का अपमान न करे । यदि १० अब्राह्मण किसी स्त्री को चाहते हों और एक ब्राह्मण उसे चाहे तो वह उसी की होगी। जो कोई ब्राह्मण का निरादर करता अथवा उसे लूटता या दुःख पहुँचाता है उसकी दुर्गति होती है।

मूजवन, महावृष और वाल्हीक जातियाँ उत्तर-पश्चिम में रहती थी। कहा गया है कि हे ज्वर, तू मूजवन, वाल्हीक, महावृष, आंगो (वर्तमान भागलपुर) और मागधो की ओर जा। इससे प्रकट है कि उस काल अङ्ग और मगध में भी अनार्य्यों का निवास था । यह

भी लिखा है कि हे ज्वर तुम लम्पट शूद्र बालिका के पास जाओ। चीता और सर्प के वर्णन हैं। गाय और बछडे को आशीर्वाद दिया गया है। गाय और ब्राह्मण की बडी प्रशसा है। प्रजापति, स्कभ, पुरुष और विश्वकर्मा के नामो से ईश्वर का वर्णन है। चीते को शक्ति का प्रतिरूप समझते थे। मरणप्राय मनुष्यो के बचाने के लिए एक सूक्त है। विराज के वर्णन मे भी ईश्वराश का कथन है। अगिरस वंशी जादूगर कहे गए हैं। किमिदिन, अलिन्स और वत्सप राक्षस थे। कहते हैं कि किलिम्प बच्चे को बचावे और गर्भ मे उसे लडकी न होने दे। नेवला दवा जानने वाला बताया गया है। स्वराज विराज मे पहले माना गया है। विराज भक्ति का पिता कहा गया है। एक स्थान पर विराज का वर्णन स्त्रीलिङ्ग मे भी है। असुरो को राक्षस कहा है। राक्षसो की माया का वर्णन है। लिखा है कि प्रह्लाद के पुत्र विरोचन थे। असुर माया पर ही भरोसा करते थे। द्विमूर्धा और आर्त्तव राक्षस थे। चित्ररथ और वसुरुचि गन्धर्व थे। वेन के पुत्र पृथु ने पृथ्वी को दुहा। वैश्रवण और कुवेर के नाम आए हैं। धृतराष्ट्र नामक एक नाग सरदार था। जो ब्राह्मण यज्ञ मे बैल की बलि देता है, उसकी सब देवता सहायता करते हैं। गाय की पूजा विशेष रूप से होने लगी थी। उसके खुर और पूँछ के बाल भी पूजे जाते थे। गाय यज्ञ से निकली है। क्षत्री की माता गाय है तथा विष्णु, पृथ्वी और ब्रह्मा गाय हैं। जो ब्राह्मण गाय देता है उसको बड़ा पुण्य होता है। कृत्या से जादूगरो के मारने की प्रार्थना की गई है। सप्तर्षि दुनिया के मालिक कहे गये हैं और उनसे आग निकालने की प्रार्थना है। ऋषिसन्तानों की बड़ी प्रशंसा है।

अर्धक को रुद्र ने मारा। शायद यह नाम अन्धक का हो। ब्रह्मचारी के लिये कहा गया है कि काला मृगचर्म ओढ़े। तैत्तिरीय उपनिषत् मे लिखा है कि भरद्वाज ने तीन जन्म तक ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन किया। तीसरे जन्म के अन्त मे उनसे इन्द्र ने पूछा कि तुम्हें यदि चौथा जन्म मिले तो क्या करो? उत्तर मिला कि ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करूँ। कहते हैं कि मातलि अमृत को जानते हैं। जो क्षत्री जान-बूझकर गाय छीन लेता है उसे बड़ा पातक लगता

है। लिखा है कि हे गाय! तू ब्राह्मणो को दुख देनेवालो का सिर फोड़ दे। अग्नि को क्रव्याद कहा है। सविता ने अपनी पुत्री सूर्य्या को उसके पति को दान मे दिया। स्त्री से कहते हैं कि तुम अपने घर जाओ और सबसे अच्छी तरह बातचीत करो, अपने लड़को से प्रसन्न रहो और सब के ऊपर आज्ञा चलाओ, अपने पति से अलग न हो और हँस खेल कर रहो, पति के साथ पूरा प्रेम करो, अपने पति के बाप, भाई और माता को वश मे रक्खो। सब वस्तुओ की मालकिन बनो। हे स्त्री तुम्हे मैने अपने घर का मालिक बनाया है, सबके ऊपर दया करो और सबसे मृदुता का व्यवहार रक्खे। पति के बाप से स्नेह रक्खो और सास ससुर से मृदुता का बर्ताव करो, गाय बैलो से ख़ुश रहो, घर की सब चीजो को ढङ्ग स रक्खो, घर के सब जीवधारियो को प्रसन्न रक्खो, प्रातःकाल पति के साथ एक ही पलग पर हँसी ख़ुशी से जागो, वीर पुत्र उत्पन्न करो। इन आज्ञाओ से प्रकट है कि उस काल स्त्रियों का पद बहुत ऊँचा था। उनके अधिकार और भार भी बहुत गम्भीर थे।

व्रात्य लोग अनार्य्य थे। वे व्रात्य स्तोम के द्वारा हिन्दू बनाए गए। १०० पतवारो के जहाजो का वर्णन है। एक स्थान पर हज़ार वर्ष जीने की इच्छा प्रकट की गई है (काण्ड १७ सूक्त १)। यम यमी की बातचीत इस वेद में भी है। प्रार्थना की गयी है कि हे दर्भ! तू मुझको ब्राह्मण, आजन्म शूद्र, और आर्य्य सब का प्यारा बना। मत्स्यदेशियो का कथन आया है। मत्स्य देश पूर्वीय राजपूताना को कहते हैं। इक्ष्वाकु और व्यास नामक दो राजा थे। समय को सात लगाम वाला घोडा कहा है। कदाचित् इसी से सूर्य्य के रथ मे ७ घोड़े माने गये। सफ़ेद किरण ७ रङ्गों से बनती हैं। इसी से ७ लगामों और ७ घोडों के विचार उठे हुए जान पड़ते हैं। समझ पडता है कि उस काल के आर्य्य तत्वसम्बन्धी यह ज्ञान रखते थे। कहा गया है कि हम १०० वर्ष जीएँ, वरन् इससे कुछ अधिक हमारा जीवन हो (काण्ड १९ सूक्त ६७)। करञ्ज और परञ्ज के नाम आये हैं। इन्द्र ने २० राजाओं को हराया। रोहिण राक्षस मारा गया। इन्द्र ने सुश्रव और तूर्ष्वयान को बचाया, तथा दधीच की हड्डी से

हथियार बना कर सरयानीवान झील के निकट ९९ एवं ७ दनुओं को मारा। उशना इन्द्र के मित्र थे। रुम, रुशम और श्यावक के नाम आये हैं। रुशमों के राजा कौरम और ऋणञ्चय थे। इन दोनों की प्रशसा हुई है जिससे जान पडता है कि ये दोनों आर्य थे। राजा परीक्षित का नाम आया है और लिखा है कि कौरव्य लोग इनकी प्रशंसा करते हैं। रज नामक एक राक्षस था। उच्चैश्रवा इन्द्र का घोडा था। प्रतोप प्रातसुत्यन का नाम आया है। लिखा है कि दधिक्रवन घोडा विजयकर्ता है। कृष्ण दस हजार साथियो के साथ अंशुमती के किनारे रहता था। वही बृहस्पति, इन्द्र और मरुत् ने उसे मारा। कृष्ण, नमुचि और शम्बर भारी राक्षस थे। इनका सामना कोई नहीं कर सकता था। तब इन्द्र ने इन्हे मारा। राजा पृथु के साथ उनके पिता वेन का नाम प्रायः आता है यहाँ तक कि वे वैन्य पृथु लिखे जाते हैं। आदि पुरुष का वर्णन आया है। सूर्य, इन्द्र, अग्नि आदि मे भी ईश्वर का भाव कहा गया है। कुत्स अर्जुन के पौत्र थे। दैन्य, दानव आदि शब्द कई बार आये हैं तथा अगस्त्य का नाम भी कई बार है। वीतहव्य लोगो का कथन है। सोभरि ऋषि का नाम आया है। इनका वर्णन विष्णु पुराण मे बहुत है। अथर्ववेद मे रोग शान्ति, मृत्यु से बचना, सर्पविष निवारण आदि के विषय मे बहुत से मन्त्र हैं। यह वेद कहता है कि मगध और अग आर्य्य सभ्यता के किनारो पर थे (Rapson)। अग वर्तमान मुँगेर और भागलपूर जिलों पर था।

———

आठवाँ अध्याय

चारो वेद (प्रायः २००० से ७०० बी० सी० तक)।

छठवें अध्याय मे हम वेदो का कुछ विस्तृत वर्णन कर आये हैं और सातवे मे उनका सूक्ष्म ऐतिहासिक ज्ञान कहा जा चुका है। अब चारो वेदो को मिलाकर जो मुख्य निष्कर्ष निकलते हैं उनका कथन होगा। योग्य समझ पड़ता है कि अपने विचार लिखने के पूर्व कुछ योरोपीय पडितो के भी सिद्धान्तो का थोडा-सा विवरण कर दिया जावे। रैप्सन कृत कैम्ब्रिज इतिहास (सन् १९२२ वाले सस्करण) के प्रथम अध्याय मे यह विषय कथित है। उसके अनुसार ब्राह्मी भाषा द्वारा द्राविड बलूचिस्तान से सम्बद्ध हैं। ब्राह्मण पुस्तको के मनन करने वालो का विचार है कि यजुर्वेद मे जाति बहुत कर के वर्तमान थी। यह कथन कुरु पांचाल से सम्बद्ध है। बौद्ध पुस्तको के पंडित कहते हैं कि बुद्ध के समय तक पीछे वाले दृढ़ जाति भेद का पता नहीं है। यह कथन कोशल और विदेह से सम्बद्ध है। ब्राह्मण और बौद्ध धर्मो का मुख्य अन्तर सामाजिक और धार्मिक विचारो के सम्बन्ध मे है। उत्तरी भारत मे पाषाण और लौह युगो के बीच मे ताम्र युग था, किन्तु दक्षिणी भारत में ऐसा न था।

पन्द्रहवी शताब्दी बी० सी० मे आर्य्य जातियो वाले लोगों का प्रभाव उत्तरी लघु एशिया से उत्तर पश्चिमी वैबिलोनिया तथा मीडिया तक भारी देश मे था। डाक्टर पो० कीथ के अनुसार ऋग्वेद दूसरे से सातवे मण्डलो तक से प्रारम्भ हुआ, अनन्तर प्रथम मण्डल का द्वितीय भाग बना, फिर उसका प्रथम भाग और आठवाँ मण्डल बना। तब प्रथम आठो मण्डलों से सोम पवमान सम्बन्धी ऋचायें निकाल कर नवाँ मण्डल बनाया गया और तब दसवे मण्डल का गान हुआ। वालखिल्य मुख्य सहिता का अश नही है। दान-स्तुति भी पीछे जुड़ी। आर्य्यों ने समय पर अफग़ानिस्तान पर अधिकार जमाया। वे कुभा

(काबुल नदी), सुवस्तु (स्वात), क्रुमु (कुरेंण), गोमती (गुमल) और परुष्णी (रावी) के किनारे बसे। ऋग्वेद मे विन्ध्य, नर्मदा, चीता और चावल के कथन नहीं हैं यद्यपि सिंह तथा मृगहस्तिन (हाथी) के हैं। पीछे के समय साम का प्रचार कम हो गया। सुदास तृत्सु भारत थे। उनके युद्ध मे कम ज्ञात पॉच वंश थे: अलिन (उत्तर पूर्वी काफिरिस्तान), पक्थ (अफ़गान फ़गथून से मिलता है), भलान (शायद बोलन घाटी से सम्बद्ध हो), शिव और विशाति (इन सब के कथन महाभारतीय युद्ध मे हैं)। इनसे इतर पॉच वंशो मे निम्न हैं :—अनु (परुष्णी पर), द्रुह्यु, तुर्वश, यदु और पुरु। युद्ध मे जीत कर पूरब की ओर पलट कर सुदास भेद का सामना करता है। भेद के साथ अज, शिग्नु और पक्थ लोग भी थे। ये सब यमुना के निकट विकराल क्षय के साथ पराजित हुये। दिवोदास अतिथिग्व के भी युद्ध तौर्वश, यादव और पौरव लोगो से हुये थे। वे शम्बर से भी लड़ते रहे थे अथच पणि, पारावत और वृसयो से भी। भरद्वाज इनके पुरोहित थे। कुरु और क्रिवि मिले हुये लोग थे तथा भारत और सृंजय मिले थे।

ऋग्वेद में लिङ्ग पूजा की दो बार निन्दा है। दास अनास कहे गये हैं। शूद्र शब्द का पहला कथन पुरुष सूक्त मे है। दासो के पास ढोरों के समूह और पुर (क़िले) थे। बलवूथ की उदारता की प्रशंसा है। सुदास के युद्ध मे आर्य्यों को कुछ दासो न भी सहायता दी अथच दासों को कुछ आर्य्यों ने। पनि का नाम है। ईरान (फ़ारस) से कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं है। कुटुम्ब पैत्रिक था मात्रिक नहीं। स्त्री चरित्र ऊँचा था। उसके बहु विवाह अज्ञात थे। भाई, बहन तथा पिता पुत्री क विवाह अनुचित थे। पिता के पीछे पुत्री भाई की संरक्षकता में जाती थी। तलाक़ न थी। कभी कभी विधवा भावज से देवर विवाह करता था। पिता सदैव कृपालु लिखा है। उसके अधिकार अनिश्चित किन्तु भारी थे। ऋचिराश्व को पिता ने नेत्रहीन कर दिया। पिता सम्पत्ति का स्वामी था। ढोर डगर, घोड़े, सोना, अलंकार, अस्त्र, दास आदि उसी की सम्पत्ति थे। कभी कभी तीन पुश्तें तक एक में रहती थीं। जुदा हुये भाई भी निकट रहते थे। इसीसे ग्राम

की उत्पत्ति है। इससे बढकर विश है तथा उससे भी बढकर जन। ग्रामणि ग्राम का अफसर था। सब समूह आर्य्य थे और एक दूसरे से सौहार्द्र रखते थे। वेद मे पुरुष सूक्त से इतर जाति भेद नहीं है। यद्यपि ऋग्वेद मे जाति-भेद बनता हुआ ही देख पडता है, तथापि उसका पूर्व रूप प्रस्तुत है।

समूहो का अधिपति राजा था। राजपद साधारणतया वश परम्परागत था, किन्तु कभी कभी निर्वाचन भी होता था। प्रजा की रक्षा करना उसका कर्तव्य था। ग्रामणि, व्रजपति और पुरोहित एक दूसरे से बडे थे। समय पर पुरोहित से ही ब्राह्मण राजनीतिज्ञ का पद निकला। इस काल तक भूमिदान अज्ञात था, यद्यपि उसका होना सम्भव है। राजा के यहाँ समिति और सभा थीं। समिति शायद असेम्बली को कहते हो। सभा उसके एव सामाजिक समूहो के जुडने के स्थान को कहते थे। समिति मे राजा भी जाता था। चोरी, सेंध का लगना और मार्ग की लूटों के कथन हैं। ऋग्वेद मे चोर को प्राणदण्ड नही लिखा है। चोर से चोरी की हुई वस्तु मँगा ली जाती थी। कुछ व्यभिचार के होते हुए भी आचार ऊँचा था। वृद्धों या कन्याओं का वध नहीं होता था।

व्यापार में अदला-बदली थी और गाय का व्यवहार सिक्के की भाँति भी होता था। कोई और सिक्का न था। निश्क शायद अलंकार हो। पीछे सोने का सिक्का चला। दायज तथा शुल्क के कथन हैं। ठहराव केवल धन ऋण के रूप में था। जुवे का प्रचार था। मध्यमशी सरपच या राजा था। रथी सारथी के बाये रहता था। पदाती भी थे। धनुष, बरछे, भाले और तलवार के कथन हैं। कवच और शिरस्त्राण भी हैं। घोडा दधिक्रवण था। निशित बाण कभी कभी चलते थे। आर्य्यों मे नागरिक जीवन का अभाव था। ग्राम मे कई घर होते थे। पुर मिट्टी का धुस था। गृहाग्नि प्रज्वलित रहती थी। घुडदौड होती थी। भेड़ी, बकरे, गधे, कुत्ते और बिल्ली तब तक पाली न गई थी। खेती और सिचाई का प्रचार था। यव बोये जाते थे। धनुष बाण, फन्दों आदि से शिकार खेलते थे। कारीगरी में बढई, लोहार आदि के काम अलग हो रहे थे। लोहार आयस से बतन

बनाता था। नावे पतवार से भी चलाई जाती थी। लगड, डॉड, बादवान और मस्तूल के नाम नही हैं।

पोशाक मे दो या तीन कपडे पहनते थे। भेड के ऊन और खालो का भी चलन था। घी का बहुत व्यवहार था। गो-मांस खाते थे। गाय अध्न्य कहलाती थी। सोम का चलन था। नशे की आधिक्य के कारण सुरा कम पीते थे। रथदौड, नाच, बाजा, नगाडा, सारगी और बॉसुरी के चलन थे।

कीथ का मत—सामवेद ऋक पर बहुत कुछ आश्रित एव ऐतिहासिक दृष्टि से सारहीन है। यजुर्वेद का गद्य प्राचीनतम वैदिक गद्य है। शायद पचविंश ब्राह्मण का गद्य इससे भी प्राचीन हो। यह सामवेद का ब्राह्मण है। ऋग्वेद के ब्राह्मण पीछे के हैं। गोपथ ब्राह्मण कौशिक और वैतान सूत्रो से पीछे का है। अब आगे से इतर विचारानुसार कथन होते हैं।

वेद हम लोगों के सबसे पवित्र ग्रन्थ हैं। इनकी प्राचीनता और यथार्थभाषिता के कारण इनमे कथित ऐतिहासिक घटनाएँ प्रामाणिक मानी गई हैं। इसीलिए भारत के साधारण इतिहास मे भी इनका इतना भारी वर्णन करना उचित समझा गया। इनके धार्मिक ग्रन्थ होने पर भी ऐतिहासिक मूल्य बहुत है। वेदों मे बहुत से देवताओं का वर्णन होते हुए भी इनमें ईश्वर का विचार मुख्य रक्खा गया है। सूर्य, मेघों का राजा इन्द्र और अग्नि की प्रधानता होते हुए भी यह प्रकट है कि आर्यों ने इनकी पूजा नहीं की, वरन् इन सबके अन्तर्गत जो एक शक्ति है उसीको प्रधान माना। बहुतो का विचार है कि वेदो ने अग्नि, सूर्य, इन्द्रादि को एक ईश्वर के अधीन उपदेवता माना है, किन्तु वास्तव में ऐसा नही है और वेद भगवान् उन सबको एक ईश्वर की शक्तिमात्र मानते हैं। पुरुषसूक्त मे इस विचार का पुष्टीकरण मिलता है और यत्र तत्र भी इसको पुष्ट करनेवाली ऋचाएँ बहुतायत से प्रस्तुत हैं। वैदिक ऋषि लोग बहुतायत से उस देश मे रहते थे जो सप्त सिन्धु कहलाता था। उन्होंने सुमुद्र पर जलयान चलाये। वे छोटे छोटे गाँवों में रहते थे जिनमें एक मुखिया भी होता था। उनकी सभ्यता बहुत चढ़ी बढ़ी थी। सडकों के किनारे इन्होने विश्रामगृह बनवाये,

जिनमे भोज्य पदार्थ प्रस्तुत रक्खे जाते थे। सोने का भी सिक्का चलता था जिसे निष्क कहते थे। इनमे सुरापान और जुए की भी कुछ कुछ लत थी। विनष्ट ज्वारी की स्त्री अन्य पुरुषो का लक्ष्य हो जाती थी। पीछे से सुरा के विषय मे लिखा है कि उसे न पीना चाहिए, न लेना चाहिए और न देना चाहिए।

ससार भर का साहित्य जोडने से भी आर्य जाति का सबसे पुराना गद्य यजुर्वेद ही मे मिलता है। उसके पीछे का गद्य ब्राह्मण ग्रन्थो मे पाया जायगा। सबसे पहला पद्य ऋग्वेद मे मिलेगा। ऋग्वेद की सब से पुरानी प्रति शाकल शाखा की मिलती है जिसमे कुल मिलाकर १०२८ सूक्त हैं। मैकडानल महाशय का मत है कि ऋग्वेद के दसो मण्डलो में से दूसरे से सातवे तक पहले बने और शेष चारों मण्डल धीरे धीरे बढ़े। कहते हैं कि जब आठ मण्डल पूरे बन चुके थे तब नवाँ मण्डल बना। फिर भी अब तक वैज्ञानिक खोज ने इन मण्डलों का पूर्वापर क्रम दृढ नही कर पाया है। पाश्चात्य पण्डितो का मत है कि जब पहले नौ मण्डल पूरे हो चुके थे, तब दसवे मण्डल के सूक्त बने। इस मण्डल मे प्रथम नौ मण्डलों के उषा आदि देवता छूट गये हैं और इन्द्र, अग्नि आदि बड़े बड़े देवता मात्र रह गये हैं। उधर विश्वेदेवस् का प्रभाव बढ़ा हुआ है, जिनमे ससार के सारे देवताओ का विचार आ जाता है। क्रोध, भक्ति आदि विचारों का देवताओ के स्वरूप में इसी मण्डल में व्यक्तीकरण भी हुआ है। ससार, विवाह, अन्त्येष्टि, यन्त्र, मन्त्र, दार्शनिक विचारों आदि के विषय मे सूक्त होने से भी यह मण्डल नया समझा गया है।

दूसरे मे सातवे मण्डल पर्य्यन्त ऋषियों मे एक एक घरानों का प्राधान्य अवश्य है, और इनमे से प्रत्येक मण्डल का थोड़े ही थोड़े समय मे बनना निश्चित है, किन्तु पूरे दसवें मण्डल का इनके पीछे बनना समझ में नही आता। दसवे मण्डल मे बहुत से बडे पुराने पुराने ऋषि हैं जैसे चाक्षुषमनु, वैवस्वत मनु आदि। तीसरे और सातवे मण्डल में राजा सुदास का वर्णन आया है जो पुरु के वशधरों मे ४० वीं पीढ़ी पर थे। चाक्षुषमनु वैवस्वत मनु से भी पहले के हैं। सुदास का तीसरे और सातवें मण्डलों के अनुसार ययाति के

वशधरो से युद्ध हुआ था। इधर दसवे मण्डल में स्वय ययाति की रचनाएँ प्रस्तुत हैं। अत: पौराणिक साक्षी पर न विचार करने से भी वेदो ही के आधार पर सिद्ध होता है कि दसवें मण्डल की कम से कम कुछ ऋचाएं तीसरे और सातवे मण्डलों से भी पुरानी हैं। पहले आठवे नवे और दसवे मण्डलों की वर्तमान स्थिति भगवान् वेद व्यास के सम्पादकत्व से हुई। अत: इनमे बहुतेरी नयी और पुरानी ऋचाएँ सभी कही मिली हुई हैं। अत: केवल थोडी ऋचाओं के सहारे इन पूरे चारों मण्डलों का समय निर्धारित करना भूल है। सम्भव है कि भगवान् वेदव्यास ने व्यक्तीकरण, दर्शनशास्त्र, रस्म-रिवाजों आदि से सम्बन्ध रखनेवाली ऋचाओं को एक ही मण्डल मे रखना उचित समझा हो, जैसा कि सम्पादकों के लिए ठीक भी है। इसलिए पाश्चात्य पण्डितों के उपर्युक्त विचार हमे ग्राह्य नहीं समझ पडते। इन चार मण्डलों का पूर्वापर क्रम स्थिर करना ठीक नहीं है, क्योंकि इनमे सम्पादक का भी हाथ बहुतायत से लगा हुआ है। इनकी ऋचाएँ नयी और पुरानी सब प्रकार की हैं। राजा सुदास के समय मे आर्य्यों का समाज भारत मे बहुत बढ़ चुका था। इस काल मे आर्य्यों का केवल अनार्य्यों से युद्ध नही होता था, वरन् आर्य्यों के आपस मे भी घोर सग्राम होने लगे थे।

इन छहो मडलो के ऋषियों मे से बहुतों ने सख्या मे बहुत से सूक्त बनाए, किन्तु शेष चारो मडलों के ऋषियों की रचनाएँ थोडी ही थोडी हैं। उन ऋषियो में कई बहुत पुराने और कुछ नये भी हैं। इन बातो से जान पडता है कि जब वे मडल बने, तब हमारे ऋषिगण सूक्त-रचना में बहुत सिद्धहस्त नही हुए थे। पीछे से दूसरे से सातवें मडल तक के रचनाकाल मे एक एक ऋषि ने बहुत से सूक्त बना डाले, जिससे विशेष रचना-पटुता पायी जाती है। इन कारणो से ऐसा समझ पडता है कि २१वीं तथा २०वीं शताब्दी बी० सी० से ही सूत्रपात्र होकर स्फुट सूक्तों का निर्माण होता रहा। समय पर सम्पादक ने इन नए और पुराने सूक्तो को पहले, आठवें, नवे और दसवें मडलों मे विभाजित कर दिया। शेष मण्डल मुख्य मुख्य वेदर्षि घरानो के हैं।

रामचन्द्र काल के इधर उधर सूक्त मात्रा मे बहुत बने। दसवे मण्डल का बृहदंश नवीन है।

अब यह प्रश्न उठता है कि सहिता को उसका वर्तमान रूप कब मिला, अर्थात् चारो वेदो का सम्पादन कब हुआ ? वेदो के व्याकरण और उनके विषय मे उच्चारण सम्बन्धी नियमो पर विचार करके पाश्चात्य पण्डितो ने स्थिर किया है कि ब्राह्मण ग्रन्थो के निर्माणोपरान्त सहिता को वर्तमान रूप मिला । यही बात हमारे शास्त्रों के अनुसार भी समझ पडती है। वेदो के सम्पादक भगवान् वेदव्यास युधिष्ठिर के पितामह थे । वेदो का पहला सम्पादन अथर्वण ऋषि ने किया। अन्तिम सम्पादन व्यास ने जनमेजय के समय किया। विष्णु पुराण मे २८ व्यास लिखे हैं जिनमे स्वयं पराशर और द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के भी नाम हैं। सम्पादन चला व्यास का ही। पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ और घनपाठ के द्वारा जैसे हमारे ऋषियो ने वेदो का शुद्ध रूप स्थिर रक्खा, उसका वर्णन पिछले एक अध्याय मे हो चुका है।

अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि संहिता का शुद्ध अर्थ किस प्रकार लगाया गया है । हमारे यहाँ सुधारको ने अपने नवविचारों को नये न कहकर प्राचीन ग्रन्थो के नवीन अर्थों से पुष्ट करने का बहुधा प्रयत्न किया। इसी लिए संहिता का शुद्ध अर्थ लगाना बहुत स्थानों पर कठिन कार्य्य हो गया है । यास्क एक बहुत बड़े प्राचीन वेदार्थकार हैं । इन्होंने निरुक्त शास्त्र की रचना करके ससार मे विशुद्धार्थ-प्रचार का प्रयत्न किया। आपका समय मैकडानल महाशय के अनुसार चौथी शताब्दी बी० सी० है। यास्क ने अपने पूर्व के १७ वैदिक टीकाकारो के नाम लिखे हैं । उस काल भी वैदिक टीकाकारों मे इतना गडबड़ था कि कौत्स ने, जो इन १७ टीकाकारों मे से एक थे, लिखा कि वैदिक अर्थ सम्बन्धी विज्ञान वृथा है क्योंकि वैदिक सूक्त एव ऋचाएँ अर्थहीन, गूढ और एक दूसरे के प्रतिकूल हैं । पाश्चात्य विद्वान् भी तैत्तिरीय को परम प्राचीन उपनिषदो में मानते हैं । उसमे प्रत्येक वैदिक ऋचा के पॉच पॉच प्रकार के अर्थों का होना कहा गया है। यास्क ने कही कही ऋचाओ के एकाधिक अर्थ लिखे हैं । यद्यपि रावण, उव्वट, महीधर आदि अनेक वैदिक टीकाकार हैं, तथापि

पाश्चात्य पडितो ने यास्क और सायण की ही प्रधानता रक्खी है। सायण चौदहवी शताब्दी मे हुए। यह महाराजा विजयनगर के दीवान थे। इन्होने ऋग्वेद का बड़ा ही उत्कृष्ट अर्थ किया जिसमे किसी शब्द का अर्थ नहीं छूटा। कहा जाता है कि असख्य गुणगण रखते हुए सायण मे इतना दोप भी है कि उन्होन प्रत्येक ऋचा के अर्थ लगाने मे औरो पर ध्यान नहीं रक्खा। अत: उनकी पूरी टीका पढ़ने मे कही कही प्रतिकूलता देग्व पडती है। पाश्चात्य पंडित गाथ महाशय ने टीकाकारा का आँख बन्द करके प्रमाण नहीं माना। आपका विचार है कि वेदो का अपनी ज्याति से चमकना चाहिए, अर्थात् हमे टीकाकारो के पीछे न चल कर स्वय वैदिक ऋषियो का शुद्ध भाव खोज निकालना उचित है। इसलिए उन्होने वह टीका विधान चलाया जिसे ऐतिहासिक कहते हैं। तुलनात्मक शब्दार्थ शास्त्र एवं अवस्ता से आपने सहायता ली। अवस्ता पार्सियो का धर्मग्रन्थ है। इनके पूर्व पुरुष आर्य्यो के प्राचीन स्थान मे हमारे पूर्व पुरुषो के साथ रहते थे। इसलिये अवस्ता के शब्द और अर्थ ऋग्वेद से वहुत कुछ मिलते हैं। सब भारतीय पडितगण पाश्चात्य टीकाओ का प्रमाण नहीं मानते। फिर भी इनका सायणाचार्य्य से वहुत थोडा मतभेद है। इसलिये हमारे ऐतिहासिक प्रयोजनार्थ वेदार्थ जानने मे विशेष गड-बड़ नही समझ पडता।

वेदो का साहित्य भद्दा अथवा साधारण नहीं है, वरन् हमारे ऋषियो ने सूक्तनिर्माण मे बहुत बडा चातुर्य्य दिखलाया है। उनके विचार बहुत स्थानों मे सुन्दर और महत्तापूर्ण हैं, ऐसा पाश्चात्य पडितो ने भी माना है।

वैदिक देवता बहुत करके प्राकृत शक्तियो के व्यक्तीकरण हैं। हमारे यम और मित्र वाले भाव पार्सियो के इम और मिथ् सम्बन्धी विचारो से मिलते हैं। वेदों मे एक ईश्वर का कथन हुआ है। इन्द्रादिक उसी की शक्ति प्रकट करते हैं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। वैदिक देवताओ मे इन्द्र, अग्नि, सूर्य्य और वरुण की प्रधानता है। विष्णु और शिव साधारण वैदिक देवता हैं जिन्होंने पीछे भारी ख्याति पाई। ऋग्वेद मे बहुत करके ३३ देवताओं का कथन है, किन्तु महर्षि

विश्वामित्र ने यह संख्या बढा कर ३३३९ कही। पौराणिक समय मे यही सख्या बढ़ कर कही कही तैतीस करोड हो गयी है। प्रतिमाओ का वर्णन वेदो मे नही पाया जाता और विशेषतया सूत्र काल से चलता है। प्राचीन काल मे वरुण की महत्ता इन्द्र से बढी हुई थी, किन्तु वैदिक समय मे कुछ काल सम रह कर वह पीछे स बहुत गिर गयी। देवियो की महिमा वेदो मे बहुत कम है। सरस्वती नदियो मे सबसे पुनीत मानो गयी है। समय पर ब्राह्मण काल मे सरस्वती वाग्देवी हा गयी। पीछे से पौराणिक समय मे वह बुद्धि विद्या आदि की अधिष्ठात्री देवी हुई और ब्रह्मा की स्त्री मानी गयी। साम पहले एक प्रकार का रस मात्र था जो एक पहाड़ी पोधे से निकाला जाता था। चन्द्रमा के सुधाकर होने से धीरे-धीरे साम सम्बन्धी विचार चन्द्रमा से मिल गए, यहा तक कि समय पर सोम चन्द्रमा का ही नाम हो गया। पासियो की अवस्ता मे लिखित सोम-सम्बन्धी भाव वैदिक विचारो से बहुत अधिक मिलते है। पौराणिक समय मे सप्तर्षि का कथन बहुत अधिकता से आता है, यहाँ तक कि नक्षत्रो मे भी सप्तर्षि हैं। ऋग्वेद मे भी सप्तर्षि सम्बन्धी थोडा सा कथन है। नागो का वर्णन वेदो मे थोडा सा हुआ है और सूत्रो मे उनकी महिमा कुछ बढ़ी है। पुराणो मे इनका वर्णन अधिकता से है। इनके विषय में अपने विचार हम ऊपर लिख आए हैं। ऋग्वेद मे सिह, वृक व्याघ्र, भल्लुक, हस्ती, अश्व, गौ, भेड, अजा, श्वान, गर्दभ, महिषी, हस, शुक, मयूर, काक, सर्प आदि के उल्लेख हैं।

आजकल पौराणिक आधार पर हिन्दुओ मे यह विश्वास है कि युद्ध मे मर कर वीरगण स्वर्ग प्राप्त करते हैं। यह विचार वेदो मे भी पाया जाता है। गङ्गा यमुना के नाम ऋग्वेद मे कुछ बार आये हैं। इनमे यह भी लिखा है कि यमुना के किनारे वैदिक आर्य्य रहते थे। ऋग्वेद मे मछलियो का वर्णन एक ही बार, किन्तु यजुर्वेद मे अधिकता से है। कहते हैं कि पजाब की नदियो में मछलियाँ कम हैं, इसी से ऐसा है। पाश्चात्य पडितों का मत है कि ऋग्वेदकार समुद्र नहीं जानते थे किन्तु यजुर्वेद के रचयिता उससे अभिज्ञ थे। हाप्किन्स महाशय का मत है कि वरुण, उषा आदि से सम्बन्ध रखनेवाले

प्राचीन सूक्त मात्र उस काल बने थे जब ऋषि लोग सिन्धु और सतलज नदियो के बीच बसते थे । इनके अनुसार शेष सूक्त उस काल के हैं जब आर्य्य लोग वर्तमान अम्बाला के दक्षिण सरस्वती के किनारे बस चुके थे। ऋग्वेद मे अश्वत्थ वृक्ष की महिमा है, जिसे अब पीपल कहते हैं। बरगद का वर्णन अथर्ववेद मे केवल दो बार आया है और ऋग्वेद मे कहीं भी नहीं । ऋग्वेद मे सिह का वर्णन कई बार है, विशेषतया उसकी गरज का। ऋग्वेद मे चीते का बिलकुल वर्णन नही किन्तु अन्य वेदो मे कई बार हैं। चीता विशेषतया पूर्वी जानवर है और सिह पश्चिमी, इसलिए सोचा जाता है कि आर्य्य लोग ऋग्वेद के काल से अथर्ववेद के समय पर्य्यन्त धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते आए । हाथी का वर्णन ऋग्वेद मे दो बार आया है। इनमे से एक वर्णन से यह भी जान पड़ता है कि आर्य्य लाग हाथी पकड़ते थे। जंगली हाथी हिमालय की तराई में पाये जाते हैं। इनकी बहुतायत बंगाल मे है, किन्तु गोंडा और हरदोई के उत्तरी भागो तक इनका निवास हैं । कुछ हाथी जिला पीलीभीत तक के जगलो मे हैं। गऊ आर्य्यों की मुख्य सम्पत्ति थी। उसकी कुछ महिमा अवस्ता मे भी पायी जाती है । ऊपर के अध्याय मे हम दिखला आये हैं कि ऋग्वेद के समय से अथर्ववेद पर्यन्त आर्य्यों मे गऊ को महिमा धीरे-धीरे किस प्रकार बढ़ती गयी। ऋग्वेद मे वह कृपापात्र थी, किन्तु विवाहादि के समयो मे उसका वध भी हो सकता था और बैलो का बहुतायत से होता था। यजुर्वेद के समय गोहिंसक को प्राण-दण्ड देने का विधान हो गया, किन्तु फिर भी कुछ यज्ञो मे वह बलि दी जाती थी। अथर्ववेद मे उसकी पूजा होने लगी। कविवर भवभूति के ग्रन्थ में भी गोभक्षण लिखा है। अब किसी हिन्दू के लिए गोभक्षक कहे जाने से बढ कर कोई गाली नही है । आर्य्यों का अनार्य्यों से मुख्य भेद वर्ण का था और जाति भेद का पहला रूप वर्णभेद ही हुआ। आर्य्यों की कई शाखाएँ वेदों मे लिखी हैं। राजा ययाति के पाँचो पुत्र यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु और पुरु के नामो पर आर्य्यों की पाँच शाखाएँ वेदा मे बीसो बार लिखी है। इनके अतिरिक्त गांधार, मूजवन्त, मत्स्य, तृत्सु, भरत, भृगु, उशीनर, चेदि, क्रिवि उप-

नाम पांचाल, कुरु, सृजय, कट, पारावत आदि शाखाएँ भी प्रधान हैं। तृत्सु रावी नदी के पूर्व रहते थे। भरत स्वायम्भुव मनु के वशधर थे और पुरुवश में भी दुष्यन्त पुत्र विख्यात भरत हो गए है। इन्ही के वशधर भारत कहे गये। द्वितीय भरत के वशधर कौरव भी थे। उशीनर, सृजय, मत्स्य और चेदि नाम पुराणो के समय मे भी जैसे के तैसे बने रहे। यही चेदिवश समय पर कलचुरि भी कहलाया। इसके कुछ और नाम भी हुए जिनका वर्णन वर्त्तमान इतिहास मे होगा। पौराणिक समय मे चेदिवशियो का राज्य मध्य भारत मे था। मत्स्य लोग पूर्वी राजपूताना मे राज्य करते थे और इसी देश को मत्स्य देश कहा भी गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के समय उशीनर लोग उत्तरीय भारत मे रहते थे। सृजय तृत्सु लोगों के मित्र थे। इससे जान पडता है कि वे भी रावी नदी के इधर उधर रहते थे, परन्तु यह बात निश्चित नही है। कट लोग सिकन्दर के समय मे पञ्जाब मे रहते थे और पीछे से कश्मीर भी गए। अब वे कश्मीर ही मे हैं। पारावत लोग पञ्जाब मे रहते थे। गान्धार और मूजवन्त उत्तर पश्चिम के निवासी थे। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि पाञ्चालो का पुराना नाम क्रिवि था। मैकडा-नल महाशय ने अथर्ववेद के आधार पर लिखा है कि आङ्ग और मागध लाग आर्य थे। पुराणों के अनुसार पाञ्चाल राजा पुरुवशी थे। पुराणों के अनुसार कौरव, कौशिक, पौरव आदि सब पुरुवशी थे। वेदो में पौरवो और यादवो का ययातिवशी होना बहुत वार लिखा है किन्तु कौरवो और कौशिकों की यादवों आदि से एकता नही प्रकट होती है। पुराणो के अनुसार ययाति के पांचो वशधरो मे पौरवों की प्रधानता थी। यही बात ऋग्वेद से भी सिद्ध होती है, क्याकि अन्यो का विजेता सुदास स्वय पौरव था। यादवो का वश बहुत बडा था। इसकी दो प्रधान शाखाएँ थी जिनमें से एक में हैहय वश है और दूसरे में भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। ऋग्वेद में मनुवशी प्रसिद्ध राजा इक्ष्वाकु का नाम लिखा है किन्तु वेदों में इनका वश नही कहा गया है।

वैदिक समय में घर बहुधा लकडी के बनते थे। राजा का पद प्राय पैतृक होता था किन्तु कभी कभी प्रजाओं द्वारा राजा निर्वाचित हुआ

है। वेदों से यह नहीं प्रकट होता कि प्रजा किन घरानों से राजा का निर्वाचन करती थी। राजा को कर अवश्य नहीं देना पड़ता था, वरन् प्रजा स्वेच्छा से सामर्थ्यानुसार कर देती थी। राजा की इच्छा पर सब कुछ न था, क्योंकि समितियों द्वारा निश्चित किये हुए प्रजाओं के मन्तव्य उस पर बाध्य थे। प्रत्येक जनसमुदाय में वेदज्ञ लोग भी होते थे। जो वेदज्ञ किसी राजा के लिए यज्ञादि करने पर नियुक्त होते वही पुरोहित थे। इन लोगों को दान में प्रचुर धन मिलता था। पहले प्रत्येक मनुष्य युद्धकर्त्ता था और शान्ति के साधारण काम भी चलाता था। समय के साथ धार्मिक क्रियाओं, जनसंख्या, युद्धविद्या, व्यापार आदि सभी की वृद्धि होती गई। इसी हेतु प्रत्येक कार्य के लिए पृथक् पृथक् समुदाय नियत हो गये। यही जातिभेद की पहली जड़ थी। आर्य अपने को आर्य तथा काले आदिम निवासियों को दस्यु कहते थे। ऋग्वेद में जातिभेद का कथन केवल पुरुष सूक्त में है, किन्तु वहाँ यह नहीं कहा गया है कि यह भेद जन्मज था या कर्मज। यजुर्वेद में ऐसी ऋचाएँ मिलती हैं जिनसे प्रकट होता है कि उस काल इसके जन्मज होने की ओर झुकाव था। वहाँ ऐसे ऋषि की श्रेष्ठता कही गई है जिसके पूर्व पुरुष भी ऋषि हों। यजुर्वेद में जन्मज जातिभेद बढ़ते बढ़ते दृढ़ हो चुका था। अथर्ववेद में ब्राह्मणों की महिमा बहुत बढ़ गई। ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य नामक आर्य्यों की तीन जातियाँ हुईं और अनार्य लोग तथा कुछ आर्य्य शूद्र कहलाए जिनका काम सेवा करना था।

प्रत्येक कुटुम्ब का नेता पिता था। उसी की आज्ञा लेकर भावी जामाता उसकी पुत्री से विवाह करता था। पुत्री का विवाह पिता के घर पर होता था। ऋग्वेद में बहुत सी ऐसी कन्याओं का भी कथन है जिन्होंने कभी विवाह नहीं किया और जो पिता के घर में बूढ़ी हो गईं। स्त्रियों की महिमा ऋग्वेद के समय में बहुत थी। अथर्ववेद के वर्णन में हम ऊपर दिखला चुके हैं कि स्त्रियों का कैसा मान था। जार-कर्म बहुत कम था। ऐसा करने वाले घोर दंड के भागी होते थे और जारज के सन्तान छिपाए जाते थे। चोरी प्रायः गउओं की होती थी। खेती सींचने के लिए नहरों का भी वर्णन है। यजुर्वेद के

समय में हाथीवानों का कथन आया है। इससे जान पड़ता है कि हाथियों का उस काल में अच्छा चलन हो चुका था। रथों की दौड़ होती थी। नृत्य और गान की स्त्री और पुरुष दोनों में प्रधानता थी। परदा इत्यादि की चाल स्त्रियों में उन दिनों न थी और पति के चुनने में उन्हें बहुत कुछ स्वच्छन्दता रहती थी।

वैदिक आर्य्यों का विवरण देखने से सब में बड़ा गुण जो उनमें दृष्टिगत होता है वह स्वच्छन्दता है। प्रत्येक ऋषि अपना ही निश्चय लिखता है और उसी निश्चय के अनुसार कार्य्य करता है। उसके लेखों से यह कहीं नहीं भासित होता है कि वह प्राचीन प्रथा, कुलाचार, देशाचार आदि के कारण स्वनिश्चय पर गमन न कर रहा हो। प्रत्येक ऋषि अपने ही विचारानुसार कार्य करने में स्वच्छन्द सा देख पड़ता है। ऋषिगण जङ्गलों में बैठ कर शिष्यों को विद्यादान मात्र नहीं करते थे, वरन् युद्धकर्त्ताओं के साथ रणस्थल में भी भाग लेते थे। जातिभेद के अभाव से प्रत्येक मनुष्य अपनी ही इच्छा के अनुसार ऋषि, युद्धकर्त्ता अथवा व्यापारी हो सकता था। ऋषियों की कन्याएँ युद्धकर्त्ताओं और व्यापारियों को भी ब्याही जाती थीं। सम्पूर्ण आर्य्यसमाज में विवाह, भोजन, व्यापार आदि के विषय में पूर्ण स्वच्छन्दता थी। माँस-भक्षण यज्ञों के ही सम्बन्ध में होता था, सदैव नहीं। आचार-शास्त्र के लिए नियमों का बाहुल्य न था और प्रत्येक भद्र पुरुष उचित रीति से जीवन निर्वाह कर सकता था।

उस समय युद्ध नियम इस प्रकार थे कि पराजित देश को तत्काल अभय प्रदान किया जाता था, देश के धार्मिक-नियमों का मान होता था तथा विश्वास होने पर पूर्व राजवंश का पुरुष ही राजा बना दिया जाता था। धनुषबाण, तलवार, ढाल, शरीर त्राण, शिला प्रक्षेपक, अग्न्यस्त्र आदि से युद्ध होता था।

कचहरी का कर स्वीकृत ऋण के लिए ५ प्रतिशत एवं अस्वीकृत तथा अन्य ऋण पर १० प्रतिशत लिया जाता था। व्यभिचार महापाप माना जाता था। घूस लेने वाले मन्त्री की सब सम्पत्ति ज़ब्त की जाती थी। आत्मघात करनेवाले के लिए दाह कर्म आदि वर्ज्य थे। भ्रातृहीना कन्या का प्रायः पुरुषों के समान नाम रक्खा जाता था।

घोड़ी से भी हल जाता जाता था। सती बहुत कम होती थीं। महाराज पृथु की रानी अरुचि सती हुई। ऋग्वेद के १० वें मंत्र में सकुशुक ऋषि एक स्त्री को सती होने से रोकते हैं। मृत पुरुष की भस्म, अथवा हड्डी या समस्त शरीर गाड़ दिया जाता था। बहुत लोग राजाओं से अधिक धनवान थे।

वेद भगवान् सैकड़ों विषयों के लिए प्राचीनतम इतिहास के भाण्डार हैं। हमें केवल सामाजिक तथा राजनैतिक इतिहास पर विशेषतया ध्यान देना है। इस लिए उपर्युक्त वैदिक विवरण में इन्हीं दो विषयों की प्रधानता रक्खी गई है। अब वेदों में लिखित राजनैतिक इतिहास को यथासाध्य संक्षिप्त प्रकारेण क्रमबद्ध कर हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे। ऊपर कहा जा चुका है कि वेदों में ऐतिहासिक घटनाएँ अप्रासंगिक रीति से आई हैं। अतएव उनमें से अधिकांश का वेदों ही के सहारे पर क्रमबद्ध करना कठिन है। इसलिए हम यहाँ पर मुख्य-मुख्य घटनाओं को मोटे प्रकार से सक्रम कहेंगे। आर्यों और अनार्यों के सैकड़ों नाम वेद में आये हैं। अनार्यों में वृत्र, दनु, पिप्र, सुश्न, शम्बर, वंगृद, बलि, नमुचि, मृगय, अर्बुद प्रधान समझ पड़ते हैं। दनु के वंशधर दानव थे जिनका कई स्थानों पर वर्णन है। यह दनु वृत्रासुर की माता थी। वृत्र के ९९ किले इन्द्र ने तोड़े। ९९ और १०० वृत्रों का कई स्थानों पर वर्णन आया है। शम्बर और वंगृद के सौ-सौ किले ध्वस्त किये गए। शम्बर के क़िले पहाड़ी थे और दिवोदास के कारण इन्द्र ने उसे मारा। दिवोदास सुदास के पिता थे। सुश्न का चलनेवाला किला ध्वस्त हुआ। चलने वाले किले से जहाज का प्रयोजन समझ पड़ता है। पिप्र के ५०००० सहायक मारे गये। बलि के ९९ पहाड़ी किले थे। ये सब जीते गये। सिवा शम्बर के और सब का पूर्वापर क्रम ज्ञात नहीं है। आर्यों में ऋषियों के अतिरिक्त मनु, नहुष, ययाति, इला, पुरूरवा, दिवोदास, मान्धाता, दधीचि, सुदास, त्रसदस्यु, ययाति के यदु आदि पाँचों पुत्र और पृथु की प्रधानता है। ययाति के यदु आदि पाँचों पुत्रों के वर्णन कई स्थानों पर आये हैं। दिवोदास और सुदास के सब से अच्छे क्रमबद्ध वर्णन हैं। इस विषय में वशिष्ठ का सातवां मंडल

बहुत उपयोगी है। इस के पीछे विश्वामित्र का तीसरा मडल भी अच्छी घटनाओ से पूर्ण है। दिवोदास तृत्सु लोगो के स्वामी थे। वैदिक समय मे कुछ पौरवो की सञ्ज्ञा तृत्सु थी, ऐसा समझ पडता है।

राजा दिवोदास बहुत बडे विजयी थे। इन्होने कुछ तुर्वश वशियो, द्रुह्यु वशियो और शम्बर को मारा तथा गगु लोगो को भी पराजित किया। कुछ नहुषवशी इनको कर देने लगे थे। इनके पुत्र सुदास ने इनके विजयो को और भी बढाया। सुदास का युद्ध वैदिक युद्धो मे सबसे बडा है। नहुषवशो यदु, तुर्वश, अनु और द्रुह्यु के सन्तानो ने भारतो से मिलकर तथा बहुत मे अनार्य्य राजाओ की सहायता लेकर सुदास को हराना चाहा। नहुष वशियो की सहायतार्थ भार्गव लोग, परोदास, पक्थ, भलान अलिन, शिव, विशात, कवष, युध्यामधि, अज, सिगरु, और चक्षु आये तथा २१ जाति के वैकर्ण लोग भी पहुँचे। दस्यु राजा वर्चिन एक बहुत बडी सेना लेकर इनका नेता हुआ। कितने ही मिम्यु लोग भी नाहुषो की सहायतार्थ आए। पुरुवशी इस युद्ध मे सम्मिलित न हुए। नाहुषो ने रावी नदी के दो टुकडे करके एक नहर निकाल कर नदी को पार करना चाहा, किन्तु सुदास ने तत्काल धावा बोल दिया जिससे गडबड मे नाहुषो की बहुत सी सेना नदी मे डूब मरी। कवष और बहुत से द्रुह्यु वंशी डूब गये। महा विकराल युद्ध हुआ, जिसमे सुदास ने अपने सारे शत्रुओं को पूर्ण पराजय दी। अनु और द्रुह्यु वशियो के ६६ वीर पुरुष और ६००० सैनिक मारे गये तथा आनवो का सारा सामान लूट लिया गया, जो सुदास ने तृत्सुवो का दे दिया। सात किले भी सुदास के हाथ लगे और उन्होने युध्यामधि को अपने हाथ से मारा। राजा वर्चिन के एक लाख सैनिक इस युद्ध मे मारे गये। अज, सिगरु और चक्षु ने सुदास को कर दिया। इस प्रकार रावी नदी पर यह विकराल युद्ध समाप्त हुआ। इसके पीछे सुदास ने यमुना नदी क किनारे भेद को पराजित कर के उसका देश छीन लिया था। इस प्रकार भेद सुदास का प्रजा हो गया। आर्य्यों का नागो से वेद मे कोई युद्ध नही लिखा गया है, केवल एक बार इतना लिखा हुआ है कि पेदु नामक एक वीर पुरुष के घोडे ने बहुत से नागो को मारा। इससे जान पडता है कि आर्य्यों का नागो

से कोई छोटा युद्ध हुआ होगा। विश्वामित्र ने अपने मण्डल में भारतो का बहुत सा वर्णन किया है। इन लोगो की नाहुषो से एकता सी समझ पड़ती है। वेदो के आधार पर यह सच्चिप्त राजनैतिक इतिहास इसी स्थान पर समाप्त होता है। आगे के अध्यायों मे पुराणो का भी सहारा ले कर वैदिक समय का क्रमबद्ध इतिहास लिखा जायगा।

कालो मे विवाह का प्रचार न था। द्रविड़ो मे स्त्रियो के सहारे कुटुम्ब की स्थिति थी। आर्य्यों मे दो प्रकार की प्रथा देख पडती है। कुछ लोग मुख्य-मुख्य स्थानो पर बस गये। उन्हे विश और फिर वैश्य कहने लगे। कुछ अन्य लाग घूमा करते थे। वे एक एक ग्राम की टुकडियो में थे। एक ग्राम के स्त्री पुरुष आपस मे पुत्रोत्पादन न करके मित्र ग्राम वालो से ऐसा करते थे। जब उत्सवो के समय मित्र ग्राम मिल कर नाचने आदि मे प्रवृत्त हाते थे तब ऐसा हाता था। समय पर जब य ग्राम एक एक स्थान पर बस गये, तब वे स्थान ही ग्राम कहलाने लगे। विश लोगो मे विवाहादि की चाल थी ही, समय पर ग्रामा मे भी वही प्रथा चली। आर्य्य कुटुम्ब पिता के सहारे पर चलता था।



नवां अध्याय

समय निरूपण

२६०० से ६०० बी० सी० तक

इस स्थान पर पौराणिक राजवंशो का समय निरूपण करके आगे बढना होगा। योरोपियन विद्वानो का विचार है कि आर्य लोग भारत मे दो धाराओ मे आये। पहली धारा स्वायम्भुव मन्वन्तर से चाक्षुष मन्वन्तर तक मानी जा सकती है और दूसरी का प्रारम्भ वैवस्वत मन्वन्तर से समझा जा सकता है। स्वायम्भुव मनु का पहला वश २७ पीढियो तक चला। स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत मनु विष्णु पुराण के अनुसार स्वायम्भुव के पहले पुत्र प्रियव्रत के वशज थे, तथा चाक्षुष मनु स्वायम्भुव के दूसरे पुत्र उत्तानपाद के वंशधर हमारे राज-वशा ही मे लिखे हैं। अतएव पहले छवो मनु एक ही वश के थे। पहले वश मे पीछे के चारो मनु मिला कर ३५ पीढ़ियाँ आती हैं और दूसरे मे दस। इस प्रकार मन्वन्तरों का समय प्राय: ४५ पीढ़ियों का बैठता है (देखिए चौथा अध्याय)। पहले वंश मे २७ पीढ़ियाँ तो हैं ही और यह भी लिखा है कि स्वायम्भुव और चाक्षुष के बीच वाले चारो मनु भी प्रियव्रत वशी थे। इन चारों मन्वन्तरों में कम से कम आठ राजाओ का होना समझ पड़ता है। यह वंश वृक्ष बहुत पुराना होने से इसकी दो चार पीढ़ियो में जो उत्तराधिकार पुत्रो का लिखा है, वह भाइयो आदि का भी हो सकता है। प्राय: योरोपियन पडित एक शताब्दी मे ऐसे छ राजाओं का भोग काल मानते हैं। इस पर्ते से प्रथम छवो मन्वन्तरो का समय प्राय: साढे सात सौ वर्षों का बैठेगा। वेद मे कुछ ऋचाये स्वायम्भुव वंशी पृथुवैन्य कृत हैं और कुछ किसी वेन और ध्रुव कृत। सम्भव है कि वेन और ध्रुव नामक और कोई व्यक्ति हो, किन्तु पृथुवैन्य बहुधा स्वायम्भुव वशी प्रसिद्ध

महाराज ही थे। चाक्षुष मनु भी वेदर्षि थे। चाक्षुष मन्वन्तर मे घटनायें बहुत सी लिखी हैं, जिससे इस वश के कई राजाओ का होना इस मन्वन्तर मे समझा जाता है। वैवस्वत मनु भी वेदर्षि थे। इन बातो से प्रकट है कि यद्यपि ऋग्वेद निर्माण काल २००० से १८०० या १७०० बी० सी० से चला, किन्तु कुछ वैदिक ऋचायें चाक्षुष मन्वन्तर से ही बनने लगी थीं। प्रधान पार्जिटर तथा रायचौधरी ने पौराणिक समय पर विशाल श्रम कर के अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे है, किन्तु इन छवों मन्वन्तरो को उन्हाने बिलकुल छोड़ दिया है, यद्यपि पुराणो मे इनका बराबर कथन आता है और कुछ योरोपीय विद्वानो के अनुसार भी भारत मे आर्यों का आगमन प्राय: २५०० बी० सी० से आरम्भ हुआ अथच वैदिक समय बहुत पीछे चला। प्रधान तथा राय चौधरी के विषय वैवस्वत मनु से भी बहुत पीछे से चलते है, सो उनका वैवस्वत मनु से पहलेवाले मन्वन्तरो का कथन न करना योग्य ही है। पार्जिटर महोदय ने शायद यह समय बहुत अनिश्चित माना हो, किन्तु प्राय: सभी पुराणो मे इसका कथन बराबर मिलता है। वैदिक साहित्य मे भी इसके कथन हैं। हम इन छवो मन्वन्तरो का नि:कारण छोड़ देना उचित नही समझने। यही हमारा पहला युग है। पहले पाँचो मन्वन्तरो मे ४५ पीढी होने से उनका भोगकाल ७५० वर्षों के निकट आता है। पार्जिटर और प्रधान दोनों पडितो ने राजवशो पर अच्छा श्रम किया है। प्रधान का विषय रामचन्द्र से महाभारत पर्यन्त है। उन्होने इस काल के राजवशों को बहुत पक्का कर दिया है। महाभारत के ही पीछे परीक्षित का समय आरम्भ होता है। उसका इतिहास रायचौधरी महाशय ने बहुत दृढ़ किया है। अतएव रामचन्द्र से पहले का ही इतिहास सदिग्ध रह जाता है। महाभारत के पीछे भी प्रधान ने तीन मुख्य घरानो के राजवश दृढ कर दिए हैं। मनु वैवस्वत से रामचन्द्र तक का वशवृत्त पुराणों, पार्जिटर तथा प्रधान के कथनो को मिला कर हमने ऊपर दे दिया है। इतना मानना ही चाहिए कि जो दृढता प्रधान के राम से कृष्ण तक के समय के राजवशों मे है, वह अभी राम के पूर्व वालों में नही आई है। फिर भी यथासाध्य दृढ वश दिए गए है।

इस काल के मुख्य घराने सूर्य और चन्द्रवंश हैं। दोनों चलते मनु वैवस्वत से ही हैं, पहला उनके पुत्र इक्ष्वाकु से और दूसरा कन्या इला से।

मनु-राम के समय इन वंशों में निम्न शाखायें थीं :—

मनु-राम (त्रेतायुग) का चक्र

नाम वंश	नाम शाखा	नाम राम के समकालीन का	मनु से कितनी पीढ़ी नीचे	विवरण
सूर्य	अयोध्या,	रामचन्द्र,	३९	सब पीढ़ियाँ मिलती हैं।
,,	मिथिला,	भानुमन्त जनक,	३९	१२ पीढ़ियों के नाम अज्ञात। ये जनक राम के साले थे। इनके पिता सीरध्वज और चचा कुशध्वज थे।
चन्द्र	(हस्तिनापुर) मुख्य पौरव,	कुरु या सार्वभौम,	३९	सब पीढ़ियाँ मिलती हैं।
पौरव	उत्तर पांचाल,	सुदास,	३९	,, ,,
,,	दक्षिण पांचाल,	रुचिराश्व,	३९	,, ,,
,,	मागध,	सुहोत्र,	४०	,, ,,
,,	काशी,	अलर्क,	४०	,, ,,
,,	कान्यकुब्ज,	विश्वामित्र के पौत्र का पौत्र,	३९	इस काल विश्वामित्र भी वर्तमान थे।
चन्द्र यादव	माथुर,	सत्वन्त,	४२	सब पीढ़ियाँ प्राप्त। ,, ,,

नाम वश	नाम शाखा	नाम राम के सम कालीन का	मनु से कितनी पीढ़ी नीचे	विवरण
यादव	हैहय,	वीतहव्य का पौत्र,	३६	१५ पीढ़ियों के नाम अज्ञात।
चन्द्र आनव	अंग,	चतुरंग,	४१	१४ पीढ़ियों के नाम अज्ञात। चतुरंग दशरथ के मित्र लोमपाद के पुत्र थे।
”	उत्तर पश्चिम,	केकय के दौहित्र भरत,	३६	२० पीढ़ियों के नाम अज्ञात, कैकेयी राम की सौतेली तथा भरत की सगी माँ थी।

उपरोक्त शाखाओं मे राम के वंशवृत्त से २६ नाम उन तीन घरानो के निकाल डाले गए हैं, जो थे तो सूर्यवंशी किन्तु राम के सीधे पूर्वपुरुष नही प्रकट होते, वरन् इसी वश के होने से इस शाखा के पूर्व पुरुषो में गुप्तकालीन सम्पादकों के ज्ञानाभाव से आ गए। ये शाखाये दक्षिण कोशल, हरिश्चन्द्र और सगर की हैं। यदि सम्पादको के इन कथनों को अक्षरशः सत्य मानें तो उन्हीं की कही हुई अन्य समकालीनतायें ठीक नहीं वैठती। इन २६ नामो के जुडे रहने से उतने ही काल में दस ऐल राजघरानों मे प्रायः ३९, ५० पीढियाँ आती हैं, तथा अयोध्या में ६६। फल यह निकलता है कि चाहे एक वश को अशुद्ध मानें, चाहे दस वशों को। फिर जहाँ अयोध्या की शाखा मे २६ नाम बढा दिए गए, वहीं मैथिल से १२ छूट रहे हैं। यही दशा हैहयों, आंगों और उत्तरी पच्छिमी आनवों की है। माथुर यादवो मे कुछ पीढ़ियाँ बढ़ी हुई समझ पडीं। उनके न० ३५ दशरथ के आगे कोष्टक

मे रथवर और एकादशरथ जो इन्हीं के नाम माने गए हैं, वे कहीं-कहीं इनके वशधरो के लिखे है। नाम एक से होने से एक ही के माने गए हैं। यही दशा न० ३८ देवराट की है। उनके आगे देवक्षेत्र और देवन के भी नाम कही कहो वशधरो के लिखे हैं। यदि इन चार नामो को भी पीढियो मे जोड ले, तो अर्जुन, पौरव न० ५३, के पिता पांडु का समकालीन कस ५४ वी से ५८ वी पीढ़ी पर पहुँचेगा और यह मानना पड़ेगा कि यदु के बड़े पुत्र होने तथा इस वश मे छोटे भाइयों के राजा प्राय: न होने से उतने ही काल मे इसकी पुश्तें छ बढ गईं। ऐसी कल्पना कुछ अयुक्त भी न होगी। फिर भी कोष्टको वाले चार नाम हमे स्वतन्त्र नही समझ पडे। दोनो दशाओ मे अधिक मतभेद का प्रश्न नही है।

उपरोक्त १२ वशो मे से चार की पुश्तें पूरी नही मिलतीं, किन्तु शेष आठ दृढ़ बैठते हैं। उनमे सारी पुश्तें मिलती हैं, तथा उनके अनुसार पौराणिक कथनो की समकालीनताये भी ठीक बैठ जाती हैं। जिनमे पुश्ते बढ़ाई गई हैं, उनमे बिना ऐसा किए पौराणिक अन्य कथनों के तारतम्य नहीं बैठते। प्रधान ने भी दक्षिण कोशलो को अलग माना है। सगर और हरिश्चन्द्र के वश वशावली में दिए हुए कारणों से अलग हो गए हैं। पार्जिटर महाशय ने ये २६ नाम अलग नहीं किए, जिससे उनको रामवाले को छोड़ कर सारे पौराणिक वशों से प्राय: २४, २५ पुश्तो के छूट रहने की कल्पना करनी पड़ी है, जो प्रकट ही अनुचित है, क्योंकि वह सारे पौराणिक वश वृक्षो को केवल एक के कारण अधूरा बतलाती है।

उपर्युक्त वशावलियो को दृढ़ मानने से सारे पौराणिक कथनो का सामजस्य बैठता है, जैसा कि इसी अध्याय मे आगे दिखलाया जावेगा। वहाँ समकालीनताओं का विवरण कुछ विस्तार से होगा। यहाँ काल निरूपण के लिए हम आगे बढते हैं। वैवस्वत मनु से रामचन्द्र तक यह दूसरा समय प्राय: ३९ पीढ़ियो का मिलता है। यदि मन्वन्तर काल को सत्ययुग कहें, तो इसे त्रेता कह सकते हैं। ये सतयुग और त्रेता नाम पौराणिक विचारो से असम्बद्ध हैं, अर्थात् जो जो घटनाये पुराणों में जिन जिन युगों में लिखी हैं, उनके

अनुसार ये हमारे युग नही चलते। हैं चार युगों के समान चार समय हमारे भी, जो उन्ही नामो से पुकारे जा सकते है, किन्तु हमारे राज-काल उनके अनुसार चलते नही, सो पाठको या समालोचको के चित्त में भ्रम पड़ सकता है। अतएव युगों ही के नाम न लेकर हम पहले को सतयुग या मन्वन्तर काल, दूसरे को त्रेतायुग अर्थात् मनु राम काल, तीसरे को द्वापर युग और चौथे को आदिम कलिकाल कहेंगे। दूसरा समय ३९ पीढियो का होने से प्राय: ६५० वर्षों का माना जा सकता है, क्योंकि इसमे राजकाल है। अब हम तीसरा काल उठाते हैं, जिसका रूप भी एक चक्र द्वारा दिखलाया जावेगा।

द्वापर का चक्र

शाखाओं के नाम	किस से प्रारम्भ		किस तक		कितनी पीढ़ियाँ	विवरण
	नाम	नं०	नाम	नं०		
श्रीवस्ती का लव (सूर्य) वंश	लव	४०	बृहद्बल	५३	१४	ये दोनों राम के पुत्र हैं। वंश पूर्ण मिलते हैं।
अयोध्या का कुश ,,	कुश	४०	श्रुतायुस	५४	१५	
विदेह ,,	शत्रुघ्न	४०	बहुलाश्व	५३	१५	सब पुश्तें मिलती हैं।
,, दूसरी शाखा	शत्रुघ्न	४०	उपगुप्त	५५	१६	उपगुप्त पर राज्य समाप्त। पूर्ण वंश प्राप्त है।
युधिष्ठिर पौरव	जयत्सेन	४०	अर्जुन	५३	१४	पूर्ण प्राप्त। वंश युधिष्ठिर का न चल कर अर्जुन का चला।
द्विमीढ़ विदर्भ ,,	द्युतिमन्त	४०	नृपंजय	५५	१६	पूर्ण प्राप्त। नृपंजय के पुत्र बहुरथ पर समाप्त।
उत्तर पांचाल ,,	सोमक	३१	धृष्टकेतु	५२	१४	७ पुश्तें अज्ञात, शेष ज्ञात।
दक्षिण पांचाल ,,	पृथुषेण	४०	जनमेजय का पौत्र	५३	१४+२	महाभारत युद्ध से दो पुश्त पूर्व जनमेजय पर समाप्त।

शाखाओं के नाम	किस से प्रारम्भ		किस तक		कितनी पीढ़ियाँ	विवरण
	नाम	नं०	नाम	नं०		
मागध पौरव	च्यवन	४१	सोमाधि	५४	१४	पूर्ण प्राप्त।
चेदि ”	सुहोत्र	४०	शिशुपाल	५२	१३	४ पुश्तें अज्ञात हैं।
काशी ”	सन्नति	४१	भद्रसेन	५५	१५	इन्हीं पर वश समाप्त है, पूर्ण प्राप्त।
माथुर यादव	भीम	४३	श्रीकृष्ण	५५	१३	नं० ५४ कंस के भागिनेय थे। पूर्णवंश प्राप्त।
आंग आनव	पृथुलाश्व	४२	कर्ण	५२	११	पूर्ण वश प्राप्त, शायद दो तीन पुश्तें छूट रही हों।
१३ वंश	१३	१३	१३	१३	१८५	१३ वशों में से २ अधूरे मिलते हैं और शेष पूर्ण।

इन तेरह वंशो मे से इस काल कुल १८५ पीढ़ियाँ हुई, अर्थात् प्रति वश प्रायः १४ पुश्तो का पर्ता बैठता है। ये सब पुत्रो के अनुसार हैं। जहाँ कही भाई उत्तराधिकारी हुए हैं, वहां पीढ़ी जोड़ से निकाल दी गइ है। हाती तो हैं शताब्दी में ५ से कम पुश्ते, किन्तु ५ ही जोड़ने से इस युग का भाग काल २८० वर्ष आता है। कई वश त्रेता वाले चक्र मे हैं, किन्तु द्वापर वाले मे नही। उनका राज्य बीच ही मे समाप्त होकर उनके वंश वृक्ष बन्द हो गए। अब आदिम कलि-काल पर विचार होता है।

आदिम कलिकाल का समय

इस विषय पर श्रीयुत पार्जिटर, डाक्टर प्रधान और डा० रायचौधरी ने विचार किये हैं, सो अपने को कुछ अधिक कहने की आवश्यकता न पड़ेगी।

श्रीयुत पार्जिटर का तर्क

चन्द्रगुप्त मौर्य ३२२ बी० सी० में गद्दी पर बैठे। उनसे पूर्व महापद्मनन्द और उसके पुत्रो ने ८० वर्ष राज्य किया। अतएव महापद्म ४०२ बी० सी० मे गद्दी पर बैठा। उसने तत्कालीन सारे क्षत्रियो के राज्य नष्ट कर दिए; अपने समय का परशुराम ही कहा जाता है। यह कार्य यदि २० वर्षों मे समाप्त मानें, तो इसका समय ३८२ बी० सी० में आता है। प्राचीन भूपालो मे पुराणों के अनुसार पौरव (न०, ५९) अधिसीम कृष्ण, ऐक्ष्वाकु (न० ५८) दिवाकर, और बार्हद्रथ (न० ६०) सेनजित समकालीन थे। अतएव महाभारतीय युद्ध के पीछे अधिसीम कृष्ण के समय तक ४ ऐक्ष्वाकु, ५ पौरव और ६ मागध नरेश पड़ते हैं। इस काल को १०० वर्षों का मान सकते हैं। इससे महापद्म द्वारा भूपाल विनाश पर्यन्त निम्न सख्या मे राजे लिखे हैं:— २४ ऐक्ष्वाकु, २७ पॉचाल, २४ काशी, २८ हैहय, ३२ कलिंग, २५ अशमक, २६ कौरव-पौरव, २८ मैथिल, २३ सूरसेन, और २० वीतिहात्र। इस प्रकार दस राज्यो में कुल २५७ राजे आते हैं, अर्थात् प्रति राज पर्ते से २६ भूपाल। प्रति राजा का समय १८ वर्ष मानने से हमे ३८२ बी० सी० से ४६८ वर्ष मिलते हैं, अर्थात्

महाभारत युद्ध का समय आता है ३८२+४६८+१०० = ९५० बी० सी० । इसी काल मगध मे १६ बार्हद्रथ राजे हुए, ५ प्रद्योत और १० शिशुनाग, जोड ३१ ।

इस तर्क में विचार योग्य भी कुछ बाते हैं । पुराणो मे केवल मागध, पौरव, तथा ऐक्ष्वाकु वंश तो दिए हैं, किन्तु शेष सातो की पुश्त सख्या मात्र दी हुई है । इन तीनो के विषय मे भी जो पीढ़ियों के विवरण पार्जिटर महोदय ने दिए हैं, वे प्रधान से कुछ भिन्न हैं, किन्तु यह अन्तर थोडा ही सा है । मुख्य मतभेद प्रति पीढ़ी के मान्य समय का है ।

डाक्टर राय चौधरी का कथन

आपने इस काल का निर्णय नहीं किया है, वरन् इस विषय पर एक प्रमाण मात्र उद्धृत कर दिया है । पुराणो का कथन है कि परीक्षित का जन्म महापद्म नद से १०५० वर्ष पूर्व हुआ । उधर कौशीतकि, सांख्यायन आरण्यक, अध्याय १५ वे मे लिखा है कि सांख्यायन उद्दालक आरुणि से दो पीढ़ी नीचे थे, तथा शतपथ ब्राह्मण, XIII५,४,१ मे इन्द्रोत देवापि या दैवापि शौनक जनमेजय के समकालीन थे । इनके शिष्य थे धृति ऐन्द्रोत जिनके शिष्य पुलश प्राचीन योग्य बने, जिनके चेले पौलुशि सत्ययज्ञ हुए । छान्दोग्य इन्हे बुडिल आश्वतरश्वि तथा उपर्युक्त उद्दालक आरुणि का समकालीन मानता है । अतएव (उद्दालक आरुणि के समकालीन)पौलुशि के (जनमेजय के समकालीन) शौनक प्रपितामह गुरु मात्र थे । शांख्यायन आरुणि से केवल दो पीढी नीचे होने से छ पीढ़ियां मिलीं । कौशीतकि शांख्यायन आरण्यक में गौतम बुद्ध के समकालीन पौश्कर सादि तथा लौहित्य के नाम हैं, जो शांख्यायन से दो ही तीन पीढ़ी नीचे थे । अतएव गौतम बुद्ध से जनमेजय तक आठ ही नौ पीढ़ियां बैठती हैं, जिनमे गुरु शिष्य की भी कइ पुश्त शामिल हैं ।

(अपना विचार) इन गुरु शिष्यो वाली पीढ़ियो के समय बहुत बड़े भी हो सकते हैं, सो इस तर्कावली से कोई निश्चित फल नहीं निकलता । ब्राह्मणो को पीढ़ियां लिखने में व्यास लोग कूद भी बहुत

जाते थे, अर्थात् पुश्ते छोड जाते थे। राम के समय वाले गौतम पुत्र शरद्धन्त और अहल्या के पुत्र शतानन्द के आत्मज सत्य धृति हरिवश में लिखे हैं। उन्ही के पुत्र शन्तनु के समकालीन कृपाचार्य आ जाते हैं, यद्यपि अहल्या से कृप तक १०,१२ पीढियां होगी।

डाक्टर सीतानाथ प्रधान आदि के विचार

प्रधानजी ने अपने कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा मुद्रित और सत्कारित ग्रथ मे चन्द्रगुप्त मौर्य से बिम्बिसार तक का समय ३२५ बी० सी० से ५२७ बी० सी० तक माना है। इन दस राजाओ मे प्रत्येक का समय उन्होने दिया है, जो इस ग्रंथ मे यथास्थान आवेगा। आपने मागध (नं० ५४) सोमाधि से रिपुंजय,(न० ७५ तक) २१ पीढ़ियों का भोगकाल प्रति पीढ़ी २८ वर्ष के हिसाब से ५८८ वर्ष माना है। रिपुजय ५६३ बी० सी० मे गद्दी पर बैठे और ५१३ मे मारे गए। अतएव सोमाधि का समय ५८८+५६३=११५१ बी० सी० आता है, जो महाभारत युद्ध का समय है। इसी प्रकार पौरव परीक्षित, (न० ५५) से उदयन न० ७७ तक २२ पीढ़ियो का समय २२×२८=६१६ वर्ष हैं। उदयन ५०० बी० सी० में राजा हुए, तथा परीक्षित से ३६ वर्ष पूर्व महाभारतीय युद्ध हुआ, जिसका समय ५००+६१६+३६=११५२ बी० सी० आता है। इसी प्रकार ऐक्ष्वाकु उरक्षय, (नं० ५५) से प्रसेनजित, (नं० ७६ तक) २२ पीढियों का भोगकाल ६१६ वर्ष है, तथा ५३३ बी० सी० में प्रसेनजित गद्दी पर थे, सो उपर्युक्त महाभारतीय युद्ध का समय ५३३+६१६=११४९ बी० सी० आता है। प्रति पीढी २८ साल जोडने के कारण आपने एक अध्याय भर में दिए हैं, जो गडबड़ नहीं है, अतएव महाभारत काल आप बी० सी० १२ वीं शताब्दी में मानते हैं और यह भी कहते हैं कि तिलक महाशय की ज्योतिर्षीय गणना भी इस निष्कर्ष से टक्कर खा जाती है। श्रीयुत काशी प्रसादजी जायसवाल पुरातत्व विभाग के भारी पडित थे। आपने पुराणो के कथनानुसार महाभारतीय युद्ध का समय १४२४ बी० सी० माना है। यही समय लखनऊ विश्वविद्यालय के इतिहासज्ञ डाक्टर राधा कुमुद मुकुर्जी मानते हैं।

अपने को इस विषय मे मत प्रकाशन की आवश्यकता नहीं। प्राचीन भारतीय इतिहास के समय विभाग पर पाश्चात्य पडितो का इतरों से बहुत मतभेद है, परन्तु यह गहन प्रश्न न तो अपने निर्णय के योग्य है, न अधीन। अतएव निर्णय करना भी निरर्थक है। अत: बिना मत प्रकाशन के ही हम यहाँ दिखलाये देते हैं कि यदि महाभारतीय युद्ध १० वीं शताब्दी बी० सी० का हो, तो वहीं द्वापर का अन्त होगा। त्रेताकालारम्भ प्राय: २८० वर्ष पुराना होने से तेरहवी शताब्दी बी० सी० मे पड़ेगा, तथा त्रेताकालान्त उससे प्राय: ३९ पीढी ऊपर होने से इससे साढ़े छ: सौ वर्ष पुराना अर्थात् १९वीं या २०वीं शताब्दी बी० सी० का है और सत्ययुग या मन्वन्तर कालारम्भ प्राय: साढ़े सात सौ वर्ष और पुराना होने से २७ वी शताब्दी बी० सी० तक पड़ेगा। यदि यह भारतीय युद्ध काल १२ वीं या १५वीं शताब्दी बी० सी० का मानें, तो वे तीनो समय भी आगे बढ जावेंगे। इन कथनों से न हटते हुये भी हम एक समय देने के विचार से अपने अध्यायो आदि मे महाभारतीय युद्ध दसवीं शताब्दी बी० सी० का मान कर चलेंगे, जिससे समय बढ़ाने की ओर अनुचित रुचि न मानी जाय।

अब सम सामयिक महानुभावो और घटनाओ पर विचार किया जाता है, जिससे अपनी वशावलियो की दृढ़ता पर प्रकाश पड़े।

१—मनु वैवस्वत की पुत्री इला चन्द्रपुत्र बुध का ब्याही थी। इन्हीं इला और मनु से दोनो वंश चले हैं (महाभारत)।

२—ययाति न० ६ के भाई यति सूर्यवशी, (नं० ४) ककुत्स्थ की पुत्री गो से ब्याहे थे।

ह० व० ३०, १६०१, वायु० पु० ९३, १४

३—पौरव, (न० २०,) मतिनार की पुत्री गौरी ऐक्ष्वाकु, (नं० २१) मान्धातृ की कुछ पुराणो के अनुसार माता (हरिवश के अनुसार आजी) थी। ब्रह्माण्ड पु० ६३, ६६, ८, वायु पु० ८८, ६४, ७, ब्रह्म ७, ९०, २, ह० वं० १२, ७०९, ११ शि० पु० ६०, ७४।

४—यादव, (नं० २०) शशिविन्दु की पुत्री विन्दुमती चित्ररथी उपर्युक्त मान्धातृ को ब्याही थी। वायु ८८, ७७, ब्रह्माण्ड ६३, ७०,

इनका द्रुह्यु वंशी अगार (न० २१) से युद्ध हुआ। ह० व० ३२, १८३७, म० भा० १२६, १०४६५।

५—कान्यकुब्ज (न० ३०) जह्नु ने मान्धातृ की पौत्री से विवाह किया। अतः जह्नु त्रसदस्यु सूर्य वंश (नं० २३) के समकालीन अर्थात् बहनोई थे। त्रसदस्यु मान्धातृ के पौत्र थे। सम्भवतः जह्नु अपनी वशावली मे चार पाँच नम्बर ऊँचे थे।

६—ऋचीक ऋषि ने गाधि पुत्री सत्यवती से विवाह किया, जिससे परशुराम के पिता जमदग्नि पुत्र हुए। गाधि पुत्र प्रसिद्ध विश्वामित्र जमदग्नि के समवयस्क और प्रगाढ़ मित्र थे। जमदग्नि का विवाह किसी सूर्यवशी प्रसेनजित की कन्या रेणुका कामली से हुआ। इसी की बहिन का विवाह हैहयार्जुन (नं० ३४) से हुआ था, हरिवंश, (म० भा०)। प्रसेनजित राजा ऐक्ष्वाकु नं० १९ थे। वे इस सम्बन्ध के लिए बहुत प्राचीन थे। अतएव कोई अन्य प्रसेनजित सूर्य-वंशी की ये कन्यायें होगी, अथवा इन्हीं का स्थान वशावली मे नीचा होगा। विश्वामित्र कान्यकुब्ज (न० ३५) हैहयाअर्जुन, सुदास [उत्तर पांचाल (३९)] त्रिशंकु (सूर्यवंश ३६), हरिश्चन्द्र (सूर्यवंश ३७) मित्रसह कल्माषपाद (दक्षिण कौशल, ३९) और राम (सूर्यवश ३९) समकालीन थे। वशिष्ठ भी इन्हीं सभों के समय मे थे। जान पड़ता है कि ये दोनों ऋषि दीर्घजीवी थे। इन नामो के कई ऋषि मानने से काम नही चलता, क्योंकि हरिश्चन्द्र के यज्ञ में विश्वामित्र, जमदग्नि शुनःशेप और वशिष्ठ ये चारों ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार मौजूद थे। उधर वैदिक ऋचाओं में शुनःशेप की उपर्युक्त घटनाओ के अनेक विवरण हैं। वही शुनःशेप वैदिक विश्वामित्र के दत्तक पुत्र थे। इन्हीं वशिष्ठ और विश्वामित्र ने ऋग्वेद मण्डल सात और तीन में सुदास को अपना समकालीन होना कहा है। रामायण में भी ये दोनो हैं। वशिष्ठ के म्लेच्छ दल से हार कर ही विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु के मित्र और पुरोहित बने (म० भा०)। अतएव इन ऋषियों का दीर्घजीवी होना ही मानना पडेगा। प्रायः सवा सौ वर्षों के होगे। आजकल भी एक व्यक्ति ज़ारो आगा १६० वर्ष के थे, सो इन ऋषियो

की ऐसी अवस्थाये असम्भव नहीं हैं। इनके विशेष आधार कान्यकुब्ज के वश विवरण मे मिलेगे।

७—भद्रशेण्य हैहय, (न० ३०) ने काशीपति दिवोदास प्रथम (न० ३४) को हराया। तालजंघ हैहय (न० ३६) ने बाहु, सूर्यवशी (न० ३८) को हराया। काशी के प्रतर्दन (न० ३८) ने वीतिहोत्र हैहय (नं० ३७) को हराया तथा बाहु पुत्र सगर ने वीतिहोत्र के वशजों को नष्ट किया। सगर ने विदर्भ के किसी वैदर्भ राजा की कन्या केशिनी से विवाह किया। पहले धावे में हैहयो ने काशी का राज्य गिराया था। अनन्तर परशुराम द्वारा अर्जुन मारे गए। तब अर्जुन के पौत्र तालजघ ने म्लेच्छों की सहायता से पौरव (न० ३४ से ३७ तक किसी) का सूर्यवशी बाहु का तथा विश्वामित्री (३६, ३७) कान्यकुब्ज राज्य नष्ट किए। समझ पड़ता है कि जैसे वशिष्ठ ने म्लेच्छों की सहायता से कान्यकुब्ज राज्य को हराया था, वैसे ही तालजघ ने काम निकाला। अनन्तर प्रतर्दन और सगर द्वारा हैहय और म्लेच्छ दोनो नष्ट हुए, तथा पौरव राज्य भी स्थापित हो गया, किन्तु कान्यकुब्ज उस काल फिर न पनपा। महाभारत शान्ति पर्व मे लिखा है कि सगर भी तालजघ से हारे। अनन्तर बहुत काल बीतने पर सगर ने अश्वमेध किया। इससे जान पडता है कि वे दीर्घजीवी थे। उपर्युक्त कथनों के अधिक प्रमाण काशी, हैहयो और सगर के विवरणों में मिलेगे।

८—उत्तरी बिहार के तुर्वशवशी (न० २२) मरुत्त ने राज्यच्युत पौरव वश के राजकुमार दुष्यन्त, पौरव (न० २३) को गोद लिया (महाभारत)। मरुत्त भारी सम्राट थे, सो दुष्यन्त, पौरव राज्य भी प्राप्त करके, दोनो के शासक हुए। इसी लिए वे वंशकर कहलाये। अगिरस के तीन पुत्र थे, अर्थात् उचथ्य (महाभारत के उतथ्य) बृहस्पति और संवर्त। मरुत्त ने सवर्त को ऋत्विज करके यज्ञ किया और उन्हें अपनी पुत्री भी ब्याह दी। उचथ्य के ममता से अन्धे दीर्घतमस हुए। उसी ममता में बृहस्पति द्वारा विदथिन भरद्वाज हुए। दीर्घतमस ने आनव बलि (न० २४) की रानी में नियोग द्वारा अंग, बंग, कलिंग, सुम्ह और प नामक पाँच पुत्र पैदा किए (म० भा०)।

अनन्तर नेत्रवान होकर वे गोतम या गौतम कहलाये। वायु ९९, ९२, मत्स्य ४८, ८३, बृहद्देवता, IV १५। पीछे दीर्घतमस ने दुष्यत पुत्र भरत (न० २४) का ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ऐन्द्र महाभिषेक किया। इन्हीं के कहने से भरत ने विदथिन भरद्वाज को गोद लिया होगा। ये विदथिन भरद्वाज वैदिक ऋषि भरद्वाज से भिन्न थे, क्योकि वे विदथिन के वशधरो का वर्णन अपनी कुछ ऋचाओं मे करते हैं।

९—रामायण के अनुसार राम के पिता दशरथ (नं० ३८) मैथिल सीरध्वज (नं० ३८) आंग लोमपाद (न० ४०) वैशाली के ऋष्य शृग प्रमति (जो दशरथ के दामाद थे) उत्तर पच्छिमी आनव केकय (न० ३७) उत्तर पांचल दिवोदास (न० ३८) तथा वैदिक तिमिध्वज शम्बर के समकालीन थे। रामचन्द्र के समकालीन ऊपर चक्र मे दिये हुए हैं। राम और दशरथ अयोध्या नरेश थे। इस राज्य को कालिदास ने उत्तर कोशल कहा है, यथा,

नमे ह्रिया शंसति किंचि दीप्सित स्पृहावतो वस्तुपु केषु मागधी।
इतिस्मृ पृच्छत्यनुवेलमादृत: प्रिया: सखीरुत्तर कोशलेश्वर:॥ रघुवंशे॥

उधर महाभारत वनपर्व मे दक्षिण कोशल मे ऋतुपर्ण (न० ३६) राजा नल (नं० ३५ उत्तर पांचाल भृम्यश्व के समधी तथा नं० ३४ यादव भीमरथ के दामाद) के मित्र थे। इनके प्रपौत्र मित्रसह-कल्माषपाद राम के समकालीन पड़ते हैं।

१०—दक्षिण पांचाल नरेश (न० ४८) अणूह के पुत्र पितृवर्तिन, पौरव (नं० ४८) प्रतीप के मित्र थे। (म० भा०)

११—ह० वं० २०, १०८३, ११११, २, द्विमीढ़ वंशी वैदर्भ उग्रायुध (नं० ५२) ने उत्तर पांचाल नरेश (न० ४९) प्रषत को राज्यच्युत किया, तथा दक्षिण पांचाल राजा (न० ५३) जनमेजय को मारकर वह वंश समाप्त कर दिया। उग्रायुध को पौरव (न० ५१) भीष्म ने युद्ध में मारा।

१२—काशीपति अलर्क (न० ४०) को अगस्त्य ऋषि की स्त्री लोपामुद्रा ने आशीर्वाद दिया (वायु पु० ९२, ६७) तथा स्वयं अगस्त्य ने राम से भेट की (रामायण)।

१३—यादव भजमान (नं० ४५) ने उत्तर पांचाल सृंजय (न०३७) की दो कन्याओ से विवाह किया आधार यादव वंशावली में कथित है। भजमान के पितामह सत्वत राम के समय मे थे, तथा सृंजय के पौत्र सुदास भी राम ही के समकालीन थे। अतएव यहां दो पुश्तो का बीच पड़ता है। सम्भवतः सृंजय की पुत्रियाँ वृद्धावस्था की हो और भजमान भीमसात्वत की प्रथमा युवावस्था के पुत्र हो।

१४—उत्तर पांचाल नरेश सुदास (न० ३९) ने पौरव (न० ३७) संवर्ण को राज्यच्युत किया। अनन्तर संवर्ण ने सुदास को हरा कर अपना राज्य फिर प्राप्त किया (आधार इन राज्या के विवरण मे हैं)।

१५—कैम्बे की खाड़ी के निकट इक्ष्वाकु के भाई शर्याति का आनर्त राज्य था। उनकी पुत्री सुकन्या के साथ च्यवन का विवाह हुआ (महाभारत)। अनन्तर आनर्तों के पतन पर च्यवन या उनके वंशधर भार्गव ऋषि हैहयो के गुरु हुए। वेद में आया है कि च्यवन इन्द्र से हारे, किन्तु महाभारत मे उनका इन्द्र से जीतना लिखा हुआ है।

१६—भार्गवा का हैहय ने मान किया। पीछे झगड़ा हो गया। भार्गव और्व के पुत्र ऋचीक शस्त्री हुए। उन्ही के पुत्र जमदग्नि और पौत्र परशुराम हुए।

विश्वामित्र और जमदग्नि ने हरिश्चन्द्र के यज्ञ से शुनःशेप को बचाया और वह देवराट होकर विश्वामित्र के भागिनेय पद से उठ कर पुत्रत्व मे आया। अनन्तर परशुराम द्वारा हैहयार्जुन मरा। उसने वशिष्ठ की भी तपोभूमि जलाई थी। फिर पाँचाल सुदास, पौरव संवर्ण, दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद और तब दशरथ एवं राम के यहाँ वशिष्ठ जमे (आधार इन राज्यो के विवरणो मे हैं)। पहले वशिष्ठ सुदास के पुरोहित हुए और पीछे उन्हे हटा कर विश्वामित्र उनके पुरोहित बने। तृतीय और सप्तम मडल इन्हीं दोनो के हैं। वशिष्ठ, तत्पुत्र शक्ति और शक्ति पुत्र पराशर भी वेदर्षि हैं। इन तीनो ने मिल कर एक ही ऋचा भी बनाई। उधर महाभारत मे लिखा है कि पराशर गर्भ ही में थे जब शक्ति का निधन हुआ। सुदास के यज्ञ मे वशिष्ठ पुत्र शक्ति ने एक बार विश्वामित्र को वाणी रहित कर दिया था और जमदग्नि की सहायता से ही इन्हे भाषणशक्ति आई। अनुक्रमणी

और ऋग्वेद पर वेदार्थ में लिखा है कि इस पर जब शक्ति जंगल में गए, तब विश्वामित्र के कहने से राजसेवकों ने इन्हे आग मे जला डाला। पाँचवीं शताब्दी बी० सी० का शौनक कृत ग्रन्थ बृहद्देवता कहता है कि वशिष्ठ वारुणि के सौ पुत्रो को शाप के कारण राक्षस होने से सुदास या सौदासों ने मारा। उधर महाभारत मे आया है कि सूर्यवंशी कल्माषपाद ने ऐसा किया। वहाँ यह कथन है कि इन्हे दो शाप राक्षस हो जाने के मिले, तथा विश्वामित्र ने किंकर नामक एक राक्षस इनके हृदय मे बसा दिया, अर्थात् अन्तरंग मित्र बना दिया। यह कल्माषपाद दक्षिण कौशल नरेश (न० ३९) था, जो सुदास और रामही के समय में पड़ता है। वहां के राजा सुदास का पुत्र होने से यह भी सौदास था। इसी लिए सौदास शब्द के कारण वशिष्ठात्मजो के निधनकर्ता में भ्रम पड गया है। शक्ति के वैदिक मंत्रों में मुख्य घटनायें नहीं हैं। महाभारत मे आया है कि शक्ति एक उद्धत पुरुष थे और मुख्यतया यही उनके बध का कारण हुआ।

जान पडता है कि किसी कारण से पाँचाल सुदास शक्ति से अप्रसन्न होकर विश्वामित्र पर कृपालु हुए। अनन्तर विश्वामित्र के समझाने से राजसेवको ने शक्ति का बध कर डाला और वशिष्ठ दक्षिण कोशलेश कल्माषपाद के यहाँ चले गए। वहाँ राक्षसों के सग से वह राजा नरमांस भक्षी हो गया था। अतएव वाशिष्ठो से उसका बिगाड हो गया। विश्वामित्र उसके यहाँ रहे तो नहीं, किन्तु उन्होंने किंकर राक्षस को उसका मित्र बना दिया, तथा वाशिष्ठों के प्रतिकूल उस उत्तेजना दी, जिससे उसने सारे वशिष्ठात्मजों को नरमांस के लिए मरवा डाला। अनन्तर वशिष्ठ का उससे मेल हो गया। इसके पीछे वशिष्ठ कहाँ रहे, सो पता नहीं है। एक वशिष्ठ दशरथ के यहाँ थे और राम के भी पुरोहित रहे। जब विश्वामित्र राम को मांगने दशरथ की सभा मे गए, तब वशिष्ठ का उनसे कोई विरोध न था, वरन् पूरा मेल था (रामायण)। इससे प्रकट है कि या तो यह कोई दूसरे वशिष्ठ थे, या दक्षिण कोशल से कभी कभी उत्तर कोशल भी आते थे, और उस काल तक वहीं रहने लगे थे, तथा विश्वामित्र का उनसे मेल हो चुका था। राम और कल्माषपाद के समकालीन होने से दूसरा

ही विचार ठीक समझ पडता है और दो वशिष्ठो की कल्पना अनावश्यक प्रतीत होती है। सगर के पुरोहित भी वशिष्ठ ही हुए। (सगर का विवरण देखिये)। ऊपर के वर्णनों से प्रकट है कि हरिश्चन्द्र सगर और कल्मापपाद राम के थोड़े ही इधर उधर हुये। पार्जिटर महाशय ने पौराणिक वंशावलियों का समकालीनेताओं मे मिलान कम किया और कई सामञ्जस्यपूर्ण कथाओ को ब्राह्मणो की कल्पना बतला कर इन लोगो मे शताब्दियों का अन्तर माना, अथच सभी चन्द्रवंशी वंशावलियों को अधूरा कहा। इसी लिए उन्हे कई वशिष्ठो की निराधार कल्पना करनी पडी। पुराणो मे केवल दो वशिष्ठ हैं, अर्थात् एक मैथिल निमि द्वारा मरने वाले और दूसरे उपर्युक्त व्यक्ति। हरिश्चन्द्र के देवराज और सवर्ण के सुवर्चस वशिष्ठ चाहे दो हों, किन्तु समझ एक ही पडते हैं। पराशर अवश्य एकाधिक हैं। एक पराशर राम के समय वाले शक्ति पुत्र हैं, और दूसरे परीक्षित (पौरव नं० ५५) को भागवत सुनाने वाले शुकदेव के पितामह तथा कृष्ण द्वैपायन व्यास के पिता। दक्षिण पांचाल (न० ४८) अणुह (मत्स्य ४९, ५६) के श्वसुर कोई दूसरे शुकदेव थे, क्योंकि उनका समय परीक्षित से बहुत पूर्व है और इस काल भी शुकदेवजी लडके ही थे।

१७—अब भार्गवों का वंश उठाया जाता है। भृगु ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में से एक और बड़े मान्य प्राचीन ऋषि थे। आपने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों का अपमान परीक्षा लेने को किया, किन्तु इनको इससे क्षति न पहुँची। कथा दार्ष्टान्तिक मात्र है। प्रयोजन इनकी प्राचीन महत्ता से है। इनके पुत्र च्यवन ऊपर आ चुके हैं। एक शुक्राचार्य (हरिवंश) हिरण्यकशिपु तथा बलि के पुरोहित थे, जिनके पुत्र सन्द और मर्क प्रह्लाद के शिक्षक थे। इन दोनो का कथन ऋग्वेद में भी है। दूसरे शुक्राचार्य भृगु के दूसरे पुत्र थे जो ययाति, (पौरव नं० ६) के समकालीन (म० भा०) वृषपर्वा के पुरोहित थे। इन दोनों की कन्यायें देवजानी तथा शर्मिष्ठा ययाति को व्याही थीं। पहली के यदु और तुर्वश नामक शुक्र के दौहित्र हुए और दूसरी के अनु, द्रुह्यु और पुरु नामक वृषपर्वा के दौहित्र। इन पाँचो वंशों के

कथन वेद मे बहुत अधिकता से हैं। शुक्राचार्य ययाति (नं० ६) के श्वसुर थे, तथा इनके बड़े भाई च्यवन (नं० २) आनव नरेश शर्याति के दामाद जान पडते हैं। शायद भृगु दीर्घजीवी और शुक्र वृद्धत्रय के पुत्र थे। सुकन्या ने च्यवन की सेवा तो अच्छी की, किन्तु बिना राजसी ठाटबाट के स्त्री की भाँति रहने से इनकार किया, अथवा अनिच्छा प्रकट की। अनन्तर किन्हीं दो वैद्यो (म० भा० मे आश्विनों) ने इस नियम पर वृद्ध च्यवन को युवा करने का वचन दिया कि उनके युवा होने पर सुकन्या उन तीनो में से जिसे पसन्द करे वही उसका पति हो। च्यवन युवा हो गये और सुकन्या के पसन्द करने पर राजसी ठाट से उसके साथ रहने लगे। च्यवन की भी महत्ता कम न थी। आपने इन्द्र तक का सामना किया, जिसमें वेदानुसार पराजय तथा महाभारतानुसार विजय पाई। वेद मे आपका वृद्ध से युवा होना कई बार लिखा है। पार्जिटर महाशय ने साधार कथन किया है कि आनर्त राज्य के पतन पर च्यवन हैहयो के यहाँ रहने लगे। हैहय का नं० २५ है, तथा शर्याति स्वय वैवस्वत मनु के पुत्र लिखे हैं। हरिवश में आया है कि सूर्यवशी युवनाश्व के भाई हर्यश्व को उनके श्वसुर मधु दैत्य ने आनर्त का राज्य दिया, जहाँ उनके पीछे उनका दत्तक पुत्र यदु राजा हुआ। हर्यश्व की बहिन अग्निवर्णा नामक नागराज को ब्याही थी, जिसकी पाँच पुत्रियों के साथ यदु का विवाह हुआ। इन्ही यदु के वंशधरो ने गिरि गोमन्त (गोवा) की ओर करवीरपुर तथा क्रौंचपुर बसाये थे, जिनके तत्कालीन स्वामियों के समय श्रीकृष्णचन्द्र उधर गये। यह सूर्यवश शर्याति ही का समझ पडता है, अथवा सम्भव है कि उनके पीछे का हो। शायद कथित मधु दैत्य वास्तव मे यदुवशी (नं० ३९) मधु नरेश थे। यही बात ठीक समझ पडती है, क्योंकि लवणासुर को मार कर जब रामानुज शत्रुघ्न ने मथुरा मे अपना राज्य जमाया और फिर स्वपुत्र को वहाँ का शासक बनाया, तब हरिवश के अनुसार मथुरा का अपनी समझ कर यदुवशी नरेश (नं० ४३) भीमसात्वत ने उस पर अधिकार कर लिया। यदि वह मधु दैत्य की होती, तो उसे वे अपनी कैसे समझते? यह प्रकट है कि शार्यातों के पीछे पुण्यजन

राक्षसो ने आनर्त पर अधिकार किया, तथा भार्गव हैहयों के पुरोहित हुए, एवं शार्यात क्षत्रिय हैहयों मे मिल गए। भार्गवों का खास मान हुआ और उन्हे धन भी अच्छा प्राप्त हुआ। कुछ दिनो में धनाभाव से हैहयो ने भार्गवो से द्रव्य मॉगा। उन्होंने भी अपने पास धनाभाव बतलाया, किन्तु खोदने से उनके यहाँ प्रचुर द्रव्य निकला (म० भा०)। इस पर क्रुद्ध होकर हैहयो ने गर्भ तक फाड फाड़ कर उनके वश का नाश किया, केवल और्व नामक एक भार्गव बच रहे। उन्हीं के पुत्र ऋचीक ऋषि प्रकट कारणों से शस्त्री हुए। महाभारत शान्ति पर्व दान धर्म में ऋचीक का और्वात्मज होना लिखा है। उनका विवाह विश्वामित्र की बहिन सत्यवती से हुआ। सत्यवती पुत्र जमदग्नि और विश्वामित्र के जन्म प्राय: साथ ही हुए। जमदग्नि के पाँचवे पुत्र परशुराम ने पुराना और पिता का नया वैर निकाल कर हैहयवशी (नं० ३४) अर्जुन का युद्ध में बध किया। अर्जुन और उनके पिता कृतवीर्य दोनों बड़े प्रतापी और विजयी थे। समझ पडता है कि वृद्धावस्था मे अर्जुन मारे गए। यदि यादव (३९) मधु के दौहित्र यदु के एक ही पुश्त पीछे आनर्त राज्य राक्षसों ने जीता हो, तो भी यह समय दशरथ के समकालीन सत्वन्त का पड़ता है। उधर भार्गवो की कम से कम चौथी पीढ़ी वाले परशुधर अर्जुन (३४) के समकालीन थे, सो भार्गववंश का यदु से कुछ पहले ही साहंज या महिषमन्त के समय हैहयों का पुरोहित होना समझ पड़ता है। इस सम्बन्ध में निकट ऊपर का नोट १५, भी देखिए।

१८--द्रुपद के पिता पृषत् (उत्तर पाँचाल नं० ४९) गंगा द्वार-वासी, द्रोण के पिता, आंगिरस भरद्वाज के मित्र थे। भरद्वाज ही ने अग्निवेश को आग्नेयास्त्र सिखलाया और उन्होंने द्रोण को (म० भा०)।

१९--दत्तात्रेय ने हैहयार्जुन ३४, पर कृपा की जिससे उसका प्रताप बढ़ा। उनके पुत्र निमि ने पहला श्राद्ध किया। जमदग्नि ने भी यही किया।

२०—नरनारायण और बादरायण विश्वामित्र के पुत्र कहे गए

हैं। नरनारायण युधिष्ठिर के समकालीन तथा बादरायण बुद्ध के पीछे वाले होने से विश्वामित्र के वंशधर मात्र हो सकते है।

२१—वैशाली के (नं० २२) मरुत्त का पुत्र दम हुआ। उसका आठवाँ वंशधर त्रिणविन्दु त्रेता मे राजा था। उसकी पुत्री इलविला के पुत्र पुलस्त्य ऋषि के पुत्र वैश्रवण हुए। (वायु ७०, २९, ५६, ब्रह्माण्ड, III ८, ३४, ६२, म० भा०, लिंग ६३, ५५, ६६, कूर्म I ९, ७, १५, पद्म २६९, १५, १९, भागवत IX २, ३२ रामायण, VII २, ५, ९, III २२,) इनकी कुलीनास्त्री के पुत्र कुबेर नर्मदा पर हुए (शतपथ ब्राह्मण XIII ४, ३, १०) और पौत्र नलकूबर। कुबेर ने सुमाली राक्षस से लंका जीती। माल्यवन्त और माली उसके भाई तथा पुष्पोत्कढ़ा, मालिनी और राका नाम्नी तीन कन्यायें थीं। यही तीनों वैश्रवण को मिली। इनमे पहली के पुत्र रावण तथा कुम्भकरण हुए, दूसरी के विभीषण और तीसरी के खर तथा शूर्पणखा (कन्या)। इसके पति को रावण ने बे जाने हुए थोडी ही अवस्था मे मार डाला। इसी से शूर्पणखा का वह बहुत मान करता था (म० भा०)। रावण ने दक्षिण पाँचाल नरेश (नं० ४१) अनरण्य को युद्ध मे मारा (रामायण)। पौलस्त्यो की तीन शाखाये प्रसिद्ध हैं, अर्थात आगस्त्य, कौशिक या वैश्वामित्र तथा अन्य पौलस्त्य। पौलह और क्रतु भी आगस्त्य थे। पुलस्त्य ने पुत्रवान होकर भी अगस्त्य वंशी एक बेटे को गोद लिया था जिससे उनकी आगस्त्य शाखा चली। अगस्त्य का वंश बहुत बडा था।

२२—युधिष्ठिरी राजसूय के सम्बन्ध मे भीम ने उत्तर कौशलेश श्रावस्ती नरेश बृहद्बल तथा अयोध्या नरेश पुण्यात्मा दीर्घयज्ञ को हराया (म० भा० सभा पर्व)।

२३—विदेह वंशी धृति (नं० ५२) और बहुलाश्व, नं० ५३, यादव श्रीकृष्ण, (नं० ५५) के समकालीन थे (भागवत)।

२४—निषद, विदर्भ, दक्षिण कोशल, चेदि और दशार्ण मिली हुई रियासतें थीं (प्रधान)। निषदराज वीरसेन के पुत्र नल वैदर्भ भीमरथ (३४) के दामाद थे। भीम रथ और चेदि राज सुबाहु दोनों दशार्ण नाथ सुद्युम्न के दामाद थे (म० भा० वन पर्व)। दमयन्ती-

भैमी नल की रानी थीं। उत्तर पांचाल नरेश भृम्यश्व (न० ३५) के पुत्र वेदर्षि तथा राजा मुद्गल को नलायनी इन्द्रसेना व्याही गई (ऋग्वेद तथा म० भा०।)

२५—अर्जुन पौरव न० ५३ के भाई सहदेव ने विदर्भनरेश भीष्मक तथा दक्षिण कौशलेश को हराया (सभापर्व म० भा०।)

महाभारत आदि मे और भी बहुतेरी समकालीनताये मिलेंगी। इन सब की टक्कर उपर्युक्त वंशावलियो से बैठ जाने से उनकी दृढता प्रमाणित होती है। आगे के वर्णनो मे और भी सम सामयिक विवरण आवगे। यहाँ मुख्य कह दिए गए हैं।



दसवाँ अध्याय

मनु-रामचन्द्र काल (त्रेतायुग)

प्राय: १९००—१२५० बी० सी० सूर्यवंश

त्रेतायुग के विषय मे दसवे से १३ वे अध्यायो तक जितने कथन हैं, उनके आधार बहुधा वही हैं, तथा शेष १२ वें अध्याय के अन्त मे और छठवे से आठवे अध्यायो मे है। पूर्ववाले तीनो वैदिक अध्यायो से प्रकट है कि वेदो मे ऐतिहासिक घटनाओ का कथन प्रचुरता से है, किन्तु सामूहिक क्रमबद्ध वर्णन का अभाव है। इससे केवल वेदो के सहारे सक्रम इतिहास का लिखना कठिन है। ऐसा करने मे बहुत करके अनुमानो का ही सहारा लेना पडेगा। फिर भी वेदो मे घटनाओं के जो कथन है वे ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत लाभदायक हैं। पुराणो और इतिहासों मे कथित घटनाओ को पाश्चात्य लोग कभी-कभी अनिश्चित कथा कहानी मात्र मानते थे। कुछ पौराणिक गाथाएँ अनिश्चित हैं भी किन्तु उनके मुख्य कथनो को ध्यानपूर्वक पढ़ने और उनमे से साहित्य तथा माहात्म्य सम्बन्धी अत्युक्तियाँ निकाल डालने से निश्चित इतिहास ज्ञात हो सकता है। पुराणों के सब से अधिक निश्चित भाग वंश वृक्ष हैं। प्रत्येक राजकुटुम्ब अपनी वंशावली को बडी युक्ति के साथ रक्षित रखता था। राजपुरोहितादि भी राजकुल के वंशवृक्ष का बडी सावधानी से रक्षण करते थे। पुराणो मे वंशावलियो के विवरण बहुत स्वल्प अन्तर के साथ एक दूसरे से मिलान भी खा जाते हैं। इन कारणो से वंशावलियाँ दृढ समझ पडती हैं। केवल इन्ही को दृढ मान लेने से हम वैदिक घटनाओ के आधार पर क्रमबद्ध इतिहास लिख सकते हैं। पुराणो के अनिश्चित भागों का सहारा न लेने से भी यह इतिहास अच्छा बन सकता है। इसलिए वैदिक समय का इतिहास लिखने मे हम पुराणों में लिखित वंशवृक्षों

का सहारा लेकर अन्य घटनाओं मे वेदो ही को प्रधानता देंगे और पुराणों की दृढ तथा लोकमान्य बातों को ही मिला कर ऐतिहासिक शुद्धता का पूरा ध्यान रक्खेगे। चौथे अध्याय में पौराणिक राजवशो का कथन हो चुका है और ५ वे मे पहले वश का भी सहारा लेकर इतिहास कहा जा चुका है। अब वंश न० २ व ३ के सहारे पर यहाँ वैदिक समय का इतिहास लिखा जावेगा। न० २ सूर्यवश है और न० ३ चन्द्रवंश।

ऊपर कहा जा चुका है कि चाक्षुप मन्वन्तर की मुख्य घटनाएँ समुद्रमन्थन और बलिबन्धन हैं, जिनका वर्णन ५वें अध्याय मे हो चुका है। बलिबन्धन के पीछे मगध पर्य्यन्त देशों मे आर्य्यों की राजधानियाँ स्थिर होने लगीं। चाक्षुप मनु के पीछे पहला राजघराना जो महत्ता को प्राप्त हुआ वह सूर्य्यवंश ही था। स्वायम्भुव और वैवस्वत मन्वन्तरों के बीच मे कुछ राजघरानो के नाम अवश्य मिल सकते हैं, किन्तु उनके विजयो, वशवृत्तो आदि का पूरा पता नही चलता। आर्य्यों के शत्रुओं में दैत्य दानवो आदि का हाल कुछ विस्तार मे लिखा है। आर्य्य नेताओ मे पाँचो मनु, नृसिंह और वामन के नाम मिलते हैं। स्वायम्भुव मनु के वशधरो के पीछे हमको सब से बड़ा राजकुल सूर्य्यवंश का मिलता है, जिसके पहले स्वामी वैवस्वत मनु स्वयं किसी सूर्य्य नामक व्यक्ति के पुत्र कहे गये हैं।

आर्यों की दूसरी भारतीय धारा—मनुवश—उत्तर कोशल महाजनपद। फारस के उत्तर पूर्व से अफगानिस्तान और पामीर तक किसी स्थानमे आर्य सम्राट्, इन्द्र का राज्य था। उनके युद्ध दैत्य दानवों आदि से हुआ करते थे। बृहस्पति उनके पुरोहित थे तथा चन्द्र औषधियों और वनस्पतियों के स्वामी। एक बार चन्द्र गुरु पत्नी तारा को भगा ले गए। वे दोनों एक दूसरे को चाहते थे। बृहस्पति के प्रयत्नो से इन्द्र ने चन्द्र से तारा फेर देने के बहुत कहा सुनी की और उनके न मानने पर सेनसन्धान भी कर दिया। चन्द्र ने दैत्य-दानवों की सहायता से उन्हें हरा दिया। अनन्तर सन्धि होकर तारा गुरु को मिल गई, तथा बृहस्पति के यहाँ कुछ ही पीछे उत्पन्न तारा पुत्र बुध, चन्द्र की वास्तविक पितृत्व

के कारण उन्हे मिला। वैवस्वत मनु नामक एक दूसरे प्रधान आर्य थे, जिनकी पुत्री इला का समय पर बुध से विवाह हुआ। जो इन्द्र चन्द्र की मन मैली हुई थी, वही शायद मनु और बुध के भारत आने की कारण हुई, अथवा यह भी सम्भव है कि उनका इधर आना अन्य कारणो पर अवलम्बित हो (हरिवंश और महाभारत)। हमारे पाँचवे अध्याय में इसका कुछ कथन हो चुका है। दलाल के कथनो तथा मन्वन्तरों मे आया है कि आर्य लोग किन दशाओं मे भारत मे आये। यहाँ दूसरी विजयिनी आर्य धारा का विवरण हो रहा है। पार्जिटर महाशय का मत है कि यह धारा तिब्बत की ओर से आई। जो हो, हम वैवस्वत मनु को अयोध्या तथा बुध को प्रतिष्ठानपुर (झूँसी प्रयाग के इस पार) मे स्थापित होते देखते हैं। सम्भवतः इनके इलाव्रत से आने से चन्द्रशाखा ऐल कहलाई। बुध की स्त्री इला थी, जिस के वंशधर भी सारे ऐल थे।

इला के कारण भी ऐल नाम हो सकता था, अथवा इस नामकरण की इला और इलाव्रत दोनो कारण हो। मनु के एक पुत्र सुद्युम्न भी किम्पुरुष कहे गए हैं। वे इलाव्रत चले गए। उनके तीन पुत्र उत्कल, विनताश्व और गय थे। उत्कल को उत्कल देश (गया के दक्षिण पच्छिमी बंगाल) मिला, विनताश्व उपनाम हरिताश्व को कोई पच्छिमी देश तथा गय को गया और पूर्वी प्रान्त (मत्स्य १२,१८ पद्म V ८, १२३)। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि हरिताश्व ने उत्तरी कुरु तथा पूर्वी देश पाये (म० भा० ७५.३१,४२,३)। सुद्युम्न के ५० और पुत्र थे जो आपसी युद्ध में कट मरे। अयोध्या का बसाना बाल्मीकि ने मनु द्वारा लिखा, तथा कहीं कहीं उनके पुत्र इक्ष्वाकु द्वारा इस पुरी को बसाया जाना भी कथित है। जान पड़ता है कि यह कार्य मनु ने प्रारम्भ किया और इक्ष्वाकु ने पूरा। मनु के मुख्य उत्तराधिकारी इक्ष्वाकु अयोध्या के राजा हुए। उनके अन्य पुत्रों मे नाभाग या नृग, धृष्ट, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभानदिष्ठ, करूष, शर्याति, प्रपध्र् आदि थे। नाभाग नृग को कहा है। इधर इसी वंश के राजा न० २८ का नाम भी नाभाग था। नृग का महादानी होना प्रसिद्ध है। इसी गड़बड़ मे उन्हे एक बार शाप भी मिला। शर्याति ने कैम्बे की खाड़ी के पास

राज्य स्थापित किया, जो कई पीढ़ी चला। इसका कथन आगे होगा। धृष्टि के विषय मे कुछ विशेष कथन नहीं है। शिवपुराण का कथन है कि धार्ष्टों को बाह्लीक देश मिला। कारूषो का आधिपत्य रीवां तथा पूर्वी सोन पर हुआ। कारूष क्षत्रियो की वीरता प्रसिद्ध है। श्रीकृष्ण बलराम से युद्ध करने वाले मुष्टिक, चाणूर कारूष थे। नरिश्यन्त अनिश्चित हैं। प्रपध्र शाप वश शूद्र होगए। नाभाग और तत्पुत्र अम्बरीष का अधिकार उत्तरी यमुना पर भी लिखा है। इसका विवरण यथा समय होगा। नाभानेदिष्ठ से वैशाली राज्य और वश चले। इसका भी विशेष कथन यथास्थान आवेगा।

इक्ष्वाकु और तद्वंश

इनके सौ पुत्र कहे गए है, जिनमे शकुनि, वशाति, निमि और विकुक्षि की मुख्यता है। विकुक्षि अयोध्या के राजा हुए। कहते हैं कि निमि ने मिथिला प्राप्त करके जयन्त में राजधानी बनाई। पहले जयन्त राजधानी बनी और बहुत काल पीछे मिथिला (वायु पु० ८९,१,२,६ ब्रह्माण्ड ।।। ६, ४, १, ६)। यह ठीक है किन्तु निमि इन्हीं इक्ष्वाकु के पुत्र थे, सो अनिश्चित है। कारण यथास्थान आवेगा। शकुनि के नेतृत्व मे ४५ ऐक्ष्वाकु उत्तरायथ पजाब मे राज्य करने लगे तथा वशाति के नेतृत्व मे ४८ भाई दक्षिणापथ मे स्थापित हुए। इनमे दडक भी एक थे। इन्हीं के नाम पर महाकान्तार दडक वन कहलाया। समझ पडता है कि उधर जाने पर या तो वशाति के स्थान पर या उनके मरने पर दडक की प्रधानता हुई होगी। इनके पुरोहित शुक्राचार्य थे। इनकी अनुपस्थिति मे राजा ने इनकी कन्या से व्यभिचार कर डाला। पलटने पर जब शुक्र ने हाल सुना तो शाप दिया कि प्रजा समेत राजा नष्ट हो जावे। अनन्तर वे तो अन्य ऋषियो सहित जनस्थान चले गए और इधर यह उपनिवेश नष्ट होकर जैसा का तैसा जगल होगया। सम्भवत. शुक्र के प्रयत्नों से ऐसा हुआ होगा।

मुख्य ऐक्ष्वाकु विकुक्षि ने यज्ञार्थ शिकार खेलने जाकर मारे हुए पशुओं मे से मार्ग में खाना बना कर एक शशक का भक्षण कर लिया, जिससे वे शायद शशाद कहलाये। इस उपाधि से उस काल यज्ञ का

गौरव समझ पड़ता है। ये राजर्षि भी कहलाये थे। इनके पुत्र पुरंजय ने इन्द्र की सहायता करके ककुत्स्थ की उपाधि पाई, जिससे इनका वंश ऐक्ष्वाकु के साथ काकुत्स्थ भी कहलाया। विश्वगश्व का हयदल किसी युद्ध से पराजित होकर न पलटा। इन राजाओं के समय उधर चन्द्रवंशी भारी उन्नति कर गये। इनमे नहुष, ययाति, यदु, पुरु, आदि सम्राट हुए, जिनके कथन आगे आवेगे। सूर्यवशी (नं० १०) श्रावस्त ने श्रावस्ती पुरी बसाई। कुवलयाश्व ने पराक्रमी धुन्ध राक्षस को मार कर धुन्धमार की उपाधि पाई। इस युद्ध में राजा के कई पुत्र काम आये। इस काल अश्व नाम पर कई राजे हुए। इनमे हयदल की मुख्यता समझ पड़ती है। दृढाश्ववीर, लोकप्रिय और शान्तिरक्षक हुआ। निकुम्भाश्व ने युद्धो तथा यज्ञो के बाहुल्य से अपना कोष बिगाडा। इनके पुत्र दूसरे युवनाश्व, धार्मिक, वीर और यज्ञकर्ता थे। वे घर मे शशकवत सीधे किन्तु युद्ध मे सिंहवत् प्रचण्ड थे। प्रसिद्ध मांधातृ इन्ही के पुत्र थे।

मान्धातृ और वंशज

इस काल तक यादवों का प्रभाव बढ़ चुका था और यादव नरेश शशिबिन्दु ने पौरवो को राज्यच्युत किया, तथा द्रुह्यु वशियो को भी दबाया। अनन्तर उनके वशज छोटे-छोटे राजा होकर बलहीन हो गए। मान्धाता का विवाह शशिबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती से हुआ। आप केवल १६ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे। यह गौरवर्ण, अच्छे डील-डौल युक्त और बलवान थे। बिन्दुमती और गौरी के मान्धाता से सम्बन्ध के आधार नवें अध्याय में आ चुके हैं। मान्धाता की कथा महाभारत III १२६, १०४, ६२ VII ६२, २२८१, २ मे है। अन्य आधार आगे के एक अध्याय मे हैं। कहते हैं कि मान्धाता की सेना दस लाख थी, जिससे आपने सारा भारत, लका तथा महासागर के टापुओं को जीत कर सम्राट् की उपाधि पाई। इनका सम्राट् होना सिद्ध है किन्तु इतनी सेना तथा विजयों के कथन असिद्ध। आपके द्वारा आनव जनमेजय (नं० १९), द्रुह्यु वंशी (नं० २१) अंगार, तुर्वश वशी (न० २२) मरुत्त, सुधन्वा, गय, आंग (न० ४६)

बृहद्रथ, पुरु, राम आदि का जीता जाना लिखा है। जनमेजय अगार और मरुत्त इनके समय में पड़ते भी हैं। एक सुधन्वन (नं० २९) मागध थे, जिनका समय इनके पीछे पड़ता है। गय स्वयं मनु-वैवस्वत के पौत्र (नं० २ सुद्युम्न पुत्र) तथा पुरु (नं० ७) दोनो मान्धाता से बहुत पहले के हैं। ऊपर दिखलाया गया है कि ऋग्वेद मे हारे हुए वंशजो के स्थान पर स्वयं यदु, अनु, द्रुह्यु आदि का हारना (मारा जाना तक) लिखा है। वैसे ही यहाँ गय वंशियों तथा पुरुवंशियो के हराने के स्थान पर स्वयं गय और पुरु के नाम लिखे हैं। प्रयोजन इनके वंशधरो के हारने का है। आंग बृहद्रथ मान्धातृ से प्रायः २५ पीढ़ी नीचे हुए हैं। इनका यहाँ नाम लिखा जाना पौराणिक सम्पादको की भूल है। राम इस काल कोई प्रसिद्ध राजा न थे। सम्भव है कि वैदिक यज्ञकर्ता राम से प्रयोजन हो। सुधन्वन, अमित और बृहद्रथ कोई अज्ञात साधारण राजे हो सकते हैं, जो मान्धाता से हारे हो। किसी पच्छिमी नरेश अरुद्ध को जीत कर आपने गान्धार प्राप्त किया, यह भी कथन है। अनन्तर मान्धाता द्वारा पराजित द्रुह्यु वंशी अगार के पुत्र गन्धार गान्धार मे स्थापित हो गए। अयोध्या नरेश को इस दूरस्थ प्रान्त को स्ववश रखने मे मान्धाता के पीछे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। मान्धाता न्यायी और सबल शासक थे, जिन्होने चोरो की लूट मार बन्द कर दी। उत्तर पच्छिमी भारत मे घोर अकाल का भी आपने अच्छा प्रबन्ध किया, तथा कुरुक्षेत्र मे अनेक यज्ञ किए। प्रसिद्ध सौभरि ऋषि आपके दामाद थे। सौभरि पुत्र गौर ने पूर्व मे एक राज्य स्थापित करके अपने नाम पर बसाये हुए गौर नगर को उसकी राजधानी बनाया। शायद इसी नाम पर उत्तरी बगाल गौड देश कहलाता हो। मथुरा में इस काल एक प्रतापी राक्षस राज्य करता था। एक बार वृद्धावस्था मे थोडे ही से साथियों सहित मान्धाता उस ओर होकर निकले। राक्षस राज प्राचीन पराजय से इनसे रुष्ट था, सो उसने बडे भारी दल की सहायता से युद्ध मे इनका बध कर डाला।

तदनन्तर अयोध्या में इनका पुत्र कुत्स राजा हुआ। गान्धारो का एक बार तो आप दमन कर सके, किन्तु दूसरे बार पराजित होकर

बन्दी होगए। इसी से आपका नाम पुरुकुत्स (बहुत बदनाम) पड़ा। तब आपके भाई मुचकुन्द ने ससैन जाकर गन्धर्वों (अफगानो) को पराजित करके इनका मोचन किया। पलटने पर बन्दी होने के कारण प्रजा न इन्हे न माना और इनका पुत्र दुधमुहा बच्चा त्रसदस्यु राजा हुआ, तथा उसके चचा अम्बरीष और मुचकुन्द वली हुए। तरुण होने पर त्रसदस्यु ने गन्धर्वों पर कई आक्रमण किए और उनका बल चूर्ण कर दिया। उसके प्रायः ५० वर्षों के राजत्व काल मे उत्तर कोशल की दशा बहुत अच्छी रही। पुरुकुत्स और तत्पुत्र त्रसदस्यु वैदिक नरेश भी हैं। वहाँ भी पुरुकुत्स के बदी होने की दशा मे त्रसदस्यु का जन्म लिखा है, तथा उनकी बडी प्रशसा है। फिर भी कुछ पंडित लोग वैदिक त्रसदस्यु को इस कारण पौरव मानते हैं कि उनके द्वारा पौरवो को कुछ मिलना लिखा है। इनका पौरव होना असिद्ध है। पौराणिक पौरव वश में कोई पुरुकुत्स और त्रसदस्यु नही हैं। शतपथ ब्राह्मण उन्हे ऐक्ष्वाकु कहता है (XIII ५,४५)। अतएव इस नाम के एक नरेश सूर्य्यवशी अवश्य हैं। पुरुकुत्स राज्यच्युत होने पर नर्मदा नदी की ओर चले गए। मुचकुन्द ने माहिष्मती (वर्तमान मांधाता) पुरी बसाई। इन्होने मान्धाता ही नाम रक्खा होगा, किन्तु पीछे हैहय महिष्मन्त ने इसे माहिष्मती कहा होगा।

त्रसदस्यु के पीछे न० २४ सम्भूत (वेद में तृक्ष) से न० २७ श्रुत पर्यंत कोई मुख्यता न हुई, केवल रुरुक शान्तिप्रिय कहे गए हैं और वृक भयानक। तालजघ हैहय ने अपनी म्लेच्छ सेना के बल से जब उत्तरी भारत के नरेशो पर आक्रमण किया, तब उत्तर कोशल राज्य रक्षित रहा। वृक का समय तालजघ से पहले का था। जान पडता है कि उन्होने कभी हैहय दल को हराया होगा जिससे ताल जघ ने इधर कोशल के प्रतिकूल प्रयत्न न किया।

अनन्तर (न० २८) नाभाग एक बडे राजा हुए। नाभाग ने एक वैश्या स्त्री से विवाह किया, जिससे पहले तो इनके पिता अप्रसन्न हुए, किन्तु पीछे उन्होंने क्षमा करके इन्हें युवराज के पद पर प्रतिष्ठित किया। इससे जान पडता है कि ऐसा जाति सम्बन्धी प्रश्न इस काल गौरवपूर्ण न था। नाभाग और अम्बरीष के राज्य यमुना तट पर भी

लिखे हैं। अम्बरीष विकराल युद्धकर्ता थे। जीवन मे उनका एक मात्र कार्य युद्ध था। ये विष्णु भक्त भी थे। इन्ही के एकादशी व्रत मे बाधा डालने से ऋषि दुर्वासा पर वैष्णव चक्र छूटा था। (न० ३०) सिन्धु द्वीप से दिलीप खट्वांग (न० ३४) तक कोई मुख्यता न थी। कालिदास ने इन्हीं के पुत्र को रघु माना है, किन्तु पार्जिटर ने कई पुराणों को मिला कर इनका पुत्र दीर्घबाहु एव पौत्र रघु कहा है। रघु की सहायता से दिलीप ने अश्वमेध यज्ञ किया। रघु एक प्रतापी राजा थे, जिनसे पीछे वाले नरेश रघुवशी कहलाये। दिलीप के अश्वमेध मे रघु ने कालिदास के अनुसार सुम्ह, वंग, कलिंग, उडीसा पति महेन्द्रनाथ, दाक्षिणात्य पांड्य, केरल, मलाबार, पच्छिमी घाट, कोकण, पाश्चात्य भारत, फारस के यवनो, उत्तर के हूँणो, काम्बोजों, सात पार्वतीय राजाओ, प्राग्ज्योतिष तथा कामरूप को हराया। अनन्तर दिलीप ने अयोध्या ही मे रह कर वानप्रस्थ आश्रम का पालन किया।

रघु पुत्र अज का विवाह वैदर्भी इन्दुमती से हुआ। उस स्वयवर मे कालिदास ने निम्न नरेशो की उपस्थिति लिखी है, मगधेश्वर परन्तप, अंगनाथ, अवन्तिनाथ, कार्तवीर्य प्रतीप, नीपवशज, उत्तर पांचाल, सूर सेनाधिपति सुषेण, कलिंगनाथ, हेमांगनाथ, हेमांगद, पांड्य देशान्तर्गत उरग पुर पति, तथा अयोध्या के युवराज अज। मार्ग मे प्रियवद् गन्धर्व से अज ने सम्मोहनास्त्र प्राप्त किया। कालिदास ने इस काल सूर सेनों को मथुरा का राजा कहा है। उपरोक्त सब राजे युद्ध में अज से पराजित हुए। इन्दुमती से अज का परम प्रगाढ़ प्रेम था। इन्ही दम्पति के पुत्र रामचन्द्र के पिता राजा दशरथ हुए। इन्दुमती के यौवनावस्था ही मे मर जाने से अज सात वर्ष तक शोकित रहे और एक दिन इनका शव सरयू नदी मे बहता हुआ मिला। किसी ने डूबने का हाल न जाना। आत्म-हत्या का सन्देह रहा। महाराज दशरथ ने नीति-पूर्वक राज्य किया। कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी आपकी मुख्य रानियाँ थीं। राजमहिषी कौशल्या दक्षिण कोशल नरेश भानुमान की पुत्री थी। यह नाम अपनी वशावली मे नहीं है। सम्भवः यह सुदास का दूसरा नाम हो। सुमित्रा मगधपति की कन्या थी और बाबाता कैकेयी उत्तरी पच्छिमी आनव नरेश केकय की पुत्री। दशरथ

ने सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, मत्स्य, काशी, दक्षिण कोशल, मगध, अंग, बंग, और द्रविड़ नरेशो को जीता तथा अश्वमेध किया। गिरिव्रज के प्रसिद्ध युद्ध मे आपने उत्तर पांचाली दिवोदास की सहायता की। कुलीतर के वशधर तिमिध्वज शम्बर की पराजय मे आपका भी विशेष भाग था। शम्बर की स्त्री मायावती रावण की महिषी मन्दोदरी की बहिन थी। उससे व्यभिचार करने के प्रयत्न के कारण शम्बर ने रावण को बन्दी कर लिया था और श्वसुर मय के कहने पर ही छोडा था (शिवपुराण)। इसकी राजधानी वैजयन्त थी। गिरिव्रज के युद्ध मे एक बार कैकेयी ने दशरथ के प्राण बचाये, जिसके कारण उनके दो वरदान इनके पास थाती की भांति रहे। अग नरेश लोमपाद इनके मित्र भी थे। उन्होने कौशल्या मे उत्पन्न इनकी पुत्री शान्ता को गोद लेकर उसका विवाह ऋषि शृग से किया। इन्हीं ऋषि ने दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ कराई, जिससे इनके चार बेटे हुए, अर्थात् कौशल्या से ज्येष्ठ राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से यमज लक्ष्मण, शत्रुघ्न। दशरथ ने कैकेयी के बर मांगने पर राम को छोड कर सत्य का पालन किया, और वियोग मे शरीर छोड कर पुत्र प्रेम निबाहा। अतएव दशरथ केवल राम के पिता होने से प्रसिद्ध नही है, वरन् स्वय भी परम पूज्य थे। रामचन्द्र का वर्णन एक पृथक अध्याय मे आगे होगा।

दक्षिण

दक्षिण वाले सूर्य्यवशी राजाओ का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। अब दक्षिण का भी कुछ हाल कह कर तब आगे चलना होगा। हम ऊपर कह आये है कि दक्षिण मे सब से पहल जाने वाले महापुरुष अगस्त्य ऋषि थे। इनके अतिरिक्त पुलस्त्य ऋषि के वशधरो ने भी कुछ आतङ्क जमाया था। पुलस्त्य के पुत्र वैश्रवण हुए जिनक पुत्र कुबेर थे। ये यक्षो के राजा हुए और इनको धनाधीश की उपाधि मिली। आप पिता और पितामह क साथ गन्धमादन पवत पर रहते थे। यह हिमालय पर्वत के उस भाग का नाम है जो बदरीनाथ से आरम्भ होता है। कुबेर ने दक्षिण जाकर लङ्का नामक टापू जीता और वहाँ अपना

राज्य जमाया। कहते हैं कि लङ्का मे उस काल भी राक्षस लोग रहते थे। इन्हीं को जीत कर कुबेर ने वहाँ का राज्य प्राप्त किया। इसमे माल्यवान् और सुमाली नामक दो भाई प्रधान थे। सुमाली की पुष्पोत्कटा, मालिनी तथा राका नाम्नी तीन परम सुन्दरी कन्यायें थीं। कुबेर ने अपने पिता से उतना व्यवहार नही रक्खा जितना पितामह से। इस बात से वैश्रवण उनसे अप्रसन्न हुए। इनको प्रसन्न करने के विचार से कुबेर ने सुमाली की तीनो कन्याये इन्हे ला दीं। इनमें वैश्रवण ने पुत्र उत्पन्न किये। पुष्पोत्कटा के पुत्र रावण और कुम्भकर्ण हुए, मालिनी के विभीषण और राका के खर पुत्र तथा शूर्पणखा कन्या। जब ये बालक समर्थ हुए, तब इन्होंने नाना से मिल कर भाई कुबेर से लङ्का छीन ली तथा पुष्पक नामक व्योमचारी विमान भी ले लिया। इस प्रकार राक्षसो का राज्य लङ्का मे फिर स्थापित हो गया।

रावण को होनहार समझ कर मय दानव ने अपनी कन्या मन्दोदरी उसको व्याह दी। रावण ने अपने तीनो भाइयो तथा बहिन के भी उचित रीति से विवाह किये। रावण के मेघनाद नामक बडा प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त अक्षयकुमार, नरान्तक सुबाहु आदि कई अन्य प्रतापी रावणात्मज हुए। सुबाहु गन्धर्व-कन्या चित्राङ्गदा से हुआ था। कुम्भकर्ण के पुत्रो का नाम कुम्भ और निकुम्भ था। विभीषण का पुत्र तरणीसेन था और खर का मकराक्ष। रावण के पुत्रों और भतीजो मे मेघनाद और मकराक्ष प्रतापी और प्रसिद्ध थे। मेघनाद ने इन्द्र को पराजित करके इन्द्रजीत की पदवी पाई। रावण के आधिपत्य मे राक्षसो का प्रताप बहुत बढ़ा। इन लोगो का वंश-विस्तार भी ख़ूब हुआ। रावण ने दिग्विजय के विचार से सारे भारतवर्ष को पराजित करके समग्र देश मे अपना आतङ्क जमाया। दक्षिण मे किष्किन्धा नामक स्थान मे वानरराज बालि राज्य करता था। उससे द्वन्द्व युद्ध में स्वय रावण पराजित हो गया। इस बात से वह बालि के शौर्य पर इतना मोहित हुआ कि सेना लेकर उसे जीतने का प्रयत्न छोड़ आजीवन उसका मित्र बन गया। बालि ने भी यह मित्रता का सम्बन्ध सदैव पुष्ट रक्खा। बालि के भाई सुग्रीव से

उसका विरोध हो गया था। इसलिये सुग्रीव हनुमान् आदि पाँच मन्त्रियो सहित ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था। रावण ने एक युद्ध मे बिना जाने अपनी बहिन शूर्पणखा के पति को मार डाला। इस बात का उसे आजीवन पश्चात्ताप रहा और वह शूर्पणखा का सदैव मान करता रहा। दक्षिण मे उस काल दण्डकारण्य नामक बडा भारी जङ्गल था। उसी को महाकान्तार भी कहते है। रावण ने खर को एक छोटी सी सेना समेत दण्डकारण्य मे स्थापित किया और अपने नाना के भाई माल्यवान को वहाँ का प्रबन्ध सौपा। ताड़का नाम्नी एक यक्षिणी भी इन्ही राक्षसो मे मिल गई। उसके पुत्र मारीच और सुबाहु थे। इन दोनो को ताडका समेत रावण ने विश्वामित्राश्रम (बक्सर, जिला शाहाबाद, बिहार) के समीप स्थापित किया। इस प्रकार लङ्का के बाहर की भारत मे रावण की दो सेनाये रहा करती थी अर्थात् दण्डकारण्य और विश्वामित्राश्रम मे। ये लोग ब्राह्मण धर्म के पूर्ण विद्वेषी थे और यज्ञादिक का सदैव विरोध किया करते थे। रावण का भी वास्तविक नाम राम ही जान पडता है। राम को आज भी मद्रास की ओर "रामन" कहते हैं और इसी को सस्कृतज्ञो ने "रावण" कर लिया होगा।

सूर्यवश, रावण और अगस्त्य के कथन रामायण, महाभारत और अन्य पुराणो मे बहुतायत से मिलते हैं। बारहवे अध्याय के अन्त मे भी आधारो का कुछ कथन किया जायगा।

सूर्यवंशी, शार्यातशाखा, आनर्त राज्य।

शर्याति मनु के एक पुत्र थे। इन्होने कैम्बे खाडी के पास उस देश मे अपना राज्य स्थापित किया जो पीछे से आनर्त कहलाया। भृगुपुत्र च्यवन इनके दामाद थे और पुरोहित भी। इनके वर्णन ऋग्वेद, महाभारत और पुराणो मे बहुतायत से मिलते हैं। शर्याति के भारी सम्राट् होने से इनका या किसी वशधर का ऐन्द्र महाभिषेक हुआ। च्यवन, इनके भाई उशना कवि उपनाम शुक्राचार्य और शर्यातिवशी कोई शार्यात सब वेदर्षि थे। इस वश के विवरण मत्स्य ६९,९ पद्म V २३,१० विष्णु VI १,३४, म० भा० II १३,३१३, ४० III XII

XIV और XV मे हैं। शर्याति के पुत्र आनर्त एव कन्या सुकन्या हुई। सुकन्या च्यवन ऋषि को व्याही गई। आनर्त के नाम पर वश आनर्त कहलाया। आनर्त के पुत्र रोचमान, पौत्र रेव और प्रपौत्र रैवत हुए, जिनके पुत्र ककुमिन थे। इनका वश आनर्त पर २४ या २५ पुश्तो तक प्रतिष्ठित रहा और तब पुण्यजन राक्षसो से पराजित होकर हैहयो मे मिल गया। हैहय का पुश्त नं० २५ है। वायु पुराण ८८,१,४ ब्रह्माड III ६३, १, ४७, ३७, ४१ ह० व० ११,६५३,७ मे यह कथा वर्णित है। हैहयो के साथ भार्गव लोग भी जाकर उनके द्वारा सम्मानित हुए तथा उनको धन भी खूब मिला। हैहयो की पॉच मुख्य शाखाये हुई, जिनमे एक शार्यात भी थे। समय पर बाहरी प्रान्तो पर विजय के कारण हैहयो को धन की आवश्यकता विशेष हुई, किन्तु मॉगने पर भी भार्गवो ने अपने पास द्रव्याभाव बतलाकर कुछ न दिया। इससे भार्गवो का हैहयो से बिगाड हो गया और समय पर हैहयो के साथ शार्यात वश भी पुनर्बार हतप्रभ होकर पहाड़ियो मे मिल गया। हैहय पतन का कथन यथास्थान होगा। यह रामचन्द्र से कुछ आगे पीछे का घटनाचक्र है। हैहय वश प्रतर्दन अलर्क और सगर के प्रयत्नो से गिरा। इसमें भार्गव वशी परशुराम और अग्नि और्व तथा दूसरे वंश के भरद्वाज के भी प्रयत्न हैहयो के प्रतिकूल सम्मिलित थे।

पुण्यजन आनर्त देश पर कितने दिन प्रतिष्ठित रहे सो पता नही, किन्तु रामचन्द्र से कुछ ही पूर्ववाले मधु यादव (न ३९) को हम वहाँ का शासक पाते है। हरिवश मे यह कुन्त राज्य कहा गया है। किसी सूर्यवशी राजा युवनाश्व का भाई हर्यश्व मधु का दामाद था। इन दोनो भाइयो में बिगाड़ होने से अपनी पत्नी की सलाह से हर्यश्व उसके पिता मधु के यहॉ चले गए। सूर्यवशी नरेशो मे न० ९ व २०, के नाम युवनाश्व थे, किन्तु वे मधु से बहुत पहले के थे। ये युवनाश्व कोई साधारण सूर्यवशी नरेश समझ पडते है। मधु ने जामाता हर्यश्व को आनर्त का राज्य दे दिया तथा पुत्र लवण को मधुपुरी (मथुरा) का राज्य दिया। इन्होने अपने राज्य मे आनर्तपुर बसाया। इस प्रान्त को अब कच्छ कहते हैं। मधु द्वारा स्थापित यह सूर्यवश शायद शार्यात ही हो और उन्होने अपने दामाद का पुराना वशाधिकार समझ कर

ही उसे यह राज्य दिया हो। यह सूर्यवशी शर्याति मे पृथक भी हो सकता है। हर्यश्व ने किसी यदु को अपना दत्तकपुत्र बनाया। हरिवश मे ये यदु ययाति के पुत्र ही कहे गए हैं, यद्यपि समय का भारी अतर होने से ये कोई दूसरे सूर्यवशी यदु होगे। जान पडता है कि मधुपुरी इसी मधु की बसाई हुई होगी। यदु के सन्तानो का बहुत शीघ्र वह प्रान्त छोडना नही समझ पडता। उधर मधु के पीछे भार्गवो का भी हैहयो मे मिलना नही ठीक बैठता, क्योकि इस घटना की कई पीढ़ियो के पीछे परशुराम का जन्म हुआ। अतएव हर्यश्व चाहे शार्यात हो या न हो, शार्यातो का हैहयो मे मिलना यदु और मधु से पूर्व की घटना बैठेगी।

सूर्यवशी, हरिश्चन्द्र वश, उत्तर कोशल राज्य।

मुख्य सूर्यवशी न० ३० सिन्धु द्वीप के समय अथवा पीछे अनरण्य या उनके वशियो का एक और सूर्यवशी राज्य स्थापित हुआ। अनरण्य न० ३० थे। हम न० ३५ त्रैयारुण को राजा पाते हैं। इनके सूर्यवशी होने से राजस्थान पुराणो मे अयोध्या ही कहा गया है, यद्यपि उस काल वहा दीर्घबाहु, रघु आदि का राज्य था। समझ पड़ता है कि त्रैयारुण का राज्य कान्यकुब्ज के निकट कही पर था।

सत्यव्रत, विश्वामित्र, देवराज और वशिष्ट की कथा निम्न पुराणो मे है.

वायु ८८,७८,११६, हरिवश १२,७१७, से १३,३ ५३ तक—विष्णु ३,१३,१४। त्रैयारुण राजा बडा वेदज्ञ और प्रतापी हुआ। सत्यायन ब्राह्मण मे लिखा है कि सूर्यवशी राजा त्रैयारुण एक बार अपने पुरोहित वृष के साथ रथारोही होकर कही जा रहा था कि एक नवयुवक ब्राह्मण उसके नीचे दब गया। राज-वश के वृद्धो ने निश्चित किया कि इसका अपराधी पुरोहित ही था, सो वृष ने उस ब्राह्मण की चिकित्सा करके उसे आराम कर दिया पर अपने पद से भी त्याग पत्र दे दिया। इस पर राजा क्षमा मागकर उसके पैरो पर गिर पडा, तब पुरोहित ने उसका अपराध क्षमा किया।

त्रैयारुण का पुत्र सत्यव्रत उपनाम त्रिशकु युवराज था। इन्होंने

एक ब्राह्मण की नवविवाहिता स्त्री का अपहरण किया, चांडालों का साथ किया तथा कुल गुरु देवराज वशिष्ट की धेनु का वध कर डाला। इन्हीं तीनों पापों के कारण ये त्रिशंकु कहलाए और वशिष्ट की सलाह से पिता द्वारा अधिकारच्युत किए गए। पिता के मरने पर भी त्रिशंकु को अधिकार न मिला और वशिष्ट ही राज्य चलाते रहे। अनन्तर द्वादश वार्षिक अकाल पडा और प्रजा की श्रद्धा इन पर शायद कम हुई, जिस पर इन्होंने म्लेच्छ दल रखकर प्रबन्ध किया। किन्हीं राजनीतिक कारणों से कान्यकुब्ज नरेश विश्वामित्र का वशिष्ट से बिगाड हुआ और म० भा० के अनुसार वशिष्ट के सतगुने शबर और म्लेच्छ-दल ने विश्वामित्री सेना को हराया। इस पर पुत्र को राज्य देकर विश्वामित्र तप करने लगे। वशिष्ट ने इनका आतिथ्य तो अच्छा किया था, किन्तु शायद मामले में नाहीं कर दी। जगल में त्रिशंकु ने मृगया द्वारा विश्वामित्र के कुटुम्ब का पालन किया, जिस उपकार के उपलक्ष में महर्षि ने भविष्य में नेक चलन रहने का वचन लेकर इन्हे पिछले पापों से मुक्त कर दिया और सिंहासन पर बिठलाया। अब त्रिशंकु ने यज्ञ करना चाहा, किंतु वशिष्ट ने यज्ञ कराने में इनकार कर दिया जिस पर इन्होंने विश्वामित्र द्वारा यज्ञ प्रारम्भ किया। कहते हैं कि त्रिशंकु-कृत पापों के कारण देवताओं ने मख भाग न ग्रहण किया जिस पर विश्वामित्र ने नए देवता बना देने की धमकी दी और तब देवताओं ने विवश होकर भाग स्वीकार किया। यह वर्णन दार्ष्टान्तिक है। वशिष्ट १०,००० विद्यार्थियों को पढ़ानेवाले कुलपति भी थे और उनके प्रभाव से त्रिशंकु के यज्ञ में शायद ब्राह्मण लोग नहीं आते थे, जिससे उसमें त्रुटि रही जाती थी, पर विश्वामित्र ने आत्म-प्रभाव से उसे पूर्ण किया। अब इस राज्य से वशिष्ट की पुरोहिताई उठ गई और विश्वामित्र अपनी प्राचीन इच्छानुसार पुरोहित हुये।

त्रिशंकु के पुत्र सुप्रसिद्ध महाराजा हरिश्चन्द्र हुए जो बडे ही रूपवान और युद्ध-प्रिय थे। इन्होंने सारे भारतवर्ष का विजय करके अश्वमेध किया। आप बडे ही प्रसिद्ध दानी थे। कहते हैं कि कोई याचक आपके दरबार से विमुख नहीं लौटा। वास्तव में वैवस्वत मनु और मान्धाता के पीछे इस कुल में ऐसा प्रतापी और सुयशी राजा और

कोई नहीं हुआ था। सत्यप्रियता और दानशीलता को अतः पर सीमा तक पहुँचाने के लिए हरिश्चन्द्र का नाम ससार मे सदा अटल रहेगा। इन्होंने सौभपुर उपनाम हरिश्चन्द्र पुर बसाया। हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र की पुरोहिताई मे राजसूय करनी चाही, किन्तु वशिष्ठ ने उन्हें राजर्षि ही माना। यह आपत्ति शायद हरिश्चन्द्र ने भी मान ली। इस पर विश्वामित्र तप करने पुष्कर चले गये और वशिष्ठ फिर पुरोहित हुए। हरिश्चन्द्र के बहुत काल पर्यन्त कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ। अत. आपने प्रतिज्ञा की कि यदि मेरे वश होगा तो प्रथम पुत्र को मै वरुण पर बलिदान चढा दूँगा। कुछ काल मे इनके पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रोहिताश्व पडा। राजा सत्यप्रियता के कारण बलिदान वाले सकल्प से विमुख न हो सकता था एव पुत्र-प्रेम वश उसे पूरा भी न कर सकता था। कुछ सयाना होने पर राजकुमार उक्त प्रतिज्ञा के विमोचनार्थ देवराज वशिष्ठ की सलाह से जगल को चला गया और थोडे दिनो मे लौट आकर उन्ही के समझाने पर फिर वही वापस गया। इसी प्रकार सात बार राजकुमार जगल से घर आया और हर बार देवराज वशिष्ठ के हठ द्वारा वही वापस किया गया। बाईस वर्ष पीछे हरिश्चन्द्र मांस वृद्धि (जलोदर) रोग से पीडित हुआ और कुछ लोगो को भ्रम हुआ कि यह सकल्प छेदन का ही परिणाम था। अन्त मे रोहित की युक्ति से यह स्थिर हुआ कि राजकुमार के स्थान मे कोई ब्राह्मण बालक बलिदान दिया जाय, पर बहुत खोजने पर भी कोई ब्राह्मण अपना पुत्र बेचने को प्रस्तुत न हुआ। होते करते अजीगर्त भार्गव नामक एक वेदर्षि ने अपना मँझला लडका शुनःशेप १००० गौवो के बदले रोहित के हाथ बेच डाला। इसी गर्हित कर्म के कारण उनकी अजीगर्त (सर्वभक्षी) उपाधि हुई और उनके असली नाम का अब कही पता भी नही लगता।

यह बालक विश्वामित्र का भागिनेय था और उसे मार्ग मे वे मिल गए। शुनःशेप उनके पैरो पडा जिस पर उन्होने उसे चिरजीवी होने का आशीर्वाद दिया। अभागा बालक बोला कि मैं तो बलिदान दिए जाने के लिए बेचा गया हूँ जिस पर विश्वामित्र ने अपना वचन पूरा करने के लिए अपने पचास पुत्रो को आज्ञा दी कि उन मे से एक

उसके बदले बलिदान हो जावे, पर कोई भी इस पर राजी न हुआ, जिससे क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने उन्हें देश निकाला का दण्ड देकर आर्य्यसभ्यता ग्रहीत देश की सीमा पर बसने को विवश किया। तब ये बेचारे दण्डकारण्य में जा बसे। वहाँ इनकी शबर, पुलिन्द आदि जातियाँ स्थिर हुईं, अर्थात् ये लोग आर्य्यों से पृथक् हो गये।

जब पुत्रों ने शुनःशेप को बचाने में इनकार किया तब विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के यज्ञ में पधारे। अयास्य अंगिरस की प्रधानता में यह यज्ञ हो रहा था। शायद बदनामी से बचने को वशिष्ठ प्रधान न बने हों। वहाँ इस ब्राह्मण कुमार को यज्ञ स्तूप में बाँधने पर कोई राजी न हुआ जिससे सौ गौवें और लेकर अजीगर्त ही ने उसे बाँधा। अनन्तर कोई उसकी बलि करने पर भी तैयार न हुआ। अन्त में अजीगर्त ने १०० गौवें और लेकर पुत्र के मारने का भी काम अंगीकार किया, किन्तु विश्वामित्र के प्रभाव से सभों ने बिना बलि के ही यज्ञ की पूर्णता मान ली और शुनःशेप बच गया। अब इसने अजीगर्त को पिता मानने से इनकार किया होगा और तभी से यह विश्वामित्र का पुत्र माना जाने लगा। यह कथा ऐतरेय ब्राह्मण तथा कई पुराणों में वर्णित है। नर बलि का कोई उदाहरण प्राचीन भारत में नहीं मिलता, केवल यही एक उदाहरण उसके प्रयत्न का लिखा है। शतपथ ब्राह्मण में आया है कि नरबलि कभी नहीं होती थी, केवल मनुष्य का पुतला बलिदान में चढ़ाया जाता था। शुनःशेप के बलि दिये जाने में लोगों की भारी अश्रद्धा से इस कथन को पुष्टि मिलती है। कहते हैं कि इस यज्ञ के पीछे हरिश्चन्द्र रोग मुक्त हुए और रोहिताश्व राजधानी में विराजे।

वचन पालन का इतना उत्कट उदाहरण दिखलाने के पीछे महाराज हरिश्चन्द्र को अपने सत्यपालन पर अहङ्कार हो गया। उदारता और सत्यप्रियता इनके पुनीत जीवन में योंही परम प्रचुरता से मिली हुई थी, अतः राजा का अभिमान और भी दिनों दिन बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि आपके साधारण व्यवहार में धृष्टता और दर्प की मात्रायें विशेष हो गईं अथच आप ब्राह्मणों, ऋषियों एवं भविष्य-भाषियों का भी अपमान करने लगे। नरबलि करने की

तत्परता से इनकी लोक मे कुछ पहले ही से अपकीर्ति फैल चुकी होगी, सो उपर्युक्त कारणो से लोगो को इनके प्रति और भी अश्रद्धा और कुछ रुष्टता पैदा होने लगी। महर्षि विश्वामित्र शुन शेप के कारण इनसे रुष्ट थे ही, सो इनकी दर्पोक्ति से तंग आकर उन्होने राजा की सत्यप्रियता की कडी परीक्षा लेने का निश्चय किया। विश्वामित्र परीक्षा लेने को आ ही रहे थे कि राजा ने दैववश ऐसा स्वप्न देखा कि अपना राज्य उन्हे दान दे दिया है। स्वप्न मे दिये हुए राज्य का भी फिर ग्रहण करने की इच्छा न करके इन्होने प्रति-ग्रह ग्रहीता के नाम पर राज्य का स्वत्व स्थिर किया। इसी बीच मे विश्वामित्र ने आकर राजा की इच्छा से राज्य भार अपने हाथ मे लिया और माङ्गता मे हरिश्चन्द्र से प्रचुर धन मांगा। उन्होने यह भी कहा कि राज्य के साथ राज्यकोष भी उनका हो चुका था, सो राजा का यह धन बाहर से देना चाहिये। इस पर राजा हरिश्चन्द्र ने काशी जी मे जाकर वहाँ स्त्री, पुत्र और स्वय अपने को बेच कर यह ऋण चुकाया। इनका शव दहन की चुङ्गी वसूल करने का काम मिला।

थोडे दिनो मे इनका पुत्र रोहिताश्व सर्पदश से मूर्छित हो गया और मृत समझ कर इनकी रानी उसे शवागार ले गई। वहाँ पर कर से कुछ न मिलता देख इन्होने अपने पुत्र का कफ़न कर स्वरूप लेना चाहा। यह दशा विश्वामित्र से भी न देखी गई। वे हरिश्चन्द्र का राज्य वास्तव मे नही चाहते थे वरन राजा को सत्यभ्रष्ट करना मात्र उनका अभीष्ट था। जब इस कडी जॉच मे भी राजा का सत्य न डिगा तब विश्वामित्र ने हार मान कर अयोध्या का राज्य हरिश्चन्द्र को लौटा दिया। दैववश उसी समय रोहिताश्व की मूर्छा भग हो गई और जब हरिश्चन्द्र ने दान किया हुआ राज्य स्वय लेना न चाहा, तब विवश होकर विश्वामित्र ने रोहिताश्व को राजा बनाया। इस कडी जॉच मे पूरे उतरने के कारण राजा का यश फिर से जाज्वल्यमान हो गया और लोक श्रद्धा इनमे बढ़ी। इस प्रकार उदारता और सत्य का परमोज्वल उदाहरण दिखाकर महाराज हरिश्चन्द्र ने अपना नाम अमर कर लिया। इनके पवित्र चरित्रो के नाटक अब तक खेले जाते है। यद्यपि पराक्रम तथा विजयो मे हरिश्चन्द्र मान्धाता के सम न थे

तथापि चरित्र गौरव के कारण आपका महत्व उनसे बहुत बढ गया। सस्कृत के 'चडकौशिक' नाटक मे इस कथा का सविस्तार वर्णन है। यह चण्डकौशिक वाली कथा देवी भागवत, स्कन्द पुराण आदि मे आई तथा अनिश्चित है। यह निश्चित रूप से किसी मान्य पुराण मे नहीं है।

रोहिताश्व ने रोहतास गढ बसाया। इनके पुत्र हरित उपनाम चम्प ने चम्पापुरी (वर्तमान भागलपुर) बसायी, ऐसा कहीं-कहीं कथित है, किन्तु आनव चम्प द्वारा उसके बसाये जाने का पौराणिक विवरण अधिक मान्य है क्योंकि वहाँ उसी वश का राज्य था। चम्प पुत्र चचु उपनाम सुदेव एक अच्छा शासक था। चंचु पुत्र विजयनन्दिन वीर पुरुष था। जैन पंडित हेमचन्द्र ने इन्हे प्राचीन भारत के ६३ महापुरुषो मे से एक माना है। इसके पीछे इस वश का विवरण अप्राप्त है। पुराणो मे विजयनन्दिन मुख्य शाखा मे रख दिये गये हैं, किन्तु इस वश के अलग माने जाने से इसका पीछे का हाल अप्राप्त हो गया है। शायद सगर इन्हीं के वशधर हो।

सूर्यवंशी सगर वंश, मध्य भारत मे कोई स्थान।

मुख्य सूर्यवंशी शाखा वाले (न० ३८) दशरथ के समय मे या उससे कुछ इधर उधर प्राय: मध्य प्रदेश मे या उससे कुछ उत्तर (न० ३८) बाहु नामक एक सूर्यवशी राजा हुए। सम्भवत. ये हरिश्चन्द्र के वशधर हो। पुराणो मे ऐसा लिखा भी है। इस काल न० ३६ हैहय नरेश तालजंघ ने म्लेच्छ सेना बना कर उत्तरी भारत पर आक्रमण किया। उसमे अयोध्या नरेश पर तो आक्रमण न हुआ, किन्तु काशी, पौरव, तथा कान्यकुब्ज राज्य गिरे। इन्ही के साथ बाहु का भी राज्य गिर गया और वे अग्नि और्व ऋषि के आश्रम मे रहने लगे। वहाँ पर यादवी रानी से सगर नामक उनका प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। बाहु का शरीर पात उसी आश्रम मे हुआ। अग्नि और्व का सगर से सम्बन्ध मत्स्य १२,४०, तथा पद्म V ८,१४४ मे कथित है। सगर द्वारा हैहयो का जीता जाना निम्न आधारो पर आलबित है। ब्रह्माण्ड III ४८,९,१०, म० भा० III १०६,८ ८३१। महाभारत मे बाहु और सगर के अन्य विवरण भी है।

अग्नि और्व-ऋषि शरणागतवत्सल होने के अतिरिक्त हैहयो के वश-परम्परागत शत्रु भी थे। अतएव उन्होने सगर का पालन-पोषण किया और उसको अच्छी शिक्षा दी। अनन्तर सगर के युवक होने पर और्व ने यत्न करके उसे एक भारी सेना का स्वामी बनाया। सगर स्वय भी अच्छा प्रबन्धकर्त्ता एव शूर था। हैहय वीतिहोत्र को काशी-नरेश प्रतर्दन पराजित कर ही चुके थे। उनके वशधर अनन्त, दुर्जय और सुप्रतीक थे। इस वश की एक और शाखा तालजघ के पीछे स्थापित हुई थी। सगर ने इन दोनो हैहय शाखाओ को युद्ध मे नष्ट करके अपना विशाल राज्य स्थापित किया। यह समय राम से कुछ ही पीछे का है। इस प्रकार सगर ने अपने पिता के शत्रुओ को पराजित करके यश फैलाया। इनका विवाह वैदर्भी केशिनी से हुआ। इनके चुने हुये ६०००० योद्धा बड़े ही स्वामिभक्त और प्रचड युद्धकर्त्ता थे। सगर इनको अपना पुत्र कहते थे। इनकी सहायता से उन्होने सारे भारतवर्ष पर विजय पाई और कई यज्ञ किये। एक बार अश्वमेध करने मे सगर के इन वीर पुत्रो ने ऋषिधर्षण का पातक कर डाला, अर्थात् कपिल ऋषि के आश्रम मे यज्ञाश्व देखकर उन्ही को घोडे का चोर माना और भारी उपद्रव मचाया। यह देख ऋषि ने उन्हे अपने क्रोधानल मे भस्म कर दिया। यह सेन-वध किस प्रकार हुआ सो पुराणो मे अमत्त प्रकार से कथित नही है। ऋषिधर्षण के कारण इन सैनिकों की मरने पर भी भारी अपकीर्ति हुइ। सगरात्मज असमजस एक उपद्रवी बालक था। खेलते खेलते एक बार उसने प्रजा के कुछ बालको को नदी मे डूबो दिया। इस पर न्यायप्रिय सगर ने उसे पदच्युत करके देश निकाले का दंड दिया था। अब उसी के पुत्र अशुमान् ने कपिलाश्रम मे जाकर ऋषि को अपने पितामह की ओर से सन्तुष्ट किया तथा सैनिको के सुगति की भी प्रार्थना की। सर्व सम्मति से यह स्थिर हुआ कि प्रायश्चित्तार्थ सगरवशी पृथ्वी पर गगाजी के लाने का प्रबन्ध करे। इस वर्णन से समझ पडता है कि गगाजी से कोई भारी नहर खुदवाकर कही लाने का प्रबन्ध हुआ होगा। अशुमान्, तत्पुत्र दिलीप और पौत्र भगीरथ तक ने बराबर तीन पुश्तो तक इस प्रयत्न को जारी रक्खा और तब जाकर राजा

भगीरथ इस शुभ कार्य्य मे सफल-मनोरथ हुये। अशुमान राजर्षि कहे गये है। दिलीप का राजत्वकाल छोटा ही था। गगावतरण मे महत्कार्य्य के साधन करने से भगीरथ का बहुत बडा यश हुआ।

महाराजा भगीरथ ने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किये। इससे जान पडता है कि आपने भी भारतीय राजमडल को इन यज्ञो के साधन मे पराजित किया होगा। भगीरथ के पीछे इस वश का पता नही है। इसका वर्णन वाल्मीकीय रामायण मे भी है। महाभारत शान्ति पर्व मे आया है कि सगर पहले तालजघ मे हारे और फिर शत्रुओ को जीत कर अश्वमेध कर्त्ता सम्राट् हुये।

सूर्यवशी, दक्षिण कोशल वंश।

खट्वाग दिलीप के पुत्र महाराजा दीर्घबाहु वाले समय के आस पास हम दक्षिण कोशल मे सूर्यवशी अयुतायुस को शासक पाते है। प्रधान ने कई पुराणो मे खोज करके इन्ही का नाम भगस्वर लिखा है। उनके पुत्र ऋतुपर्ण प्रसिद्ध निषधनाथ नल के मित्र थे। नल से अश्व ज्ञान लेकर आपने उन्हे सख्या शास्त्र बतलाया। वही समय विदर्भनाथ (न० ३४) भीमरथ यादव का था। नल उत्तर पांचाल नरेश (न० ३६) मुद्गल के श्वसुर एव उनके पिता भृम्यश्व (न० ३५) के समधी थे। भीमरथ नल के श्वसुर थे। इन्ही सम्बन्धो से नल के आधार पर ऋतुपर्ण का समय दृढ़ होता है (आधारो का कथन ऋग्वेद X १०२, २, इन्द्र सेना मुद्गलानी ने अपने पति मुद्गल का रथ युद्ध मे हॉका। म० भा० III ५७,४६, नल की कन्या इन्द्र सेना मुद्गल की पत्नी थी। म० भा० वनपर्व में नल की कथा है, तथा उनसे ऋतुपर्ण, भीमरथ आदि से सम्बन्ध कथित है)। ऋतुपर्ण के पौत्र सुदास तथा प्रपौत्र कल्माषपाद थे। महाभारत मे लिखा है कि राक्षसो के साथ ये नर-भक्षी हो गए थे। वशिष्ठ इनके पुरोहित थे। विश्वामित्र के भडकाने से इन्होंने वशिष्ठ पुत्र शक्ति को खा डाला, तथा उनके ९९ भाई भी मार कर खाये। इधर ऋग्वेद पर वेदार्थ अनुक्रमणी तथा बृहद्देवता मे इन पुत्रो का विश्वामित्र के कहने से पाचाल सुदास या सौदासो द्वारा मारा जाना लिखा है। जान पड़ता है कि जब विश्वामित्र वशिष्ठ के

प्रयत्नों से हरिश्चन्द्र की पुरोहिताई से अलग हुए और पीछे किन्हीं कारणों से वशिष्ट उत्तर पांचाल नरेश सुदास के पुरोहित हुये, तब अपना बदला चुकाने को इन्हों (विश्वामित्र) ने सुदास के पुरोहित होकर वशिष्ट के कुछ पुत्रों का वध करवाया। सम्भवत. वशिष्ट का सुदास से भी बिगाड हो गया हो। अतएव सुदास को छोड वे दक्षिण कोशल नरेश कल्मापपाद के यहां पुरोहित हो गए। यहां विश्वामित्र राज्य से अधिकारी तो न हुए किन्तु किंकर नामक राक्षस को उन्होंने राजा का अन्तरंग मित्र बना दिया, जिससे वशिष्ट के शेष पुत्र राजा द्वारा मारे गए। ऐसा समझ पड़ता है कि इनके कुछ पुत्र पांचाल में मारे गए और कुछ दक्षिण कोशल में (म० भा० आदि पर्व)। अनन्तर वशिष्ट ने नियोग से कल्माषपाद की रानी में पुत्र उत्पन्न किया। इसके पीछे वे शायद राम के यहां उत्तर कोशल में चले आये। इसके पूर्व भी दशरथ के यहां शायद आते जाते थे। अयोध्या में वशिष्ट का विश्वामित्र से शत्रुता शेष न थी। कल्माषपाद के पीछे दक्षिण कोशल में दो शाखायें हो गईं, अर्थात्

(३९) कल्माषपाद } . ...अश्मक उरकाम मूलक (४२)
. सर्व कर्मन अनरण्य निध्न.. अनमित्र(४३)

दक्षिण कोशल राज्य का विस्तार चौथे अध्याय में दिया जा चुका है। प्रधान महाशय ने लिखा है कि निषध, विदर्भ, दक्षिण कोशल, चेदि और दशार्ण रियासतों की हदें एक दूसरे से मिली हुई थीं। राजा युधिष्ठिर के यज्ञार्थ सहदेव ने वैदर्भ भीष्मक तथा दक्षिण कोशलेश को हराया। अस्मक ने पोदन्य बसाया। बौद्ध काल में अस्मकों की राजधानी यही पातन थी। मूलक ने अपने नाम पर मूलक नगर बसाया। पातन के पीछे यही अस्मकों की राजधानी हुई। इन अंतिम कथनों के आधार आदिम कलिकाल वाले अध्याय में हैं।

हरिश्चन्द्र, सगर तथा दक्षिण कोशल वंशों पर विचार।

पुराणों के अनुसार चल कर पार्जिटर महाशय ने हरिश्चन्द्र को वैवस्वत मनु का ३३वां वंशधर माना है, सगर को ४०वां, सगरवंशी

भगीरथ को चौवालीसवा, कल्माषपाद को ५२वाँ, मूलक को ५५वां, तथा राम को ६३ वां । इस प्रकार थे राम के सीधे पूर्व पुरुष हो जाते हैं और इनके समयो मे राम से भारी अन्तर पडता है। इधर इनके अनुसार उत्तर पाचाल नरेश सुदास मनु से केवल ४३वी पीढी पर पडते हैं। पुराणो के ही कथन मिलाने से इन्ही सुदास के सगे पितामह सृजय की दो पुत्रियां राम के समकालीन सात्वन्त यादव के पौत्र भजमान को व्याही थी (यादव वंशावली देखिए)। राम के मित्र अलर्क के पितामह प्रतर्दन ने वीतिहोत्र हैयय को जीता तथा सगर ने वीतिहोत्र के पौत्र और प्रपौत्र को (काशी और सगर के वर्णन मे देखिए) । वही विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशकु को यज्ञ कराते, स्वय हरिश्चन्द्र के यज्ञ मे शुन.शेप को बचाते और ऋग्वेद मे सुदास का यश गाते तथा राम को अस्त्र विद्या सिखलाते हैं। ऊपर अनेक प्रसगो मे इस विषय पर अनेकानेक अन्य कारण भी दिए गये हैं। अतएव इन तीन सूर्यवशी कुटुम्बो का उत्तर कोशल की वशावली मे मिलाना पौराणिक कथनो का तारतम्य बिलकुल बिगाडता है । समझ पडता है कि गुप्तकालीन पौराणिक सम्पादको के ज्ञानाभाव से सूर्य की वशावली बढ़ गई है ।

सूर्यवंशी मैथिल शाखा

शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है कि रावी नदी के किनारे से चल कर माथव नामक राजर्षि अपने पुरोहित रहूगण की सलाह से राप्ती नदी के पूर्व मिथिला प्रान्त मे स्थापित हुए । उस काल राजधानी जयत हुई (वायु ८९, १,२,६, ब्रह्माण्ड III ६, ४,१,६) । इधर पुराणो के अनुसार इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने ऐसा किया । इन्ही निमि के पुत्र मिथि थे। इनका नाम माथव से मिलता है। सम्भव है कि मिथिला प्रान्त माथव के नाम पर बना हो, अथवा मिथि के । यह भी हो सकता है कि माथव नाम प्राकृत मे मिथि के कारण निकला हो । इधर विदेह के सूर्यवश से १२ नाम छूट भी रहे हैं । इनको जोडे बिना राजा दशरथ और सीरध्वज जनक की समकालीनता नही मिलती। समझ पड़ता है कि सम्भवत: मिथिला मे पहले माथव का वश शासक

रहा हो और दस बारह पुश्तो के पीछे निमि और मिथि ने वहाँ सूर्यवंशी राज्य जमाया हो। राजा निमि यज्ञ करने लगे। इसमे पुरोहिताई के सम्बन्ध मे किसी वशिष्ठ से लडाई हो गई, जिसमे दोनो ने एक दूसरे को शरीर त्याग का शाप दिया। प्रयोजन यह निकला कि दोनो ने द्वन्द्व युद्ध में एक दूसरे का वध कर डाला। मिथि ने मिथिलापुरी बसाई। इसके पीछे सीरध्वज के समय तक इस वश मे कोई मुख्यता नही कथित है। सीरध्वज ने सांकाश्य राज्य को जीत कर अपने भाई कुशध्वज को वहां का राजा बनाया। साकाश्य और मैथिलवशो के कथन रामायण बालकाण्ड मे हैं (७० वां अध्याय)। कुशध्वज का राज्य सांकाश्य मे चार पीढ़ी चला। इस वश मे खाडिक्य ब्रह्मज्ञानी थे, ऐसा पुराणो मे आया है। मितध्वज के पुत्र खाण्डिक्य से कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज का युद्ध हुआ और फिर ज्ञान चर्चा हुई (भागवत IX १३, २१)। भागवत के अनुसार सीरध्वज का मुख्यवश युधिष्टिर काल तक चलता गया। जो जनक बृहदारण्यकोपनिषत् मे सम्राट और याज्ञवल्क्य के शिष्य तथा ब्रह्मज्ञानी कहे गए हैं, वे युधिष्टर के बहुत पीछे के हैं। उनका कथन यथा स्थान होगा। सीरध्वज का कुछ विवरण १३वे अध्याय में भी आवेगा। आप राम के श्वसुर थे।

सूर्यवंश, वैशाली शाखा।

मनु वैवस्वत के पुत्र नाभानेदिष्ट ने एक वैश्या स्त्री से विवाह किया, जिससे इस वश की संज्ञा क्षत्रिय वैश्य की है, जैसे पौरव भरत के ब्राह्मण दत्तक पुत्र विदथिन भरद्वाज के कारण उस वश की बहुत दिनो तक ब्रह्मक्षत्रिय संज्ञा रही। इसी प्रकार पल्लव और वाकाटक नरेश ब्राह्मण से क्षत्रिय होगए, सो उनकी सज्ञा बहुत काल तक ब्रह्मक्षत्रिय थी तथा गुप्त नरेश जाट क्षत्रिय थे। ये सब थे क्षत्रिय और रहे अन्त मे क्षत्रिय ही किन्तु कुछ दिनो तक दूसरी जाति का भी विचार उनमे लगा रहा। नाभानेदिष्ट काशी के उत्तर पूरब विहार प्रान्त मे स्थापित हुए। नामो के साम्य से अयोध्या शाखा वाले (नं० २८) नाभाग सम्बन्धी कथन नाभानेदिष्ट वालों से मिल से जाते हैं।

इन दोनो के विषय मे वैश्या से विवाह के कथन हैं, जो सम्भवतः एक ही के विषय मे लागू हो। नाभानेदिष्ठ (न० २) से खनीनेत्र (न० ११) तक कोई विशिष्ट घटना नहीं है। इनके पुत्र करन्धम पर कई राजाओं ने असफल लड़ाई की। इन्होंने विदिशापति को हराया, तथा उनके पुत्र अवीक्षित का उन्हीं विदिशा वाला से युद्ध हुआ। अवीक्षित के पुत्र मरुत्त बड़े प्रतापी सम्राट् हुए। आपका न० १४ था। मरुत्त ने हिमालय मे सोने की खान पाकर भारी यज्ञ किया। जो धन बच रहा, उसे आपने वहीं गाड़ दिया। उसी को पाकर द्वापर मे पौरव युधिष्ठिर ने यज्ञ किया। मरुत्त ने बृहस्पति के भाई सम्वर्त के द्वारा यज्ञ कराया था। यह कथा अश्वमेध पर्व महाभारत मे लिखी है और द्रोण पर्व मे आया है कि युधिष्ठिर के पूर्ववर्ती १६ मुख्य भारतीयो मे मरुत्त भी थे। तुर्वश वशी (न० २२) मरुत्त के विषय मे भी सवर्त द्वारा यज्ञ होना पुराणो मे लिखा है। दोनो सम्राट भी लिखे है। सम्भवत. एक ही नाम के कारण दोनो के चरित्र एक ही मे कह दिए गये हो। तौर्वश मरुत्त का समय भी सवर्त ऋषि से मिलता है, तथा वैशाल मरुत्त का नहीं मिलता। इसमे यज्ञ और साम्राज्य के वर्णन वैशाल मरुत्त के विषय मे ठीक नहीं समझ पड़ते। इस वश के २६ वे नरेश विशाल ने विशालपुरी बसाई, जो इस रियासत की राजधानी हुई। काशी नरेश (न० २५) हर्यश्व के समय मे हैहय तालजघ ने काशी जीती। उस काल के निकट प्रमति अन्तिम वैशाल नरेश थे। शायद इनका राज्य हैहयो ने छीना हो। विशाल और वैशाली के कथन निम्न आधारो मे प्राप्त है। वायु ८६, १५, १७, विष्णु IV १, १८, रामायण I ४७, १२ भागवत IX २, ३३, ब्रह्माण्ड III ६, १, १२।

सम्मिलित विवरण।

मनु वैवस्वत के समय कई सूर्यवशी रियासते स्थापित हुई। उत्तर कोशल, शर्याति, हरिश्चन्द्र, सगर, दक्षिण कोशल, विशाल तथा मिथिलावाली इन सात रियासतों का ऊपर कुछ विशेष विवरण हो चुका है, तथा दक्षिण मे रावण का भी वर्णन आ गया है। यह इति-

हास बाल्मीकीय रामायण, महाभारत, हरिवंश, विष्णु पुराण, श्री भागवत् आदि के आधार पर लिखा गया है। जहाँ वैदिक साहित्य का सहारा लिया गया है, वहाँ मुख्य रूप से ऐसा कह दिया गया है। उपर्युक्त कथायें प्रायः सभी पुराणों में आई हैं और उनके हवाले हम देते भी आये हैं। पौराणिक कथन बहुतों को ज्ञात है तथा आगे एक स्थान पर भी उनके हवाले १२ वें अध्याय में दे दिए जावेंगे। अब इन सूर्यवंशों के विषय में वैदिक तथा अन्य ग्रन्थों में क्या विशेष कथन है, सो भी यहाँ कहा जाता है। इस निम्न कथन में हमें रायचौधरी से विशेष सहायता मिली है।

ऋग्वेद, ४, ३०, १८, सरयू नदी के निकट आर्य बस्ती बतलाता है। कोशल प्रायः अवध प्रान्त है। विदेह में पहले दलदल था। माथव ने उसे देश बनाया। कोशल के उत्तर हिमालय है, पूर्व सदानीर, दक्षिण स्यन्दिका (सई नदी) और पश्चिम पांचाल देश। शाक्य कोशल में थे (सुत्तनिपात)। अयोध्या साकेत और श्रावस्ती शहर थे। बौद्ध काल में अयोध्या तथा साकेत दोनों थे। श्रावस्ती राप्ती के निकट सहेत माहेत है। शतपथ ब्राह्मण में कोशल राज्य कुरु पांचाल के पीछे किन्तु विदेह के पूर्व महत्ता युक्त है। इक्ष्वाकु वंश के राजे विशाला या वैशाली (रामा० I ४७ ११, १२) मिथिला (वायु पु० ८९, ३) तथा कुसिनारा (जातक न ५३१) में राज्य करते थे।

ऋग्वेद के ऋषियों में मनु वैवस्वत शर्याति, त्रसदस्यु, अम्बरीष और मान्धातृ थे। ऋग्वेद X ६० ४ में इक्ष्वाकु हैं। अथर्ववेद XIV ३९, ९ में वे या कोई इक्ष्वाकु है। मान्धातृ यौवनाश्व गोपथ ब्राह्मण I २, १० में है। पुरुकुत्स के कथन ऋग्वेद में बहुत हैं जैसा कि वैदिक अध्यायों में आ चुका है।

ऋग्वेद I ६३,७ VI २० १० शतपथ ब्रा० XIII ५ ४५ में वे ऐक्ष्वाकु हैं। त्रसदस्यु (ऋग्वेद IV ३८.१ VII १९.३) पुरुकुत्स के पुत्र थे। इनका भी वर्णन ऋग्वेद में बहुत है, जैसा कि ऊपर वैदिक अध्यायों में आया है। त्रैयारुण, ऋग्वेद V २७ पञ्चविंश ब्रा० XIII ३,१२ ऐक्ष्वाकु थे। त्रिशंकु तैत्तिरीय उ० I १०.१ हरिश्चन्द्र ऐतरेय ब्राह्मण VII १३,१६ और रोहित, ऐतरेय ब्राह्मण VII १४, ऐक्ष्वाकु थे। भगीरथ (जैमिनीय

उपब्राह्मण IV २, १२) ऐक्ष्वाकु थे। ऋग्वेद X ६०२ में वे भाजेरथ थे। अम्बरीष ऋग्वेद I १००,१७, ऋतुपर्ण, बोधायन श्रौतसूत्र XX १२, दशरथ (ऋग्वेद, I १२६,४) और राम (ऋग्वेद X ९३,१४) में सशक्त पुरुष हैं। दोनों अयोध्या से असम्बद्ध हैं। दशरथ जातक में दशरथ और राम वाराणसी नरेश हैं, तथा राम के कथन हैं, किन्तु यह नहीं आया है कि वे कोशलेश या रावणारि थे। राम यज्ञकर्ता हैं और इन्द्र भी कई बार राम कहे गए हैं। त्रसदस्यु ऋग्वेद IV ३८,१, VII १९,३, ऋतुपर्ण शर्यात नरेश, शुद्धोदन कपिलवस्तु के तथा प्रसेनजित श्रावस्ती के विविध देशों के राजा थे। पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, हरिश्चन्द्र, रोहित ऋतुपर्ण आदि रामायण की अयोध्यावाली वंशावली में नहीं हैं, तथा वैदिक साहित्य कहता है कि इनमें से कई उत्तर कोशल से बाहर अन्य देशों के शासक थे (राय चौधरी)।

कोशल और मिथिला के बीच सदानीर (राप्ती) नदी थी। मिथिला के कथन जातकों तथा पुराणों में हैं। वर्तमान जनकपुर नैपाल में है। वैदिक तालिका, न० १४३६, में नमीसाप्य मैथिल राजा हैं। शतपथ ब्राह्मण में विदेह राज्य विदेघ माथव द्वारा स्थापित है। प्रसिद्ध बौद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ मंजुश्री मूल कल्प में दशरथ और दाशरथी राम के नाम प्राचीन महीपों में हैं।

उपरोक्त वर्णन से प्रकट है कि सूर्यवंश में ७ मुख्य राज्य स्थापित हुए, तथा एक धार्ष्ट एवं तीन सौद्युम्न राज्य बने। मुख्य कथन मध्य-देश वाले राज्यों के हुए। इतर कथाओं के सम्बन्ध में दक्षिण कौशल का भी विवरण आ गया है। सूर्यवंशी नरेशों में इस काल मुख्यता निम्नों की है:—मनु, इक्ष्वाकु, पुरंजय, मान्धातृ, त्रसदस्यु (इनकी ऋग्वेद में भी भारी प्रशंसा है), वृक, नाभाग, अम्बरीष, दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, (मुख्य शाखा के) हरिश्चन्द्र, रोहित, सगर, भगीरथ, ऋतुपर्ण, कल्माषपाद, अश्मक, मूलक, अनरण्य, निमि, मिथि, सीरध्वज, नाभानेदिष्ठ, करन्धम, अवीक्षित, मरुत्त, विशाल, शर्याति, और यदु। इनमें बहुत प्रसिद्ध मनु, इक्ष्वाकु, मान्धातृ, त्रसदस्यु, दशरथ, राम, हरिश्चन्द्र, सगर, भगीरथ और सीरध्वज थे। इन लोगों ने उत्तरी भारतवर्ष में खासा प्रभाव फैलाया, तथा दक्षिण कोशल

राज्य स्थापित किया, और लङ्का को भी जीत कर रावण द्वारा आर्य सभ्यता पर जो प्रचड आघात हो रहे थे, उन्हे शान्त किया। रामचन्द्र इन सब मे उत्तम थे। इनके बराबर इस काल तक कोई भारतीय न हुआ था। दशरथ ने तिमिध्वज शम्बर के जीतने मे दिवोदास की सहायता की, तथा सुदास ने वर्चिन को जीता। शम्बर, वचिन और रावण के पराभव से अनार्यो का तत्कालीन बल चूर्ण हो गया। सुदास ने अनार्य भेद को भी हराया। दिवोदास और सुदास पौरव नरेश थे, जिनके कथन आगे आवेंगे। रावण की इन्द्रिय लोलुपता के कारण उनका अपने साढू तिमिध्वज शम्बर से बिगाड हो गया, जिससे जब शम्बर दिवोदास और दशरथ द्वारा मारा जा रहा था, तब रावण ने उसकी सहायता न की। फल यह हुआ कि पीछे वह भी जैचन्द के समान मारा गया। नवे अध्याय में (न० २१) रावण का वंश विवरण आ गया है। वहाँ वश के हिसाब से उनका (न० ३५) बैठता है। रावण के द्वारा दक्षिण कोशल नरेश अनरण्य (न० ४१) का मारा जाना रामायण मे है, तथा राम (न० ३९) द्वारा रावण का निधन है। इसमे समझ पडता है कि वैशाली का वश (न० ३५) मुख्य सूर्यवश के (न० ३९) के निकट पडता है। इस प्रकार रावण की वशावली से भी उत्तर और दक्षिण कोशल की वशावलियो का समर्थन होता है। रावण का वश नम्बर कुछ ऊँचा होने का यह भी कारण है कि उस शाखा मे सभी पूर्व पुरुषो के नाम हैं, राज्यो के उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे भाइयों आदि के नही।



ग्यारहवाँ अध्याय

मनु-रामचन्द्रकाल (त्रेतायुग)।

१९०० से १२५० बी० सी०

पौरव वंश (पौरवों की कथा मुख्यतया महाभारत में है)

मुख्य शाखा हस्तिनापुर की।

गत अध्याय मे कहा जा चुका है कि मनु के साथ बुध भी भारत मे आकर प्रतिष्टानपुर प्रयाग के निकट स्थापित हुए। आप चन्द्रात्मज थे। इन्ही से प्रसिद्ध चन्द्रवश चला। मनु पुत्री इला बुध को ब्याही थी। इन्ही दोनो का पुत्र परम रूपवान प्रसिद्ध राजा पुरूरवस हुआ। कहते हैं कि पुरूरवस ने १३ या १४ द्वीपो पर अधिकार जमाया। उस काल किसी दूर देशस्थ राज्य को भी द्वीप कह देते थे।

राजा पुरुरवस ने ब्राह्मणो से वैर कर के (म० भा० के अनुसार) उनका धन छीन लिया। इस के पीछे समय पर चन्द्रवशियो का मुख्य राज्य इनके पौत्र नहुष को मिला। नहुष ने प्राय समस्त भारत को जीत कर सम्राट् की उपाधि पाई। आपने एक भारी यज्ञ किया, किन्तु राज्य सम्बन्धी बातो मे इतनी कड़ाई रक्खी कि ऋषियो तक मे कर लिया। मध्य एशिया से नाटक खेलने का प्रचार आपने भारत मे भी बढ़ाया या स्थापित किया। इस काल शायद मध्य एशिया के सम्राट् इन्द्र के यहाँ राज्य क्रान्ति का समय आया। वृत्र नामक कोई ब्राह्मण कुमार इन्द्र का घोर विरोधी हो पड़ा। इन्द्र ने छल से उसका बध किया। इस ब्राह्मण हिंसा से उनकी इतनी अपकीर्ति हुई कि उन्हे राज्य छोड़ कर निकल जाना पडा। वेद में वृत्र बध का कथन दार्ष्टान्तिक है। वहाँ बिजली द्वारा बादलो से पानी निकलने का प्रयोजन आ जाता है। यह भी लिखा है कि वृत्र को मार कर इन्द्र भयातुर हो कर भागे। यह देख इन्द्र के सरदारो ने एक मत से महाराजा नहुष को

इन्द्रासन पर बिठलाया। इन्द्र का बडा पद पाकर सम्राट् नहुष मदोन्मत्त हो गये। इन्हो ने इन्द्राणी शची से विवाह करने की ठानी। पहले तो वे इनकार करती रही किन्तु पीछे से कहने लगीं कि उनके पति की दुर्दशा करनेवाले ब्राह्मणो का यदि नहुष मान मर्दित करें तो वे (शची) उनके साथ विवाह करना स्वीकार करेगी। नहुष भारत मे भी ऋषियो तक से कर वसूल करते थे सो इस बात को इन्होने सहर्ष मान लिया और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ऋषियो को अपनी सवारी की पालकी मे जोत कर आप शची के महल की ओर प्रस्थित हुए। नहुष की इस कार्य्यवाही से इन्द्र के मारे सरदार उनसे अप्रसन्न हो गए। ब्राह्मणो ने नहुष का तत्काल बध किया और राज्यच्युत इन्द्र फिर से बुलाये जाकर गद्दी पर बिठलाये गये।

नहुष के ज्येष्ठ पुत्र यति ब्राह्मण हो गये (म० भा०, ह० व० ३०, १६०१; वायु पु० ९३, १४) और दूसरे पुत्र प्रसिद्ध महाराजा ययाति सम्राट् हुए। ये नहुष के पुत्र और बड़े भारी धर्मात्मा थे। वेदो मे पुरूरवा नहुष ययाति और इनके पाँचो पुत्रो के नाम बहुत बार आये हैं। महाराजा ययाति ने कई यज्ञ किये और उचित पात्रो को बहुत दान दिया। ययाति सबल और लोकप्रिय थे। आपने भारी सेना एकत्र करके समस्त भारतवर्ष को जीता और सम्राट् पद को स्थिर रक्खा। पुत्रो के प्रति आपकी ये तीन प्रधान आज्ञाएँ थी कि किसी से बदला न लो, नीच युक्तियो से शत्रु का दमन मत करो और किसी से कुछ मत मांगो। असख्य गुणगण रखते हुए ययाति मे अभिमान का अवगुण भी था। इन्होने दो विवाह किये। बडी रानी शुक्राचार्य की कन्या देवयानी थी और दूसरी दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा। देवयानी से यदु और तुर्वश नामक दो पुत्र हुए और शर्मिष्ठा ने अनु, द्रुह्यु और पुरु उत्पन्न हुए। पुराणो मे ययाति का दौहित्रो द्वारा स्वर्गच्युत होने से बचाये जाने का हाल कहा गया है, किन्तु इसका अभिप्राय राज्यच्युत होने से बचाव का समझ पडता है। इनका राज्य अभिमानाधिक्य के कारण ही छूटता था। शायद यह दुर्गुण इन्होने अपने पिता से पाया था। पुरूरवा, नहुष और ययाति वेदर्षि भी थे। सब बातो पर ध्यान देने से प्रकट है कि ययाति एक बहुत बडे शासक थे। मानसिक दृढ़ता

भी इनमे बहुत थी। चार बडे पुत्रों द्वारा अपनी आज्ञा भग होते देख इन्होंने उन सबको राज्यच्युत कर दिया और छोटे बेटे पुरु को सम्राट् बनाया। बडे पुत्रो मे से इन्होने तुर्वश को प्रजा (पुत्र) नाश का शाप दिया। पुराणो मे लिखा है कि तुर्वश वशी यवन हो गये। द्रुह्यु को यह शाप हुआ कि तुम्हे प्रियकामना न होगी। अनु को यह शाप दिया गया कि तुम्हारे पुत्र जवान हो-हो कर मर जायँगे। पुराणो से विदित होता है कि अनु को म्लेच्छ देश का राज्य मिला। द्रुह्यु के वशधर भोज कहे गये हैं। पुराणो मे ययाति के वंशधरो का सुदास मे पराजित होना नही लिखा है परन्तु इन शापो से इस दुर्घटना की झलक मिलती है। ऋग्वेद से विदित होता है कि दिवोदास ने ययाति पुत्र अनु और द्रुह्यु के कुछ सन्तानो को मारा और तत्पुत्र सुदास ने आनवो तथा शेष नाहुषो का घोर सहार किया। इस युद्ध मे केवल पौरव सम्मिलित न थे। महाराजा ययाति के पीछे उनके मुख्य घराने के शासक पुरु हुये।

राज्य का बटवारा ययाति ने इस प्रकार किया:—(वायु ९३,८८,९० ब्रह्माण्ड III ६८,९०,२, कूर्म I २२,९.११, लिंग I ६७ ११ २) पुरु प्रतिष्ठान मे रक्खे जाकर गगा यमुना वाले दक्षिणी द्वाबे के स्वामी बनाये गए, यदु के राज्य मे चम्बल, बेतवै और केन के देश मिले, द्रुह्यु को चम्बल के उत्तर यमुना के पश्चिम वाला देश मिला, अनु को गगा, यमुना के द्वाब का उत्तरी भाग, तथा तुर्वश को रीवां। तुर्वश द्वारा सम्भवत' करूष और नाभाग वंशी पराजित किए गए। विष्णु पुराण के अनुसार पुरु को मध्य देश मिला, एव यदु, तुर्वश, अनु और द्रुह्यु को क्रमशः दक्षिण, दक्षिण पूरब, उत्तर तथा पच्छिम। मुख्य उत्तराधिकारी पुरु के पुत्र जनमेजय लिखे हैं। इन नं० ८, से मतिनार नं० २० तक कोई विशेषता नहीं वर्णित है। इससे भी आगे न० २३ दुष्यन्त पर्यन्त जो कुछ कथित भी है, वह इतरों से हारने के सम्बन्ध में। यादव न० २० शशिविन्दु ने बढ कर पौरव राज्य पर भी अधिकार जमाया। उनके वश की निर्बलता से जब पौरवों ने लाभ उठाना चाहा, तो उनके दामाद सूर्यवंशी मान्धातृ ने उन्हे हराकर राज्य-च्युत कर दिया। उधर तुर्वश वंशी मरुत्त, न० २२, प्रसिद्ध सम्राट् हुआ।

उस अपुत्र राजाधिराज ने राज्यच्युत किन्तु होनहार पौरव राजकुमार दुष्यन्त को अपना दत्तक पुत्र बनाया।

महाराजा दुष्यन्त और भरत (म० भा० VII ६८, I ७४, XII २९)।

महाराजा दुष्यन्त ने दत्तक पिता मरुत्त की सेना से अपना खोया हुआ पौरव राज्य भी प्राप्त करके दोनों राज्यो का भोग किया। उस काल सूर्यवशी नरेश त्रसदस्यु बाप का बदला लेने को गान्धार नरेश द्रुह्यो पर धावा करने वाले थे। अतएव उत्तर कोशल के निकटवर्ती प्रतापी मरुत्त के उत्तराधिकारी दुष्यन्त से भी बिगाड ठीक न समझ कर उन्होने जीता हुआ राज्य दुष्यन्तको प्रेमपूर्वक वापस दिया होगा, ऐसा अनुमान है। त्रसदस्यु द्वारा पौरवो को कुछ दिया जाना ऊपर ऋग्वेद के अध्याय मे भी आया है। जो हो, दुष्यन्त को खोया हुआ पौरव राज्य मिल गया। वेदों मे यह दान करके लिखा हुआ है। म० भा०, दुष्यन्त और भरत को हस्तिनापुर मे बतलाता तथा उनका राज्य सरस्वती से गगा तक मानता है। यद्यपि दुष्यंत तुर्वश वशी हो गए थे, तथापि कहलाये पुरुवशी ही, तथा राज्य फिर पाने से वश कर। एक दिन मृगयार्थ जाने मे कण्व ऋषि के आश्रम मे किसी विश्वामित्र और मेनका की पुत्री रूपराशि शकुन्तला इस सम्राट् को प्राप्त हुई, जिससे भरत नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। कालिदास ने शकुन्तला नाटक मे इस रुचिर कथा का वर्णन किया है। भारतीय उच्च सभ्यता का पहला प्रमाण योरोप को इसी नाटक द्वारा मिला। इसके अनुवाद अनेक भारतीय और योरोपियन भाषाओं मे हुए। भरत ने गगा और यमुना के निकट अनेक यज्ञ किए। दीर्घतमस ऋषि ने आपका ऐन्द्र महाभिषेक किया (ऐतरेय ब्राह्मण)। इनके छोटे चचा सवर्त ने दुष्यन्त के दत्तक पिता मरुत्त का यज्ञ कराया था। इनकी माता ममता ने इनके चचा बृहस्पति से विदथिन भरद्वाज नामक पुत्र उत्पन्न किया था। भरत अपुत्र थे, सो इन्होने शायद दीर्घतमस के कहने से विदथिन भरद्वाज को गोद लिया। इन बातो से प्रकट है कि यद्यपि दुष्यन्त अपने पौरव राज्य पर आगए थे तथापि उनका व्यवहार दत्तक

पिता मरुत्त के लोगों से जैसे का तैसा बना रहा। दुष्यन्त और भरत के समय में पौरव राज्य सरस्वती से गंगा तक फैल गया था। भरत दौष्यन्त का वर्णन (ऋग्वेद VI १६,४) में, तथा शतपथ XIII ५, ४, ११, एवं ऐतरेय ब्राह्मण VII, २३ अथच कुम्बकानम महाभारत III ८८, ८, में आया है कि इन्होंने जमुना के किनारे युद्ध जीते तथा ७४ यज्ञ किए।

सुहोत्र, हस्तिन और उनके वंशधर।

भरत पुत्र विदथिन भरद्वाज राजा न हुए वरन वितथ पुत्र (मत्स्य ४९, २७. ३४, वायु ९९, १५२, ८,) उत्पन्न करके मृत हुए या जङ्गल चले गए। सम्भवतः वह भरत के सामने मर गए और वितथ राजा हुए। इनके प्रपौत्र, (न० २९) सुहोत्र ऐसे पराक्रमी थे कि द्रोणपर्व में १६ मुख्य भारतीयों में इनका भी नाम है। इनके पुत्र हस्तिन पौरव राज्य पर स्थापित रहे। काशिक ने काशी का राज्य स्थापित किया, तथा बृहत् ने कान्यकुब्ज का। हस्तिन के समय में इस राज्य वंश का और भी विस्तार हुआ। इनके पुत्र अजमीढ़ और द्विमीढ मुख्य थे। अजमीढ मुख्य पौरव राज्य पर रहे, तथा न० ३१, द्विमीढ ने विदर्भ में नवीन पौरव राज्य बनाया, जो न० ५६, बहुरथ पर्य्यन्त स्थापित रहा। अजमीढात्मज ऋषभ पौरव राज्य पर रहे तथा सुशांति और बृहद्वस ने उत्तर तथा दक्षिण पांचाल राज्य स्थापित किए। हस्ती ने हस्तिनापुर बसा कर या उन्नत करके उसे अपनी राजधानी बनाया।

हस्तिनापुर वर्तमान मेरठ से २२ मील उत्तर पश्चिम गंगा के किनारे अब खंडहर मात्र है। हस्तिन के चचेरे भाई रतिदेव सांकृत ने चम्बल पर दशपुर राज्य प्राप्त किया।

उपर्युक्त नवीन राज्यों के साधार विवरण आगे आवेंगे।

ऋक्ष न० ३२, से न० ३७, संवर्ण पर्यंत कोई विशेषता कथित नहीं है। उत्तर पांचाल नरेश न० (३९) सुदास ने इन्हें हरा कर बाहर खेद दिया। संवर्ण के पुरोहित सुवर्चस (म० भा० I ९६, ३७३३) वशिष्ठ थे। इन वशिष्ठ का नाम देवराज था और सुवर्चस तथा

अथर्वनिधि इनकी उपाधियां मात्र समझ पड़ती हैं। जान पड़ता है कि सुदास का आश्रय छोड़ने पर वशिष्ठ संवर्ण के यहां गए होंगे और इसी पर इन दोनों में युद्ध हुआ होगा। संवर्ण की पराजय पर गुरु वशिष्ठ दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद के यहाँ पहुँचे होंगे। अनन्तर संवर्ण ने सुदास को पराजित किया और उत्तर पांचाल का बल गिर गया। संवर्ण तथा तत्पुत्र कुरु ने हस्तिनापुर फिर से उन्नत किया तथा कुरु ने दक्षिण पांचाल पर भी अधिकार जमाया। कुरुक्षेत्र और कुरु जांगल इनके नाम पर थे। इस हार के गड़बड़ में प्रतिष्ठानपुर भी इस वंश से निकल गया था और उस पर काशी नरेश (नं० ३९) वत्स का अधिकार जमा था। वह प्राचीन प्रान्त फिर कुरु को प्राप्त हुआ।

कुरु पुत्र सार्वभौम तो हस्तिनापुर में रहे, किन्तु सुधन्वन (नं० ३९) ने बढ़ कर चेदि प्रान्त में राज्य जमाया। इनके वंशधर (नं० ४२) कृतज्ञ के पुत्र चेदि और उपरिचरवसु थे। चेदि पुत्र वसुचैद्य राजा हुए। उनके चचा वसु चैद्योपरिचर ने उनकी सहायता से मगध प्रान्त छीन कर प्रसिद्ध मागध बार्हद्रथ राज्य की नींव डाली। इस वंश का राजत्व काल आगे भी चलता है, किन्तु राम काल इसी स्थान पर समाप्त होता है। आगे का विवरण द्वापर युग में दिया जावेगा। ऊपर के वर्णन से प्रकट है कि ययाति के पीछे वाली प्रायः १४ पुश्तों तक तो कोई महत्ता न हुई, किन्तु जब से तुर्वश वंश का भी बल इसी में मिल गया तब से पौरव कुल ने स्वासी उन्नति की। अब शेष पौरव राज्य कुलों के कथन होते हैं। अन्तिम पौरव नरेश कुरु बड़े प्रतापी थे। इन्हीं के नाम पर यह वंश पौरव से कौरव कहलाने लगा। इनके वंशधरों ने कई अन्य राज्य भी जमाये। संवर्ण से सुदास वाले युद्ध के आधार उत्तर पांचाल के विवरण में मिलेंगे।

विदर्भ का द्विमीढ़वंश।

पौरव कुल के उपर्युक्त हस्तिन के पुत्र द्विमीढ ने विदर्भ में एक नवीन पौरव राज्य स्थापित किया। ये मनु से ३१ पीढ़ी नीचे थे। इस वंश ने यादवों से लड़ कर अपना राज्य स्थापित किया होगा। इनके

वंशधर (न० ४०) धृतिमंत रामचन्द्र के समय मे हुये होगे। द्विमीढ से धृतिमंत तक सात राजाओ के नाम अज्ञात हैं। उस काल तक राज्य स्थापन के अतिरिक्त कोई विशेष घटना द्विमीढो की नही लिखी है। आगे का हाल द्वापर के विवरण मे आवेगा।

उत्तर पांचाल का वैदिक सुदासवंश।

उपर्युक्त द्विमीढ के भाई,अजमीढ मुख्य पौरव शाखा के भूपाल थे। इन्ही के पुत्र सुशान्ति ने उत्तर पाचाल राज्य स्थापित किया। सुदास के समय ऋग्वेद मे इस वश का राज्य रावी नदी के दोनो किनारो पर लिखा है तथा यह श्वेतवस्त्रो से भूपित तृत्सु वश कहा गया है। महाभारत के समय उत्तर पांचाल की राजधानी, अहिछत्र मे बरेली के निकट थी और दक्षिण की काम्पिल्य मे। सुशान्ति के पौत्र ऋक्ष उपनाम तृक्ष के पुत्र भरत और भृम्यश्व हुए। भरत पौत्र सृंजय के पुत्र प्रस्तोक, च्यवन, पिजवन और सहदेव हुए। पिजवन प्रचण्ड युद्धकर्ता थे। इनके पुत्र प्रसिद्ध वैदिक नरेश राज्य वर्द्धक सुदास हुए। सहदेवात्मज सोमक के वश मे यह राज्य अन्त मे चला। भृम्यश्वात्मज मुद्गल और कांपिल्य हुए। मुद्गल प्रसिद्ध निषध नरेश नल के दामाद थे और स्वय भूपाल एव वेदर्षि भी थे। इसके आधार ऊपर आ चुके हैं। प्रसिद्ध वैदिक विजयी दिवोदास मुद्गलात्मज वध्र्यश्व के पुत्र थे। इन्ही की बहिन वे अहल्या थी जो गौतमात्मज शरद्वन्त को ब्याही गई और जिन्हे राम ने पवित्र किया। शरद्वन्त के पुत्र सत्यधृति के वश मे महाभारत काल के कृपाचार्य थे। प्रसिद्ध वैदिक ऋषि भरद्वाज ने अपनी ऋचाओ मे दिवोदास, प्रस्तोक, पिजवन तथा अभ्यावर्तिन चायमान से अपना दान पाना लिखा है। वायु और शुनहोत्र भरद्वाज के पुत्र थे। शुनहोत्रात्मज गृत्समद प्रसिद्ध वैदिक ऋषि थे। हरिवश मे आया है कि मुद्गल, सृंजय, बृहदिपु, क्रिमिलाश्व और जयीनर का बसाया हुआ देश पांचाल था। समझ पडता है कि मुद्गल, कांपिल्य, प्रस्तोक, पिजवन और सहदेव मे पांचाल राज्य बँट कर बलहीन हो गया। अनन्तर राम के पिता दशरथ की सहायता से प्रसिद्ध वैदिक विजयी दिवोदास ने गिरिव्रज के युद्ध मे वैजयन्त के

तिमिध्वज शम्बर को मार कर अपने कुल का यश बढ़ाया। इनका पिजवन पुत्र सुदास से इतना भारी मेल था कि ऋग्वेद मे ये दूर के चचा के स्थान पर सुदास के पिता कहे गए है। ऋग्वेद मे दिवोदास द्वारा शम्बर का मारा जाना लिखा है, तथा रामायण मे आया है कि दशरथ ने शम्बर के मारे जाने मे किसी भारी नरेश की सहायता की। उत्तर पांचाल के अन्य विवरण हरिवश और विष्णु पुराण में हैं। अनन्तर सुदास ने दस राजाओ को पराजित करके भारी यश कमाया। इन दोनो के युद्धो के विस्तृत विवरण ऋग्वेद मे है, और हमारे ऊपर के वैदिक अध्यायो मे आ चुके है। कोई वैदिक राजा त्रसदस्यु भी सुदास से हारे थे, ऐसा ऋग्वेद (VII १९—२) मे आना, कोई-कोई मानते हैं, किन्तु यह बात मन्त्र से समर्थित नही है। वहाँ इन्द्र द्वारा सुदास तथा त्रसदस्यु दोनो को विविध समयो मे सहायता मिली है। सुदास ने वशिष्ठ तत्पौत्र पराशर और सत्ययात को प्रचुर दान दिया। ये ऋषि लोग वेद मे सुदास के नोकर कहे गए हैं। सुदास द्वारा ययाति वशियो का पराजित होना ऐतरेय ब्राह्मण मे भी आया है। पहले इन्होने सवर्ण को जीता, फिर माथुर यादव, आनवशिवि, गान्धार द्रुह्यु, शूरसेन के मत्स्य, रीवा के तुवशराज्य, अनार्य्य वचिन, वैकर्ण, भेद आदि कई नरेश मिल कर पुरुष्णी नदी पर सुदास से लड़ कर हारे। यही प्रसिद्ध दस राजाओ का वैदिक युद्ध है। इसका विशेष विवरण वैदिक अध्यायो मे ऊपर आ गया है। अनन्तर सवर्ण ने युद्ध मे सुदास को पराजित कर दिया और कुरु सवर्णात्मज ने पौरव राज्य को वर्द्धमान किया। दिवोदास के तीनो वशधर साधारण थे। सुदास के वश का वर्णन नही है। सोमक के पुत्र अकदन्त साधारण थे। इनके पीछे इस वश मे सात पीढ़ियो के नाम पुराणों मे अकथित है, जिससे उनका साधारण या राज्यहीन होना प्रकट है। इस वश के वर्णन वेदादि मे बहुत है। इसलिए उनका कुछ यहाँ भी कथन योग्य है। ऋग्वेद X १०२ मे आया है, कि इन्द्रसेना मुद्गलानी ने युद्ध मे रथ सचालन करके अपने पति को विजयी बनाया तथा उनका खोया हुआ प्रेम प्राप्त किया। म० भा० III ७७, ४६, मे कथित है कि निषधनाथ नल की पुत्री इन्द्रसेना मुद्गल को व्याही थी।

उपर्युक्तानुसार ये मुद्गल राजा और वेदर्षि दोनो थे। म० भा० वनपर्व मे नल का भारी विवरण है, जिसमे उनका भीमरथ यादव का दामाद होना लिखा है। नल दक्षिण कोशल नरेश ऋतुपर्ण के मित्र थे। सुदास के पितामह सृजय की दो कन्याय यादव भीमसात्वन्त के पुत्र भजमान को ब्याही थी। भीमसात्वन्त राम के समकालीन थे। इन कथना के आधार यादवों के वर्णनो मे हैं। दिवोदास के सहायक दशरथ थे ही। दिवोदास की बहिन अहल्या को राम ने पवित्र किया (रामायण)। अहल्या के पुत्र शतानन्द सीरध्वज जनक के पुरोहित थे (रामायण)। वदर्षि भरद्वाज कहते है कि दिवोदास, सुदास, अभ्यावर्तिन चायमान आदि ने उनको दान दिए। इन्ही भरद्वाज ने काशीपति प्रतर्दन की सहायता की (आगे काशी के कथन मे आवेगा) तथा राम और उनके भाई भरत की पहुनाई की (रामायण)। प्रतर्दन से पराजित होकर हैहय नरेश वीतिहव्य इन्ही के साथ रह कर ऋपि हो गए। यह ध्वनि ऋग्वेद के छठवे मण्डल की भरद्वाज वाली कुछ ऋचाओ से निकलती है। ऋग्वेद VI २६, ८, मे प्रतर्दन क पुत्र क्षत्रश्री भी भरद्वाज के समकालीन लिखे है। रामायण में काशीपति प्रतर्दन राम के अभिपेक मे आते है। प्रतर्दन के पौत्र अलर्क को अगस्त्य की स्त्री लोपामुद्रा आशीर्वाद देती हैं (वायु पुराण ९२, ६७), तथा लंका में अगस्त्य राम की शस्त्रास्त्र से सहायता करते हैं (रामायण)। भरद्वाज, काशी राज (दूसरे) दिवोदास, न० ३७, के भी पुरोहित थे (म० भा० XIII ३०, १९६३)। अहल्या का गौतमात्मज शरद्वन्त से विवाह हुआ, म० भा० I १३०, ५०७२, V १६५, ५७२८, वायु ९९, २०१,५ मत्स्य, ५०, ८, १२, ह० व० ३२, १७८४, ८, विष्णु IV ११६, ७८। वशिष्ठ ने सुदास को गद्दी पर बिठलाया (ऐतरेय ब्राह्मण, VIII ४, २१)। वशिष्ठ सुदास को छोड कर सवर्ण के यहाँ चले गए। (पार्जिटर १९२२, पृष्ठ २३७)। त्रसदस्यु का सुदास का समकालीन होना सिद्ध नहीं है वरन केवल इतना है कि इन्द्र ने सुदास तथा त्रसदस्यु की सहायता की (ऋग्वेद VII १९—३), सो भी एक ही समय मे होना अकथित है। दिवादास ने रावी नदी पर पुरुवो तथा इतरो को हराया। ऋग्वेद १३, ३३, १९, वैदिक अनुक्रमणिका १८६,

४९९, म० भा० ९४, ३७२५, ३९ क अनुसार किसी पांचाल नरेश ने सवर्ण को हस्तिनापुर से निकाल दिया। यह पांचाल नरेश सुदास ही होंगे। अनन्तर सवर्ण ने अपना राज्य फिर से पाकर सब क्षत्रिय नरेशो को पराजित किया। इससे पांचाल सुदास के भी हारने का प्रयोजन निकलता है। मनु ४१ मे आया है कि सुदास अवगुण के कारण नष्ट हुए। इससे ध्वनि निकलती है कि दस राजाओ को हराने मे सुदास को गर्व विशेष हो गया और सवर्ण द्वारा उनका वध हुआ। सभवत: इस विजय मे सुवर्चस वशिष्ठ का भी हाथ हो। उपर्युक्त प्रमाणो से सुदास तथा दिवोदास के विवरण प्राप्त हैं तथा इनका दशरथ और राम का समकालीन होना सिद्ध है।

दक्षिण पांचाल का नीप वंश।

उत्तर पांचाल में कथित अजमीढ के पुत्र बृहद्वसु ने दक्षिण पाचाल राज्य स्थापित किया। इनका वशावली वाला न० ३२ है। इस काल से न० ४० पृथुषेण पर्यन्त राजे त्रेतायुग मे माने जा सकते है। इस काल तक इस वश के कोई विशेष कथन नही मिलते, जिससे इसमें महत्ता का अभाव समझ पडता है। वशावली ऊपर आ चुकी है।

काशी का पौरव वंश।

पौरव कुल के सम्राट्, न० २४, भरत के पौत्र वितथ का पुत्र सुहोत्र एक प्रसिद्ध बलवान था। उसी ने अथवा उसके पुत्र काशिक ने काशी का पौरव राज्य स्थापित किया। इनके प्रपौत्र धन्वन्तरि (न० ३१) प्रसिद्ध वैद्य थे। पीछे (न० ३४) दिवोदास, प्रथम के समय मे इस राज्य पर हैहय भद्रश्रेण्य (न० ३०) का आक्रमण हुआ। दिवोदास ने पराक्रमी भद्रश्रेण्य को करारी पराजय देकर युद्ध में उसके कई पुत्र भी मारे, तथा बालक जान कर केवल दुर्दम को छोड दिया। सयाने होकर दुर्दम ने हैहयो का आक्रमण फिर मे जीवित किया। पूर्वीय राज्यो को जीतते हुये हैहयो ने काशी पर यह दूसरा आक्रमण किया। अब भीमरथ के पुत्र दिवोदास प्रथम काशी छोड़ गोमती के निकट

कुछ पच्छिम हट कर जा बसे। हैहयों ने काशी प्राप्त की किन्तु किसी कारण से वहां क्षेमक राक्षस का राज्य हो गया, परन्तु दुर्दम ने फिर वहां प्रभुत्व प्राप्त किया (वायु ९२,२३,८, ह० व० २९,१५४,१,८)। कुछ काल में काशी नरेश का वहां फिर से अधिकार हो गया और हैहयों ने फिर आक्रमण करके (न० ३५) हर्यश्व को मारा, (न० ३६) सुदेव को हराया और काशी लूटी। अनन्तर सौदेव दिवोदास दूसरे राजा हुए। इनका हैहयों से १०० दिनों तक युद्ध हुआ और ये (सौदेव) हार कर भरद्वाज आश्रम चले गए। इन्हीं के पुत्र प्रतर्दन हुए, जिनका शिक्षण एवं सत्कार भरद्वाज ने किया। समय पाकर प्रसिद्ध पराक्रमी प्रतर्दन ने तालजंघात्मज वीतिहोत्र उपनाम वीतिहव्य को हैहय राजधानी में घुस कर हराया। वीतिहव्य शौनक भार्गव ऋषि हो गए। ऋग्वेद के छठवें मंडल में इनका भरद्वाज के साथ रहना पाया जाता है। म० भा० XIII ३०, ५८, ९ के अनुसार प्रसिद्ध वेदर्षि गृत्समद वीतिहव्य के दत्तक पुत्र थे। उनके पिता आंगिरस शुनहोत्र थे (सर्वानुक्रमणी)। गृत्समद अतिथिग्व-दिवोदास का कथन शम्बर वध में करते हैं। रामचन्द्र के राज्यारोहण में प्रतर्दन अतिथि हो कर अयोध्या गए थे (रामायण)। एक प्रतर्दन वेदर्षि भी थे। उनकी ऋचाओं से यह नहीं प्रकट है कि वे ये ही प्रतर्दन थे या कोई और?

प्रतर्दन के पुत्र वत्स ने प्रतिष्ठानपुर के कौशाम्बी प्रान्त को भी अपने राज्य में मिला लिया। इनके पुत्र अलर्क ने क्षेमक राक्षस को मार कर काशी फिर से प्राप्त की। इस काल से बहुत पूर्व भी काशी में क्षेमक का अधिकार कहा गया है। समझ पड़ता है कि इस वंश के राजों की क्षेमक उपाधि होगी। अलर्क को अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने आशीर्वाद दिया (वायु ९२, ६७, ह०, व०, २९, १५९०, ३२, १७४८)। प्रतर्दन, वत्स और वत्स देश के कथन निम्न आधारों में भी हैं— (विष्णु IV ८, ५, ७ भागवत IX १७, ६ वायु ९२, ६५, ७३ ब्रह्माण्ड ११, ५० ६०, १३, ६८, ७८, ह० व० २९, १५८७, १५९७, ३२, १७४१, १७५३,म० भा० XIII ३०. १९४६)। पार्जिटर का कथन है कि अलर्क का राज्य काल लम्बा था। उपर्युक्त घटनाओं से प्रकट है कि काशी का पौरवराज्य महत्तायुक्त था। इसमें धन्वन्तरि श्रेष्ठ वैद्य हुए, तथा

दिवोदास, वत्स, प्रतर्दन और अलर्क प्रसिद्ध भूपाल थे, जिन्होंने बढते हुए हैहय बल को ध्वस्त किया। इस वश के आगे का हाल द्वापर के विवरण मे आवेगा (आधार वायु ९२, ६७. ह० व० २९, १५९०, ३२, १७४८)।

कान्यकुब्ज की पौरव शाखा।

काशी के विवरण मे कथित न० २७, सुहोत्र के अन्य पुत्र बृहत ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) मे पौरव राज्य स्थापित किया । इनके पौत्र जह्नु (न० ३०) बडे प्रतापी राजा कहे गये है। आपको सूर्यवशी मान्धाता, (न०, २१) की पौत्री विवाही थी (वायु ९१,५८,९, ह वं० २७,१४२१,३)। सम्भवतः इनका स्थान अपनी वशावली मे ६,७ पीढी ऊंचा हो। जह्नु के प्रपौत्र कुशिक, (न० ३३) बडे प्रसिद्ध राजा और वेदर्षि थे। इन्ही के नाम पर विश्वामित्र कौशिक भी कहलाते थे। उनका विवाह पुरुकुत्स के वश मे उत्पन्न पुरुकुत्सी से हुआ था (वायु ९१,६३,६, ह० व० २७,१४२६,३०)। पुरुकुत्सी मे कुशिक से उत्पन्न पुत्र गाधि (वैदिक गाथिन) पुराणों मे इन्द्र के अवतार कहे गए हैं। वेद मे भी इन्द्र कौशिक थे। गाधि भी राजा और वेदर्षि दोनो थे। गाधि की ऋचायें विश्वामित्र के तीसरे मण्डल मे तथा कुशिक की दसवे मे हैं। गाधि की पुत्री सत्यवती से भार्गव-वशी और्वात्मज शस्त्री ऋचीक का विवाह हुआ।

गाधि के पुत्र विश्वामित्र और सत्यवती के पुत्र जमदग्नि समवयस्क और एक दूसरे के प्रगाढ मित्र, एव वेदर्षि भी थे। जमदग्नि के पाँचवे पुत्र विख्यात शूर परशुधर राम थे। ऋषि विश्वामित्र का आदिम राज्य पद निरुक्त तथा ऐतरेय और पचविश ब्राह्मणो मे प्रमाणित है। विश्वामित्र किसी राज काज का निर्णय करने त्रयारुण राज्य के प्रबन्धक वशिष्ठ ऋषि से मिलने गए। आतिथ्य तो इनका अच्छा हुआ, किन्तु मामले पर सतोषप्रद बात न हुई और युद्ध मे देवराज वशिष्ठ के म्लेच्छ सैनिकों ने कान्य-कुब्ज की आर्य सेना को पूर्ण पराजय दी। सख्या मे म्लेच्छ आर्य सेना मे सतगुने थे। (म० भा०) मे केवल एक

गाय के कारण युद्ध लिखा है, किन्तु वास्तव में किसी राजकीय प्रश्न पर समझ पड़ता है। अब विश्वामित्र राजकीय बल को तुच्छ मान कर बेटे को राज्य दे, स्वयं तपस्या करने चले गए। यह समय द्वादश वार्षिक अकाल का था। जिस राज्य के प्रबन्धक बन कर देवराज वशिष्ठ ने विश्वामित्र को हराया था, उसका वास्तविक स्वामी सत्यव्रत त्रिशंकु इनके द्वारा अपने अधिकारों से च्युत एवं निर्वासित होकर जंगलों में मृगया से समय काटता था। उसने तपस्या के समय शिकार द्वारा विश्वामित्र के वंश का जंगल में पालन किया। ये दोनों पहले से भी वशिष्ठ के शत्रु थे। अतएव विश्वामित्र ने स्वप्रभाव से उसे राज्य पर प्रतिष्ठित करके स्वयं पुरोहित का उच्च पद लिया और देवराज वशिष्ठ अधिकारच्युत हो गए (वायु ८८,७८,११६, ह० व० १२, ७१७ से ३, १३, ७१३ तक, विष्णु IV ३,१३,४, भागवत IX ७,५,६ म० भा० XIII १३७,६७५७)। उन्होंने विश्वामित्र को ब्रह्म ऋषि मानने से इन्कार किया, किन्तु फिर भी इनके द्वारा त्रिशंकु का यज्ञ सफल हुआ। अनन्तर उसके पुत्र हरिश्चन्द्र के समय में वशिष्ठ ने फिर इनके प्रतिकूल ब्रह्मर्षिपन का बखेडा उठाया और इस बार पराजित होकर उन्हे पुष्कर पर तप करने जाना पडा। जान पडता है कि हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र के प्रतिकूल निर्णय किया होगा, जिससे वे पराजित हुये होंगे। इधर देवराज वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुरोहित हो गए। अनन्तर शुनःशेप वाली नरबलि के सम्बन्ध में विश्वामित्र का प्रताप फिर बढ़ा और वशिष्ठ वहां से हट कर उत्तर पाचाल नरेश सुदास के पुरोहित हुए। उनका हरिश्चन्द्र के यहाँ से हटना क्यों हुआ, सो कथित नहीं है। या तो वह राज्य ही निर्बल हो गया होगा, या नरबलि की तत्परता के कारण वशिष्ठ का अपयश हुआ होगा, जिससे उन्हे वहाँ से फिर हटना पडा। अनन्तर सुदास के यहाँ भी पहुँच कर विश्वामित्र ने वशिष्ठ को वहाँ से हटाया। वशिष्ठ की शत्रुता सुदास से क्यों हुई सो अज्ञात है, किन्तु हुई अवश्य। इनका तपस्वी पुत्र शक्ति वहाँ मारा गया, विश्वामित्र पुरोहित बने और सुवर्चस वशिष्ठ पौरव नरेश सवर्ण के पुरोहित हुए। सम्भव है कि हरिश्चन्द्र के पुरोहित देवराज वशिष्ठ सवर्ण के

पुरोहित सुवर्चस वशिष्ठ से पृथक हो। वास्तव मे समझ पड़ता है कि सुवर्चस देवराज ही की उपाधि मात्र थी। यही विचार पार्जिटर का भी है।

किन्ही कारणो से सुदास ने सवर्ण का राज्य छीन लिया और वशिष्ठ दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद के पुरोहित बने। वहाँ राक्षसो का प्रवेश समझ कर विश्वामित्र ने राजा द्वारा वशिष्ठ के शेष पुत्र भी मरवा डाले, केवल पौत्र पराशर बच गया। अब वशिष्ठ राजा दशरथ के यहाँ जमे। उधर सवर्ण ने सुदास का पराजित कर दिया। अनन्तर विश्वामित्र दशरथ के यहाँ यज्ञ रक्षणार्थ राम को माँगने आये। इस बार पुरानी शत्रुता भुला कर वशिष्ठ ने इनका समर्थन किया। या तो इन दोनो की शत्रुता पहले ही कभी मिट चुकी थी, या वशिष्ठ ने भलाई करके इस प्राचीन शत्रु को सीधा करना चाहा। जो हो इस काल से इन दोनो की प्राचीन शत्रुता मिट कर मित्रभाव स्थापित हुआ। ये दोनो ऋषि प्रायः सवा-सवा सौ वर्ष तक जिये होगे। राम के पीछे यही अथवा दूसरे वशिष्ठ सगर के भी पुरोहित हुए। अवस्था के विचार से यही वशिष्ठ सगर के यहाँ भी हो सकते थे। मेल हो जाने से वहाँ उनसे विश्वामित्र ने कोई विरोध नही किया। ऐतरेय ब्राह्मण मे नरबलि के प्रयत्न सम्बन्धी यज्ञ मे विश्वामित्र, जमदग्नि और वशिष्ठ का होना लिखा है। ऋग्वेद मे शुनः शेप की ऋचाओ मे उनका यज्ञ मे बाँधा जाना आया है। वैदिक साहित्य मे शुनः शेप ही के मामा तथा दत्तक पिता विश्वामित्र हैं। त्रिशकु और हरिश्चन्द्र के यहाँ पौराणिक साक्षी मे कान्यकुब्ज नरेश ऋषि विश्वामित्र थे। यह साक्षी ऊपर आ चुकी है। ऐतरेय ब्राह्मण तथा ऋग्वेद दोनों मे विश्वामित्र जमदग्नि के मित्र तथा वशिष्ठ के शत्रु हैं। अतएव त्रिशकु और सुदास के यहाँ वही विश्वामित्र और वशिष्ठ थे। यही सुदास का समय कल्माषपाद, सवर्ण, रामचन्द्र और सगर का बहुत थोडे अन्तर के साथ था। अतएव इन सब के यहाँ वाले वशिष्ठ और विश्वामित्र वही व्यक्ति माने जा सकते हैं। केवल शकुन्तला के पिता समय के विचार से अन्य व्यक्ति थे।

विश्वामित्र के ब्राह्मण वशधरो का विवरण ऊपर वशवृक्ष मे आ-

चुका है। इनके भागिनेय के पुत्र परशुधर ने शायद कान्यकुब्ज और सौर राज्यों की सहायता से हैहयार्जुन का युद्ध मे वध किया था। इसी अथवा अन्य कारणो से हैहय तालजघ ने अपने उत्तर के आक्रमण मे विश्वामित्र के क्षत्रिय पुत्र लौहि को राज्यच्युत कर दिया। इसके पीछे इनका क्षत्रियवश वेपता हो गया। इसी स्थान पर पौरवो के राज्यवशो का पौराणिक विवरण समाप्त होता है।

इस वश के विषय मे पुराणेतर ग्रन्थो मे क्या कथित है, इसका भी कुछ दिग्दर्शन कराना उचित है।

मजु श्री मूल कल्प आठवीं शताब्दी का एक साधार बौद्ध ग्रथ है, जिसमे नहुष और पार्थिव नामक प्राचीन राजाओ के नाम लिखे हैं।

वैदिक साहित्य मे निम्न पौरव नाम है :—

परुच्छेप (दिवोदास वंशी), विश्वामित्र (तृतीय मण्डल इनका है), गाथिन, देवश्रवस, शुनःशेप, देवव्रत, ऋषभ, उत्कील, कठ, प्रजापति, मधुच्छन्दस (विश्वामित्र के मण्डल वाले गाथिन उनके पिता है, कुशिक पितामह तथा शेष लोग उनके वशधर) पुरु, सम्वर्ण, नीपातिथि, आयु, ययाति, नहुष, प्रतर्दन, वृहद्रथ, पुरुरवस, उर्वशी, कुशिक (वेदर्षि तथा विश्वामित्र के पितामह), जमदग्नि, परशुराम, सुकीर्ति, सुदास और खाण्डवदाह से उबारे हुए चार ऋषि (जरितर, द्रोण, सारीसृक स्तम्ब मित्र)। चन्द्रवशी इतर वेदर्षियो के नाम आगे के अध्याय मे आवेंगे।

पुरुरवस ऐल, ऋग्वेद X ९५, शतपथ ब्रा० XI ५,१,१।
आयु, ऋग्वेद I ५३,१०, II १४,७,
ययाति नाहुष्य, ऋग्वेद I ३१,X६३,१, ।
पुरु ऋग्वेद VII ८,४,१८,१३।
भरत दौष्यन्ति सौद्युम्नि, शतपथ ब्रा० XIII ५,४, ११,१२।
अजमीढ़, ऋग्वेद IV ४४,६,
ऋक्ष, ऋग्वेद VII ६८,१५।
कुरु ऋग्वेद X ३३, ब्राह्मण ग्रन्थो से बहुत, ।
उच्चैः श्रवस, जैमिनीय उपनिषत् ब्रा० III २९,१,१३।

पुरुरवस ऐल के पिता बुध राजा थे जो बाह्लीक या बैक्ट्रिया से आये थे, रामायण VII १०३,२१, २२। पपञ्च सूदनी के अनुसार ऐल लोग उत्तर कुरु से आये हैं। पांचाल देश वर्तमान बरेली, बदायूं, फर्रुखाबाद जिलों तथा अन्य स्थानों पर विस्तृत था। प्राचीन राज काम्पिल्य या काम्पिल बदायूँ फर्रुखाबाद के बीच गङ्गा तट पर थी। शतपथ ब्राह्मण XIII ५,४,७, में परिचक्र या परिचक्रा महाभारत का एक चक्रा है। पांचाल के पांच वंश कृवि, तुर्वश, केशिन, सृंजय, और सोमक थे। कृवियों का कथन ऋग्वेद में है। शतपथ ब्राह्मण में ये पांचाल कहे गए हैं।

मोटे प्रकार से पांचाल रुहेलखण्ड तथा मध्य द्वाबा का भाग था,। उत्तरी और दक्षिणी पांचाल गङ्गा के आरपार थे। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र या छत्रवती (राम नगर जिला बरेली) थी। दक्षिण पांचाल गङ्गा से चम्बल तक था, म० भा० १३८,७३,७४। महाभारत और जातकों से प्रकट है कि उत्तर पांचाल कभी कुरुओं का रहा, और कभी दक्षिण पांचालों का।

Ancient Indian historical tradition

में आया है कि मरुत्त के पीछे तुर्वश की शाखा पौरवों में मिल गई। यही बात मरुत्त द्वारा दुष्यन्त के गोद लिए जाने से पुराणों से भी प्रकट है। महाभारत में उत्तमौजस तथा सृ जय दोनों पांचाल थे। धृष्टद्युम्न सोमकों में मुख्य थे (म० भा० आदि पर्व १४,३३)। दिवोदास, सुदास और द्रुपद पांचाल थे। उत्तर पांचाल द्रोण को मिला।

चेदि बुंदेलखण्ड तथा निकट का देश था। कभी नर्मदा तक भी फैलता था। राजधानी शुक्तिमती थी। कशु चैद्य ऋग्वेद VIII ५,३७,३९ का कथन दान स्तुति में है। चेतिय जातक यों राजवंश देता है:—१ महा सम्मत—रोज —वररोज—कल्याण ५—वर कल्याण—उपोसथ—मान्धाता—वरमान्धाता—चर—१०, उपचर या अपचर। शायद महाभारतके पौरव चेदिराज उपरिचरवसु यही हों। जातक तथा महाभारत इन दोनों के पांच-पांच पुत्र बतलाते हैं। जातक ४८ कहता है कि काशी से चेदि के मार्ग में डाकू लगते थे।

ऊपर हम पौरव वंश मे हस्तिनापुर वालो से इतर विदर्भ के द्विमीढ़ो, उत्तर पांचालो, दक्षिण पाचालो, काशी वालो और कान्य-कुब्जो के इतिहास लिख आये हैं। इन वशो मे ययाति, दुष्यंत, भरत, सुहोत्र, हस्तिन, अजमीढ, सवर्ण, कुरु, द्विमीढ, मुद्गल, दिवोदास, सुदास, वृहद्वसु, धन्वन्तरि, प्रतर्दन, वत्स, जह्नु और विश्वामित्र प्रधान पुरुष थे। ययाति मनु से छठी पीढी मे थे। इनमे २३ वी पीढ़ी वाले दुष्यन्त के बीच मे पौरव कुल मे कोई मुख्यता न थी। इसी भांति सूर्य्य वश मे भी न० ४ पुरजय के पीछे तथा मान्धातृ न० २१ के पहले जो १६ राजे थे, इनमे विशेष मुख्यता न थी। अतएव प्रकट है कि पुरजय और ययाति इन दोनों के पीछे सूर्य और पौरव दोनो वशो में प्रायः तीन सौ वर्षों तक विशेषता न थी। इसके पीछे दोनो वंशो में मुख्यता का फिर प्रारम्भ हुआ। दोनो वशों मे वेदर्षि राजे थे, किन्तु वेदो का गायन विशेषतया पौरव राज्य मे हुआ। इसी कुल मे वेदर्षि भी अधिक थे। इन्ही कारणो से वेद मे सूर्य वशियो के सामने चन्द्रवंशियों का बहुत अधिक कथन है। अनार्यो का आर्यो से अन्तिम महायुद्ध राजा वर्चिन की अध्यक्षता मे उत्तर पाचाल नरेश सुदास से हुआ। उस काल यह राज्य रावी नदी तक फैला था। उस युद्ध में कई आर्य राजाओ ने भी वर्चिन का साथ दिया, किन्तु अनार्यदल ने करारी पराजय खाई और वर्चिन के एक लाख से ऊपर सैनिक मारे गये। इसके पीछे अनार्यो का आर्यो से प्राचीन काल मे कोई भारी युद्ध न हुआ और अनार्य दब गए। उस काल रावण (लका वाला), तिमिध्वज शम्बर, वर्चिन और भेद प्रधान अनार्य नरेश थे। तिमिध्वज की राजधानी वैजयन्त थी। उसकी स्त्री रावण की स्त्री मन्दोदरी की बहिन थी। अतिथि रूप मे वैजयन्त जाकर रावण ने एक बार इन्द्रिय लोलुपता के कारण शबर की रानी मायावती से व्यभिचार करना चाहा। यह जान कर शम्बर ने उसे वही कैद कर दिया और मन्दोदरी तथा मायावती के पिता मयदानव के कहने से कठिनता से छोडा (शिवपुराण)। इससे इन दोनो मे मन मैली होगई और जब पांचालपति दिवोदास तथा अयोध्या नरेश दशरथ ने शम्बर से युद्ध किया, तब उसके नष्ट हो जाने तक भी रावण ने उसकी सहायता न की। फल यह हुआ कि

समय पर दशरथात्मज राम ने रावण का भी सत्यानाश कर डाला। यदि दोनों रावण और शम्बर मिल कर लड़ते तो शायद दोनों के दोनों बचे रहते। इधर दिवोदास के उत्तराधिकारी सुदास ने वर्चिन को नष्ट किया तथा भेद उनका प्रजा होगया। इस प्रकार राक्षसों और दानवों का बल इस काल चूर्ण हुआ।

बारहवां अध्याय

मनु-रामचन्द्र काल, त्रेतायुग प्रायः १६०० से १२५० बी० सी० तक ।

चन्द्रवंश की इतर शाखायें तथा सम्मिलित विवरण ।

यदुवंश—वैदर्भ, और माथुर शाखायें ।

पौरवों के पूर्व पुरुष ययाति के बड़े पुत्र शुक्राचार्य के दौहित्र यदु ही थे, किन्तु आज्ञोलघन के कारण चारो जेष्ठ बन्धु अधिकारच्युत हुए तथा पचम पुरु सम्राट बने। तो भी ययाति द्वारा जीता हुवा चम्बल बेतवै और केन वाला देश यदु को मिला। इनके दो पुत्र थे अर्थात् क्रोष्टु और सहस्रजित। पहले से मुख्य यादव वश चला, और दूसरे से हैहयवश। यदु वाले देश के उत्तरी भाग मे सहस्रजित स्थापित हुये और दक्षिणी मे क्रोष्टु या क्रोष्टा। ऋग्वेद में यदु के विषय मे भले और बुरे दोनों प्रकार के कथन हैं। हरिवश मे जो इनका आनर्त देश मे गोद जाना लिखा है वह किसी अन्य यदु से सम्बद्ध है क्योंकि वह गोद लेने वाला हर्यश्व यदुवशी ३९ वे नरेश मधु का दामाद था। ऋग्वेद में एक स्थान पर यदुवंशियो के यज्ञादि न करने के कथन हैं तथा अन्यत्र इनके दान की प्रशसा है। पुराणो मे भी इस कुल की प्रशसा होते हुए यह भी लिखा है कि ये नरेश दुराचारी थे तथा इनके कारण अन्य क्षत्रियो मे भी दुराचार फैला। सूर्य और पौरव वशो की भाँति यदु पुत्रो के पीछे इस शाखा मे भी (न० २०) शशिविन्दु के पूर्व कोई विशेष महत्ता न आई और वशावली मे नरेशो के नाम ही नाम है। शशिविन्दु प्रसिद्ध यज्ञकर्ता और सम्राट् थे। इन्होने पौरवो को राज्यच्युत किया, किन्तु इनके पीछे यदु वश कुछ पीढ़ियो तक फिर निर्बल हो गया। शशिविन्दु का वर्णन वायु ९५, १९, मत्स्य ४४, १८, विष्णु IV १२, १, अग्नि २७४,१३, भागवत IX २३, ३२ मे आया है।

इनके पौत्र (न० २२) परावृत के दो पुत्र विदिशा मे स्थापित हुए। इनके मुख्य पुत्र ज्यामघ दक्षिण जाकर मृत्तिकावती ऋक्षपर्वत आदि मे राज्य करने लगे। समझ पडता है कि कारणवश ज्यामघ का पैत्रिक राज्य शायद हैहयों के फैलने से छूट गया। इनके पुत्र विदर्भ ने इसी नाम का प्रान्त जीत कर वहाँ मुख्य स्थान बनाया। इस राज्य की विदर्भ और कुण्डिन राजधानियाँ थीं. (म० भा० ३१ २७७२ १२७, ५३६, ३, ह, व, ११७, ६५८८ ६६०६ १०४ ५८०४ १०६, ५८५५. ११८, ६६६२ ६६९३)। न० २४ विदर्भ से न० ३३ विकृति तक कोई विशेष घटना नहीं मिलती है। (न० ३५) भीमरथ निषध-नाथ नल के श्वसुर एवं दमयन्ती के पिता थे (म० भा० वन पर्व)। नल दमयन्ती पर अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखे गए हैं जो कई योरोपियन भाषाओं तक मे अनुवादित हो चुके हैं। भीम वैदर्भ का कथन ऐतरेय ब्राह्मण VII ३४, में है। इनके पीछे (३९) मधु को हम आनर्त और मथुरा का स्वामी पाते हैं। ये आनर्त राज्य अपने जामाता हर्यश्व को देते हैं और मथुरा बेटे लवण को, ऐसा हरिवंश मे लिखा है। इनके प्रपौत्र सत्वन्त का पुत्र न० ४३, भीम सात्वत था। इसके या सत्वन्त के समय मे राम के भाई शत्रुघ्न ने मथुरा छीन कर वहाँ राज्य जमाया किन्तु राम और शत्रुघ्न के पीछे भीम सात्वत ने मथुरा (मधुपुरी) फिर से प्राप्त की। सम्भवतः यह पुरी उपर्युक्त मधु की बसाई हुई थी। जान पडता है कि मथुरा खोने के पीछे यदुवंश उसी के निकट कहीं कालक्षेप करता रहा होगा। समझ पडता है कि विदर्भ में इस वंश की एक शाखा स्थापित रही होगी जिसके प्रतिनिधि श्रीकृष्ण के समय मे भीष्मक और रुक्मी थे, तथा उस वंश की एक शाखा मथुरा और आनर्त की अधिकारिणी हो गई होगी। यही शाखा मध्यदेश मे आ जाने से वंशावलियों मे मुख्य समझी गई तथा विदर्भ की मुख्य शाखा अमुख्य हो गई। यह भी सम्भव है कि (न० ३१) द्विमीढ ने जब विदर्भ मे पौरव राज्य भी स्थापित किया, तब विदर्भ के तत्कालीन वंशधरों का प्रभाव कुछ कम हो गया हो।

विदर्भ न० २४ के क्रथभीम और क्रथ कैशिक नामक दो पुत्र थे।

क्रथभीम के वंश का ऊपर वर्णन हो चुका है। उधर क्रथ कैशिक के वंशधरों में चिदि, वीरबाहु और सुबाहु के नाम लिखे हैं। ये सुबाहु राजा नल की रानी के मौसिया थे (म० भा०)। नल का नं० ३५ बैठता है, सो सुबाहु का ३४ होना चाहिए। फिर भी वंशावली में वह नं० २८ है। इससे जान पड़ता है कि इस वंश के केवल मुख्य नाम लिखे हैं। सम्भवतः क्रथभीम की शाखा मथुरा चली आई हो और क्रथ कैशिक की विदर्भ में रह गई हो तथा उसी वंश में उपर्युक्त भीष्मक (श्रीकृष्ण के ससुर) हों। माथुर तथा अन्य हैहयेतर यादवों का वर्णन द्वापर युग में होगा। ऊपर के विवरण से प्रकट है कि यदु वंश की यह शाखा पहले अपने पैत्रिक देश में रही। फिर ज्यामघ के काल मृत्तिकावती से आकर विदर्भ के आधिपत्य से विदर्भ में स्थापित हुई और इन्हीं के पीछे देश का नाम पड़ा। अनन्तर कुछ काल में एक शाखा वहीं रह गई तथा वहां द्विमीढ़ का पौरव राज्य भी जमा (पार्जिटर) और दूसरी यादव शाखा मथुरा चली आई। इस शाखा का आनर्त प्रान्त वाला अधिकार प्रसन्नतापूर्वक सूर्य्य वंशियों में चला गया। जिस काल हैहयों का अधिकार सगर के प्रभाव से गिरा और उनका वैदर्भों से वैवाहिक संबंध हुआ, तब से इन्हीं वैदर्भों ने उत्तर की ओर बढ़कर कुछ हैहय राज्य पर भी अधिकार कर लिया। यह भूभाग शायद इन लोगों के पूर्व पुरुषों का वह देश होगा जो हैहयों ने इन से छीना होगा। पार्जिटर का विचार है कि वैदर्भ चिदि ने यमुना तट का चेदि राज्य चलाया। वास्तव में वह चेदि राज्य पौरव वंशी सुधन्वन या सुहोत्र का कमाया था तथा सुहोत्र के प्रपौत्र पौरव चिदि के कारण चैदि कहाया। यादव चिदि का उस राज्य से सम्बन्ध नहीं समझ पड़ता। पार्जिटर का यह भी कथन है कि विदर्भ के तीसरे पुत्र लोमपाद ने भी एक अज्ञात राज्य जमाया। वह कहते हैं कि कुछ कैशिक क्रथों के साथ विदर्भ में भी रहे। वास्तव में क्रथ कैशिक राज्य विदर्भ ही में समझ पड़ता है और चेदि में पौरव राज्य था। श्रीकृष्ण एक क्रथ कैशिक के विदर्भ ही में अतिथि हुये थे (उनका विवरण आगे आवेगा)।

यादवों की हैहय शाखा !

उपर्युक्त यदु नं० ७ की चौथी पीढ़ी पर हैहय का नाम लिखा है, किन्तु इस वंश का प्राय १६ पुश्ते पौराणिक वंशावलियों से छूट गई हैं। ऐसा निष्कर्ष पौराणिक विवरणों की समकालीनताये मिलाने से निकलता है। इस प्रकार हैहय का नम्बर २० वा पड़ता है। इनके समय इस वंश की इतनी उन्नति हुई कि यादव छोड कर ये लोग हैहय कहलाने लगे। समझ पड़ता है कि हैहय से ही हार कर ज्यामघ यादव नं० २३ ने अपना पैत्रिक प्रान्त छोड कर मृत्तिकावती म. विदर्भ के निकट, शरण ली और तब उन के पुत्र विदर्भ ने अपने नाम पर प्रान्त स्थापित किया, जिसे अब बरार (विदर्भ) कहते हैं। उधर यादवों का पैत्रिक देश हैहय को मिल गया जिससे इनका प्रभाव और भी बढ़ा। इनके प्रपौत्र साहज (नं० २८) ने साहजनी पुरी बसाई तथा इनके पुत्र महिष्मान ने माहिष्मती। सूर्यवंशी मुचकुन्द ने भी एक माहिष्मती बसाई थी। सम्भवत दोनो एक ही थी। हैहय के पीछे किसी समय सूर्यवंशी शार्यात क्षत्रिय भी आनर्त खोकर हैहयो मे आ मिले, जिससे दोनो का प्रभाव बढ़ा। महिष्मानात्मज नं० ३० भद्रशेण्य ने पूर्वी राज्यो को जीतते हुए काशी पर भी आक्रमण किया। काशी नरेश नं० ३४ दिवोदास (प्रथम) ने भद्रशेण्य के बड़े पुत्रो को मारा। सम्भवत: भद्रशेण्य भी इसी युद्ध मे काम आये। काशी राज्य ने इनके एक मात्र पुत्र दुर्दम को बालक समझ कर छोड दिया। अनन्तर कुछ दिनो मे बल बढ़ा कर दुर्दम ने फिर काशी पर आक्रमण किया, और काशी नरेश, पहले दिवोदास (नं० ३४) को हराया। वे काशी छोड कर पश्चिम की ओर भागे। यहाँ उन्होने गोमती के तट पर राजधानी बनाई। उधर काशी को लूट कर दुर्दम तो चल दिए और वहां क्षेमक राक्षस का अधिकार होगया। कुछ दिनो मे उसे भी हरा कर दुर्दम ने काशी हैहय राज्य मे मिला ली। इन कथनो के आधार ऊपर काशी के राज्य-कथनो मे आगये हैं जहा यह कथा भी कथित है। शायद भद्रशेण्य के समय आक्रमणो के कारण हैहयो को धन की बहुत आवश्यकता हुई। किसी हैहय नरेश ने अपने अथच पूर्व पुरुषो द्वारा सम्मानित उस भार्गव

वश से धन माँगा, जो शार्यातो का पुराना पुरोहित था और नर्मदा के दक्षिण रहता था अथच शार्यातों के सम्बन्ध से हैहयों द्वारा भी पूजित था। उन्होंने धनाभाव बतलाया किन्तु खोदाई होने से उनके पास प्रचुर द्रव्य निकला। तब क्रोध करके हैहयों ने गर्भ तक फाड़-फाड़ कर उस वश का नाश किया, केवल और्व नामक एक बच्चा किसी प्रकार बच गया। अनन्तर सयाने होने पर और्व नर्मदा को छोड़कर मध्यभारत में रहने लगे। इनके पुत्र ऋचीक प्रकट कारणों से शस्त्री हुए। ऋचीक का विवाह कान्यकुब्ज नरेश गाधि (वैदिक गाथिन) की पुत्री सत्यवती से हुआ, जिससे जमदग्नि का जन्म हुआ। उधर प्राय: उसी समय गाधि पुत्र विश्वामित्र उत्पन्न हुए। जमदग्नि के रेणुका से पांच पुत्र हुए, जिनमें सब से छोटे परशुराम थे। रेणुका सूर्यवंशी किसी प्रसेनजित की पुत्री थी। अतएव कान्यकुब्ज तथा सूर्यवशों की जमदग्नि से सहानुभूति थी। उधर हैहय नरेश दुर्दम का पौत्र कृतवीर्य प्रतापी राजा हुआ (महाभारत)। हैहयों का वर्णन निम्न अन्य पुराणों में भी है—ब्रह्माण्ड, वायु, ब्रह्म, हरिवंश, मत्स्य, पद्म लिंग, कूर्म विष्णु, अग्नि, गरुड, और भागवत्। वीतिहोत्र, अवन्ति, भोज, शार्यात और तुण्डिकेर नामक इनकी पांच शाखायें आगे चलकर हुईं।

शान्ति पर्व में यह लिखा है कि भार्गवों द्वारा जब हैहयों का पराभव हुआ, तब वैश्य और शूद्र ब्राह्मणों तक पर अत्याचार करने लगे जिस पर इन्हों (भार्गवों) ने फिर हैहयों को राजा बना कर उनका दमन कराया। इससे जान पड़ता है कि पहले भार्गवों ने इनसे मिल कर हैहयों को पछाड़ा, और जब अपने पुरुषार्थ से मदान्मत्त होकर ये अनीति करने लगे, तब हैहयों के द्वारा भार्गवों ने उनका दमन कराया। पंडित लोग यह भी कहते हैं कि हैहयों के विरोध में कान्यकुब्जों तथा सूर्यवंशियों ने भी भार्गवों की सहायता की होगी।

हैहयार्जुन को जमदग्नि की स्त्री रेणुका की बहिन व्याही थी। कई साधारण कारणों से इन साढुओं में मन मैली होगई, और अर्जुन ने जमदग्नि के आश्रम पर आक्रमण किया। इस पर पिता की आज्ञा मान कर राम ने विद्रोही प्रजा के नेता बन कर युद्ध में अपने मौसिया एवं प्रसिद्ध सम्राट् अर्जुन का अपने हाथ से बध किया। अनन्तर

अर्जुनात्मजों ने राम की अनुपस्थिति में निरस्त्र जमदग्नि को मार डाला। कहते हैं कि इस पर क्रोध करके राम ने २१ बार भारत में सभी युद्धोत्साही क्षत्रियों का वध किया। यह कथन पुराणों में वर्णित है किन्तु तत्कालीन राजमंडल की स्थिति के देखने से अनैतिहासिक समझ पड़ता है। स्वयं राम की माता तथा पितामही क्षत्रियात्मजा थीं। एक क्षत्रिय वंश के कारण वे सारे क्षत्रिय वंशों पर क्रोध कर भी नहीं सकते थे। जान पड़ता है कि इन्होंने अर्जुन के दोषी पुत्रों का वध किया होगा। परशुधर राजा होना तो चाहते न थे सो विजय प्राप्त करके पहले तो आप कुछ दिन कोंकण में बसे और फिर पूर्वी घाट के महेन्द्र पर्वत पर रहने लगे। विचार किया जाता है कि इनके प्रतोत्साहन से दक्षिण में ब्राह्मणों की बस्ती बहुत स्थापित हुई। पीछे रामचन्द्र के समकालीन अगस्त्य ने भी उधर बहु-संख्या में ब्राह्मण जनता बढ़ाई। मध्यदेश में परशुधर के भाइ चारे में पीछे अग्नि और्व महत्ता युक्त हुए। इन्ही की सहायता से सगर का प्रताप बढ़ा। हैहयों के विषय में कुछ और आधारों का कथन करके हम कथा के डोर को आगे चलावेंगे। इनके तथा भार्गव ब्राह्मणों के कथन पुराणों में बहुतायत से हैं। सहस्रार्जुन का कर्कोटक नागों से माहिष्मती लेना (म० भा० VIII ४४,-२०६६ III ६६, २३११ VIII ३४, १४८३, ह० व० १६८, ९५०२, पद्म VI २४२,२) में लिखित है। कर्कोटक नागराज था। अर्जुन का नर्मदा से हिमालय तक जीतना (म० भा० III ११६, ११०८९, ११७,-१०२०९) तथा हैहयों का शकों, यवनों, काम्बजों, पारदों और पह्लवों की सहायता से मध्य देश जीतना (वायु ८८, १२२,४३ ब्रह्माण्ड III ६३,१२०,४१ VIII २९, ५१, ह० व० १३,७६०, विष्णु IV ३, १५,७२) में कथित हैं।

इसी स्थान पर वीतिहव्यादि हैहय तथा भार्गवों के सम्बन्ध में भी आधार लिख दिए जाते हैं जिसमें आगे के कथनों में स्थान स्थान पर विवरण छोड़ कर वे न लिखने पड़े।

काशी की शाखा वाले प्रतर्दन ने हैहय राजधानी जीतकर वीतिहव्य (तालजंघ हैहय के पुत्र) को हराया। वीतिहव्य शौनक भार्गव ऋषि होगए। इन्होंने आंगिरस शुनहोत्र के पुत्र गृत्समद वेदर्षि को गोद

लिया। यही गृत्समद शम्बर वध मे अतिथिग्व दिवोदास का कथन करते हैं। वीतिहव्य भरद्वाज ऋषि के साथ भी रहे। गृत्समद का दूसरा ऋग्वेद वाला मंडल है, और भरद्वाज का छठवां। इस छठे मण्डल मे वीतिहव्य का कथन ऋषि की भांति है। वीतिहव्य वीतिहोत्र भी कहलाते थे (म० भा० XIII ३०,५८,९,३०,१९८३, ९६, सर्वानुक्रमणी) वीतिहव्य को महाभारत के अनुसार एक भार्गव ऋषि ने बचाया। इसी से ये भार्गव ऋषि बने। म्लेच्छों की सहायता से वीतिहव्य के पिता तालजघ हैहय ने राजा बाहु को पराजित किया था। अनन्तर बाहु के पुत्र सगर ने हैहयो का बल नष्ट किया। (आधार वायु ८८, १२१, ४३, ह० व०, ६३, ७६० से १४, ७८४ तक, विष्णु IV ३, १५, २१ महाभारत मे कई जगह।)

भार्गवों के विषय में आधार।

ऊपर कहे हुए हैहयो के पौराणिक विवरणो मे भार्गवो का भी हाल मिलेगा। सगर की पालना अग्नि और्व ने की (वायु ८८, १२७, मत्स्य १२, ४०, ३)।

पुराणों मे कहीं-कहीं कृतवीर्य का भार्गवो को अमीर करना लिखा है और फिर उनके पीछे हैहयो द्वारा भार्गव सहार कथित है। इसी सहार से और्व का बचना तथा उनके प्रपौत्र परशुराम का कार्तवीर्य अर्जुन को मारना लिखा है। इससे जान पड़ता है कि भार्गव सहार कार्तवीर्य के पहले हुआ होगा। सम्भव है कि कार्तवीर्य ने भार्गवो का मान किया हो, किन्तु यह सहार के पीछे की बात थी।

ऋचीक और्व धनुर्धर एवं शास्त्री थे (म० भा० XIII ५६, २९१० XII २३४ ८६०७, रामायण I ५५, २२, २)।

जमदग्नि की भी शास्त्रो तथा धनुष विद्या मे शिक्षा हुई, किन्तु इन्होंने शान्त स्वभाव के कारण युद्ध छोड दिया। यह गङ्गाजी के किनारे रहते थे, (म० भा० III ११५, ११०६९-७०, XIII ५६, २९१०, १२, III ११६, ११०७१, XII ४९, १७४४, रामायण I ७५, २२, ३, पद्म VI २६८, २१)। अग्नि और्व ने सगर की सहायता की (मत्स्य १२, ४०, पद्म V ८, १४४), जामदग्नि राम ने हैहयार्जुन को मारा,

उसके पुत्रों का भी ध्वंस किया तथा २१ बार पृथ्वी निःक्षत्र की। अब हैहयों का इतिहास फिर से उठाया जाता है।

अर्जुन के पौत्र, तत्पुत्र जयध्वज राजा हुये। शूर और शूरसेन इनके भाई थे। जयध्वज का कोई प्रभाव न बढ़ा किन्तु इनके पराक्रमी पुत्र तालजंघ (राजा नं० ३६) ने फिर हैहय बल को बढ़ाया। शार्यात इनमें मिल ही चुके थे अब आवन्ति तुण्डिकेर और भोज भी मिल गये। हैहयों की एक शाखा तालजंघात्मज के नाम पर वीतिहोत्र भी कहलाती थी। तालजंघ ने विश्वामित्र को म्लेच्छों द्वारा हरानेवाली वसिष्ठ की युक्ति को ठीक समझ स्वदेशाभिमान छोड़ कर म्लेच्छों से भी सहायता ली। इधर प्रजा का विद्रोह भार्गवों से मेल हो जाने से टूट ही चुका था, सो पराक्रमी भूपाल तालजंघ ने हैहय राज्य के बढ़ाने में मन लगाया। ये पुराणों में वृहद्बाहु (बड़ी भुजावाला) कहे गए हैं। इनका राज्य आनर्त (कैम्बे की खाड़ी के निकट) से बनारस तक फैला। इनके आक्रमणों से पराजित हो कर सूर्यवंशी राजा बाहु उपर्युक्त अग्नि और्व ऋषि के आश्रम में गए, तथा काशी नरेश दूसरे दिवोदास (नं० ३७) भरद्वाजाश्रम में जा छिपे। विश्वामित्र के पुत्र लौहि का कान्यकुब्ज राज्य नष्ट हुआ और केवल अयोध्या का सूर्यवंशी राज्य इस ओर बच रहा। पौरवों, पांचालों आदि से हैहयों का बिगाड़ न हुआ। जान पड़ता है कि परशुराम के नाना प्रसनजित सगर के पूर्वपुरुषों में कोई थे और इस वंश ने तथा कान्यकुब्जों ने भार्गवों की अवश्य सहायता की होगी, जिससे हैहयों ने अपने पुराने शत्रु काशी नरेश के अतिरिक्त इन्हीं दो मुख्य राज्यों से वैर निकाला। तालजंघ ने काशी के पूर्व वाले राजाओं को भी जीता होगा, किन्तु पुराणों में उनके नाम नहीं हैं, केवल वैशाल नरेशों में नं० ३५ प्रगति अन्तिम नरेश लिखे हैं। उनका राज्य तालजंघ ही ने छीना होगा, ऐसा समझ पड़ता है। इनके युद्धों में क्षत्रियों का संहार बहुत हुआ तथा इनके द्वारा म्लेच्छ सेना के भी प्रयोग से अथच हैहयों के भार्गवों से अनुचित विरोध करने से, इन क्षत्रियों का भारी विजेता होने पर भी भारतीय ग्रन्थों में अधिक समादर नहीं है।

तालजंघ के समय तो कोई हैहयों से आँख मिला न सका, किन्तु

इनके पीछे इस वंश पर विपत्ति आई। इनके पुत्र वीतिहोत्र (न० ३७) तथा उनके एक भाई मे यह राज्य बट गया। वीतिहोत्र के प्रपौत्र, (न० ४०) सुप्रतीक इस शाखा के अन्तिम नरेश थे। इसी काल दूसरी शाखा के अन्तिम राजा वीतिहोत्र के पौत्र वृष्ण थे। दिवोदास के पुत्र राजा (न० ३८) प्रतर्दन ने वीतिहोत्र का वह करारी पराजय दी कि वे राज्य छोड़ कर भार्गव वंशी वेदर्षि हो गए। इन्ही वीतिहोत्र ने उत्तर पांचाल नरेश दिवादास द्वारा पूजित वेदर्षि भरद्वाज के साथ वैदिक ऋचाओं का गान किया। इनके पुत्र और पौत्र दुर्जय फिर भी किसी न किसी रूप में हैहयराज्य चलाते रहे। काठक संहिता मे आया है कि भरद्वाज ने प्रतर्दन का राज्य दिया। ये वही भरद्वाज थे, जिनका वीतिहव्य से भी सम्बन्ध हुआ, सो यही निष्कर्ष निकलेगा कि प्रतर्दन ने वीतिहव्य का पकड कर अपने गुरु भरद्वाज के हवाले किया तथा उसका पुत्र हैहयराजा हो गया। अनन्तर और्व के आश्रित बाहु के पुत्र प्रसिद्ध नरेश सगर ने हैहयों की दोनों शाखाओं को नष्ट करके इस वंश का पूर्णतया राज्यच्युत कर दिया। हैहयों ने अपना राज्य बढ़ाने में दूसरों के अधिकारों का उचित मान नही किया, जिससे भार्गवो पर विपत्ति आई, वैशाल और कान्यकुब्ज राज्य नष्ट हो गए, तथा काशी और बाहु के राज्य डगमगाये, किन्तु अन्त मे भार्गवों तथा इन्ही दोनों द्वारा हैहयराज्य अशेष हुआ। कालिदास ने राम की पितामही इन्दुमती के स्वयंवर मे हैहयवंशी प्रतीप की उपस्थिति लिख कर उन्हे वृद्ध सेवी बतलाया है। सम्भवत: प्रतीप उपर्युक्त वृष्णि के पिता या पितामह हों। उज्जयिनी हैहयो के ही राज्य मे थी। त्रेतायुग में अयोध्या वंश के अतिरिक्त हैहयो के वंशी हा सर्वोत्कृष्ट थे, किन्तु रामचन्द्र के समय में अथवा उनके कुछ ही पीछे निर्मूल हो गये।

तुर्वश वंश, उत्तरी विहार।

यदु के सगे भाई तुर्वश को ययाति द्वारा किये हुये बटवारे मे प्राय: रीवां प्रान्त मिला। उस प्रान्त से यह वंश उत्तरी विहार मे कब आया, सो पता नही, किन्तु मरुत्त (न० २२) को हम वहाँ पाते हैं। वैशाल

इन्द्र वश नहीं समझ पड़ता है। अतएव मरुत्त से होड करनेवाले इन्द्र केवल माहात्म्यवर्द्धक अथच काल्पनिक समझ पडते है। मरुत्त के कुछ ही पूर्व मान्धाता ने पोरव कुल को राज्यच्युत कर दिया था। अब इन्ही (मरुत्त) ने पौरव वशी राजकुमार दुष्यन्त को गोद लिया। मरुत्त का उत्तराधिकार पाने से दुष्यन्त का प्रभाव बढा जैसा कि पौरव कुल मे कथित है। तुर्वश वंश यही से पौरव कुल मे मिल जाता है। कहते है कि दाक्षिणात्य राजकुल पांड्य, चोल, और केरल तुर्वश वशी थे। महाभारत आदि पर्व मे यवन भी तुर्वश वशी कहे गये हैं।

द्रुह्यु वंश, पंजाबी नरेश।

ययाति के बटवारे मे द्रुह्यु को यमुना के पच्छिम तथा चम्बल के उत्तर वाला देश मिला। इनके २७ व वशधर पर्यन्त, बीच के कुछ नाम छोड कर, पुराणो मे लिखे हैं। द्रुह्यु वशी न० २१, अङ्गार को सूर्यवशी मान्धाता ने हराया, जिसमे इन लोगो को और भी पच्छिम हटना पडा। इनके पुत्र गान्धार मे थे। सूर्यवशियो ने वहाँ भी इनका पीछा न छोडा, किन्तु इन्होने मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स को बन्दी बना लिया। ऋग्वेदानुसार कारागार मे ही पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु का जन्म हुआ। अनन्तर प्रतापी मुचकुन्द ने अपने भाई पुरुकुत्स का मोचन किया। सयाने होने पर पिता के बन्दी होने का बदला लेने को त्रसदस्यु ने दुष्यन्त से प्रेम स्थापित रखने को उनका पैत्रिक पौरव राज्य सम्भवतः बिना युद्ध किए फेर दिया तथा गान्धारो पर आक्रमण करके द्रुह्युवो को करारी पराजय दी। तब ये लोग और भी पच्छिम हट कर म्लेच्छ देश-का चले गए। कुछ द्रुह्यु वंशी मध्यभारत मे भी बसे, जहाँ इन की भोज सज्ञा हुई। इसके पीछे बहुत काल तक द्रुह्यु वंशियो का पता नहीं लगता। इनके वशधरो मे (न० २६) प्रचेतस प्रतापी थे। उनका वर्णन पुराणो मे हैं। अनन्तर उत्तर पांचाल नरेश न० ३९, सुदास के समय मे हम फिर द्रुह्युवशियो को पजाब मे पाते हैं। वे कब इधर स्थापित हुए, सो पता नहीं, किन्तु आनवो, तौर्वशो, भार्गवों आदि के साथ परुष्णी नदी के किनारे हम इन्हे भी ऋग्वेद मे सुदास से हारते देखते हैं। इसके पीछे द्रुह्युवश के नाम

आनव वंश, उत्तर पश्चिमी शाखा।

सम्राट् ययाति के बटवारे में अनु को गङ्गा यमुना द्वाब का उत्तरी भाग मिला। इनके पीछे (नं० [illegible]) महामनस पंजाब में बढ़े। वायु ९९, १६, ७, तथा मत्स्य ४८, १७ में महामनस चक्रवर्ती नरेश तथा सात समुद्रों के स्वामी कहे गए हैं। इनको सप्तद्वीप पति कहा है। समझ पड़ता है कि जब इनके पितामह जनमेजय को मान्धातृ ने हराया तब अपने पैतृक प्रान्त में ठहरना असम्भव समझ कर कुछ आनव पूरब की ओर चले गए और कुछ पश्चिम को। समय पर पश्चिम जाने वालों के नेता महामनस हुए। वहाँ पीछे इन लोगों ने सिन्धु, सौवीर, कैकय, मद्र, वाल्हीक, शिवि और अम्बष्ठ राज्य स्थापित किए। इनमें से कैकयों की टूटी-फूटी वंशावली दी हुई है, तथा इतरों के कथन मात्र हैं। हमारे पौराणिक व्यास लोग मध्यप्रदेश की वंशावली देते तथा उनके कथन करते थे। इतरों के मध्यदेश वालों से जैसे कुछ सम्बन्ध रहे, वैसे उनके विवरण आये अथच शेष छोड़ ही दिए गए। महामनस के पुत्र उशीनर और तितिक्षु थे। तितिक्षु पूर्व की ओर चले आये। इनके वंश का कथन आगे होगा। उशीनर ने पश्चिम काशी उपनाम अटक बनारस अपनी राजधानी बनाई। इनके राज्य में यौधेय, अम्बष्ट, नवराष्ट्र और कृमिला शहर भी थे। इनके पुत्र शिवि की पुराणों में शरणागत वत्सल होने की भारी प्रशंसा है। कहते हैं कि आपने केवल एक कपोत के कारण प्राण दिए। शिवि औशीनर से शिवपुर का शिवि वंश चला, तथा चार पुत्रों द्वारा पश्चिम की ओर बढ़ कर आपने वृषदर्भ, केकय, मद्र, और सौवीर के राज्य जमाये। पंजाब इनके अधिकार में आ गया। केकय की पुत्री कैकयी (राम की सौतेली माँ और भरत की सगी माता) तथा पुत्र युधाजित थे। जब इस वंश का राज्य गन्धर्वों ने नष्ट कर दिया, तब अयोध्या से दलबल समेत आकर भरत ने गन्धर्वों को पराजित

करके अपने दो पुत्रो मे नाना का राज्य बॉट दिया। तक्ष को तक्षशिला मिली और पुष्कर को पुष्करावती (आधार वायु ८८, १८९, ९०, विष्णु IV ४, ४७, अग्नि ११, ७, ८, रघुवंश XV ८८. ९, पद्म V ३५, २३ ४, VI २७१, १०)।

इसके आगे पुराणो मे यह वंश वर्णित नही है। या तो यह लोग उसी ओर के क्षत्रियो मे मिल गए होगे, या समय पर शत्रुओ द्वारा जीते जाकर इनके वंशधर राज्यच्युत हुए होगे। पहला अनुमान सुसगत समझ पडता है क्योंकि इनकी दोनो राजधानियो (तक्षशिला और पुष्करावती) के नाम बहुत काल तक चले। कही-कही यह भी लिखा है कि कुछ आनव म्लेन्छ देशो मे जा बसे। महाभारत आदि पर्व म्लेच्छो को अनुवंशी कहता है।

आनववंश, पूर्वी अंग शाखा।

उपर्युक्त नरेश नं० २२, तितिक्षु पूर्व मे आकर अंग (वर्तमान भागलपुर) मे स्थापित हुये। इनके पौत्र हेम के पौत्र (नं० २६) बलि एक प्रसिद्ध और विजयी राजा थे। इनकी सुदेष्णा रानी मे इन्हो की आज्ञा से तोवश मरुत्त का यज्ञ कराने वाले सवर्त के भतीजे तथा उचथ्य और ममता के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक ऋषि अन्धे दीर्घतमस ने पॉच पुत्र उत्पन्न किए, जिनके नाम अंग, वग, कलिग, सुम्ह और पौण्ड्र थे। अनन्तर इन्हीं मामतेय ने नेत्रवान होकर गोतम नाम धारण किया, तथा दुष्यन्त पुत्र पौरव सम्राट् भरत का ऐन्द्रमहाभिषेक कराया। बलि के पाचो पुत्रो ने बढ़ कर पूर्वी प्रान्तों मे राज्य किया। इनके द्वारा शासित देश इन्ही के नामो से प्रख्यात हुए। ये सब पूर्वी बिहार से बगाल तक पर फैले थे। वग (वर्तमान वीरभूमि मुर्शिदा बाद, बर्दवान, और नदिया), पुण्ड्र (छोटा नागपुर), सुम्ह (बॉकुरा और मदनापूर), और कलिङ्ग (उडीसा) Rapson के अनुसार आनवो के थे। बलि पुत्र अग (नं० २७) ने पिता ही की राजधानी मालिनी में राज्य किया। इन्ही के नाम पर देश अग (वर्तमान मुँगेर तथा भागलपूर) कहलाया। इनके वशधर प्रसिद्ध नरेश लोमपाद (नं० ४०) राम के पिता दशरथ के मित्र थे। कौशल्या की पुत्री

शान्ता को गोद लेकर उन्होंने उसका ऋष्य शृंग से विवाह किया। इनके प्रपौत्र चम्प ने चम्पापुरी बसाई, जो अङ्ग की राजधानी हुई। इसी वंश के किसी राजकुमार उड़ का राज्य उड़ीसा में जमा। लोमपाद के वंशधर जयद्रथ (नं० ४८) ने एक ऐसी कन्या से विवाह किया, जिसकी माता ब्राह्मणी और पिता क्षत्रिय था। इस कारण यह वंश सूत कहलाने लगा। आगे का वर्णन यथा स्थान आवेगा। इस वंश का विवरण महाभारत, रामायण तथा पुराणों में है। दीर्घतमस का वर्णन म० भा० के अतिरिक्त ऋग्वेद, वायु ९९, मत्स्य ४८ तथा बृहद्वता IV १५ में भी है। इस काल के उपर्युक्त महापुरुषों के विवरण जो पुराणों से अन्यत्र मिलते हैं, उनके भी कथन यहाँ किए जाते हैं। उनमें वेदर्षि निम्न हैं :—

दीर्घतमस, वीतिहव्य, जमदग्नि, राम परशुधर और शिवि। यदु, द्रुह्यु, अनु और तुर्वश के नाम ऋग्वेद में बार-बार आये हैं। गन्धार में बहुत करके रावलपिण्डी और पेशावर के जिले लगते थे। उसमें तक्षशिला और पुष्करावती शहर थे। अन्तिम को अब प्रेग और चारसद्द (पेशावर से उत्तर पश्चिम १७, मील) कहते हैं। ऋग्वेद I १२६, ७, में गान्धारियों की ऊन की प्रशंसा है। अथर्ववेद V २२, १४, में गन्धारी लोग निन्द्य होकर मूजवन्तों के साथ कथित हैं। पीछे वहाँ विद्वत्ता की प्रसिद्धि हुई, जहाँ वेदों तथा १८ विद्याओं की शिक्षा होती थी। छान्दोग्य, VI १४, में उद्दालक, आरुणि, गान्धारी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हैं। उद्दालक जातक नं० ४८७, में उद्दालक तक्षशिला जाकर विद्या सीखते हैं। सेतुकेतु जातक नं० ३७७ कहता है कि उद्दालक पुत्र सेतुकेतु ने तक्षशिला में विद्या पढ़ी। कौटिल्य भी वहीं के विद्यार्थी थे। जातक (४०६) में कश्मीर और तक्षशिला गान्धार में थे। गन्धार राज द्रुह्यु वंशी थे। ऋग्वेद में गन्धार वाले उत्तर पश्चिमी लोग थे।

केकय लोग गन्धार और व्यास नदी के बीच में थे, (रामायण, II ६८, १९, २२, VII ११३, १४)। राजधानी राजगृह या गिरिव्रज जलालपुर झेलम पर थी। एक मागध गिरिव्रज भी था। मत्स्य और वायु पुराण कहते हैं कि उशीनर केकय और मद्रक लोग

आनव थे। ऋग्वेद VIII ७४, कहता है कि आनव मध्यपञ्जाव मे थे।

मद्र के दो भाग है, अर्थात् उत्तर और दक्षिण मद्र। ऐतरेय ब्राह्मण मे उत्तर माद्र हिमालय के उस पार लिखे है। कश्मीर के निकट उत्तर कुरु मे दक्षिण माद्र मध्यपञ्जाव मे थे। केकय तथा इरावती के बीच मे (महाभारत VIII ४४, १७) यह राज्य सियालकोट और निकट के जिलो पर था। यह गुरु गोविन्दसिंह के समय तक मद्र कहलाता था। राजधानी साकल थी (महाभारत)। कलिङ्ग जातक ४७९ और ५०१ कुश जातक मे वहां राजकीय सत्ता एक राजाधीन है। पहले मद्र अच्छा था, किन्तु कर्णपर्व मे माद्रो की निन्दा है।

उशीनर का प्रान्त मध्यदेश मे था। ऐतरेय ब्राह्मण VIII १४,कहता है कि मध्यदेश से कुरु, पांचाल, वश एक वश का नाम था तथा उशीनरो का राज्य था। कौशीतकि उपनिषत् मे उशीनरो का साथ मत्स्य, कुरु, पांचाल और वशो से हैं। कथा सरित्सागर मे उशीनर कनखल के पास हैं। पाणिनि भी इनका कथन करते हैं। महाभारत मे राजधानी भोज नगर है तथा ऋग्वेद, X ५९, ७, १०, मे उशीनरानी। अनुक्रमणी और जातको मे उशीनर और तत्पुत्र शिवि के कथन है। मत्स्य मे अलवर, जैपुर तथा भरतपुर के भाग थे। राजधानी वैराट जैपुर मे थी। ऋग्वेद VII १८, ६ मे मत्स्य लोग सुदास से हारते है। अङ्ग मगध के पूर्व मे है। राजधानी चम्पा थी, तथा चन्दन नदी हद।

मथुरा शूरसेनो की राजधानी थी। इसका नाम ऋग्वेद मे नही है। ग्रीक लेखक मथुरा तथा शूर सेनों के कथन करते हैं। यादवो मे वीतिहोत्र, सात्वत आदि के नाम हैं, तथा सात्वतो मे देवावृद्ध, अन्धक महाभोज और वृष्णि के। शतपथ ब्राह्मण VIII ६, ४६, मे दौष्यन्ति भरत सात्वतो को हराकर उनका अश्वमेध बिगाड़ते है। ये सात्वत भीमसात्वत के पहले हुए होंगे। ऐतरेय ब्राह्मण मे सात्वत दाक्षिणात्य हैं (VIII १४, ३) जिनके राजा भोज हैं। माहिष्मती, विदर्भ आदि यादवों की राजधानियाँ थी। ऐतरेय ब्राह्मण VII ३४, मे विदर्भराज भीम तथा गान्धार राज नग्नजित के समकालीन बभ्रु दैववृद्ध हैं। अवन्ती मे मालवा, नीमार तथा निकट की भूमि लगती थी। उत्तरी

राजधानी उज्जैन थी तथा दक्षिणी अवन्ती। आजकल उज्जैन और अवन्ती एक ही शहर के नाम हैं। सम्भवत उस काल दो हो। दक्षिणापथ की राजधानी माहिष्मती (मान्धाता) नर्मदा पर थी। महाभारत मे अवन्ती के विन्द अनुविन्द नर्मदा के निकट के थे। ऐतरेय ब्राह्मण VIII १४ दक्षिणी भागो मे यादवो तथा भोजो का सम्बन्ध बतलाता है। पहला घराना हैहयो का था। इनका कथन कौटिल्य करते हैं। इन्होने नागोको जीता। मत्स्य पुराण इनमे पॉच भाग मानता है अर्थात वीतिहोत्र भोज, अवन्ती कुडिकेर या तुण्डिकेर और तालजघ।

काम्बोज उत्तरापथ मे गन्धार के निकट था। राजपूर काम्बोजो का केन्द्र था, यथा "कर्णराजपुरे गत्वा काम्बोज निर्जितस्त्वया।"

राज्यो की पॉच श्रेणियॉ थी, अर्थात साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य, और राज्य। भोज पहले यदुवश के अग थे। पीछे भौज्य से दाक्षिणात्य राज्य का प्रयोजन मिलने लगा। शतपथ ब्राह्मण XIII ५, ४ ६, मे मरुत्त अवीक्षित अयागव थे, अर्थात् शूद्र पिता और वैश्या माता से उत्पन्न।

महिषी, परिवृक्ता, वावाता और पालागली नाम्नी चार रानियॉ होती थी। मुख्य महारानी महिषी थी, प्रेमहीना परिवृक्ता, मुख्य प्रेमिका वावाता और अन्तिम, मन्त्री की कन्या, पालागली। भारी सम्राट् का ऐन्द्रमहाभिषेक होता था। शर्यात, विश्वकर्मा, सुदास, मरुत्त और भरत के ऐसे अभिषेक हुए। ग्रामिक आदि राजा को सलाह देते थे।

विष्णु पुराण का कथन है कि बाहु तालजघ से हार कर और्व के आश्रम गये। सगर ने शक, यवन, काम्बोज, परद और पल्लवों को जीता। वशिष्ठ ने उन्हे बचा कर प्रजा के रूप मे बसने दिया। महाभारत आदि पर्व मे वशिष्ठ ने शवरो तथा म्लेच्छो के द्वारा विश्वामित्र को जीता। जनमेजय के सर्पसत्र मे आस्तीक ने, म० भा० आदि पर्व मे गय, शशिविन्दु, अजमीढ, रामचन्द्र और युधिष्ठिर के यज्ञों की प्रशसा की। द्रोण पर्व मे व्यास ने युधिष्ठर के समझाने मे निम्न १६ प्राचीन भारतीयो कोश्रेष्ठ कहा:—मरुत्त (यज्ञकर्ता सम्राट्),

सुहोत्र (भारी वीर, यज्ञकर्ता, राजधानी मे स्वर्ण बाहुल्य), अङ्ग, (यज्ञकर्ता), शिविऔशीनर (दानी, यज्ञकर्ता), दाशरथी राम, भगीरथ (सार्वभौमराजा, हजारों कन्यायें विप्रो को दीं), दिलीप इलव-लात्मज (यज्ञ कर्ता), मान्धातृ (युवनाश्वात्मज, विजेता, यज्ञकर्ता), ययाति (यज्ञकर्ता), अम्बरीप नाभागात्मज (विजयी, रण, मख दान यहीतीन काम थे), शशिविन्दु (अश्वमेध मे स्वपुत्र दान मे दिए), गय (यज्ञकर्ता), रन्तिदेव (सकृतपुत्र, भोजन दान, यज्ञ), दुष्यन्त पुत्र भरत (दाँत पकड कर सुप्रतीक हाथी वश किया; कई अश्वमेध तथा विश्वजित यज्ञ किए), पृथु (पृथ्वीपुत्री, यज्ञकर्ता), परशुराम (विजयी)।

त्रेतायुग का सम्मिलित वर्णन।

चाक्षुम मन्वन्तर के पीछे मनु वैवस्वत और बुध ने भारत मे सूर्य और चन्द्रवंशो के राज प्रायः साथ ही साथ स्थापित किए। ये दोनों ससुर दामाद थे। मनु अयोध्या मे जमे, और बुध प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग के निकट झूँसी) मे। मनु की मुख्यता थी और उन्ही के नाम पर मन्वन्तर चला। उनके पुत्र सुद्युम्न के तीन पुत्र पूरब मे रीवा और सोन पर जमे, शर्य्याति आनर्त में तथा नाभानेदिष्ठ वैशाली मे। मनु पुत्र धृष्ट का प्रभाव वाल्हीक देश की ओर कहा जाता है। इक्ष्वाकु मनु के ज्येष्ट पुत्र थे। ये अयोध्या में राजा हुए। इनके पुत्र शकुनि की अध्यक्षता में बहुतेरे ऐक्ष्वाकु उत्तरापथ (पजाब की ओर) गए। वशाति और दडक के नेतृत्व मे इसी प्रकार कुछ ऐक्ष्वाकु दक्षिण पथ गए। वहाँ इनका उपनिवेष दडक के व्यभिचार से असफल हुआ। इक्ष्वाकु के समय मे रावी नदी के निकट से आकर माथव नामक सरदार ने रहूगण को पुरोहित बना कर मिथिला मे राज्य जमाया। उनकी राजधानी जयन्त हुई। दस बारह पुश्तो के पीछे इक्ष्वाकु वशी निमि और तत्पुत्र मिथि मिथिला में स्थापित हुये। ऐक्ष्वाकु (न० ४) पुरजय ककुत्स्थ इन्द्र के मुख्य सहायक और भारी नरेश थे। इन्हीं दिनो चन्द्रवश में न० ४, पुरूरवस और नं० ५, नहुप महान हुए। विश्वरूप और वृत्रवध के पीछे कुछ कारणो से इन्द्र को अपना पद

छोड़ना पड़ा, और नहुष इन्द्र हुए। इन्द्र का स्थान भारत के बाहर कहीं समझ पड़ता है। नहुष इन्द्रत्व चला न सके और पदच्युत हुए तथा इन्द्र फिर स्थापित हुए। शायद इसी अवसर पर पुरजय ने उनकी सहायता की थी। अनन्तर चन्द्रवंशी नहुष पुत्र ययाति (नं० ६) प्रसिद्ध विजयी हुए। इन्होंने राज्य बहुत बढ़ाया। दो रानियों में इनके पांच पुत्र हुए। जेठे पुत्रों से आज्ञा भङ्ग के कारण अप्रसन्न होकर ययाति ने कनिष्ठ पुत्र पुरु को सम्राट् बनाया, तथा चारों ज्येष्ठ पुत्रों को बाह्य प्रान्त दिए।

सूर्य और चन्द्रवंशों में इस काल कई राज्य स्थापित हो चुके थे। ययाति के पीछे कई पुश्तों तक महत्ता में शायद ये दोनों समान रहे हों। दोनों कुलों में छठी पुश्त से बीसवीं पीढ़ी पर्यन्त प्रायः ढाई सौ वर्ष तक किसी नरेश की महत्ता न हुई, यहाँ तक कि इस काल के कई नाम भी लुप्त हो गए। भारत के प्राचीन शासकों में किसे दबा कर ये दोनों वंश स्थापित हुए सो अकथित है। यह भी नहीं विदित है कि इन प्रायः ढाई सौ वर्षों में सूर्य, चन्द्र वंशों की तुलनात्मक शिथिलता के समय भी उन लोगों ने इन्हें जीतने का कोई प्रयत्न किया। शायद इन दिनों के भूपाल न तो बहुत निकलते हुए थे, न ऐसे निर्बल कि कोई उनके राज्य ही छीन लेता। सुदास नं० ३९ के समय तक वैदिक वर्णन भारी-भारी अनार्य राजाओं का अस्तित्व बतलाता है। पुराणों में भी इस साधारण काल में कुछ अनार्यों के आर्यों से युद्ध कथित हैं, किन्तु वे प्रभावपूर्ण न थे। इस शिथिल काल के पीछे सब से पहले महत्तायुक्त यादव नं० २०, भूपाल शशिबिन्दु हुए। इन्होंने पौरवों को पराजित करके अनेक यज्ञ किए। अनन्तर इनका वंश फिर शिथिल पड़ गया और इनके दामाद सूर्यवंशी (नं० २१) मान्धाता प्रबल पड़े। इन्होंने अनु, द्रुह्यु और तुर्वश वंशियों को पराजित किया तथा पुरुवंश को राज्यच्युत कर दिया। उधर थोड़े ही दिनों में तुर्वश वंशी मरुत्त भी प्रबल पड़ कर सम्राट् हो गए और उनके दत्तक पुत्र दुष्यन्त पौरव प्रतापी होकर अपना राज्य फिर जमाने में यत्नवान हुए। इस स्थिति का मुख्य कारण सूर्यवंशियों का द्रुह्यु वंशियों के पीछे पड़ कर गान्धार तक

प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न था। यदि सूर्यवशी अयोध्या से इतनी दूर जा राज्य स्थापन के फेर मे न पड कर मध्यदेश मे महत्ता रखते, तो पहले पराजित मरुत्त का इतना प्रभाव न बढ पाता। फलतः पौरव राज्य अयोध्या की अधीनता से निकल गया, तथा इनका गान्धार मे भी प्रभाव चिरस्थायी न रहा। उपर्युक्त प्रयत्न मे तल्लीन रह कर मान्धाता के पौत्र त्रसदस्यु ने शायद प्रसन्नतापूर्वक दुष्यन्त को पौरव राज्य फेर दिया अथच गान्धारो का पराजित किया। कुछ ही दिनो मे वहाँ अयोध्या का राज्य शेष न रहा होगा और (न० ३४) दिलीप खट्वांग पर्यन्त अयोध्या ने कोई भारी विजय न पाई। इस काल वृक ने हैहयो के आक्रमण से राज्य रक्षित रक्खा, तथा नाभाग और अम्बरीप ने यश भी प्राप्त किया, किन्तु अयोध्या का प्रभाव विशेषतया बढ न सका।

उधर दुष्यन्त पुत्र भरत (न० २४) ने महत्ता प्राप्त करके ऐन्द्रमहाभिषेक पाया अथच यादव हैहय ने भारी ऐश्वर्य सपादित किया। उनके दबाव से दूसरी यादव शाखा को विदर्भ (बरार) की ओर जाना पड़ा। पौरव न० ३०, हस्तिन ने पच्छिम की ओर बढ़ कर हस्तिनापुर को राजधानी बनाया। इनके वंशधरो ने थोडे ही दिनो मे विदर्भ (द्विमीढ़ शाखा), उत्तर पांचाल, दक्षिण पांचाल, काशी और कान्यकुब्ज के राज्य स्थापित कर लिये। उधर यादवो मे हैहय वंशी बढ़े और दूसरी यादव विदर्भ शाखा भी बढ कर मथुरा मे स्थापित हुई। राक्षसो का भी प्रभुत्व तिमिध्वज, शम्बर, वर्चिन, भेद और रावण के आधिपत्य में बढा।

सूर्यवंशियो ने भी दक्षिण कोशल, हरिश्चन्द्र तथा सगर वाले तीन नवीन राज्य कमाये। मध्यभारतमे उस काल निषधराज वीरसेनात्मज नल (न० ३५) एक प्रतापी राजा हुए। इधर हरिश्चन्द्र और रोहिताश्व ने अच्छे नाम पैदा किए। दक्षिण कोशल नरेश ऋतुपर्ण नल के साथी थे। कान्यकुब्ज में विश्वामित्र राज्य छोड वेदर्षि हो गए। इनका वशिष्ठ से जो वैमनस्य हुआ, उसका प्रभाव हरिश्चन्द्र, सुदास, सवर्ण, दक्षिण कोशल तथा उत्तर कोशल पर पडा। मध्यभारत मे भार्गव वंश भी विशेष महत्ता युक्त हुआ। हैहयो का राज्यवर्द्धनवाला

प्रयत्न इस काल कथनीय है। उन्होंने इसी के कारण काशीराज, सगर, कान्यकुब्ज नरेश यादवों तथा भार्गवों से शत्रुता पाली और अन्त में उनका वंश राज्य हीन हो गया। इसी झगड़े में वैशाल तथा कान्यकुब्ज राज्य भी लुप्त हो गए। इस काल की तीन महती घटनायें हैहय पराभव, दिवोदास और सुदास के विजय तथा राम रावण युद्ध है। हैहय वंश का पतन परशुराम भार्गव ने किया और अन्त प्रतर्दन तथा सगर द्वारा भरद्वाज एवं अग्निऔर्व भार्गव की सहायता से हुआ। दिवोदास ने दशरथ की सहायता से तिमिध्वज शम्बर को मारा तथा सुदास ने दस राजाओं के युद्ध में अनार्य राजा भेद एवं वर्चिन को परस्त कर दिया। पौरवों से भिड़ने में सुदास का प्रभाव गिरा। राम ने रावण को मार कर भारत में तत्कालीन अन्तिम अनार्य बल को नष्ट किया। अतएव हम देखते हैं कि परशुराम, प्रतर्दन, सगर, भरद्वाज और अग्नि और्व के प्रयत्नों से पराये अधिकारों को न मानने वाला हैहय वंश गिरा तथा दशरथ, दिवोदास और सुदास के पुरुषार्थ से शम्बर, वर्चिन, भेदादिक अनार्य राजे परस्त हुए। इनमें से वर्चिन की बहुतेरे आर्य नरेश भी सहायता करते थे। राम ने रावण को मार कर अन्तिम और परमोत्कृष्ट अनार्य बल का क्षय किया। वशिष्ठ ने धर्म की आड़ में म्लेच्छों द्वारा अपने राजकीय बल की स्थिरता रख कर कान्यकुब्ज नरेश विश्वामित्र को हराया, किन्तु इन्होंने राज्य छोड़ एवं ऋषि होकर वशिष्ठ के म्लेच्छ दल का ध्वंसन किया। अनन्तर तालजंघ हैहय ने म्लेच्छों द्वारा कई उत्तरी भूपालों को गिरा कर अपना बल बढ़ाया, किन्तु प्रतर्दन और सगर के पुरुषार्थ से हैहय और म्लेच्छ दोनों मिट गए। इस प्रयत्न में और्व तथा भरद्वाज ने भी योग्य सहायता दी। इस प्रकार तत्कालीन भारत में म्लेच्छ बलवृद्धि विश्वामित्र, और्व तथा भरद्वाज के प्रयत्नों से रुकी एवं त्रिशंकु, प्रतर्दन, और सगर द्वारा नष्ट हुई। अब आगे के अध्याय में त्रेतायुग के मुख्य उन्नायक श्री रामचन्द्रजी का विवरण किया जाता है। इस काल की धार्मिक और सामाजिक स्थिति हम वैदिक विवरण में छठवें से आठवें अध्यायों तक दिखला आये हैं। इन विषयों का प्रचुर वर्णन ऋग्वेद तथा इतर वैदिक साहित्य में मिलता है। इसमें बहुतेरे

ग्रन्थकारों ने विस्तारपूर्वक लिखा है। कुछ आधारों का भी कथन होकर यह अध्याय समाप्त होगा।

मन्वन्तर काल से त्रेतायुग तक के कथनों के शेष प्रमाण।

मन्वन्तरों के ऐतिहासिक कथन पांचवे अध्याय में हैं, और त्रेतायुग के नवे से १३ वें तक। इन कथनों के वैदिक प्रमाण ६ व से ८ वे अध्यायों में लिखे गए हैं। इनके पौराणिक आधार बहुधा पीछे लिखे हैं, किन्तु कहीं-कहीं नहीं भी हैं। वे अब एक स्थान पर यहां लिखे जाते हैं।

मन्वन्तरों के प्रमाण।

मार्कण्डेय ५३,७७, आग्नेय भाग २ अध्याय २, आदि ब्रह्म ५ शिवि वायवीय ५८, अध्याय।

ब्रह्माण्ड भाग ५ अ० ५ (भरत), भविष्य पहला भा०, देवी भागवत ८,४,१०,८,११, वराह २, स्कन्द, विष्णु भाग २,१,१३, व ३,१।

सूर्यवंश।

ब्रह्म, ७,२२६, आदि ब्रह्म ७, पद्म, सृष्टि, ८, विष्णु, भाग ४,२, भागवत भाग नवां १,१३,। (करूप अम्बरीप,शशाद,पुरुकुत्स निमि)। देवी भागवत भाग ७, अ० ८,९, (शशाद) मार्कण्डेय २० (कुवलयाश्व) आग्नेय प्रथम, ६७।

पद्म यस्वर्ग २५, (मान्धाता) भागवत नवां ५,६, देवी भागवत ७ वां, ९।

ब्रह्माण्ड, लिंग पुराण (अम्बरीप) ब्रह्म १३८, (शर्याति)।

हरिश्चन्द्र, राज्य त्याग (स्कन्द पुराण में, ब्रह्म १०४), साधारण शेष (विवरण ऐतरेय ब्रा०, ७,३, अध्याय) भागवत नवां।

७, इसमें शूकर के संबंध में हरिश्चन्द्र परीक्षा का कथन है। पद्म यस्वर्ग २४, देवी भागवत सातवा भाग, १०, २५, भाग छठवा १३। मार्कण्डेय, ८।

राम, वाल्मीकीय रामायण, ब्रह्म १५४, (लवकुश), १७६ (रावण), पद्म सृष्टि ३२, (शूद्र मुनि वध)।

पद्म पाताल खण्ड। १ से ६८ तक, प्रश्नोत्तर २६९, देवी भागवत तीसरा भाग, २८।

देवी भागवत का नवां अध्याय १६, (माया सीताहरण), आग्नेय पहला भाग ७३ १८१।

यदुवंश विष्णु चौथा भाग ११, भागवत नवां भाग २३, २४, (विदर्भ भी), लिंग ६८, यदुवंश (क्रोष्टु वाला), पद्म सृष्टि १३, विष्णु चौथा भाग १२।

दुष्यन्त भरत पद्म स्वर्ग १ (दुष्यन्त), ६ (भरत) महाभारत आदि पर्व, भागवत नवां भाग २० (भरत)।

हैहय देवी भागवत छठवां भाग २१,२३, अन्य बातों के साथ कालकेतु का वध करके एकावली का विवाहना भी लिखित है, पद्म सृष्टि १२, (सहस्रार्जुन) विष्णु चौथा भाग ११ (सहस्रार्जुन, परशुराम), भागवत नवां भाग १५, महाभारत। चन्द्रवंश .आदि ब्रह्म ११, देवी भागवत पहला भाग ११, विष्णु चौथा भाग ६, नवाँ भाग १४, २४ (अजमीढ़ भी) देवी भागवत् पहला भाग १२ (इलासुद्युम्न)।

ययाति, ब्रह्म १२, १४६, विष्णु चौथा भाग १० । महाभारत आदि पर्व, लिंग ६७ । भागवत् नवाँ भाग १०, स्कन्द कूर्म ब्रह्माण्ड ।

नहुषी, पद्म, भूमि, १०५, विष्णु चौथा भाग, १० महाभारत, देवी भागवत छठवाँ भाग ७, स्कन्द ब्रह्माण्ड (मिथिला)।

च्यवन, पद्म, भूमि १०५, विष्णु चौथा भाग, देवी भागवत भाग सातवाँ १, ७, हरिवंश (श्रीकृष्ण, मिथिला गमन), भागवत दसवाँ खण्ड ८६ (भागवत धर्म, वासुदेव), भागवत ११ वाँ २, (बलराम द्वारा सूतवध), भागवत दस ७८, ब्रह्म १८०, १९४, (सान्दीपनि), १९५ (जरासिन्ध), २०२ (नरकासुर), २०५ (वाणासुर), २१० (वशध्वज), २१२ (म्लेच्छों द्वारा स्त्री हरण)।

पद्मोत्तर २७८ (सुदामा), विष्णु पांचवाँ भाग २, ३८, महाभारत, हरिवंश, पूरा कृष्ण चरित्र, आदि बल ९३, ब्रह्म ८८ (उषा सूर्य समागमन), ब्रह्माण्ड मे भी।

बलि वावन; ब्रह्म ७३, हरिवंश।

सगर, ब्रह्म ८७, पद्म सृष्टि (भगीरथ), पद्मयस्वर्ग. १५, विष्णु भाग चौथा। शिववायवीय ६१, भागवत नवॉ भाग ८ आग्नेय पहला भाग ६८।

अहल्या, ब्रह्म ८७, पद्म सृष्टि ५१, आग्नेय पहला भाग। ८०, रामायण।

शुक्र ब्रह्म ९५ पद्म सृष्ठि १३ (मातावध, जयन्ती विवाह, ब्रह्माण्ड भार्गव), देवी भागवत चौथा भाग ११, १२।

पुरूरवस महाभारत ब्रह्म १०१, १५१, पद्म सृष्टि ८, १२, विष्णु भाग चौथा ७, महाभारत। अगस्त्य लोपामुद्रा, महाभारत, ब्रह्म ११०, पद्म सृष्टि १९, २२ (समुद्र पान), वराह ६९, ७०, वातपि दानव भस्म, स्कन्द में तथा काशी मे, अगम्स्य दुर्दम के समय मे। दुर्दम हैहय वंशी नं० ३१ थे। उधर अलर्क क पितामह प्रतर्दन हैहय वीतिहव्य न० ३७ को जीतते है, मो अलर्क के समकालीन अगस्त्य हैहय न० ३९ के भी समकालीन बैठते हैं। इस प्रकार मे अगस्त्य का आठ हैहय पीढ़ियो तक चलना निकलता है। अगस्त्य राम और अलर्क के समकालीन रामायण और हरिवंश के अनुसार थे ही, सो यदि आठ पीढ़ियो तक चलना इनका अनुचित हो, तो स्कन्द पुराण मे लिखित दुर्दम को समकालीनता अग्राह्य होगी। स्कन्द पुराण का कथन वहुत मान्य है भी नही।

काशी विष्णु चौथा भाग ८ (धन्वन्तरि), मार्कण्डेय, ३८ (अलर्क) हरिवंश मे लोपामुद्रा द्वारा अलर्क को वरदान। स्कन्द (प्रतर्दन, दिवोदास), ब्रह्म, १२२।

आपस्तम्ब, ब्रह्म १३०।

पांचाल—महाभारत, हरिवंश, आग्नेय, पहला भाग। ६३ (मुद्गल) ब्रह्म १३६।

बृहस्पति...पद्म सृष्टि १४, नास्तिक मत।

ब्रह्म पुराण मे (नृसिंह), १४९ (अजीगर्त). १५० (चन्द्र तथा तारा), १५२ (अष्टावक्र), २१२।

२१३ मे वराह नृसिंह वामन।

दत्तात्रेय, जमदग्नि, राम कृष्ण कल्कि ।

पद्म पाताल में, विभीषण मोचन १००, पद्मोत्तर मे ३ (जालन्धर), १५,(वृन्दा), पद्मसृष्टि ४ पद्मोत्तर २६० तथा भाग आठवां। ७ एव महाभारत मे समुद्र मन्थन, सृष्टि खण्ड ६,४२, हिरण्यकशिपु, पद्मोत्तर मे २२८. (मत्स्य), २५९, (कूर्म), २६४, (वराह). २६७, (वामन), २६८, परशुराम ।

नृसिह, लिग ९६. स्कन्द, भागवत सातवा ९ ।

ध्रुव, विष्णु ११. पद्म यस्वर्ग १२ लिंग । ६२, भागवत चौथा भाग ८ ।

वामन. पद्म. सृष्टि, २५, भागवत, ८ वा । १८, आग्नेय पहला खड, ६० स्कद (वामन) ।

वेन पृथु, पद्म, सृष्टि, ८ पद्म भूमि, २६, २९. ३६, (वेन द्वारा जैन धर्म), विष्णु १३. ब्रह्म १४१ ।

शिववायवीय ५३,५७, भागवत चौथा भाग १३,१५,२४ ।

वराह, पद्म, सृष्टि, ७३, भागवत तीसरा खड १३, स्कन्द १० खड १५, २० इसमे वराह का दांत टूटना भी लिखित है ।

प्रह्लाद पद्म, सृष्टि, ७४. (सुरत्व प्राप्ति), विष्णु, १७, २१, (वश), शिव ज्ञान सहिता, ५९ देवी भागवत चौथा भाग, ९ ।

रावण, पद्म, यस्वर्ग, ११ शिवज्ञान खड ५५ ।

दशावतार, वराह ४, स्कन्द ।

व्यास, महाभारत, स्कन्द, सनत्कुमार, सहिता, १८, २१, शकर सहिता, वेद विभाग, भागवत १२ वां ६, ७, जनमेजय के यहां वेद विभाग, अथर्ववेद ।

शिवि, पद्म यस्वर्ग, १८ महाभारत ।

उशीनर पद्म यस्वर्ग, १८ ।

दिवोदास, पद्म यस्वर्ग २३ ।

राधा । पद्म, पाताल, ७०, ८३, देवी भागवत नवां भाग २, १३, ५०, ब्रह्मवैवर्त, १२४ ।

सौभरि ऋषि, पद्मोत्तर २३३ ।

कुशध्वज वश, विष्णु चौथा भाग ५ ।

तुर्वश···विष्णु चौथा भाग, १६।
द्रुह्यु, विष्णु चौथा १७।
अनु विष्णु चौथा १८, कर्ण भी, शिवि वायवीय, ५६।
जह्नु, विष्णु चौथा २०।
खांडिक्य, विष्णु पांचवां ६ (केशिध्वज को ज्ञान)।
नल, शिव ज्ञान खड ६२।
तृमूति···शिव वायवीय ११, वराह १०।
पाशुपतव्रत; शिव वायवीय २९।
रन्तिदेव, स्कन्द मे।

सुदर्शन, देवी भागवत तीसरा भाग १४, २५, (युधाजित सबधी कथन)।

श्वेत द्वीप, देवी भागवत छठवां २८, म० भा० शान्तिपर्व।
कन्धर, मार्कण्डेय ७।
देश भक्ति, देवी भागवत आठवा ११, विष्णु पुराण तथा भागवत मे भी।

वैशाली का मनुवश-मार्कण्डेय ११२ (प्रषध्र को शूद्रता), ११३,३८ (प्रषध्र शूद्र), नाभाग, प्रमति भलन्दन, वत्सप्री, खनित्र, विविश, खनीनेत्र, करन्धम, अवीक्षित, वैशालिनी हरण, अवीक्षित वन्दीत्व, उद्धार, वैराग्य वैशालिनी का दानव से अवीक्षित द्वारा उद्धार, वैशालिनी से विवाह, मरुत्त, नरिष्यन्त, सुमन का स्वयवर, नरिष्यन्तवध, वपुष्मत, दम वैशाली, गरुड।)

भविष्य पुराण शतानीक से कहा गया। इसमे सुदर्शन तक वर्णन है। सवर्ण, प्रद्योत, यूनानी, तर्लीश, इलीश, म्लेच्छागमन, कारण, अग्निवश विस्तार, विक्रमादित्य, पद्मावती, हरिदास, भर्तृहरि, बोपदेव, आल्हा ऊदल, चन्द कवि तथा शिवाजी के भी कथन इस पुराण मे हैं।

ऊपर जहां-जहा महाभारत और हरिवंश के कथन आये है, उनके अतिरिक्त भी इन दोनो ग्रथो मे प्राय: सभी कथाये आगई हैं। महाभारत के आदि, सभा, वन, उद्योग और शान्ति पर्वो मे स्फुट कथाये भरी पड़ी हैं।

तेरहवां अध्याय

भगवान् रामचन्द्र ।

तेरहवी शताब्दी (बी० सी०)

इस अध्याय की कथा मुख्यतया वाल्मीकीय रामायण पर आधारित है और कहीं-कहीं महाभारत वन पर्व विष्णु पुराण, हरिवंश और श्रीभागवत का थोडा सा आधार है। इनसे इतर आधार बारहवे अध्याय के अन्त मे दिये हुए है। महाराजा दशरथ के राजत्व-काल मे भारत की क्या दशा थी उसका दिग्दर्शन गत अध्यायो मे कराया जा चुका है। इन महाराज के वृद्धप्राय हो जाने तक भी कोई पुत्र न हुआ। इनकी रानी कौशल्या से शान्ता नाम्नी एक कन्या मात्र उत्पन्न हुई थी। उसे भी इनके मित्र राजा रोमपाद ने दत्तक ले लिया था। ये महाराजा अग देश के स्वामी थे। जब बहुत काल पर्यन्त दशरथ के कोई पुत्र नही हुआ तब उन्होंने पुरोहित वशिष्ठ की सम्मति से अपने दामाद ऋष्य शृंग को बुलाकर पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। थोडे दिनों मे इनकी तीनो रानियो से चार पुत्ररत्न हुए। बड़ी रानी कौशल्या के आत्मज भगवान रामचन्द्र दशरथ के सब से बडे राजकुमार थे। इनसे छोटे कैकेयी-पुत्र भरत हुए, तथा उनसे भी छोटे सुमित्रा के यमज पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न। इस प्रकार चार पुत्र पाकर महाराजा दशरथ ने अपने को धन्य माना। उचित समय पर इन राजकुमारो को शास्त्र और शस्त्र का अभ्यास कराया गया।

जब रामचन्द्र की अवस्था सोलह वर्ष के लगभग हुई, तब ऋषिवर विश्वामित्र ने महाराजा दशरथ के पास आकर निवेदन किया, "राक्षस लोग मुझे यज्ञ नही करने देते, सो कृपा करके कुछ दिनो के लिये आप रामचन्द्र को दीजिये तो इनकी रक्षा से मेरा यज्ञ पूर्ण हो जावे।" पहले तो बालको का अल्पवय विचार कर महाराजा दशरथ को इस निवेदन मे बड़ा गडबड़ देख पडा, किन्तु पीछे से उन्होंने वशिष्ठ के समझाने

पर राम और लक्ष्मण को महर्षि विश्वामित्र के साथ कर दिया। जान पड़ता है कि राजकुमारों के साथ कुछ सेना भी गई होगी, यद्यपि इसका वर्णन ग्रन्थों में नहीं है। विश्वामित्र ने मार्ग में दोनों राजकुमारों को पूरी शस्त्र-विद्या सिखाई। ऋषिवर को देखते ही कामवन में ताड़का ने इन पर आक्रमण किया किन्तु अपकारिणी होने पर भी स्त्री समझ कर रामचन्द्र उस पर प्रहार करने से आनाकानी करते रहे। अन्त में जब विश्वामित्र के कहने से राम ने जाना कि वह बड़ी ही प्रबला थी और यह भी समझ पड़ा कि महर्षि पर प्रहार करने ही को थी, तब इन्होंने विवश होकर युद्ध में उसका वध कर डाला। अनन्तर ऋषि के साथ राम उनके सिद्धाश्रम में पहुँचे। दूसरे दिन राम की इच्छानुसार महर्षि विश्वामित्र यज्ञ करने लगे। यह देखकर मारीच और सुबाहु सेना समेत यज्ञ-ध्वंसनार्थ चढ़ दौड़े। रामचन्द्र ने लक्ष्मण को साथ लेकर उनका सामना किया। घोर संग्राम हुआ, जिसमें राक्षसी दल को भारी हानि पहुँची और सुबाहु मारा गया। यह देख मारीच हत-शेष राक्षसों के साथ उत्तरीय भारत को छोड़ दण्डकारण्य में जा बसा। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही भगवान् रामचन्द्र ने उत्तरीय भारत को राक्षसों से छुटकारा दिलाकर भारी यश प्राप्त किया। अब विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगया।

इस काल मिथिला देश के राजा सीरध्वज उपनाम जनक ने यह प्रण किया था कि जो पुरुष जनकपुर का भारी शैव धनुष चढ़ाकर बाण युक्त कर देगा, उसी के साथ राजकन्या सीता का विवाह होगा। बहुत से राजकुमार तथा राजा लोग धनुष चढ़ाने मिथिला गये थे, किन्तु सब को विफल मनोरथ हो अपनी कीर्ति गवाँकर लौटना पड़ा था। इन हारे हुए लोगों में रावण भी था। उससे भी पिनाक न चढ़ सका था। धनुष चढ़ाये जाने के लिये अयोध्या भी निमन्त्रण जा चुका था। रामचन्द्र के शौर्य से विश्वामित्र परम प्रसन्न हुए और उनको समझ पड़ा कि यह धनुष चढ़ा सकेंगे। इसलिये यज्ञ पूर्ण होने के पीछे वे राजकुमारों के साथ मिथिला पहुँचे। महाराजा सीरध्वज ने उनका यथायोग्य सत्कार किया। उचित वार्तालाप के पीछे विश्वामित्र की आज्ञा से भगवान रामचन्द्र धनुष चढ़ाने पर सन्नद्ध हुए। इन्होंने

पृथ्वी-मण्डलस्थ राजकुल के सारे पराक्रम को दमन करनेवाले भारी शैव पिनाक को सहज ही में चढा दिया और उसे ज्यायुक्त करके उस पर इस जोर से बाण ताना कि वज्रवत कठोर पिनाक एक तिनके की भाँति टूट गया। मिथिलापुर में सैकडों लोगों के धनुष चढाने में विफल मनोरथ होने से सीता के ब्याह विषयक भाँति-भाँति के सकल्प-विकल्प उठ रहे थे। रामचन्द्र ने पल भर में इन शकाओं को निर्मूल कर दिया। अब जनकपुर में बधाई बजने लगी। महाराजा जनक के विश्वविमोहिनी रूपराशि सीता के अतिरिक्त एक और कन्यारत्न थी, तथा इनके भाई कुशध्वज के दो कन्याएँ थी। इसलिये महाराजा सीरध्वज ने महाराजा दशरथ को पत्र भेज कर उनके चारो राजकुमारो का अपनी कन्याओ और भतीजियो के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। महाराजा दशरथ ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया और इन चारो भाइयो के विवाह यथासमय जनकपुर मे हो गये। राम को सीता, भरत को माण्डवी, लक्ष्मण को उर्मिला और शत्रुघ्न को श्रुतकीर्ति मिली।

चारो पुत्रो का विवाह करके महाराजा दशरथ जिस काल अयोध्या को लौट रहे थे, तब मार्ग मे उनकी परशुराम से भेंट हुई। ये हैहयवंश-विध्वसकारी ही परमशुराम थे। वृद्ध परशुराम ने शिवशिष्य होने के कारण रामचन्द्र द्वारा शैव धनुष तोडा जाना सुनकर भारी क्रोध किया और वे युद्धार्थ सनद्ध भी हुये, किन्तु रामचन्द्र की विनय और पुरुषार्थ से प्रसन्न होकर तथा अपने पिता के मामा विश्वामित्र का दवाव मानकर पीछे से अपना परमोत्कृष्ट धनुष उनको देकर बन चले गये। परशुराम के हार मानने से रामचन्द्र की ख्याति ससार मे और भी अधिक हुई। अब महाराजा दशरथ पुत्र-बधुओ तथा पुत्रो समेत अयोध्या पहुँचे और फिर से पूर्ववत राज्य करने लगे। कुछ दिनो के पीछे सीता समेत रामचन्द्र मिथिलापुरी गये और कई साल वही रहे।

जब राजकुमार श्रीराम अयोध्या को पधारे, तब थोडे दिनो के लिये शत्रुघ्न को साथ लेकर राजकुमार भरत अपने ननिहाल गये। इसी बीच मे महाराजा दशरथ ने रामचन्द्र को युवराज पद देने का विचार

किया। इस पर उनकी प्रियतमा रानी कैकेयी को उसकी दासी मन्थरा ने समझाया कि किसी प्रकार अपने पुत्र के लिये युवराज पद प्राप्त करो। पहले तो कैकेयी ने इस प्रस्ताव को धर्मविरुद्ध कह कर मन्थरा का बहुत भर्त्सन किया, किन्तु पीछे से उसके समझाने मे आकर उसी के मन्त्रणानुसार चलना स्वीकार कर लिया। जब कैकेयी का विवाह दशरथ से हुआ था, तब यह निश्चित हो गया था कि दशरथ से उत्पन्न कैकेयी का ही पुत्र उत्तराधिकारी होगा। राम का प्रभाव बहुत बढ़ जाने से पुत्र प्रेमवश दशरथ ने इस प्रतिज्ञा का मान उचित न समझा।

किसी समय राजा दशरथ ने कैकेयी को दो वर देने की प्रतिज्ञा की भी थी और रानी ने उन्हे उस काल न माँगकर भविष्य के लिये थाती स्वरूप रख छोड़ा था। मन्थरा ने उन्ही का स्मरण दिलाकर कैकेयी से कहा कि अपने पुत्र के लिये राज्य तथा राम के लिये १४ वर्षों का वनवास माँग लिया जाय। अब कैकेयी कोपभवन मे चली गई। राजा ने वहाँ जाकर उसे मनाना चाहा तो उसने अपने दोनो वरदान माँग कर उनके हृदय मे काँटा सा चुभो दिया। महाराजा दशरथ सब लड़को का उचित प्यार करते थे किन्तु राम उनके जीवनाधार ही थे। बिना राम को देखे उनको एक घडी चैन नही पडती थी। इसलिये इनके वनवास का वरदान सुनकर वे अत्यन्त विकल हुए। सत्य से भ्रष्ट होना उनके लिये त्रिकाल मे भी सभव न था, किन्तु राम को वन भेजना उन्हे प्राणत्याग से भी अधिक दुःखदायी था। इसलिये उन्हे सारी रात विलाप करते ही बीती। प्रातःकाल जब लोग राम का अभिषेक होना समझ रहे थे, तभी इस दुर्घटना के समाचार सारी अयोध्या मे फैल गये। रामचन्द्र ने अपने पिता की महा दुरवस्था देखकर उन्हे बहुत समझाया और १४ वर्ष के लिये वन जाने मे अपनी पूरी प्रसन्नता प्रकट की, किन्तु राजा का दुःख किसी प्रकार कम न हुआ। पिता की मानसिक आज्ञा शिरोधार्य्य करके राम सुखपूर्वक वन जाने की तय्यारी करने लगे। इनकी प्रिया सीता और वात्सल्य-भाजन अनुज लक्ष्मण ने छोड़ना किसी प्रकार पसन्द न किया और विवश होकर इन्हे उनको भी साथ लेना पडा।

रामचन्द्र ने समझा होगा कि हमारे वन चले जाने पर राजा किसी प्रकार धैर्य्य धारण कर लेंगे। इसलिये माता पिता को कलपते छोड तथा रोती हुई अयोध्या से मुख मोड और केवल धर्म को शिरोधार्य मान कर्तव्यपालनार्थ भगवान् रामचन्द्र सीता लक्ष्मण के सहित उसी दिन जगल को चले ही गये। पितृभक्ति धर्मपालन और स्वार्थत्याग का इन्होंने इस अवसर पर जो अपूर्व उदाहरण दिखलाया, वह आज भी हतभाग्य भारत का सिर ऊँचा करता है और चरित्र-शोधनार्थ हमारे लिये एक परम पूज्य आदर्श स्वरूप प्रस्तुत है। बहुत से अयोध्यावासी लोग राजभक्ति दिखलाते हुए रामचन्द्र के पीछे लगे। उन्होंने सोचा कि बिना राम की अयोध्या नरक से भी निकृष्टतर है और जहाँ राम हैं वहीं शत अयोध्याओं का सुख है। रामचन्द्र के बहुत समझाने पर भी जब वे लोग न लौटे तब उनका दुःख दूर करने के विचार से रात मे छिप कर ये जगल को चले गये। प्रातःकाल राजकुमार को न पाकर ये लोग विवश होकर अयोध्या लौट आये। भगवान् ने पहली रात तमसा नदी के पास निवास करके दूसरी गोमती-तट पर बिताई। आप यथा समय गगातट पर शृगवेरपुर पहुँचे। वहाँ गुहनामक निषाद-पति ने बहुत सेवा की, यहाँ तक कि उसके आचरण से प्रसन्न होकर भगवान् ने उसे मित्र माना। गगापार होकर श्रीरामचन्द्र प्रयाग मे भरद्वाज ऋषि के आश्रम को पधारे। वहाँ भरद्वाज ने भगवान् का अच्छा आतिथ्य किया। अनन्तर दोनो राजकुमार चित्रकूट पहुँचे और वहाँ कई मास विराजमान रहे।

उधर रामचन्द्र की वनयात्रा से महाराजा दशरथ का धैर्य बिलकुल छूट गया और वे बालक की भाँति विलाप करने लगे। महारानी कौशल्या, सुमित्रा तथा सब मन्त्रियो के समझाने पर भी इनको धैर्य न आया। कहते ही है कि बाप सा वत्सल, स्त्री सा सखा और भाई सा सहायक कोई नही। सब लोगो के समझाते हुए भी महाराजा दशरथ को अपने प्रियतम पुत्र के क्लेशों का स्मरण कर कर के मन शान्त करने का कोई उपाय न देख पडा। जब रामचन्द्र के पास से पलट कर राजसचिव सुमन्त ने विनती की कि सब प्रकार से समझाने बुझाने पर भी दोनो राजकुमारो और सीता मे से कोई न लौटा, तब

महाराजा दशरथ की अतिम आशा भी टूट गई। अब राजा का चित्त शोक से ऐसा सतप्त हुआ कि दो ही चार दिनो मे उनका शरीरपात ही हो गया। राजा दशरथ का स्वर्गवास रामचन्द्र के वनगमन के छठवे दिन हुआ। राज-मन्त्रियो ने यह आकस्मिक दुर्घटना देख राजा का शव तेल में डालकर सुरक्षित रक्खा और शीघ्रगामी दूत द्वारा भरत को ननिहाल से बुला भेजा। भरत ने अति शीघ्र अयोध्या आकर सारे समाचार सुने और सब विपत्तियो का मूल कारण अपने ही को समझ कर वे दीन भाव से विलाप करने लगे। सब के समझाने बुझाने और राज-माता कौशल्या की अनुमति पाने पर भी भरत ने १४ वर्ष भी राज्य करना पसन्द न किया और विधिपूर्वक पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करके वे रामचन्द्र को वापस बुलाने के लिये राज-परिवार सहित चित्रकूट को प्रस्थित हुए। संसार मे जब तक सद्गुणो का मान रहेगा तब तक महात्मा भरत के इस भारी स्वार्थ-त्याग के लिये उनका नाम इतिहास के पृष्ठो पर स्वर्णाक्षरो से अकित रहेगा। मार्ग मे निषाद-पति से सेवित होते और प्रयाग मे भरद्वाज ऋषि का आतिथ्य स्वीकार करते हुए राजकुमार भरत यथासमय चित्रकूट मे पहुच कर ज्येष्ठ भ्राता राम की सेवा मे उपस्थित हुए।

पिता का अशुभ समाचार सुनके रामचन्द्र ने बडा शोक मनाया और विधिपूर्वक शुद्ध होकर वे भरत को समझाने लगे। भरत ने राम-चन्द्र को अयोध्या चलने की बहुत प्रकार से विनती की। अन्त मे भगवान् ने आज्ञा दी कि जिस पिता ने पुत्र को त्याग कर सत्य रक्खा और शरीर छोड़ पुत्र-प्रेम का असीम उदाहरण दिखलाया, उस पिता तथा राजा का वचन मेटना सुगम नही है। फिर भी मेरे चित्त मे इन सब बातो से बढ़ कर तुम्हारा सकोच है। अत तुम्ही सब बातो पर विचार करके कहो कि क्या कर्तव्य है? क्या राजाज्ञा की अपेल महिमा का उल्लघन करके किसी सुयशी पुरुष को राज्यसुखार्थ अथवा वन दुःख-विमोचनार्थ विचार तक करना चाहिये और क्या तुम्ही को राजाज्ञा होते हुए राज्यभार से बचने का प्रयत्न करना उचित है? इन बातों को सुन कर महात्मा भरत किंकर्तव्यविमूढ हो गये, किन्तु कर्तव्य का पूरा ध्यान रखते हुए भी राज्य-ग्रहण की ग्लानि ने उन्हे ऐसा घेरा

कि इस बात के लिये वे किसी भाँति प्रस्तुत न हुए। उन्होंने सोचा कि पिता ने मुझे राज्याधिकार अवश्य दिया है किन्तु मैं उसे ग्रहण न करके भी उनकी आज्ञा भंग करने का दोषी नहीं हो सकता, क्योंकि अपना भी राज्य उचित उत्तराधिकारी को सौंप देने का मुझे सदा अधिकार है। उनका ऐसा विचार समझ और उन्हें किसी प्रकार राज्य ग्रहण न करते देख कर रामचन्द्र ने उनकी इच्छानुसार सिंहासनासीन करने के लिए अपनी पादुकायें उन्हें दी। उन पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर भरत ने प्रतिनिधि के समान अयोध्या से दो मील नन्दिग्राम में रह कर १४ वर्ष राज्य चलाने का संकल्प किया और अपना व्रत निभा दिया।

इधर भगवान रामचन्द्र का असली हाल समझ कर हजारों मनुष्य चित्रकूट में इनके दर्शनार्थ आने लगे। इस कलकान से बचने के लिये रामचन्द्र ने दूर देश का प्रस्थान किया। अब ये तीनों दण्डकारण्य में फिरते हुए पञ्चवटी के निकट पहुँचे। वहां इन्होंने जनस्थान में अगस्त्य ऋषि के दर्शन किये और उनकी सम्मति के अनुसार पंचवटी में गोदावरी के एक रम्य तट पर पर्णकुटी बनाकर ये निवास करने लगे। कहते हैं कि उस स्थान पर गोदावरी नदी धनुषाकार बहती थी। अगस्त्य ने सब से प्रथम विन्ध्य और महाकान्तार वन को पार करके दक्षिण में जन स्थान पर पहला आर्य उपनिवेष बसाया था। वैदर्भी लोपामुद्रा से आपका विवाह हुआ था। दोनों वेदर्षि थे। अगस्त्य ने इल्वल राक्षस को हराकर उपनिवेश बसाया था। वेद में आप वीर कहे गये हैं। अरब समुद्र के लुटेरों को जलयुद्ध में हराकर आपने व्यापार अकंटक किया था। लोपामुद्रा द्वारा राम के मित्र काशी नरेश अलर्क को आशीर्वाद दिया जाना लिखा है। भगवान् रामचन्द्र ने चित्रकूट में लगभग दस मास और पञ्चवटी में प्राय. १२ वर्ष निवास किया। इसी निवास स्थान के निकट आपने एक बार हड्डियों का ढेर देख उसे टीला समझ कर पूछा कि यह क्या है ? इस पर ऋषियों ने उत्तर दिया कि ये राक्षसों द्वारा खाये हुये ब्राह्मणों की हड्डियां हैं। १२ वर्ष तक ऋषियों के साथ ज्ञान-वैराग्य की वार्त्ता करते हुए भी भगवान् को यह भारी उपद्रव देख इतना क्रोध आया कि आपने उसी स्थान पर दक्षिण

बाहु उठाकर प्रण किया कि यदि मैं सच्चा क्षत्रिय हूँ तो पृथ्वी को निशिचर-हीन करूँगा। इतिहासज्ञों से छिपा नहीं है कि राम ने यथा समय यह प्रण सच्चा कर दिखाया। इसी स्थान पर निवास करते हुए ऋषियों के सुसंग से रामचन्द्र में वह भारी दृढ़ता एवं चरित्र विशुद्धता आ गई थी कि सब राजाओं में इन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम की उपाधि मिली। हमारे सभी राजाओं में आदर्श-आर्य भगवान रामचन्द्र ही थे।

पञ्चवटी में रहते हुए इन्हें एक बार सम्राट् रावण की बहिन शूर्पणखा ने देखा और चाञ्चल्यवश वह इन पर तत्काल मोहित हो गई। उसने कई प्रकार से समझा बुझा कर इन्हें अपने साथ विवाह करने पर राजी करना चाहा। इन्होंने उसका प्रस्ताव दृढ़तापूर्वक अस्वीकृत किया, किन्तु उसने इनका पीछा न छोड़ा और सब प्रकार से इन्हें दुःख दिया। उसका ऐसा असह्य चाञ्चल्य देखकर इन्होंने उसे रूपगर्विता समझ कर लक्ष्मण को इशारा किया और उन्होंने तत्काल नाक-कान काट कर उसे पूर्णतया विरूपा कर दिया। इनका यह एक ऐसा कर्म है जिसका किसी प्रकार से समर्थन नहीं हो सकता और जो इनके आदर्श हिन्दू होने के भी प्रतिकूल है।

शूर्पणखा ने अपनी यह दुर्दशा देख रो-रो कर अपने भाई खर को सारा वृत्तान्त सुनाया। वह अपने नाना के भाई माल्यवान की अध्यक्षता में इस ओर रावण का अन्तपाल था। रावण का वंश कथन नवे अध्याय के २१ वें नोट में है। खर ने दूषण और त्रिशिरा एवं कुछ चुने हुए योद्धाओं के साथ भगवान् पर आक्रमण किया। रामचन्द्र ने धनुषबाण उठा कर सहज ही में इन शत्रुओं का शमन किया। चुने हुए योद्धाओं के साथ अपने नेता खर का विनाश देख कर राक्षस लोग हाय-हाय करते हुए दण्डकारण्य से भी भागे। रामचन्द्र ने इस प्रकार सुगमतापूर्वक राक्षसों के दोनों भारतीय उपनिवेश ध्वस्त कर दिये। अब शूर्पणखा रोती हुई रावण के पास पहुँची। उसकी यह दशा देख रावण ने किसी दुश्चरित्र की आशंका करके मंत्रियों को हटा एकान्त में बहिन से जंगल का वृत्तान्त पूछा। इसने अपनी बुराइयों को दबाकर इतना ही कहा कि राम ने मुझे

आपकी बहिन समझ कर निशिचर कुल के अपमानार्थ मेरी यह दशा की। इसी के साथ रावण का लालच बढ़ाने के विचार से उसने सीता के रूप की भी बड़ी प्रशंसा की। रावण ने इस दुर्घटना को समझ कर तथा राम के साहस का ध्यान करके निशिचर कुल के भविष्य पर विचार किया, किन्तु उसे यह निश्चय न हुआ कि राम का पराक्रम कैसा प्रचण्ड है। इसलिये अपमान का बदला अपमान ही द्वारा चुकाने के विचार से वह रथ पर चढ़कर अकेला दण्डकारण्य में मारीच के आश्रम पर पहुँचा। मारीच राम से पहले ही बहुत भयभीत था, इसलिए उसने रावण को राम से विरोध न बढ़ाने का कई प्रकार से उपदेश दिया, किन्तु इसने एक न मानी। तब विवश होकर मारीच इसकी सहायतार्थ चला। मारीच ने रामाश्रम के समीप जङ्गल में ऐसी माया की कि इन्हें मृग का भ्रम हो गया। वह युक्तिपूर्वक दोनों राजकुमारों को आश्रम से दूर निकाल ले गया। बहुत दूर निकल जाने पर रामचन्द्र ने निशिचर का छल जाना और एक ही बाण से उसका वध कर डाला। लक्ष्मण को भी अपने पीछे देख कर रामचन्द्र ने उनका बहुत भर्त्सन किया और कहा कि तुमने सीता को अकेली छोड़ देने से भारी भूल की। लक्ष्मण को स्वयं सीताजी ने राम के पीछे जाने की आज्ञा दी थी और उन्हें आनाकानी करते देख मर्मभेदी कई अनुचित वचन कहे थे जिनके कारण विवश होकर ही वे रामचन्द्र के पीछे गये थे। फिर भी भूल थी ही, क्योंकि सीता के क्रोधपर भी वे इनकी रक्षा के लिये छिप कर वहीं रह सकते थे।

इधर सूने में आश्रम जाकर रावण ने यति के रूप में सीता का बलपूर्वक हरण किया तथा रथ पर बिठाकर उनको लिये हुए वह लङ्का को चला। मार्ग में जटायु नामक एक भद्र पुरुष ने स्त्री की यह दशा देख उसके उद्धारार्थ रावण को ललकारा, किन्तु राक्षसराज ने उसको मृतप्राय कर डाला। आगे चलने पर पाँचों मन्त्रियों समेत सुग्रीव को बैठा देख सीता ने नूपुर समेत अपना एक वस्त्र वहीं डाल दिया। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी रामचन्द्र के जानने को अपनी वस्तुयें डालती हुई विलपती सीता रावण के साथ लङ्का पहुँची। रावण ने सीता के आचरण से मार्ग ही में समझ लिया था कि किसी प्रकार के बल-

प्रयोग से यह वश में नहीं आवेगी और तुरन्त अपना प्राण खो देगी। रावण सीता को राम के अपमानार्थ ही लाया था, किन्तु इनके रूप-लावण्य से वह मोहित भी हो गया था। फिर भी किसी प्रकार इच्छा पूर्ण होते न देखकर उसने सीता को अशोकवाटिका में स्थान दिया। उनकी रक्षा के लिये त्रिजटा के आधिपत्य में कई राक्षसियां और कड़े पहरे को कई राक्षस नियत हुए।

इधर भगवान रामचन्द्र ने मारीच को मारकर वापस आने पर सूने आश्रम को भ्रष्ट और कमण्डलु को टूटा पाया, तथा सीता को भी वहां न देखा। इन बातों से इन्हें किसी के द्वारा सीताहरण का निश्चय हो गया। सूने आश्रम के इधर-उधर इन्होंने इसका बहुत पता लगाया, किन्तु कोई खोज न चली। अन्त को विवश होकर ये अपनी प्रिय पत्नी की खोज में निकले। थोड़ी दूर चलकर आपने वृद्ध जटायु को क्षत-विक्षत-पूर्ण मरणप्राय दशा में पाया। उससे वार्तालाप करने पर इन्हें इतना ही ज्ञात हो सका कि विलाप करती हुई प्रियतमा सीता को लेकर कोई दक्षिण को गया है और उसी से युद्ध करने में जटायु की यह दशा हुई है। वह कौन था, इसका पता जटायु स्वशरीर-शैथिल्य अथवा अज्ञान के कारण रामचन्द्र को न दे सका। इसी अवसर पर उसने अपना देह छोड़ दिया। उसकी इस उदारता पर मुग्ध होकर भगवान् ने अपने हाथ से उसके शव का दाह-संस्कार किया।

इसके पीछे सीता को खोजते तथा विविध प्रकार से विलाप करते हुए रामचन्द्र लक्ष्मण सहित दक्षिण की ओर बढ़े। यथासमय ऋष्य-मूक पर्वत के समीप पम्पासरोवर पर दोनों पहुँचे। जनस्थान और किष्किन्धा उस काल दक्षिण के सर्वोत्कृष्ट स्थान थे। ऋष्यमूक पर सुग्रीव बानर रहता था। यह किष्किन्धा के राजा वालि का भाई था किन्तु कई कारणों से इन दोनों में बिगाड़ था। वालि ने सुग्रीव को निकाल दिया था और उसकी स्त्री भी छीन ली थी। वालि को मृत समझकर एक बार सुग्रीव राजा तथा उसकी स्त्री तारा का पति बन बैठा था। इसी लिये बालि ने उसकी भी स्त्री छीनी थी। रामचन्द्र को देखकर सुग्रीव को भय हुआ कि वालि ने मेरे निग्रहार्थ तो इन्हें नियोजित नहीं किया है। इसलिये उसने अपने मन्त्री हनुमान् को

राम के पास भेजा और वे वार्तालाप करके इन्हें सुग्रीव के निकट ले गये। वहाँ हनुमान ने सुग्रीव से इनका परिचय कराया और दोनों ने एक दूसरे का हाल जान समझ कर सहायतार्थ आपस में प्रगाढ़ मैत्री की और अग्नि को साक्षी देकर उसे दृढ़ किया। सुग्रीव ने सीता जी के नूपुर और पट भगवान को दिये जिन्हें पहचान कर आपने बड़ा शोक किया।

अब वालि-निग्रहार्थ निश्चय करके रामचन्द्र ने सुग्रीव को उसके साथ युद्धार्थ भेजा और आप एक ताल वृक्ष की आट से युद्ध देखते रहे। सुग्रीव बहुत छल बल करके भी वालि का बल न रोक सका और उसके एक ही मुष्टिप्रहार से भग्नोत्साह होकर भागा। जब सुग्रीव राम के पास पहुँचा तब इन्होंने कहा कि तुम अपने भ्राता के ऐसे समरूप हो कि मैं युद्ध के समय तुम दोनों को पृथक् न कर सका। अब रामचन्द्र ने सुग्रीव को चिह्न-स्वरूप एक माला पहिनाकर युद्धार्थ वालि के पास फिर भेजा। दोनों में फिर युद्ध होने लगा और वालि को प्रबल पड़ते देख रामचन्द्र ने ओट से ही उस पर तीव्र शर का प्रहार किया, जिससे मृतप्राय होकर वह धरणी पर गिर पड़ा। रामचन्द्र के चरित्र-समालोचकों ने इनकी इस करनी पर कुछ सन्देह प्रकट किया है, किन्तु युद्ध में ऐसी नीतियाँ प्रायः करनी पड़ती हैं। शायद राम के सामने जाने में उसके भाग जाने और झगड़ा बढ़ने का भय हो। उसके मरने पर रामचन्द्र ने सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया, किन्तु वालि के ही पुत्र अङ्गद को युवराज किया। इस प्रकार उसके पक्ष पर भी दया करके भगवान् ने अपनी न्यायप्रियता का उदाहरण दिखाया है। उसके मरणान्तर उसकी रानी तारा के साथ सुग्रीव ने फिर विवाह कर लिया। अब वर्षाकाल आ गया था, इसलिये सीता की खोज नहीं की जा सकती थी। रामचन्द्र पिता की आज्ञा से किसी ग्राम में नहीं रह सकते थे, अतः सुग्रीव के अनुचरों ने इनके लिये प्रवर्षण गिरि पर कुटी बना दी, जहाँ आपने वर्षा काटी।

वर्षा ऋतु में ही हनुमान् की सम्मति से सुग्रीव ने कुछ वानर सीता को खोजने भेजे थे, किन्तु इस प्रयत्न का कोई फल न हुआ था।

इधर का कोई समाचार न पाकर रामचन्द्र को समझ पड़ा कि सुग्रीव ने हमारा काम भुला दिया है, इसलिये वानरश को डराकर बुला लाने के लिये इन्होंने लक्ष्मण को किष्किन्धा भेजा। लक्ष्मण ने जाकर क्रोध करते हुये कहा कि सारा पुर जला कर भस्म कर देंगे। इन्हें क्रुद्ध समझ कर सुग्रीव ने समझाने के लिये हनुमान के साथ महारानी तारा को भेजा। इन लोगों ने कुमार का सब हाल बतला और बहुत प्रकार से नम्रता दिखलाकर प्रसन्न किया। अब सुग्रीव ने भी आ सुमित्रानन्दन का अभिवादन किया और सब लोग मिल कर रामचन्द्र के पास पहुँचे। वहाँ सब प्रकार से सलाह होकर वृद्ध मन्त्री जाम्बवान ऋक्ष की अधीनता में चुने-चुने सरदार सीता की खोज निकालने के लिये भेजे गये। इनमें युवराज अंगद और हनुमान भी थे। खोजते-खोजते ये लोग ठेठ दक्षिण में समुद्र के किनारे पहुँचे और वहाँ जटायु के भाई वृद्ध सम्पाति से इन्हें लंका में सीता का होना विदित हुआ। अब यह प्रश्न उठा कि इतना बड़ा समुद्र तैर कर लंका कौन पहुँच सकता है। सभों ने अपने अपने सामर्थ्य का कथन किया किन्तु स्वयं अङ्गद तक को जाकर लौट आने की हिम्मत न पड़ी। तब जाम्बवान की सम्मति से महावीर हनुमान् इस कार्य पर नियुक्त हुए और इन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। सीता के लिये चिह्न स्वरूप रामचन्द्र ने इन्हें एक अँगूठी दी थी। अब उसी को लेकर हनुमान अपने जीवन के सर्वोत्कृष्ठ कार्य साधन में प्रवृत्त हुए।

अनन्तर एक ऊँचे टीले पर चढ़कर साहस के सहारे श्री हनुमान्‌जी समुद्र में कूद पड़े और ४० मील तैर कर दूसरी ओर जाने के प्रयत्न में लगे। बीच के टापुओं पर दम लेते और जान पर खेलते हुए साहसमूर्ति महावीर तैरते ही चले गये। मार्ग में सुरसा नाम्नी नागमाता ने इनके बल और बुद्धि की परीक्षा ली किन्तु प्रसन्न हो एवं आशीर्वाद देकर वह चली गई। आगे चलकर एक टापू पर सिंहिका नाम्नी राक्षसी ने इन्हें पकड़ कर खा जाना चाहा। और प्रकार प्राण बचता न देख विवश होकर हनुमान् को उस स्त्री तक से युद्ध करना पड़ा। उसे क्षण भर में मारकर ये आगे बढ़े और तैरते हुए लंका के टापू पर पहुँच ही गये।

अब साधारण पथिक बनकर इन्होंने लङ्कापुरी में प्रवेश किया। पुरी की रम्यता देखकर इनका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। हनुमान् महावीर होने के अतिरिक्त छद्मवेष धारण में भी बड़े पटु थे। इन्होंने किसी उचित छद्मरूप में सारा शहर घूमते हुए रावण का महल भी देख लिया और वहाँ सीता को न पाकर इन्हें भारी सन्ताप हुआ। इधर-उधर घूमते हुए इन्हें रावण के अनुज विभीषण मिले। उनको रावण-कृत सीताहरण का कर्म बहुत ही निन्द्य प्रतीत हुआ था। इसलिये हनुमान् का हाल जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई और उन्होंने इन्हें सीता जी से मिलने की सारी युक्ति बता दी। अब ये सीता के निवासस्थल अशोक-वाटिका में पहुँचे और वहाँ अपनी स्वामिनी को घोर विरह-वेदना से खिन्न पाकर इन्हें हर्ष और शोक साथ ही साथ हुए, हर्ष उनके मिलने और सतीत्व पर और शोक दुःखों पर। महावीर ने देखा कि राक्षसियाँ सीता को घेरे हुए हैं और उन्हें रावण का प्रणय स्वीकार करने के लिये भाँति भाँति के दुःख देती हैं। उन लोगों की बातों से इन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि रावण अपने प्रयोजन के साधनार्थ सीताजी को कई बार भाँत-भाँति से समझा बुझा चुका है और नम्रता एवं क्रोध प्रकाश के कई छलबल कर चुका है किन्तु इन्होंने उसके प्रणय का पूर्ण निरादर करते हुए उसकी सदैव उपेक्षा की है और यही कहा है कि जब तू अपने को लोकपालों से बढ़कर समझता और पुलस्त्य ऋषि के कुल का भी अहङ्कार करता है, तब इन महत्त्वों के विवर्धनार्थ धर्मपालन में भी क्यों नहीं प्रवृत्त होता ?

अब रात्रि बहुत जा चुकी थी, इसलिये राक्षसियाँ अपने-अपने घर चली गईं तथा उनके त्रास से छूटने पर अकेली रहने के कारण सीता की विरह वेदना और भी बढ़ी। इसी अवसर को उचित काल समझ कपिवर ने रामचन्द्र की दी हुई अँगूठी देकर सीताजी से परिचय किया और पत्नी-हरण के पीछे रामचन्द्र ने जो-जो कार्य किये थे उन सब का भी संक्षेप में विवरण कह सुनाया। सीताजी ने उस घड़ी को धन्य माना और प्रेमाश्रु से अँगूठी को भिगो दिया। इसके पीछे इनकी आज्ञा लेकर महावीर ने अशोक वाटिका को उजाड़ना आरम्भ किया। इन्होंने मालियों की उपेक्षा करके मधुर फल खाये, शाखायें तोड़ डालीं

और मना करनेवालो पर प्रहार किया । यह दशा देख मालियो ने बहुत से युद्धकर्त्ताओं को बुलाकर इन्हे पकडना चाहा किन्तु इन्होने उन सब का भी विमर्दन किया । अब रावण के पास समाचार गये और उसने अपने पुत्र अक्षयकुमार को इन्हे परास्त करने के लिये कुछ योद्धाओ के साथ भेजा किन्तु मरुतनन्दन ने उनका भी मानमर्दित किया और अक्षयकुमार को मार ही डाला । यह समाचार सुनकर रावण बडा दुःखित हुआ । अब उसने अपने मुख्य पुत्र युवराज मेघनाद को आज्ञा दी कि वानर मारा न जाय वरन पकड कर सामने लाया जाय । मेघनाद ने आकर हनुमान से द्वन्द्व युद्ध किया और दिव्यास्त्रो के द्वारा इन्हे मूछित कर दिया । अब उसके अनुयायियो ने इन्हे बाँध लिया और यथाकाल ये राजसभा मे उपस्थित किये गये ।

इन्होने रावण से सीताजी के छोडने की सम्मति पर वार्तालाप किया और अपने को रामचन्द्र का दूत कहकर इसी विषय मे उनका भी सन्देश कह सुनाया । रावण ने सीता को वापस करना पसन्द न करके पुत्रवध के कारण हनुमान् के लिये प्राण-दण्ड की आज्ञा दी । इस पर विभीषण ने निवेदन किया कि दूत का मारना राज-धर्म के प्रतिकूल है सो इसे कोई और दड दिया जाय । यह विचार राजा ने भी पसन्द किया और आज्ञा दी कि जिन हाथो से इसने राजपुत्र का वध किया है वह जला दिये जायँ । प्राचीन ग्रथो मे पूँछ के जलाने की आज्ञा लिखी है किन्तु उसका प्रयोजन हाथो से मालूम पडता है । राक्षसो ने तेल और लाख से भिगोये हुये वस्त्र बाहुदहन के लिये एकत्रित किये, किन्तु उनका अभीष्ट सिद्ध न हुआ और महावीर ने झट बन्धन तोड जलते हुए वस्त्रो से लका के कई प्रासादो मे आग लगा दी । यह आग एक से दूसरे मकान तक फैलती हुई बहुत दूर तक व्याप्त हो गई और हजारो महल जलकर राख हो गये । इस अग्नि से लका के प्रासादो को भारी हानि पहुँची । अब लका मे कोई कार्य शेष न देख कर साक्षी के लिये सीताजी से चूडामणि प्राप्त करके हनुमानजी समुद्र मे कूद पडे और तैरते हुए इस ओर अपने साथियो से आ मिले । उन सब ने इनके आने से भारी प्रसन्नता मनाई और सारा हाल सुन कर परम प्रसन्न

हो इनके वाहनों का पूजन किया।

अब ये सब लोग सुग्रीव के पास पहुँचे और उनके साथ सभो ने रामचन्द्र का दर्शन किया। रामचन्द्र ने सीता की सुध पाकर बड़ा हर्ष मनाया और महावीर-चरित्र सुनकर उनकी भारी प्रशंसा की। अनन्तर सैन्य सजाकर सुग्रीव ने लंका पर आक्रमण करने की तैयारी की। भगवान रामचन्द्र ने भारत से लंका तक सेतु बाँध कर अपनी सेना उस पार पहुँचाने का मनसूबा बाँधा। जिस काल सेतुबन्धन का कार्य हो रहा था तब रावण ने अपने मंत्रियों से इस विषय में सलाह की तो विभीषण ने बड़े तीक्ष्ण शब्दों में राम का प्रताप एवं राक्षसों के असामर्थ्य का कथन किया। इस पर क्रुद्ध हो रावण ने उसकी कुछ निन्दा की। इस अपमान से रुष्ट होकर विभीषण ने लंका से भाग कर राम की शरण ली और भगवान् ने दया एवं कार्यसाधन के विचार से उसे लंकेश बनाने का वचन दिया, तथा समुद्र का जल मँगा कर उसी स्थान पर राज्याभिषिक्त कर दिया। जान पड़ता है कि जो टीलों का समूह भारत से लंका पर्यन्त है, उन्हीं के बीच का उथला पानी पाषाणों आदि से भरकर भगवान् ने सेतु बँधवाया होगा। रावण ने बल के मद में उन्मत्त होकर समुद्र पार करते समय सेना की गति का निरोध नहीं किया। चार दिनों में राम का दल सेतु द्वारा समुद्र पार हो गया। अंगद सेनापति नियत हुए। राम दल के उस पार पहुँचने पर रावण ने शुक-सारण को दूत बनाकर सेना का हाल जानने के लिये भेजा, किन्तु वानर लोगों ने उन्हें पकड़ लिया और बड़ी कठिनाई से छोड़ा। भगवान् ने अब अंगद को दूत बनाकर लंका पुरी भेजा, किन्तु रावण ने अधीनता स्वीकार करने तथा सीता को लौटाने की सम्मति न मानी।

शान्ति होते न देख कर भगवान ने लंका पुरी का दुर्ग सब ओर से घेर लिया। चारों फाटकों पर चुने चुने योद्धा आक्रमणार्थ रक्खे गये। रावण ने भी चारों फाटकों की रक्षा के निमित्त भारी योद्धा नियुक्त किये। अब विकराल युद्ध का आरंभ हुआ और थोड़े ही दिनों में रामचन्द्र की सेना ने अपना प्राबल्य दिखला दिया। अपने दल की भारी हानि देख और प्रहस्त तथा धूम्राक्ष का निधन सुन राक्षसेश्वर

रावण के चित्त मे कुछ उद्वेग आया। अब उसने नाना के भाई माल्यवान्, महोदर, स्वपुत्र मेघनाद तथा अन्य प्रधान-प्रधान सरदारो को बुलाकर मन्त्रणा की। महोदर तथा माल्यवान ने शान्ति की सलाह दी, किन्तु रावण और मेघनाद को सम्राट् पद का दर्प छोड कर अधीनता स्वीकार करना मरण से भी निकृष्टतर समझ पडा। मेघनाद ने रावण को साहस प्रदान करके राक्षसो का बल सुनाया और अपना प्रसिद्ध पुरुषार्थ दिखलाने के विषय मे भी नम्रत पूर्वक विनती की। दूसरे दिन उसने महान शौर्य दिखलाकर स्वय रामचन्द्र को नागपाश से बद्ध कर दिया, किन्तु अन्य लोगो ने प्रयत्न करके अपने स्वामी को बन्धन मुक्त किया। नागपाश व्यर्थ देख कर रावण ने युद्धार्थ अपने भ्राता कुम्भकर्ण को भेजा, किन्तु परम शौर्य दिखलाकर वह रामचन्द्र के हाथ से मारा गया। इसके पीछे प्रचण्ड युद्ध करके मेघनाद भी लक्ष्मण के हाथ से मरा।

यह बुरा दिन देखकर साम्राज्ञी मन्दोदरी ने रावण को सीता लौटा देने के विषय मे बहुत कुछ समझाया, किन्तु उसने उत्तर दिया कि तुम सीता को दो या न दो, मै कुम्भकर्ण और मेघनाद के बिना शरीर धारण नही कर सकता। इस पर मकराक्ष ने विनती की "हे सम्राट्! जब तक तेरा सेवक मैं जीवित हूँ, तब तक लका मे दीन वचन मुख से कौन निकाल सकता है? अनन्तर रावण की आज्ञा ले पराक्रमी वीर खरात्मज मकराक्ष विभीषण के पुत्र तरणीसेन को साथ लेकर युद्धक्षेत्र में कूद पडा। इन दोनो ने निशिचर कुल रक्षार्थ प्रचण्ड सग्राम किया, किन्तु रामचन्द्र की असह्य शक्ति के सामने कोई युक्ति काम न आई। मकराक्ष लक्ष्मण के हाथ से मारा गया और तरणीसेन को स्वय रामचन्द्र ने मारा। अपने पुत्र-विनाश के पीछे विभीषण ने विलाप करते हुए भगवान् से उसका असली हाल बताया। यह सुन रामचन्द्र को बडा क्लेश हुआ। युद्ध फिर भी चलता रहा और महोदरादि रावण के मन्त्री और सरदार एक एक करके धराशायी हुए। सबसे पीछे स्वय रावण ने कई दिन तक प्रचण्ड युद्ध करके और रामचन्द्र के भारी-भारी योद्धाओ को पराजित करके अन्त मे स्वय भगवान् के हाथ से वीरगति प्राप्त की।

सीताधर्पणाभाव में लंका की बढ़ी हुई सभ्यता भली भाँति प्रदर्शित होती है। रामचन्द्र लंका-विजयार्थ विजयादशमी के दिन चले थे। लंका का युद्ध ८४ दिन होकर चैत्र मास में रावण वध के साथ समाप्त हुआ। रावण के पीछे रामचन्द्र ने विभीषण को लंका देकर सीता को फिर प्राप्त किया। लोगों के संदेह मिटाने को प्रियतमा की पावक-परीक्षा करके रामचन्द्र ने उनका ग्रहण किया। पावक-परीक्षा के विषय में आज कल संदेह उपस्थित किया जा सकता था, किन्तु इन्हीं दिनों बनारस आदि कई स्थानों पर लोगों ने दहकते हुए कोयलों से भरे हुए कुण्डों पर साधारण लोगों को चलाकर सिद्ध कर दिया है कि किसी न किसी भाँति अग्नि की दाहिका-शक्ति का दमन किया जा सकता है। इस बात से अग्निशुद्धि का महात्म्य अवश्य कम हो जाता है।

कुल मिलाकर जानकी जी लंका में दस मास रहीं। ऊपर कहा जा चुका है कि रावण के पास कुबेर वाला आकाशगामी पुष्पक विमान था। अब वह रामचन्द्र को प्राप्त हुआ और उसी पर चढ़कर पत्नी और भ्राता समेत आप मुख्य-मुख्य सरदारों को भी साथ लेकर अयोध्या रवाना हुए, क्योंकि १४ वर्ष का समय भी अब समाप्त होने ही को था। मार्ग में भरद्वाज के दर्शन करते और निषाद-पति गुह से मिलते हुए चौदहवाँ वर्ष समाप्त होते ही १५ वे वर्ष के ठीक पहले दिन रामचन्द्र ने नन्दिग्राम में प्रिय भाई भरत को दर्शन दिये। वहीं पर चारों भाइयों ने जटाओं को त्याग कर गाजे बाजे के साथ उचित समय पर अयोध्या में प्रवेश किया। रामचन्द्र के प्रवेशोत्सव में अयोध्या नई दुलहिन की भाँति सजाई गई। अब उचित समय पर राम का अभिषेक हुआ और ये सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

राम-राज्य में प्रजा खूब सुख के साथ रही। उसको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता था और जितने कष्टों का राज्य निवारण कर सकता था वह मानों प्रजा के लिये बने ही न थे। भारत में सर्वोत्तम राज्य को अब तक रामराज्य कह कर उसकी महत्ता सूचित करते हैं। हिन्दू शास्त्रानुसार प्रजा के चारों वर्णों को जिस-जिस धर्म पर चलाना चाहिये, उसी पर रामचन्द्र ने उनको चलाया। आदर्श आर्य होने से

आपने एक बार हिन्दू सिद्धान्तो के दोष मे पड़कर तपस्या करने वाले शूद्र मुनि शम्बूक का केवल तपस्या करने के कारण अपने हाथ से वध कर डाला। शम्बूक वध की कथा प्रक्षिप्त है। यह रामायण के प्राचीन भाग मे नही है।

वन से लौटने पर थोडे ही दिनो मे महारानी सीता ने गर्भ धारण किया। राम के सभी आचरणो को पूज्य दृष्टि से देखते हुए भी उनकी प्रजा ने क्षुद्रता दिखलाते हुए सीताजी के लङ्कानिवास के विषय मे उनके आचरण पर सदेह किया और आदर्श राजा होने तथा प्रजा को उच्च उदाहरण दिखलाने के विचार से रामचन्द्र ने अपनी प्राणोपमा सीता के प्रति "अत्यन्त कठोरता" दिखलाकर उनके सगर्भा होने पर भी लक्ष्मण द्वारा उन्हे महर्षि वाल्मीकि वाले आश्रम के निकट जङ्गल मे छुडवा दिया। यह देखकर महर्षि ने उनकी रक्षा की। वहाँ सीताजी के कुश और लव नामक दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए और उसी आश्रम मे उनका पालन हुआ। रामचन्द्र ऐसे लोकप्रिय हो गये थे कि उनके जीवन-काल मे ही महर्षि वाल्मीकि ने तत्कालिक भाषा मे एक रामायण काव्य बनाया था, जो उन्होने रामात्मजो को कण्ठस्थ करा दिया। महर्षि ने बालको को क्षत्रियोचित शस्त्र-विद्या की भी योग्य शिक्षा दी। थोडे दिनो मे महाराजा रामचन्द्र ने नैमिषारण्य नामक पवित्र स्थान मे जाकर अश्वमेध आरम्भ किया। नैमिषारण्य वर्तमान सीतापुर से सोलह मील की दूरी पर एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। इस अवसर पर महर्षि वाल्मीकि ने कुश और लव द्वारा नैमिष में रामायण का गान कराया। इस गान को स्वय रामचन्द्र ने भी सुना और इसी सम्बन्ध मे बातचीत चलने पर गाने वालो का अपने से सम्बन्ध जाना। अब सर्वसम्मति से ये पुत्र प्रसन्नता के साथ ग्रहण किये गये, किन्तु सीताजी एक बार की छोडी हुई अयोध्या मे फिर से जाना पसन्द न करके पृथ्वी मे प्रवेश कर गईं। इस प्रकार इनका पवित्र जीवन समाप्त हुआ।

जिस दिन सीताजी के राजकुमार उत्पन्न हुए थे उसी दिन शत्रुघ्न लवणासुर से युद्ध करने के लिये जाते हुए मार्ग मे महर्षि वाल्मीकि के आश्रम पर ठहरे थे। इस युद्ध का कारण यह था कि

मथुरा का शासक लवणासुर प्रजा को बहुत कष्ट देने लगा था। सम्भवत. यादव नरेश भीम सात्वत की ओर से वह मथुरा के प्रबन्ध पर नियुक्त होगा। उसके नरभक्षक आदि होने के कथन अत्युक्ति पूर्ण समझ पड़ते हैं। मथुरा प्रान्त के निवासी ब्राह्मणों ने राम का यश सुन अयोध्या आकर आर्यों की कष्ट-कथा कह सुनाई थी। रामचन्द्र से ऐसा कष्ट कभी नहीं देखा जाता था, इसलिये इन्होंने अपने भ्राता शत्रुघ्न को लवण के मारने और मथुरा का राज्य चलाने के लिये भेजा था। वाल्मीकि-आश्रम से आगे बढ़ कर शत्रुघ्न ने मधुपुरी पहुँच लवण को ललकारा और युद्ध में उसका निधन किया था। रामचन्द्र ने चलते समय अयोध्या ही में शत्रुघ्न का माथुर-राज्याभिषेक कर दिया था। इसलिये लवणासुर के मरने पर माथुर प्रान्त की प्रजा ने हर्षपूर्वक इन्हें अपना राजा माना और ये वहीं राज्य करने लगे थे। समझ पड़ता है कि इस काल यादव नरेश भीम कहीं दक्षिण की ओर हट गये होंगे। अश्वमेध के समय नैमिष पहुँचकर शत्रुघ्न ने अश्वरक्षा का काम लेकर उसी के साथ भारत-भ्रमण करके राजाओं को पराजित किया था। शत्रुघ्न ने मथुरा का राज्य १२ वर्ष चलाया।

इस प्रकार महाराजा रामचन्द्र का सम्राट् पद पूर्णरूपेण स्थापित हुआ। आपने प्रजा के संदेह करने पर सीता जी को छोड़ तो दिया था, किन्तु अपने चित्त में उनके चरित्र को दूषित कभी नहीं माना। इसलिये इन्होंने अपना दूसरा विवाह नहीं किया और यज्ञ के समय स्त्री के स्थान पर सीता की सुवर्णमयी मूर्ति प्रतिष्ठित करके यज्ञ का काम पूरा किया। यज्ञान्त में अपने दोनों पुत्र कुश और लव को पाकर रामचन्द्र भ्राताओं समेत बड़े प्रसन्न हुए। इनके भ्राताओं के भी दो दो पुत्र हुए थे अर्थात् सुबाहु और शत्रुघाती शत्रुघ्न के, तक्ष और पुष्कर भरत के तथा अंगद और चन्द्रसेन लक्ष्मण के। इसी समय केकय देश में गन्धर्वों ने भरत के मामा आनव युधाजित् को मार कर उस देश में अपना राज्य स्थापित किया। यह देख रामचन्द्र ने अपने भ्राता भरत की अधीनता में एक सेना भेजी जिसने जाकर पुष्कर नरेश गन्धर्वों को पराजित किया तथा केकय देश पर भी राज्य

जमाया। तक्ष को तक्षशिला मिली और पुष्कर को पुष्करावती (वायु ८८, विष्णु IV ४, ४७; पद्म V ३५-२३-४, VI २७१, १०, अग्नि ११, ७८, रघुवंश XV ८८-९)। इस प्रकार यह राज्य भी सूर्यवंशियों के अधिकार में आ गया। समय पर अन्य कई राज्य भी रामचन्द्र ने प्राप्त किये। अब आपने पुत्रों और भतीजों को सब प्रकार से समर्थ समझ कर जीते हुए और पैतृक राज्य उन्हीं में विभाजित कर दिये। ज्येष्ठ पुत्र कुश को (पद्म VI २७१-५४-५५) अयोध्या का युवराज बना कर कुशस्थली पर कुशावती में भी राज्य चलाने की आज्ञा दी। यह विन्ध्याचल के दक्षिण है। कालिदास के अनुसार कुश ने समय पर प्रजा की प्रार्थना से अयोध्या फिर से राजधानी बनाई। लव को शरावती उपनाम उत्तर कोशल का राज्य मिला, जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। कहते हैं कि लवकोट उपनाम लाहौर नगर लव का ही बसाया हुआ है। श्रावस्ती जिला गोंडा व बहराइच में है। तक्षशिला को अब शाहधेरी कहते हैं, जो अटक तथा रावलपिण्डी के बीच में कालका सराय से एक मील की दूरी पर स्थित है। लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रसेन (या चन्द्र केतु) या चन्द्रचक्र को कारापथ के अन्तर्गत अंगद नगर तथा चन्द्रावती (मल्लदेश) के राज्य दिये गये। (वायु ८८, १८७, ८, ब्रह्माण्ड III ६३, १८८-९, विष्णु IV ४, ४७, रघुवंश XV ९०, पद्म V ३५, २४, VI २७१—११—२, ये स्थान हिमाचल के निकट थे।) सुबाहु को मथुरा तथा शत्रुघाती को विदिशा (वर्तमान भेलसा) मिले। इस प्रकार रामचन्द्र ने अपने तथा भाइयों के आठों पुत्रों को प्रसन्न करके सभी को राजा बना दिया। भगवान् ने शत्रुघ्न, सुग्रीव और विभीषण को मिलाकर केवल अपने बाहुबल से ग्यारह राजाओं का अभिषेक किया। अंग, बंग, मत्स्य, शृंगवेरपुर काशी, सिन्धु-सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण कोशल, किष्किन्धा और लंका भगवान की मित्र शक्तियां थीं। रामचन्द्र ने मथुरा से इतर किसी आर्य्य नरेश पर सेना सन्धान नहीं किया। अब तक भारतीय किसी सम्राट् का राज्य एवं प्रभाव ऐसा न बढ़ा था। आर्य्यत्व का भी प्रभाव आप के कारण बहुत बढ़ा।

रामचन्द्र के चरित्र का सब से बड़ा अंग दृढ़ता थी और अब

यही अयोध्या के सर्वप्रधान रत्न को लूटने वाली हुई। रामचन्द्र ने एक बार प्रण किया था कि यदि कोई मेरी आज्ञा भग करेगा तो मै उसका त्याग कर दूँगा। दैववश लक्ष्मण को ही अवश होकर इनकी आज्ञा टालनी पडी, जिस पर न चाहते हुए भी इन्होने उनका त्याग कर दिया। रामचन्द्र से पृथक् होकर लक्ष्मण को सारा ससार शून्य समझ पडा और वे महल से सीधे गुप्तारघाट पर पहुँच कर सरयू के जल मे लुप्त हो गये। आप की माता और सीता जी स्वर्ग वासिनी हो ही चुकी थी, अब लक्ष्मण का भी शरीरान्त सुनकर रामचन्द्र से भी न रहा गया और इन्होने शरीर त्याग के विचार से अपने शेष दोनो भाइयो को साथ ही देखना चाहा। भरत तो अयोध्या मे रहते ही थे, शत्रुघ्न भी अब वही पहुँचे। इन दोनो भाइयो ने राम का विचार सुनकर इनके पीछे ससार मे शरीर धारण तुच्छ समझ इन्ही के साथ गुप्तार घाट मे शरीर छोड दिया। यह दुर्घटना देख अयोध्या के हजारो लोगो ने भी ऐसा ही किया। कहा जाता है कि आत्मघात वाले रोग से इस काल अयोध्या उजाड सी हो गई।

रामचन्द्र ने यावज्जीवन अपने चरित्र से परमोच्च आदर्श दिखलाया। इन्होने अपनी तीनो माताओं तथा सभी अन्य लोगो से यथोचित व्यवहार रक्खा। किसी का उचित मनोरथ इनके द्वारा कभी विफल नही हुआ। क्या दानशीलता, क्या न्यायपरता, क्या राज्य-शासन और क्या कोई भी चरित्र-सम्बन्धी सद्गुण, इन्होंने सभी बातो मे अपने पुनीत जीवन को नमूना बना रक्खा था। इनके इस उत्कृष्ट चरित्र के कारण ही लोगो ने बालि एव शूद्र मुनि के वध, शूर्पणखा-विरूपकरण और सीता त्याग वाले कर्मों की तीक्ष्ण आलोचना भी की है। ये हिन्दुओं मे ईश्वरावतार समझे जाते हैं, सो धार्मिक विचारों से भी इनके लाखो भक्त हैं। इसलिये उपर्युक्त बातों के खण्डन-मण्डन मे बहुत कुछ लिखा पढी हुई है, जिसका सार भी कहना यहाँ अनावश्यक समझ पड़ता है।

इनका चरित्र एक रामायण द्वारा इनके जीवन ही में गाया गया। वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण ग्रन्थ अब भी उपस्थित है। यह बडा प्राचीन ग्रन्थ है, किन्तु फिर भी १३ वी शताब्दी बी० सी० का नही

हो सकता। पंडित लोग इसे छठवीं से तीसरी शताब्दी बी० सी० तक के इधर-उधर का ग्रन्थ मानते हैं। वाल्मीकि का जन्म भृगुवंश में हुआ। इसी वंश के शुक्राचार्य थे। महाभारत का कथन है कि वाल्मीकि ने रामायण के ५ काण्ड १२००० श्लोकों में लिखे थे, ७ कांड और २५००० श्लोक उनके लिखे नहीं हैं। महाराज रामचन्द्र सम्बन्धी जितने ग्रंथ संस्कृत और भारतीय वर्तमान भाषाओं में बने हैं उतने बुद्ध और श्रीकृष्ण से इतर यहाँ किसी एक मनुष्य के विषय में नहीं बने। बौद्ध ग्रन्थों में भी रामचन्द्र का वर्णन अधिकता से है। "दशरथ जातक" नामक ग्रन्थ परम प्रसिद्ध जातकों में से एक है। इसमें रामचन्द्र की कथा बहुत अंशों में ज्यों की त्यों लिखी है। अन्य जातकों में भी इनका कथन यत्र तत्र मिलता है। जैन ग्रन्थों में भी इनके वर्णन हैं, एवं एक जैन रामायण भी प्रस्तुत है।

इतने प्रमाणों के होते हुए भी कुछ पाश्चात्य लोगों को भ्रम हो गया है कि रामचन्द्र कल्पित पुरुष मात्र हैं। इसके प्रमाण में वे वेदों में राम नाम के अभाव को पेश करते हैं। जैसा कि ११ वें अध्याय में दिखलाया जा चुका है, वेदों में चन्द्र वंशियों के अधिक वर्णन हैं और सूर्यवंशियों के कम, तथापि वेदों में भी राम नाम का अभाव नहीं है। स्वयं ऋग्वेद में इन्द्र को कई बार राम कहा गया है और यज्ञ करने वाले एक राम नामक शक्तिमान मनुष्य भी है। कोई कारण नहीं है कि ऋग्वेद वाले यही यज्ञकर्त्ता सशक्त राम दशरथ-नन्दन राम न माने जावें। यदि राम वास्तव में न हुए होते तो हिन्दू-मत विद्वेषी बौद्ध और जैन लोग अपने ग्रन्थों में इनका वर्णन कभी न करते। फिर ब्राह्मण और वेद ग्रन्थ इतिहास नहीं हैं और उनमें जो नाम आये हैं वे सब प्रसंगवश लिखे गये हैं। इस लिये यदि उनमें कोई विशिष्ट नाम न हो, तो भी यह अभाव उसके अनस्तित्व का अकाट्य तर्क नहीं है। बहुत से पाश्चात्य पंडितों ने भी पौराणिक अत्युक्तियों को असिद्ध मानते हुए भी राजवंशों का विवरण ग्राह्य कहा है। इन लोगों में पार्जिटर और विन्सेण्ट स्मिथ भी हैं। इन सब कारणों से रामचन्द्र की ऐतिहासिक सत्ता दृढ़ है।

उस काल राजा को न्याय करने में नियम बनाने की आवश्यकता

नही पडती थी और प्रवीण पडितो के बनाये हुए राज्य-नियम प्रत्येक देश मे चलते थे। सारे भारतवर्ष के सभी मुख्य स्थानो मे एक दूसरे से व्यापारिक सम्बन्ध था और अनार्य राज्यो पर भी आर्य सभ्यता का प्रभाव पडने लगा था। रावण-राज्य के भारी सभ्यतापूर्ण व्यवहार इन कथनो की सिद्धि होती है। बालि और सुग्रीव के राज्य से भी उसकी महत्ता प्रकट होती है। रामचन्द्र के समय दण्डकारण्य मे आर्यों का एक उपनिवेश था। इनके विजयो से दक्षिण पर भी आर्यों का बडा प्रभाव पडा और आर्य लोग बहुतायत से वहां बसने लग गये थे। इस काल से कुछ पहले राम के पिता दशरथ और उत्तर पांचाल नरेश दिवोदास ने वेदो मे प्रसिद्ध (तिमिध्वज) शम्बर को मार कर उसके १०० दुर्ग तोडे। अनन्तर इसी समय के लगभग दिवोदास के भतीजे सुदास ने भी भारी अनार्य्य नरेश वर्चिन को मार कर तथा भेदादि को पराजित करके भारत मे अन्तिम अनार्य्य बल तोड़ दिया। इसका विशेष विवरण ऋग्वेद के सातवे मण्डल मे है। अतः शम्बर, रावण और वर्चिन के पराजय से यह काल आर्य्यों के लिये बड़ी महत्ता का हुआ। रामायण काल मे हम गोदावरी मे दक्षिण आर्य्य विस्तार पाते हैं, तथा पम्पा, मलय, महेन्द्र और लका तक मे आर्य्य प्रभाव स्थापित होता है।

———

चौदहवां अध्याय

द्वापर युग पूर्वार्द्ध—राम के पीछे युधिष्ठिर काल के पूर्व तक

१३ वीं शताब्दी बी० सी० से १० वीं शताब्दी बी० सी० तक

द्वापर युग के राजवंशों को डाक्टर प्रधान ने विशेष परिश्रम करके दृढ कर दिया है। राम ने अपने आठों सूर्यवंशी भतीजों को राजा बना दिया जैसा कि गत अध्याय मे कहा जा चुका है। उनमे से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के लडको से राज्य बहुत शीघ्र छूट गये। भरत के बेटों के प्रभाव बहुत काल तक रहे, ऐसा समझ पडता है, क्योंकि इनके नामों पर पुष्करावती और तक्षशिला के प्रान्त शताब्दियों तक इन्ही नामों से प्रसिद्ध रहे। फिर भी वे लोग तथा उनके वंशधर मध्यदेश से संबध छोडकर अपने ही प्रान्त के क्षत्रियों मे मिल गए, जिससे पुराणो में इन वंशो के कथन न आये।

कुश वंश।

रामचन्द्र के बडे पुत्र कुश को दक्षिण कोशल तथा अयोध्या के प्रान्त मिले। अवध प्रान्त के दो भाग करके भगवान राम ने श्रावस्ती लव को दी तथा अयोध्या कुश को। ऐसा समझ पडता है कि बडे होने से उन्हे दक्षिण कोशल भी मिला। यह विन्ध्य मे था, अथच पुर्वोक्त दक्षिण कोशल से पृथक था क्योंकि वह राज्य महाभारत के पीछे तक चलता रहा। कुश पहले कुशावती में रहने लगे और अयोध्या उजाड हो चली। तब यहां के निवासियो ने विनती की और आप कुशावती छोडकर यही चले आये। कुश का विवाह किसी तक्षक नाग की पुत्री कुमुद्वती से हुआ। दुर्जय नामक किसी असुर से युद्ध करके कुश ने संसार त्यागा। इनके पुत्र अतिथि को कालिदास ने बड़ा प्रतापी राजा

कहा है। इन्होंने अपने पिता हता दुर्जय राक्षस को मारा। इनका नंबर ४१ था। इनके वंशधर (नं० ४९), पारिपात्र के छोटे भाई सहस्राश्व ने कोई दूसरा राज्य स्थापित किया। पुराणों में उनसे दूसरा वंश चला है। पारिपात्र के तीन पुत्र शल, दल, बल, सब एक दूसरे के पीछे राजा हुए। बल के वंश में राज्य चला। नं० ५६ हिरण्यनाभ धर्मात्मा और प्रतापी थे। इन्होंने जैमिनि से योग सीखा, तथा याज्ञवल्क्य को सिखलाया (चौथे अध्याय में ऋषि वंश देखिए)। इनके पौत्र अत्नात्मज नं० ५८ "पर" थे, जिनके पीछे इस वंश का राज्य न चला। दूसरी शाखा वाले नं० ४९ सहस्राश्व का राज्य ६ पीढ़ी चला। अंतिम राजा नं० ५४ श्रुतायुस महाभारतीय युद्ध के समय में थे। इस नाम के तीन राजे उस युद्ध में लिखे हैं। डाक्टर प्रधान का विचार है कि इन्हीं को महाभारत में अम्बष्ट श्रुतायुस कहा गया है। मत्स्य पुराण में भी ऐक्ष्वाकु श्रुतायुस का महाभारत में मारा जाना लिखा है। राजसूय में भीम ने अयोध्या नरेश पुण्यात्मा दीर्घयज्ञ को हराया, यह कथन प्रधान में है। यह नाम वंशावली में नहीं है, शायद यह उक्थ का उपनाम हो।

लव वंश

रामचंद्र के दूसरे बेटे लव श्रावस्ती नरेश बनाये गये। इनके विषय में कोई विशेष घटना नहीं है। इनके वंश का राज्य बड़े भाई कुश वाले से बहुत अधिक पीढ़ियों तक चला।

लव के पौत्र राजा ध्रुवसन्धि हुए। इनका पहला विवाह कलिंगनरेश वीर की पुत्री मनोरमा से हुआ और दूसरा उज्जैनपति युधाजित की पुत्री लीलावती से। मनोरमा के गर्भ से सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और इसी से एक मास पीछे लीलावती के गर्भ से शत्रुजीत का जन्म हुआ। राजा ध्रुवसन्धि शत्रुजीत को अधिक चाहता था और लोगों का विचार था कि इसी को युवराज बनावेगा। इतने ही में शिकार में राजा ध्रुवसन्धि एक घायल शेर द्वारा मार डाला गया। राज-मंत्रियों ने बड़े होने के कारण सुदर्शन को ही तिलक के योग्य समझा किन्तु उज्जैन और कलिंग नरेश अपने-अपने दौहित्र का पक्ष ले लेकर लड़ने को तैय्यार हुए। शृङ्गवेरपुर में भारी युद्ध

हुआ जिसमें कलिंग नरेश मारा गया और मनोरमा सुदर्शन को लेकर जङ्गल में भाग गई। सुदर्शन की अवस्था इस काल बहुत छोटी थी। उसे लेकर मनोरमा प्रयाग में भरद्वाज के आश्रम में रहने लगी और युधाजित उज्जैनपति ने शत्रुजीत को अयोध्या का राजा बना दिया।

युधाजित ने भरद्वाज आश्रम से सुदर्शन को पकड़ मँगाने की भी युक्ति की किन्तु ऋषि ने उसे न भेजा और युधाजित ने भी उन की महिमा के विचार से इस पर जोर न दिया। थोड़े दिनों में काशी नरेश सुबाहु की पुत्री शशिकला का स्वयंवर होने को हुआ। इस समय तक सुदर्शन भरद्वाज ऋषि की शिक्षा से अच्छा विद्वान् हो चुका था। उसके गुणों से मुग्ध होकर शशिकला ने पत्र द्वारा उसे बुला भेजा। जब सुदर्शन काशी पहुँचे, तब उन्होंने वहाँ युधाजित, शत्रुजीत, कारूख-पति, भद्रशार, सिंहराज, माहिष्मतीपति, पांचाल-राज कामरूप, कर्णाटक, विदर्भ, केरल, चोल आदि के राजाओं को वहीं एकत्र पाया। युधाजित ने इस बात का प्रश्न उठाया कि स्वयंवर नरेशों के लिये है सो सुदर्शन का प्रवेश इसमें नहीं हो सकता। इस पर केरल नरेश ने कहा कि राजा ध्रुवसन्धि का बड़ा पुत्र होने से सुदर्शन एक माननीय व्यक्ति अवश्य है। फिर भी युधाजित झगड़ा करता रहा। यह देख कई राजाओं ने मिलकर सुदर्शन को अपने पास बुलाया और उसकी शिष्टता तथा पाण्डित्य से प्रसन्न होकर उसका पक्ष लिया। अब सुदर्शन का विवाह शशिकला के साथ हो गया। यह देख युधाजित और शत्रुजित युद्धार्थ सन्नद्ध हुए। राजा सुबाहु तथा सुदर्शन के पक्षवाले अन्य राजाओं ने युद्ध में विजय पाई और युधाजित तथा शत्रुजीत मारे गये। यह कथा हमने केवल देवी भागवत (III १४-२५) में देखी है, अन्यों में नहीं। उस काल काशी में सुबाहु नामक कोई राजा न था तथा उज्जैन में कोई युधाजित था यह निश्चित नहीं है। फिर भी कथा असम्भव नहीं है। भरद्वाज का कोई वंशधर आश्रम में होगा। अब सुदर्शन को अयोध्या का राज्य भी मिल गया। इसने बहुत नीतिपूर्वक राज्य किया। इसके पीछे इसका पुत्र अग्निवर्ण राजा हुआ। यह बड़ा ही कामकिंकर था और इसके अन्याय से सूर्य कुल का प्रभाव बहुत ही घट गया। ऐसा जान पड़ने लगा कि यह

राज्य ही लुप्त हो जायगा, किन्तु इतने ही मे इसका शरीरपात हो गया। इसकी गर्भवती रानी ने राज्य प्रबन्ध बहुत अच्छा किया और पुत्रोत्पत्ति के पीछे भी उसके युवा होने पर्यन्त राज्य को सुपालित रक्खा, जिससे यह नष्ट होने से बच गया। युधिष्ठिर के समय इस वश का राजा वृहद्बल (न० ५३) था जो चक्रव्यूह मे मारा गया तथा जिसका पुत्र वृहत्क्षम राजा हुआ। इस वश का शेप विवरण आगे होगा। रामचन्द्र के पीछे राज्य बँट जाने से इनके वशधरो का प्रभाव कम हो गया। अग्निवर्ण तक का विवरण रघुवश मे है।

सगर वंश

रामचन्द्र के पीछे राजा सगर का वश न०, ४३ भगीरथ पर्यन्त चला। पुराणो मे यह वश राम वश मे मिला हुआ है, सो भगीरथ के पीछे इसका पता नही है।

दक्षिण कोशल-वंश

दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद राम के प्राय: समकालीन थे। उनके पीछे दोनो लडकों पर राज्य के दो खड हो गए। पहले वश मे अश्मक, उरकाम और मूलक के नाम लिखे है, तथा दूसरे मे सर्व कर्मन, अनरण्य निध्न, और अनमित्र के। इनके भाई रघु लिखे हैं। बौद्ध साहित्य मे इस वश का नाम अस्सक कहा गया है। महाभारतीय युद्ध मे अश्मक पुत्र ने युद्ध किया। इनका महाभारत के पीछे कुछ प्रभाव वढा, जिसका विवरण आगे आवेगा। उसी मे बौद्ध साहित्य के आधार भी होगे।

विदेह का सूर्यवंश

दशरथ तथा राम के समकालीन सीरध्वज जनक यहां के राजा थे। इनके भाई कुशध्वज साकाश्य नरेश बनाये गये। इनके वंश मे कवल धर्मध्वज, कृतध्वज, और केशिध्वज के समय तक राज्य चला। कृतध्वज के भाई मितध्वज थे, जिसके पुत्र खाडिक्य का राज्य उसी के किसी वश वाले उपर्युक्त केशिध्वज ने छीन लिया, किन्तु इनसे ज्ञान सीख कर फेर दिया। ऐसा विष्णु-पुराण VI, ६ मे लिखा है। यहाँ राज्य

से किसी साधारण अधिकार जागीर आदि का प्रयोजन समझ पड़ता है, क्योंकि खाण्डिक्य राजा थे ही नहीं। ज्ञानियों में इनकी गणना है। मुख्य वंश में, नं० ३८, सीरध्वज के पुत्र भानुमन राम के साले थे। शकुनिपुत्र स्वागत के भाई ऋतुजित, नं० ४५, ने दूसरा राज्य स्थापित किया। इनके वंश में नं० ५५ उपगुप्त पर्यन्त राज्य चला। नाम सभी के वंशावली में हैं। मुख्य वंश में स्वागत नं० ४५ के वंशधरों में, नं० ५२, धृति, ५३ बहुलाश्व और ५४, कृति अंतिम नरेश थे। धृति और बहुलाश्व के समय में श्रीकृष्ण चन्द्र इनके राज्य में गए थे (भागवत दशमस्कंध)। यह वंश भी इस काल महत्ता युक्त न था। वंशावली में विदेह वंश का वर्णन इसके आगे नहीं है, किन्तु महाभारत युद्ध के प्रायः ढाई सौ वर्ष पीछे इसने वह महत्ता प्राप्त की, जो इसमें कभी भी न थी। डाक्टर राय चौधरी का विचार है कि पुराणों के कृति शायद अन्तिम विदेह राज कराल जनक हों। यह मत ठीक नहीं समझ पड़ता, क्यों कि उन्हीं के अनुसार कराल जनक पौरव जनमेजय से बहुत पीछे हुए, तथा कृति के पिता स्वयं श्री कृष्ण के समकालीन थे। वैदिक विवरणों में माथव तथा जनक के अतिरिक्त पर अल्हार तथा नमीसाप्य के भी कथन हैं। मैकडानल और कीथ महाशय पर अल्हार को कोशलराज पर अत्नार बतलाते हैं, नमीसाप्यतांड्य ब्राह्मण XXV १७, १८, में प्रसिद्ध यज्ञ कर्ता हैं। इसके पीछे विदेहों का विवरण आगे आवेगा।

सूर्यवंश का सम्मिलित विवरण

द्वापर युग में इस वंश में लव, कुश, सगर, दक्षिण कोशल और विदेह वंशों के विवरण ऊपर आ चुके हैं। वैशाली वंश त्रेता में ही टूट चुका था। महत्ता में लव वंश का प्राधान्य इस काल भी था, और आगे आने वाला है। फिर भी द्वापर युग में सारा सूर्यवंश दबा रहा और चन्द्र वंशियों की मुख्यता तथा महत्ता रही। कोशल और विदेह वंशों में कई की वंशावलियां पुराणों में है, और हमारे चौथे अध्याय में उल्लिखित हैं। दक्षिण कोशल-वंश बना बहुत काल पर्यन्त रहा, किन्तु उसकी वंशावली गुप्त कालीन पौराणिक संपादकों की भूल से राम के

पूर्व पुरुषों में जुड कर आगे के लिये लुप्त होगई। सारे सूर्यवंश में लव के वंशधरों ने सब से बढकर महत्ता प्राप्त की, जैसा कि आगे यथा स्थान आवेगा।

मुख्य पौरव-वंश

रामचन्द्र के समकालीन, न० ३८, कुरु प्रतापी थे। आपने वत्स जीता, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। आप ही के नाम पर कौरव वंश चला। इनके पुत्र, न० ३९, सार्वभौम के पीछे इस वंश के भाई चारे वालों ने कई राज्य जमाये, जैसा कि आगे कहा जावेगा, किन्तु मुख्य शाखा में न० ४८, प्रतीप तक कोई विशिष्ट वर्णन पुराणों में नहीं है। प्रतीप महत्ता युक्त थे। महाभारत में इनके तीन पुत्र देवापि वाल्हीक और शन्तनु या शान्तनु कहे गये हैं, किन्तु ऋग्वेद में देवापि अरिष्टिषेण के पुत्र हैं। या तो वे पिता के सामने ही मर चुके होंगे, या थोडे ही दिन राज्य करके गत हो गये होंगे जिससे महाभारत से इनका नाम छूट रहा हो। अरिष्ट षेण का पितृत्व कुछ संदिग्ध भी है, जैसा कि वंशावलियों में कथित है। देवापि के कुष्ट रोग था, सो ब्राह्मणों ने इनके राजा होने के प्रतिकूल आपत्ति उठाई। बेचारे प्रतीप रोने तक लगे किन्तु प्रजा के विरोध से विवश होकर उन्होंने अपने छोटे पौत्र या पुत्र शान्तुन को उत्तराधिकारी बनाया, क्यों कि मँझला वाल्हीक पहले ही से अपने मामा शिवि का राज्य पाकर उत्तरापथ जा चुका था। शान्तुन एक अच्छे वैद्य भी थे। शान्तनु को मत्स्य और वायु पुराण महाभिषक कहते हैं। देवापि का कुष्ट रोगी होना, म० भा० १४९, ६, में कथित है। देवापिका प्रतीप का पुत्र होना किन्तु केवल शिष्यत्व के कारण दत्तक पिता अरिष्टिशेण का पुत्र वेद मे कहलाना प्रधान का मत है, क्योकि शतपथ ब्राह्मण ९, ३, ३, उनके भाई वाल्हीक को कौरव नरेश प्रातीप्य कहता है, किन्तु यह प्रमाण संदिग्ध है, क्योंकि प्रतीप का पौत्र भी प्रातीप्य कहा जा सकता था। आगे की कथा महाभारात के आधार पर कही जावेगी। महाराजा शान्तुन के जेठे भाई देवापि ब्राह्मण हो गए। इस काल कौरव राज्य सरस्वती से गंगा तक था। उसके तीन भाग थे, अर्थात

कुरु, जागलकुरु और कुरुक्षेत्र। तैतिरीय आरण्यक,वैदिक अनुक्रमणिका के अनुसार कुरुक्षेत्र की सीमायें निम्न हैं:—दक्षिण खाण्डव, उत्तर तुघ्न, पच्छिम परीणह। इस वश को पुरु भारत वश कहा है।

प्रतीप की वृद्धावस्था में गगा नाम्नी एक सुन्दरी ने इनसे अनोखी दिल्लगी की। वृद्ध प्रतीप एक समय गगातट पर तपस्या कर रहे थे। उस काल गङ्गा आकर अकस्मात इनकी दाहिनी जघा पर बैठ गई। इस रूपराशि की ऐसी ढिठाई से महाराजा प्रतीप सभ्रम पूर्ण होकर कहने लगे, "हे शुभे! जो तुम्हारा प्रिय कार्य हो वह करने को मैं प्रस्तुत हूँ, इसलिये आज्ञा करो कि तुम्हारी क्या इच्छा है?" यह सुन कर गगा ने कहा, "हे भूपशिरोमणे! आप मेरे साथ प्रीतिपूर्वक विहार कीजिये।" यह सुन प्रतीप ने उत्तर दिया, मैं "कामवश होकर परस्त्रीगमन कभी नहीं करता और असमानवर्णा भार्या से विवाह भी नहीं करता, यह मेरा व्रत है।" इस बात से प्रकट होता है कि उस काल मिलित विवाहों की प्रथा प्रचलित थी परन्तु राजा प्रतीप उसको पसद नहीं करते थे। गङ्गा ने उत्तर दिया, "मैं अश्रेयसी और अगम्या नहीं हूँ तथा कुमारी हूँ, इसलिये तुम निर्भय होकर मुझसे विवाह करो।" प्रतीप ने कहा, 'यदि तुम्हें मेरे साथ विवाह करना था, तो मेरी वाम जघा पर बैठना चाहिये था न कि दक्षिण पर, जिस पर केवल पुत्री अथवा पुत्रवधू बैठ सकती है। जब स्वय तुम्ही ने धर्मव्यतिक्रम किया है, तब यदि मैं तुम्हारे साथ विवाह न करूँ, तो तुम्हे मुझको दोष न देना चाहिये। तुम्हारे दक्षिण जघा पर बैठने के कारण मैं अपने पुत्र शन्तनु के लिये तुम्हारा वरण करता हूँ।" यह सुनकर गङ्गा ने उत्तर दिया, "हे धर्मज्ञ भूपाल! जो तुम आज्ञा करते हो वही हो।" अब राजा ने, अपने पुत्र को बुला कर गङ्गा के साथ विवाह करने के लिये आज्ञा दी और उन्हे राज्याभिषिक्त करके आप तप करने के लिए रानी समेत वन को चले गये।

कुछ दिनों में महाराजा शन्तनु मृगयार्थ गङ्गा जी के किनारे गये, तो उसी उपर्युक्त रूपवती तरुणी से इनकी भेंट हुई। उसने श्री समान ज्योतिर्मय तरुण तन पर उस काल दिव्य आभूषण धारण कर

रक्खे थे। उसकी पद्म-समान तनद्युति पर सुधा-सी श्वेत साडी शोभित हो रही थी और वह अतुल रूपराशि उस काल एकाकिनी विराजमान थी। उसे देखते ही महाराजा शन्तनु पुलकित हो गये और उसकी सुधामयी छविपान से अपने नेत्र तृप्त होते न देख, निकट जाकर बोले, "हे शोभने! तुम देवी, दानवी, अप्सरा, किन्नरी, अथवा मानुषी मे से कौन हो? मै स्त्री हेतु तुम्हारा वरण करना चाहता हूँ। आशा है कि कृपा करके तुम इस प्रस्ताव को स्वीकृत करोगी।" यह सुन गङ्गा ने उत्तर दिया, "मै इस नियम पर तुम्हारी स्त्री होने को सन्नद्ध हूँ कि मै शुभाशुभ चाहे जो करूँ, तुम न तो मना करो और न कभी मुझसे अप्रिय वचन कहो। इन दोनो बातो मे से एक के होने पर भी मै तुरन्त तुम्हारा त्याग कर दूंगी।' राजा शन्तनु ने इतने पर भी अपने को धन्य माना तथा गगा से तथास्तु कह कर और पाणिग्रहण कर के वे उसे अपने महल मे ले आये।

राजा शन्तनु के गगा से एक एक कर के सात पुत्र उत्पन्न हुए किन्तु रानी ने इन सब को गगा मे डुबोकर मार डाला। राजा को यह कर्म वडा ही अप्रिय लगा किन्तु त्याग के भय से उन्होने कभी कुछ कहा नही। जब आठवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ तब इनसे बिना कहे न रहा गया और ये बोले कि हे रानी! तुम यह सुत-बध का क्रूर कर्म क्यों करती हो? हे पुत्रघ्नि! क्या तुझे पाप से कोई भय नही है? गगा ने उत्तर दिया, "हे पुत्रकाम भूपाल! मै तेरा यह पुत्र न मारूंगी किन्तु मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई और अब मैं जाती हूँ।" जान पड़ता है कि महाराजा प्रतीप से बचन-बद्ध होने के कारण गगाने शन्तनु के साथ विवाह तो किया, किन्तु इन्हे वह चाहती विलकुल न थी। इसलिये इन्हे और प्रकार से अपमान करते हुए न देखकर उसने अपना छुटकारा पाने के लिए पुत्र-बध सा क्रूर कर्म किया। यह अनुमान वहुत पुष्ट नही समझ पड़ता है। महाभारत मे इसका कारण देवताओं से सम्बन्ध रखता है। गङ्गा को किसी भाँति निश्चय हो गया था कि उनके प्रथम सातो वच्चे देवता थे जो नर देह से बचने को स्वय अपना मारा जाना चाहते थे। फिर शन्तनु के त्याग का कोई पुष्ट कारण नही मिलता।

जो हो, गङ्गा इस अष्टम पुत्र को लेकर चली गई और इसके कुमार होने पर इसे भली भाँति शस्त्र-शास्त्र मे पण्डित करके शन्तनु को सौंप गई। राजा शन्तनु बड़े दानी, बुद्धिमान और सुयशी थे। इन्होंने प्रजा का पूर्ण नीति से पालन किया। इनके उचित कार्यों मे प्रसन्न होकर बहुत से राजाओं ने मिलकर सुखपूर्वक इन्हे राजराजेश्वर की उपाधि दी। हस्तिनापुर मे वसते हुए शन्तनु ने समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का पालन किया और अतुल श्री प्राप्त की। सदैव क्षिति के समान क्षमा को धारण करते हुए महाराजा शन्तनु ने कुल मिलाकर ३६ वर्ष राज्य-शासन किया। एक बार इनके राज्य मे कई वर्ष तक अकाल रहा। इन्हे समझ पड़ा कि इनके द्वारा देवापि का राज्य वेजा लिये जाने मे इनके समय मे यह विपत्ति पडी। अतएव उनके पास जाकर आपने राज्य फेरने का प्रस्ताव किया, किन्तु राज्य न लेकर वे पुरोहित बने। ऋग्वेद मे भी आया है कि देवापि ने शन्तनु को यज्ञ कराई। ये वेदर्षि भी थे।

सभी बातो मे पूरी प्रसन्नता प्राप्त करने पर भी महाराजा शन्तनु को यथारुचि वनिता-विलास का सुख प्राप्त न हुआ। एक बार शिकार खेलते हुए आप यमुना नदी के किनारे पहुँचे, तो सत्यवती नाम्नी एक परम रूपवती कुमारी को देख कर इनका चित्त उस पर मुग्ध हो गया। उससे पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह दासराज की कन्या थी और नौका-वाहन का कार्य करती थी। इस पर महाराज ने दास के पास जाकर विवाहार्थ उसकी कन्या माँगी, तो उसने राजा की प्रशसा और अपने भाग्य की सराहना करके विनती की कि यह विवाह सब भाँति से अनुपमेय होने पर भी भारी दोषयुक्त है, अर्थात् युवराज देवव्रत के होते हुए उसकी पुत्री का पुत्र राजा न होगा। इसलिये यदि वह वचन दे सके कि राज्य उसकी कन्या के वश मे रहेगा, तो वह उसे सहर्ष अर्पित करे। राजा यह प्रतिज्ञा न कर सके और मन मार कर हस्तिनापुर लौट आये। अब इनका चित्त राज्य-कार्य मे न लगता था और ये सदा दास-कन्या का ध्यान किये रहते थे। यदि चाहते तो महाराजा शन्तनु एक क्षण मे दास कन्या छीन कर उसे अपनी स्त्री बना सकते थे। फिर भी महाराजा अपनी न्यायप्रियता के कारण ऐसा

नहीं कर सके। राजा के कष्टों का कारण सुनकर युवराज देवव्रत ने दास के पास जाकर पितृ हितार्थ प्रतिज्ञा की कि सत्यवती का पुत्र ही राजा होगा। यह सुन दासराज ने फिर भी सन्देह किया कि आपका भावी पुत्र राज्यार्थ विरोध कर सकता है। यह सुन भीष्म ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण की दूसरी प्रतिज्ञा की। इस भयानक प्रतिज्ञा के कारण लोगों ने इन्हें भीष्म कहकर पुकारा और तब से देवव्रत के स्थान में ये भीष्म ही कहलाने लगे। अब सत्यवती उपनाम योजनगंधा का विवाह शन्तनु के साथ हो गया और समय पर दो पुत्र भी उत्पन्न हुए, जिनके नाम चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य रक्खे गये।

राजा शन्तनु अपने छोटे पुत्रों की बाल्यावस्था ही में स्वर्गवासी हुए और भीष्म ने चित्राङ्गद को राजा बनाया। थोड़ी ही अवस्था में चित्राङ्गद बड़ा ही पराक्रमी वीर हुआ, किन्तु इसका अभिमान वीरता से भी बढ़ा हुआ था। यह अपने बल के आगे देवासुरों के पराक्रम की भी निन्दा करता था। यही अभिमान चित्राङ्गद के विनाश का मूल कारण हुआ। चित्राङ्गद नामक एक गन्धर्व भी अभिमानी वीर था। उसने राजा के अभिमान को न सहकर इनसे युद्ध मांगा और सरस्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र में इन दोनों का तीन दिन तक द्वन्द युद्ध हुआ। अन्त में गन्धर्व ने राजा का बध किया। इस पर भीष्म ने भ्राता का अन्त्येष्टि कर्म करके सत्यवती की सलाह से विचित्रवीर्य को राजा बनाया। विचित्रवीर्य को बालक समझ कर सत्यवती के मतानुसार पालक बनकर भीष्म ही राज्य चलाने लगे। भीष्म का राज्यशासन रामराज्य के समान सर्वगुण सपन्न था। विचित्रवीर्य के सयाने होनेपर भीष्म ने सुना कि काशीराज की कन्या अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का स्वयंवर हो रहा था। यह सुन एक छोटी सी चुनी हुई सेना लेकर भीष्म ने काशी पुरी में जा बलपूर्वक तीनों कन्याओं का भ्राता के लिये हरण किया। इसके पूर्व भीष्म ने आठों प्रकार के शास्त्रीय विवाहों का कथन करके इसे शास्त्र-समत प्रमाणित किया और उपस्थित राजाओं को युद्धार्थ ललकारा। कई राजाओं ने इनसे युद्ध किया, किन्तु सभों को पराजित होना पड़ा। सब के पीछे बड़ी पुत्री

अम्बा के लिये राजा शाल्व ने भारी युद्ध किया, किन्तु वह भी भीष्म के प्रचड पुरुषार्थ के आगे ठहर न सका।

अब देवव्रत भीष्म इन कन्याओं को पुत्रियों के समान लिये हुए राजा विचित्रवीर्य के पास पहुँचे। जब भाई के साथ इनका विवाह करने को हुए, तब बडी पुत्री अम्बा ने शाल्व को अपना प्रीतिभाजन बतला कर वहां जाने की आज्ञा माँगी। भीष्म ने उसकी प्रार्थना उचित समझ कर कई वृद्ध ब्राह्मणो तथा वृद्ध दासी दासो के साथ उसे शाल्व के यहाँ जाने के लिये विदा किया तथा अम्बिका और अम्बालिका का विचित्रवीर्य के साथ विवाह कर दिया। जब अम्बा शाल्व के यहाँ पहुँची, तब उसने उसका ग्रहण न किया। उसके ग्रहण मे राज-समाज मे बदनामी सभव थी। अब अम्बा अपने मातामह होत्रवाहन से मिली। उस राजर्षि ने इसका सारा वृत्तान्त सुनकर इसे महेन्द्रगिरि पर भृगु राम के पास ले जाने का विचार किया। दैववश जिस जगल मे होत्रवाहन तपस्या करता था वही उससे मिलने के लिये दूसरे दिन परशुराम आप ही आगये। ये परशुराम सहस्त्रार्जुन के मारने वाले परशुराम से पृथक् थे। ग्रन्थो मे दो परशुरामो के नाम आये हैं, अर्थात् एक सहस्रार्जुन को मारनेवाले, दूसरे होत्रवाहन के मित्र, जिनका वर्णन अब हो रहा है। यही अन्तिम परशुराम भीष्म के शस्त्रगुरु थे।

होत्रवाहन ने अपनी नातिन की सारी व्यथा परशुराम से कह सुनाई। यह सुनकर परशुराम ने कहा कि जिसके साथ कहिये, उसी के साथ हम इसका विवाह करा दें, क्योकि भीष्म और शाल्व दोनो मे से एक भी मेरी आज्ञा नहीं टाल सकता। इन्होने यह भी कहा कि जो मेरी आज्ञा न मानेगा, वह मेरे बाणो से मृत्यु को प्राप्त होगा। अम्बा ने भीष्म ही के साथ विवाह करना उचित समझ कर परशुराम से इसी प्रकार का निवेदन किया। यह सुन होत्रवाहन और अम्बा को साथ लेकर ऋषिवर परशुराम कुरुक्षेत्र मे पहुँचे। इनका आगमन सुनकर मन्त्रियो, मित्रो और पुरोहितो समेत भीष्म हस्तिनापुर से चल कर इनकी सेवा मे उपस्थित हुए। ऋषिवर ने उन्हे अम्बा के साथ विवाह करने का आदेश किया और यह भी

दोष लगाया कि तुमने बिना दी हुई कन्या का हरण करके उसे छोड कैसे दिया ? उन्होने सारा हाल निवेदन करके और अपने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का भी कथन करके विनती की कि मै विवाह न करने पर बाध्य हूँ। परशुराम ने उनके कथन को स्वीकार न करके युद्ध का निश्चय किया। विवश होकर भीष्म को अपने शस्त्र-विद्या-गुरु से लडना पडा। २१ दिन पर्यन्त गुरु-शिष्य का कुरुक्षेत्र मे घोर द्वन्द्व-युद्ध हुआ। यह देख ऋषि लोगो ने बीच मे पड़कर इस युद्ध का निवारण कराया। अब परशुराम ने अम्बा से कहा कि मै ऋषियो के वचन का निरादर नही कर सकता, इसलिये युद्ध छोडता हूँ। मै यह भी कहे देता हूँ कि भीष्म मुझसे जेय अथवा बाध्य नही है। अम्बा ने उनके प्रयत्नों के लिये कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देकर शेप जीवन तपश्चर्या मे बिताने का निश्चय प्रकट किया। उसने ऐसा ही करके अपने चरित्र की दृढता सिद्ध कर दिखाई।

महाराजा विचित्रवीर्य ने राज्य-प्रबन्ध की ओर अपना मन कभी न लगाया और सदा रानियो ही के साथ विहार करने मे अपने को कृतार्थ माना। उनकी दोनो रानियाँ जैसी सुन्दरी थी वैसे ही वह भी रूपवान् थे, किन्तु उचित से अधिक विलास के कारण उनका शरीर वलहीन हो गया और विवाह से सातवे वर्ष उन्हे राजयक्ष्मा रोग ने घेर लिया। मित्र लोग यत्न और वैद्य औषध करते हुए हार गये, किन्तु विचित्रवीर्य नीरोग न हो सके और थोडे ही दिनो मे काल कवलित हो गये। अब सारे महल में हाहाकार पड़ गया और भीष्म भी वहुत चिन्ताकुल हुए। यह बुरा दिन देख राजमाता सत्यवती महारानी ने भीष्म से विचित्रवीर्य की रानियो मे नियोग द्वारा पुत्रोत्पादन का निवेदन किया। भीष्म ने इस उदारता के लिये कृतज्ञता स्वीकार करते हुए अपने ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाकर राजमाता से यह आज्ञा न मानने के लिये क्षमा चाही। कुछ पण्डितो का मत है कि अब इस प्राचीन राज कुल के सब से निकटस्थ सम्बन्धी भीष्म ही रह गये थे और इनको ब्रह्मचर्य व्रत पालन के स्थान पर अपने पूर्व पुरुषो के कुटुम्ब का रुधिर स्वच्छ रखना अधिक श्रेयस्कर एव प्रगाढ़तर धार्मिक कार्य

समझना चाहिये था। इधर वचन-पालन तथा सत्य का माहात्म्य सभी स्थानों में परमोच्च है और यही भीष्म का मत था। हमारी समझ में सत्य के सामने किसी दूसरी बात के मानने का प्रश्न ही नहीं उठता।

भीष्म के ये धर्मपूर्ण वचन सुनकर तथा इनकी यह भी अनुमति पाकर कि प्राचीन प्रथानुसार किसी कुलीन ब्राह्मण द्वारा पुत्रोत्पादन कराया जावे, राज-माता सत्यवती ने अपना प्राचीन गुप्त भेद इनसे प्रकट किया। उन्होंने कहा कि विवाह से पूर्व ऋषिवर पराशर के सम्पर्क से उनके कृष्णद्वैपायन नाम का गुप्त पुत्र उत्पन्न हुआ था। समय पर भारी पण्डित होकर इन्होंने वेदों का सम्पादन करके व्यास की उपाधि आगे चल कर पाई। सत्यवती ने अपने नाम की यथार्थता प्रकट करते हुए भीष्म से कहा कि यदि उचित हो तो बुलाकर विचित्रवीर्य की रानियों में उन्हीं से पुत्र उत्पन्न कराये जायँ। यह सुन कर भीष्म ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया और सत्यवती द्वारा निमन्त्रित होकर भगवान वेदव्यास ने भी इसे माना। व्यास की सम्मति से रानियों ने एक वर्ष व्रत साधन करके अपने को शुद्धतर बनाया। इसके पीछे भगवान वेदव्यास द्वारा अम्बिका के धृतराष्ट्र नामक अन्धपुत्र हुआ और अम्बालिका के पाण्डुनामक धृतराष्ट्र का अनुज उत्पन्न हुआ। राज-माता सत्यवती ने अम्बिका का पुत्र अन्धा समझ कर व्यास को उन्हें एक और पुत्र देने का निवेदन किया और इन्होंने स्वीकार भी कर लिया, किन्तु व्यास के कुरूप होने के कारण अम्बिका उनके पास जा न सकी और अपने स्थान पर उसने दासी भेज दी जिससे विदुर नामक परम ज्ञानी पुत्र की उत्पत्ति हुई। विदुर सदैव पाण्डु और धृतराष्ट्र के भाई समझे गये किन्तु दासी-पुत्र होने से क्षत्रियत्व में इनका यथेष्ट सम्मान न था।

घर में तीन पुत्रों के उत्पन्न होने से राजमाता सत्यवती, भीष्म तथा समस्त प्रजावर्ग को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। भीष्म सदा की भांति न्यायपूर्वक राज्य का प्रबन्ध करते रहे। क्रमशः ये तीनों बालक सयाने होकर राज-प्रबन्ध के योग्य हुए और तब सत्यवती, भीष्म,

मन्त्रियो एव प्रवीण ब्राह्मणो की सलाह से जन्मान्ध होने के कारण धृतराष्ट्र राज्य के अयोग्य समझे गये और पाण्डु को राजगद्दी मिली। भीष्म ने गन्धार-नरेश महाराजा सुबल की कन्या गान्धारी के साथ धृतराष्ट्र का विवाह किया। अपने पति के अन्धे होने के कारण पातिव्रत धर्म के बढ़े हुए विचार से महारानी गान्धारी ने अपने नेत्रो मे पट्टी बांध ली और यावज्जीवन कभी नेत्रो का व्यवहार न किया। ऐसी-ऐसी दृढ़ताओं के उदाहरण किसी भी देश को अकथनीय गरिमा प्रदान कर सकते है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पितामह शूरसेन की फूफू के पुत्र भोजपति राजा कुन्तिभोज अपत्यहीन थे, इस लिये उन्होंने शूरसेन का पहला सन्तान इनसे मांगा और उन्होने स्वीकार किया। समय पर शूर की पहली सन्तति कन्या रत्न हुई, जिसे राजा कुन्तिभोज अपने घर ले गये और इसका नाम कुन्ती रक्खा गया। समय पर यह बड़ी रूपवती स्त्री हुई। विवाह से पूर्व कारणवश इसका सूर्य नामक व्यक्ति से सगम हो गया, जिससे कर्ण नामक कानीन पुत्र उत्पन्न हुआ। कुन्ती ने इस बच्चे को एक टोकरे मे रखकर गंगा जी मे बहा दिया। वहा से थोडी ही दूर पर सूतपुत्र अधिरथ अपनी स्त्री राधा के साथ स्नान कर रहा था। इन दोनो ने उस टोकरे को निकाल कर बालक को देखा तो गगा द्वारा दिया पुत्र मान परम प्रसन्न हो उसे अपने घर लाकर पुत्रवत् पालन किया। इस पुत्र का नाम कर्ण हुआ। समय पर यह बहुत बडा दानी, सत्यभाषी, सुयशी और शस्त्रवेत्ता हुआ। इसने परशुराम से अस्त्रविद्या सीख कर हस्तिनापुर मे निवास किया। थोड़े दिनों में राजा कुन्तिभोज ने अपनी पुत्री कुन्ती का स्वयम्वर ठाना। देश-देश के राजाओ में कुन्ती ने पाण्डु को पसन्द कर के उन्ही के गले मे जयमाल डाल दी। विधिपूर्वक व्याह करके पाण्डु पृथा उपनाम कुन्ती को अपने घर ले आये। इनका दूसरा विवाह मद्रपति शल्य की बहिन माद्री से हुआ।

राजा पाण्डु ने इस उत्तमता के साथ प्रजा का पालन किया कि इनकी सभो ने प्रशसा की। धृतराष्ट्र और भीष्म का उचित मान इन्होंने सदैव स्थिर रक्खा। कुछ दिनो में महाराजा पाण्डु

दिग्विजय को निकले। इन्होंने अपनी विजययात्रा दशार्ण देश (बुंदेलखंड) से आरम्भ की और यहाँ के राजाओं से कर लिया। फिर मगध के सब राजा जीते गये। वहाँ से मैथिल देश के विदेह राजाओं को जीतकर काशीपति, सुम्हपति और पोण्ड्रपति को भी पाण्डु ने जीता। इन सब राजाओं से प्रचुर धन लेकर पाण्डु नरेश हस्तिनापुर को वापस गये। भीष्म कुरुवृद्धों समेत पाण्डु की अगवानी को गये। पाण्डु ने इन्हें देख रथ से उतर कर पद-वन्दन किया। भीष्म ने अपने भतीज का मूर्धा घ्राण करके बड़े आदर के साथ हृदय से लगा कर अश्रु जल से उनके वदन कमल का सिञ्चन किया। अब पाण्डु नरेश ने हस्तिनापुर आकर धृतराष्ट्र के पद-वन्दन किये और उनकी आज्ञा लेकर विजय का सारा धन भीष्म, सत्यवती, अम्बिका और अम्बालिका को बाँट दिया। इनके अतिरिक्त विदुर, अमात्य तथा अन्य राजसेवियों को पुरस्कार दिये गये। अनन्तर महाराजा धृतराष्ट्र ने कई यज्ञ करके विपुल दक्षिणा दी।

कुछ दिन के पीछे कुन्ती और माद्री का मत पाकर महाराजा पाण्डु हिमाचल के दक्षिण ओर वन में रहने लगे। इनको मृगया की बड़ी बुरी लत थी। इसलिये ये जंगल में जाकर शिकार खेला और रानियों के साथ विहार किया करते थे। राजा धृतराष्ट्र इनके लिये आराम की सभी वस्तुयें भेजा करते थे। जंगल में रहते-रहते कारणवश राजा पाण्डु पुत्रोत्पादन के अयोग्य हो गये। इसलिये ग्लानिपूर्ण होकर उन्होंने राज्य छोड़ दिया और पत्नियों समेत बहुमूल्य वस्त्र त्याग कर अजिनाम्बर धारण किये। पहले उन्होंने अपनी रानियों को हस्तिनापुर वापस भेजने का विचार किया, किन्तु जब उन्होंने पाण्डु का साथ वानप्रस्थाश्रम में भी छोड़ना पसन्द न किया, तब इन्होंने उनको साथ रक्खा। पाण्डु ने रानियों के तथा अपने बहुमूल्य वस्त्र और अलंकार ब्राह्मणों को दान दे दिये और सेवकों से कहा कि अब हम तुमको बिदा करते हैं, तुम हस्तिनापुर जाकर महाराजा धृतराष्ट्र और भीष्म से निवेदन करना कि पाण्डु ने राज्य छोड़ बनवास ग्रहण किया।

यह सुन वे लोग हाहाकार करके रोने लगे। इतने पर भी पाण्डु ने

अपना निश्चय न छोड़ा और विवश होकर सब सेवक लोग हस्तिनापुर वापस गये। यह शोकपूर्ण वृत्तान्त सुनकर महाराजा धृतराष्ट्र बहुत विकल हुए और कई दिनों तक भोजन शयन आदि छोड़कर विरक्त रहे। अन्त में विवश होकर इन्होंने राज्य-कार्य सँभालना आरम्भ किया, वरन् यों कहें कि ये सदा की भाँति फिर से राजकार्य देखने लगे। पाण्डु के राज्य में धृतराष्ट्र ने यह कभी नहीं जाना था कि वे राजा नहीं हैं। इस लिये अपने ऊपर राजभार आते देख इन्हें किसी प्रकार की प्रसन्नता न हुई। अब महाराजा धृतराष्ट्र राजसिंहासन पर भी बैठने लगे और अपने ही नाम से राजकार्य चलाने लगे, किन्तु इन्होंने अपना अभिषेक कभी नहीं कराया। कम से कम महाभारत में ऐसा लिखा नहीं।

महाराजा पाण्डु ऋषियों के समान और उन्हीं के साथ वन-वन घूमते हुए तथा तीर्थाटन करते जीवन निर्वाह करने लगे। कुछ दिनों के पीछे इनका पितृ ऋण से उद्धार पाने का विचार हुआ और इनकी आज्ञा से कुन्ती ने धर्म, पवन, और इन्द्र तथा माद्री ने दोनों अश्विनीकुमारों को क्रम से बुलाकर पाँच पुत्र उत्पन्न किये। कुन्ती के युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन पुत्र हुए तथा माद्री के नकुल और सहदेव। इधर महाराजा धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मर्षण, दुर्मुख, विकर्ण, आदि अनेक पुत्र हुए तथा दुःशला नाम्नी एक कन्या भी हुई। इनके युयुत्सु नामक एक वैश्या पुत्र भी हुआ। दुःशला का विवाह सिन्धु देश के राजा जयद्रथ के साथ हुआ। कुछ दिन के बाद जंगल ही में रहते हुए महाराजा पाण्डु का शरीरपात हो गया और महारानी माद्री उन्हीं के साथ सती हो गईं। यह देख ऋषियों ने कुन्ती समेत पाँचों पांडु-पुत्रों को हस्तिनापुर ले जाकर महाराजा धृतराष्ट्र को सौंप दिया। पांडवों को पाकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए तथा उचित प्रकार से राजकुमारों की भाँति इनका पालन पोषण और शिक्षण करने लगे। पांडवों ने महाराजा धृतराष्ट्र की कृपाओं से उन्हें पितृवत् उपकारी पाया। हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र और पांडु के वंशियों की इस प्रकार दो शाखाएँ हुईं। इसलिए पांडु के पुत्र पाण्डव कहलाए और धृतराष्ट्र के पक्ष वाले कौरव की पुरानी उपाधि से पुकारे जाते रहे।

इन दोनों शाखाओं में युद्ध होकर अन्त मे पाण्डव युधिष्ठिर राजा हुये। यही महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध है, जिसका वणन आगे के अध्याय में होगा। पुरुवश की यही शाखा इस काल मुख्य रही। इस शाखा का इतना इतिहास हम यहां पर समाप्त करते हैं और अब उसकी अन्य शाखाओं का वर्णन उठाते हैं। पुरुवश का उपर्युक्त इतिहास महाभारत मे है।

विदर्भ का द्विमीढ़वंश

इस वश का न० ४० धृतिमन्त अनुमान से राम का समकालीन समझ पडता है। इनका वशधर न० ५२ उग्रायुध महत्तायुक्त हुआ। इसने उत्तर और दक्षिण पांचालो का राज्य छीनकर अधिकार जमाया। वहां के तत्कालीन राजे पृषत के पितामह (न० ४७) और जनमेजय, (न० ५३) थे। उग्रायुध ने शान्तनु के पीछे उनकी विधवा सत्यवती से बलपूर्वक विवाह करने का भी प्रस्ताव किया। इसे ऐसा मदोन्मत्त देखकर देवव्रत भीष्म ने युद्ध मे इसका वध किया और दक्षिण पांचाल का शायद कोई उत्तराधिकारी न देख कर वे दोनो राज्य पृषत् को सौंप दिए। उग्रायुध के पीछे यह वैदर्भ राज्य (न० ५६) वहुरथ पर्यन्त चला (ह, व, २०, १०८३, ११११, १२)। सिवा पाँचाल विजय के इस वंश का कोई विशेष विवरण पुराणो में उल्लिखित नहीं है।

उत्तर पांचाल

रामचन्द्र के समकालीन सोमक के पुत्र अर्कदत (न० ४०) राजा हुए। इनके पीछे डाक्टर प्रधान के अनुसार सात पुश्तों के नाम अज्ञात हैं। अनन्तर (न० ४८) दुष्टरीतु (और न० ४९) पृषत् एक दूसरे के पीछे राजा हुए। विदर्भराज उग्रायुध से हारकर दोनो पांचाल राज्य टूट गए, किन्तु भीष्म की सहायता से पृषत् को वे दोनो मिल गए। सम्भवत पृषत् ने भी उस युद्ध मे पौरवो की मदद की होगी। अनन्तर पृषत् पुत्र द्रुपद राजा हुए। अग्निवेष ऋषि के आश्रम मे इनकी महाभारत वाले प्रसिद्ध द्रोणाचार्य से मित्रता हुई, किन्तु जब वे इनके यहां गए, तब इन्होंने उनका अपमान किया। इस पर कौरव पाण्डवो के शस्त्रगुरु

होकर उन्होंने द्रुपद को पराजित करके इनसे उत्तर पांचाल राज्य ले लिया और ये उत्तर से दक्षिण पांचाल मे चले आये। यह राज्य द्रोण के अधिकार मे कब तक रहा, सो पता नही, किन्तु महाभारत के युद्ध के समय वे राजा नही समझ पडते और दोनो पांचाल द्रुपद के ही अधिकार मे होगे, ऐसा जान पडता है।

द्रुपद की पुत्री द्रौपदी से पांचो पाण्डवो का विवाह हुआ। इनका पुत्र शिखण्डी दशार्णनाथ हिरण्यवर्म की पुत्री से व्याहा था। महाभारत के युद्ध में द्रोण ने द्रुपद को मारा और द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोण को। द्रोणात्मज अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न और शिखण्डी दोनों को मारा। पुराणो मे इस कुल की वशावली धृष्टद्युम्न पुत्र धृष्टकेतु पर समाप्त है, किन्तु उल्लिखित है कि आदिम कलिकाल मे इस वश मे कई राजे हुए, जिनके कथन यथा स्थान आवेगे। धृष्टद्युम्न पाण्डवो के साले और सेनापति थे। पाण्डवी दल मे पांचालो की महत्ता थी। सृजय और सोमक द्रुपद के साथी थे (म० भा I १३१, ५१३४, ४५, ह० व० २०, ११११, ५)।

दक्षिण पांचाल

त्रेता के पीछे इस राज्य मे पौरपार (न० ४१) आते हैं। इनके पुत्र नीप महत्तायुक्त थे। कही-कहीं नीप द्विमीढ़ो में भी माने गए हैं, किन्तु डाक्टर प्रधान ने भारी खोज से इन्हे दक्षिण पांचालो में रक्खा है। महाभारत में इनका भीष्म से युद्ध लिखा है। या तो वह कथन अशुद्ध होगा या अपनी वशावली मे इनका नम्बर नीचे होगा। इनके वशधर (न० ४८) अणुह शुक के दामाद और पौरव प्रतीप के मित्र थे। यह एक प्रसिद्ध भूपाल हो गुजरे हैं। इनकी पत्नी कृत्वी किसी उस शुक की पुत्री होगी, जो व्यास पुत्र से इतर शुक होगा, क्योकि अणुह व्यास के पूर्ववर्ती थे। इस विवाह से ब्रह्मदत्त पुत्र हुआ (मत्स्य, ४९, ५६, ७)।

इनके वशधर नं० ५३, जनमेजय वैदर्भ उग्रायुध से हारकर राज्य खो बैठे। तब से इस वश का राज्य लुप्त होगया।

पांचालों के शेष वर्णन

महाभारत मे उत्तमौजस तथा सृजय पांचाल थे। धृष्टद्युम्न सोमकों

मे मुख्य कहे गए हैं। महाभारत मे पांचाल भारतो की शाखा है (आदि पर्व, ९४, ३३)। दिवोदास सुदास और द्रुपद पांचाल थे। वैदिक, साहित्य मे पांचालो के निम्न राज उल्लिखित हैं :— क्रैव्य केशित, दालभ्य शौनशास्त्राशहा, प्रवाहण जैवलि, दुर्मुख, जैवमि (ये जैवलि जनमेजय के पीछे विदेह काल मे थे)। दुर्मुख उससे भी पीछे के समझ पडते हैं। इनका कथन कुम्भकार जातक (४०८) मे भी है। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी। उत्तर पांचाल के विषय मे कुरु पाचालो मे समय समय पर बहुत युद्ध हुए। यह कभी कौरवो का रहा और कभी पाचालो का। जब द्रुपद ने द्रोण से लड़ कर अपना पैत्रिक राज्य उत्तर पांचाल खोकर दक्षिण पांचाल मात्र अपने पास रख पाया तब गगा से चम्बल तक का देश उनके पास रह गया और वे गगा तट पर माकन्दीपुरी मे बसे, ऐसा महाभारत आदि पर्व का कथन है। महाभारत मे वह प्राय द्रुपद पुरु कहलाता था। उधर द्रोण की राजधानी अहिच्छत्र पुरु मे हुई। वे कभी कभी हस्तिनापुर मे भी रहते थे। शायद महाभारत युद्ध के पूर्व वे इसे खो चुके थे, क्योकि उस काल सारे पांचाल देश के राजा द्रुपद ही समझ पड़ते हैं, तथा उत्तर पांचाल के कुछ छोटे मोटे शासक और भी उल्लिखित हैं। पुराणो मे पांचाल का विवरण कुछ कम है, किन्तु वैदिक साहित्य मे वह प्रचुरता से पाया जाता है, विशेषतया ऋग्वेद मे।

चेदि राज्य

पौरव राजा कुरु (नं० ३८) के पीछे वसु ने चेदि जीतकर बुन्देलखड मे यह राज्य स्थापित किया। सुहोत्र कुरु के पौत्र थे। इनके पौत्र (नं० ४२) कृतयज्ञ के दो पुत्र मुख्य हुए अर्थात चेदि और उपरिचर वसु। चेदि के नाम पर यह राज्य कहलाया। उधर वसु ने मागध राज्य स्थापित किया, जिसका कथन आगे आवेगा। चेदि की राजधानी शुक्तिमती केन पर थी। चेदि या चिदि मत्स्य से मगध तक राज्य फैलाकर चक्रवर्ती हुए। सम्भवतः उपरिचर वसु पहले इनके अधीनस्थ राजा थे। चेदि और उपरिचर वसु के वशधर मगध और चेदि के अतिरिक्त कौशाम्बी, करूप और मत्स्य में भी स्थापित हुए (पार्जिटर)।

चेदि वंश की कुछ पीढ़ियां पुराणों से छूट गई हैं। (नं० ५१) दमघोष को कृष्ण की फूफी ब्याही थी। इन दोनों का पुत्र शिशुपाल हुआ। इसे मागध सम्राट् जरासन्ध पुत्रवत् मानता और अपने दल का सेनापति बनाये था। शिशुपाल पाण्डवों का मौसेरा भाई था, किन्तु जरासन्ध के कारण यह श्रीकृष्ण तथा पाण्डवों के विपक्षियों में था। कुन्डिनपुर के राजा भीष्मक अपनी पुत्री रुक्मिणी का ब्याह इसके साथ करते थे किन्तु रुक्मिणी की इच्छा से श्रीकृष्ण ने उन्हें प्राप्त किया। जरासन्ध के मारे जाने पर शिशुपाल इन लोगों से और भी अप्रसन्न हुआ, यहां तक कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण के हाथ से इसका वध हुआ। शिशुपाल का पुत्र धृष्टकेतु महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की ओर से लड़कर द्रोणाचार्य द्वारा मारा गया। इसके पीछे इस कुल की वंशावली नहीं चलती है।

मागध राज्य

उपर्युक्त कृतयज्ञ के पुत्र (राजा नं० ४३) उपरिचर वसु ने ऋषभ दैत्य को जीतकर मगध राज्य प्राप्त किया। इसकी राजधानी गिरिव्रज हुई। पहले शायद ये चेदि के कुछ अधीन थे, किन्तु पीछे यह राज्य स्वतन्त्र होगया। इनको शायद चेदि शाखा के कारण चैद्योपरिचर भी कहते हैं। इनका पुत्र (नं० ४४) बृहद्रथ बड़ा प्रतापी हुआ, जिससे यह वंश बार्हद्रथ कहलाने लगा। विराट वाला मत्स्य कुल भी इन्हीं उपरिचर वसु का वंशधर था। कहीं-कहीं ऐसा लिखा है कि इनके पास व्योमयान होने से ये उपरिचर कहलाते थे। बृहद्रथ का वंशधर ५२, जरासन्ध बड़ा प्रतापी सम्राट् हुआ। इसने भारत के बहुतेरे राजाओं को जीतकर गौरव प्राप्त किया।

जरासंध बड़ा प्रतापी और पराक्रमी राजा हुआ। यह डीलडौल में भारी था, पर कहते हैं कि इसके शरीर में एक संधि थी, जिसके कारण यह इस नाम से पुकारा जाता था तथा एक प्रकार की इसमें शारीरिक हीनता रह गई थी। इसने अन्य राज्य जीता तथा अपना राज्य बहुत विस्तृत करके सम्राट् पद प्राप्त किया। भारत में शान्तनु के पीछे यही राजा सम्राट् हुआ। यह शिशुपाल को पुत्रवत् मानता

था और मथुरा का राजा कस इसका दामाद था। हम और डिम्भक जरासध के मन्त्री तथा सेनापति थे. जो एक दूसरे के भाई, परम पराक्रमी, भ्रातृ प्रेमी, स्वामिभक्त एव सज्जन पुरुष थे। इसकी इस कारण बड़ी बदनामी हुई कि एकवार इसने एक सौ राजाओं को पकड कर उन्हे बलिदान दे डालने का विचार किया और एतदर्थ ८६ नरेशों को अपने बन्दीगृह मे बाध भी रक्खा था। इसी कारण भगवान श्रीकृष्ण इससे बहुत अप्रसन्न हो गए और अन्त मे इसका विनाश हुआ। जरासध के श्रीकृष्ण से बिगाड का वर्णन भगवान के इतिहास मे आवेगा।

जिस काल अपने जामाता कस का श्रीकृष्ण द्वारा वध सुनकर जरासन्ध ने मथुरा पर आक्रमण किया, तब निम्नलिखित नरेश इसके साथ चढ़ाई मे सम्मिलित थे:—

कारुष (उत्तर-पश्चिमी भारत देश का राजा) दन्त वक्र, शिशुपाल, कलिंग-पति शाल्व, पुड्र पति, कैषिक (दक्षिण) पति क्रथ, सक्रति, भीष्मक, रुक्मी, वेणुदार, श्रुतस्थु, क्वाथ, अशुमान, अङ्ग, वङ्ग, कोशल, काशी, दशार्ह और सुम्ह के नरेश, विदेह, मद्रपति, त्रिगर्त-नाथ, दरद, यवन, भगदत्त, सौवीर का शैब्य, गांधार का सुवल, पांड्य, नग्नजित, काश्मीर का गोनर्द, हस्तिनापुर के दुर्योधन, वलख का चेकितान और (अन्त मे) कालयवन। जान पडता है कि राजा दुर्योधन तो जरासन्ध के साथ केवल मित्रता वश गये थे पर अन्य राजे उससे अवश्य दबते थे। इस सूची मे भारतवर्ष के प्राय. सभी भागो के नरेश सम्मिलित हैं, जिससे जरासंध के प्रभाव का विस्तार प्रकट होता है। उसने मथुरा पर १८ आक्रमण किये और अन्त मे यादवो को भगवान् कृष्ण सहित वहां से भागकर द्वारिका चला जाना पड़ा। जरासन्ध अपने शारीरिक पराक्रम का इतना अभिमानी था कि दुर्योधन के सखा कर्ण का शौर्य सुनकर इसने उन्हे मगध मे बुलाकर उनसे मित्र भाव से द्वन्द्व-युद्ध किया और अपनी सधि मे विकार के कारण युद्ध छोड कर्ण की प्रशंसा की और उस पर बडी प्रसन्नता प्रकट की एव उसे अङ्ग देश देकर मालिनी नगर का स्वामी बनाया। जरासन्ध का वध भीमसेन द्वारा हुआ जिसका वर्णन आगे आवेगा।

जरासध की मृत्यु के साथ इस घराने से सम्राट् पद जाता रहा और इसका पुत्र सहदेव एक मांडलिक नरेश मात्र रह गया।

वह पाण्डवो की ओर से लडकर महाभारत युद्ध मे द्रोणाचार्य द्वारा मारा गया और सहदेवात्मज (सोमाधि नम्बर ५४) द्वापर का अन्तिम मागध नरेश हुआ। इस क पीछे यह वश बहुत काल तक स्थापित रहा, जिसका विवरण यथा स्थान आवेगा। द्वापर के पीछे केवल लव सोमाधि और अर्जुन के वशो का महत्व भारत मे रहा और इन्ही की वशावलिया पुराणो मे उल्लिखित हैं तथा शेष राजो की पुश्तो की गणना मात्र दे दी गई है।

काशीराज्य

राम के समकालीन काशी नरेश (न० ४०) अलर्क के पीछे यह वश राजा (न० ५५) भद्रसेन तक चौथे अध्याय की वशावली में लिखा हुआ है, किन्तु पुराणो में अलर्क के पीछे कोई विशेष विवरण नही मिलता। अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका किसी काशी राज की कन्याये थीं, जिनका अपहरण विचित्रवीर्य के लिये भीष्म ने किया। इन्ही अन्तिम दोनो कन्याओ से कौरव पाण्डव वश चले। इसी प्रकार सूर्यवशी लव के प्रपौत्र सुदर्शन का विवाह किसी काशिराज की कन्या से होना कहा गया है, किन्तु उस काशिराज का नाम प्रधान वाली वशावली मे नहीं मिलता। द्वापर मे काशीराज्य की मुख्यता नही रही, किन्तु आदिम कलिकाल मे इसका प्रभाव बढ़ा, जैसा कि यथा-स्थान कहा जावेगा।

प्राचीन स्फुट राज्य

कान्यकुब्ज राज्य द्वापर में न था। यादव हैहय कुल का राज्य आदिम द्वापर में ही समाप्त हो गया, जैसा कि ऊपर त्रेता के कथन में आ गया है। द्वापर में भी उज्जैन आदि के कुछ राजाओ के कथन यत्र-तत्र आये हैं, किन्तु उनकी वशावली आदि का पता नही है, न उनके राजाओ के ही क्रम वद्ध कथन मिलते हैं। क्रथ कैशिक की वैदर्भी चेदि शाखा का कुछ कथन श्रीकृष्ण के विवाह सम्वन्ध मे हैं, जहां विदर्भ में एक क्रथ कैशिक वशा राजा मिलते हैं, किन्तु इनका भी

कोई विशेष क्रमबद्ध वर्णन नहीं है, जितना कुछ है वह श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में आवेगा। उसी विवरण में सूर्यवंशी यदु द्वारा स्थापित दो अन्य राज्यों के कथन मिलेंगे। महाभारत के सम्बन्ध में बहुतेरे राज्यों के नाम हैं जिनके पृथक विवरण यहाँ अनावश्यक हैं। उनमें मत्स्यपति विराट मुख्य हैं। ऊपर मगध के विवरण में आ गया है, कि वे वसु चैद्योपरिचर के वंशधर थे। तुर्वश वंश दुष्यन्त के समय पौरव हो गया, अर्थात पौरव वास्तव में थे तौर्वश, किन्तु कहलाये पौरव। तुर्वश वंशी यवनों का पृथक वर्णन अप्राप्त है। द्रुह्यु वंशी भोज और म्लेच्छ हुए। म्लेच्छ वे भारत के बाहर जाकर हुए और उनके पृथक इतिहास नहीं हैं। जो अन्य म्लेच्छों का इतिहास है वही उनका है। भोजों का भी पूर्ण इतिहास पुराणों में नहीं है किन्तु अन्य वर्णनों के सबंध में उनके स्फुट कथन मिलते हैं। पाश्चात्य आनव शाखा ने कई राज्य पंजाब, सिन्ध, राजपूताना आदि में स्थापित किए। इन देशों के राज्यों में कुछ द्रुह्यु वंशी भी होंगे। इन्हीं में भरत पुत्रों के सूर्यवंशी भी मिल गए। इन राज्यों में बहुतेरे महत्ता युक्त भी थे, किन्तु मध्यदेश से दूरस्थ होने से पुराणों में इनके पूर्ण इतिहास या वंश अकथित हैं। पौरव प्रतीप के समय उनके पौत्र बाल्हीक ने भी अपने मामा शिवि का राज्य बाल्हीक प्रान्त में पाया, जो पंजाब के उत्तर पच्छिम में है। भारत के स्फुट राज्यों के कुछ विवरण श्री कृष्ण और पाण्डवों की विजयों तथा महाभारतीय युद्ध के सम्बन्ध में आगे आवेंगे।

पूर्वीय राज्य अंग

आनव अंग शाखा में रामचन्द्र के समय में (नं० ४०) लोमपाद और (नं० ४१) चतुरंग थे। (नं० ४८) जयद्रथ के ब्राह्मणी माता तथा क्षत्रिय पिता की कन्या व्याहने से यह वंश आगे से सूत होगया। इस काल जाति भेद की कड़ाई समझ पड़ती है। (नं० ५१) पर एक दूसरे अंग नरेश हुए। शायद इन्हीं के समय जरासन्ध मागध ने अंग राज्य मगध में मिला लिया। अंग के पूर्व पुरुष, (नं० ४७) ब्रहन्मनस के दूसरे वंश में इस काल (नं० ५०) अधिरथ थे, जिनका कुन्ती का

किसी सूर्य नामक व्यक्ति से उत्पन्न कानीन आत्मज कर्ण पालित पुत्र था। इसके शौर्य का हाल सुनकर मगधेश जरासन्ध ने मित्र भाव से बुला इससे द्वन्द्व युद्ध किया और उसमे पराजित होने से कर्ण की प्रशसा करके खुशी खुशी अग राज्य फेर कर उसे मालिनी नगर मे प्रतिष्ठित किया। सम्भवतः इसी बात से अग ने भी कर्ण को अपना दत्तक पुत्र बनाया होगा। फिर भी महाभारत मे ये अधिरथ और उसकी स्त्री राधा के कारण अधिरथी तथा राधेय कहलाते थे। इससे जान पडता है कि इनका दत्तक विधान द्वैमुष्यायन की रीति पर हुआ होगा, जिससे ये अग और अधिरथ दोनो के पुत्र रहे। कर्ण पौरव सम्राट दुर्योधन के ऐसे प्रगाढ़ मित्र थे, कि अपने वास्तविक माता पिता कुन्ती और सूर्य के समझाने पर भी पाण्डव बन कर इन्होने सम्राट होना तक भी पसन्द न किया, क्योकि ऐसा करने से दुर्योधन का साथ छोडकर इन्हे पाण्डवो का सहायक बनना आवश्यक होता। दुर्योधन ही ने कर्ण को अग राज्य का अभिषेक किया। परशुराम से अस्त्र विद्या पाकर आप अर्जुन के समान ही योद्धा थे, किन्तु महाभारतीय युद्ध मे इनके रथ का पहिया कीचड मे फँस गया, जिससे अर्जुन द्वारा इनका निधन हुआ। इनके पुत्र (नं० ५४) बृषसेन उसी युद्ध में मारे जा चुके थे, सो तत्पुत्र (न० ५५) पृथुसेन अग नरेश हुआ। इसके पीछे इस कुल की वशावली नही मिलती, यद्यपि आदिम कलिकाल मे भी अंग राज्य बहुत काल पर्यन्त स्थापित रहा। कर्ण महादानी, सत्यभाषी और मित्र वत्सल था। दुर्योधन के लिये आपने भारत विजय भी किया। इनकी कथा महाभारत मे है। यह राज्य मगध के पूर्व था। जातक ५४५ राजगृह को मगध का शहर कहता है। शान्तिपर्व २९, ३५ मे, अग राज विष्णुपद गया में यज्ञ करता है। सभा पर्व में अग वग एक राज्य है। कथा सरित्सागर मे अग राज्य समुद्र पर्यन्त फैला हुआ है, जहां उसका शहर टकपुर है। महाभारत काल मे राजधानी मालिनी थी, किन्तु पीछे जातको मे चम्पा होगई।

पूर्वी राज्य प्राग्ज्योतिष

महाभारत के समय प्राग्ज्योतिषपुर एक राज्य था जिसके राजा

एक दूसरे के पीछे नरकासुर, तत्पुत्र भगदत्त एवं पौत्र वज्रदत्त थे। इसमे दक्षिणी आसाम तथा पूर्वी बगाल सम्मिलित थे। नरकासुर एक ब्राह्मण कुमार था जिसने काशी मे शिक्षा पाई। इसने अपने बाहु तथा बुद्धिबल से यह राज्य उपार्जित किया। अनन्तर मदोन्मत्त होकर इसने बहुतेरी कन्याओं को बल पूर्वक विवाहार्थ कैद किया, जिनका मोचन श्री कृष्ण ने किया। इसी युद्ध मे नरकासुर का कृष्ण चन्द्र के हाथ से वध हुआ। भगदत्त दुर्योधन का मित्र था। इसका हाथी खाम इन्द्र के गजराज ऐरावत के कुल मे उत्पन्न अथच बडा प्रबल था। कुछ योरोपीय पण्डितो का विचार है कि भगदत्त की सेना मे चीनी लोग भी थे। महाभारत युद्ध मे यह अर्जुन द्वारा मारा गया और वज्रदत्त राजा हुआ। यहां तक की कथा महाभारत तथा हरिवंश मे है। वज्रदत्त के पीछे क्रमशः धर्मपाल, रत्नपाल, कामपाल, पृथ्वीपाल, सुबाहु आदि इस वंश मे राजे हुए। इस राज्य का बगालवाले समुद्र तट का पूर्वी दक्षिणी भाग पाताल भी कहलाता था। पहाडी टिपरा तथा चिटगांव के पहाड़ी भाग कही कहीं नाग लोक माने गए हैं। सम्भवतः यहा नागो की भी बस्ती थी।

पूर्वीराज्य, बाणासुर

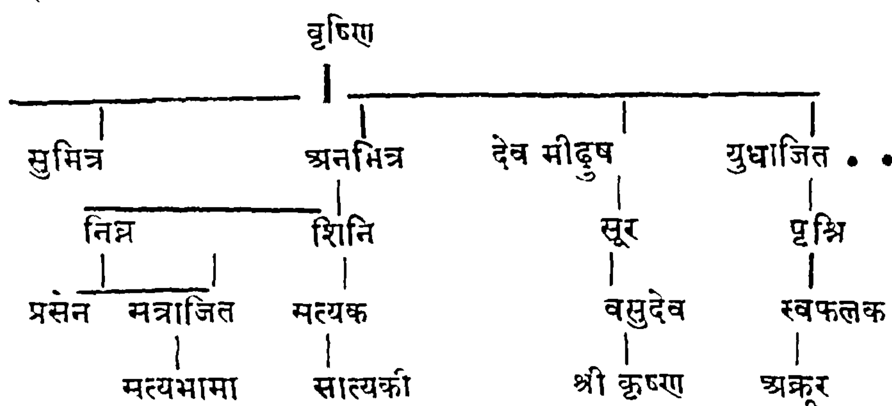
प्रायः भगदत्त के समय उत्तरी आसाम का स्वामी कोई बाणासुर था, जिसकी राजधानी शोणितपुर थी। यह नरकासुर का भी सखा तथा महादेव का भक्त था। इसकी पुत्री ऊषा का विवाह श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से हुआ। सम्भवतः बाणासुर इसी नाम के बलिपुत्र बाण का वंशधर हो। इसने या इसके किसी पूर्व पुरुष ने कलिंग राज्य स्थापित किया और पीछे इस वंश को उत्तरी आसाम जाना पडा। बोधायन के अनुसार उत्कल पतित आर्यों का देश है। हरिवंश में आया है कि ऊपा के विवाह मे जो बाण का कृष्ण से युद्ध हुआ, उसमे पराजित होकर यह कैलाश को चला गया और श्री कृष्ण ने इसके मन्त्री कुम्भाण्ड को राजा बनाया।

यादव राज्य

त्रेता के वर्णन मे आया है कि राम के पीछे भीम सात्वन्त, (नम्बर

४३) यादव ने शत्रुघ्न वंशियो से अपनी मथुरा वापस लेकर यादव बल पुन: जागृत किया। अनन्तर भीम सात्वन्त के पुत्र अन्धक, देववृद्ध और भजमान तथा पौत्र कुकुर और बभ्रु यादव पति हुए। इनमें देववृद्ध भजमान, और बभ्रु मुख्य शाखा के भाइयो मे थे तथा अन्धकात्मज कुकुर थे। कंस कुकुर के वंश मे थे और कृतवर्मा भजमान के। (नम्बर ४६) वृष्णि के मुख्य शाखा से इतर वंशधर अक्रूर हुए। इनका राज्य गुजरात मे था।

कंस भोजराज थे (ह, व० ५५, ३१०२, ४, ११३, ६२६३,६३८०, म० भा० VII ११ ३८८, ९) और अक्रूर गुजरात पति (वायु ९६, ६० ह व० ४०, २०९५, विष्णु IV १३, ३५, ७०,१४, २)। भोजवंशी मुख्य यादवो से इतर हैहय शाखा मे भी थे। उपर्युक्त देववृद्ध वंशी पश्चिमी मालवा के बनस (पर्णाश नदी पर) के स्वामी हुए (पार्जिटर)। भजमान के पुत्र बभ्रु भी यादवो मे विख्यात थे। (न० ४६) वृष्णि के अतिरिक्त एक दूसरे वृष्णि भी यदुवंश मे थे। इनका पूरा पुश्तनामा (प्रधान के अनुसार) प्राप्त नही है। उनका वंश इस प्रकार था:—



वृष्णि दो थे एक उपर्युक्त और पहले (न० ४६)। गीता मे श्री कृष्ण प्राय: वार्ष्णेय कहे गए है। फिर भी एक ही नाम होने के कारण पुराणों तक मे इस वंश कथन में गडबड है। पार्जिटर अक्रूर को (न० ४६) वृष्णि का वंशधर कहते हैं तथा प्रधान दूसरे का। प्रधान ने अधिक छानबीन के साथ वंशवृत्त लिखे हैं।

उग्रसेन (न० ५३) यादवपति के बेटे कंस ने इन्हे राज्यच्युत करके

स्वय सघपति की गद्दी पर अधिकार जमाया। उग्रसेन के भाई देवक की पुत्री देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ, जिससे श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। इनका कस से विगाड होगया, जिससे उसे मार कर फिर आपने उग्रसेन को राजा या सघपति बनाया। श्रीकृष्ण की कथा कुछ विस्तार के साथ कही जावेगी, किन्तु इससे पूर्व अनेक आधारो से इस वश के जो मामले ज्ञात होते है, उनके सूक्ष्म विवरण दे देना उचित है।

शूरसेनो एव मथुरा का कुछ हाल त्रेतायुग क इतिहास मे आ चुका है। अव उसके पीछे से उठाया जाता है। पाणिनि IV १, ११४, तथा VI २, ३४, मे अन्धक और वृष्णि है। कौटिल्य मे वार्ष्णेयो का सघ (प्रजातन्त्र-राज्य) था तथा महाभारत, XII ८१, ७५, मे भी वृष्णि अन्धकादि का सघ है। वासुदेव तथा उग्रसेन सघ मुख्य थे। पतञ्जलि तथा घटजातक मे कस वध कथित है। यादव ब्राह्मणो के शाप से नष्ट हुए (मुशल पर्व)। द्रोणपर्व १४१, १५, में वृष्णि अन्धक व्रात्य हैं। व्याकरण के नियमानुसार वसुदेव तथा वासुदेव दोनो का पुत्र वासुदेव है। पुराणो मे कृष्ण के पिता का नाम कही-कही वासुदेव है और कही वसुदेव।

अधक के राज्याभिषिक्त कुल म उग्रसेन और तत्पुत्र कस नामी हुए। कंस ने अपने चचा देवक पुत्री देवकी का विवाह उक्त प्रसिद्ध यदुवशी वसुदेव के साथ किया। वसुदेव के सात और स्त्रियाँ थी, जिनमें रोहिणी प्रधान थी। देवकी रोहिणी से भी प्रधान हुई। जिस काल कंस विवाहोपरान्त प्रेम पूर्वक अपनी वहिन का रथ स्वय हाँकते हुए उन्हे वसुदेव के यहा लिये जाते थे, तभी किसी महात्मा ने भविष्य भाषण किया, "हे कस! तू जिस भगिनी का इतना सम्मान करता है, उसी का आठवाँ पुत्र तेरा हन्ता होगा।" कस को इस भविष्यवाणी पर पूरा निश्चय बैठ गया और उसने उसी स्थान पर देवकी का सिर काटने को तलवार खीची। यह देख वसुदेव तथा अन्य यादव कुल वृद्धो ने कस को स्त्री-वध सा नृशंस कार्य करने से रोका। वसुदेव ने बचन दिया कि मै अपनी इस पत्नी के सब बच्चे तुम्हे दे दिया करूँगा। यह सुन कंस ने देवकी को छोड दिया।

वसुदेव ने क्रम से ६ पुत्र कंस को अर्पित किये और उसने उन्हें अपना शत्रु न समझ कर छोड़ दिया। देवकी का सातवाँ गर्भ अकाल में ही स्खलित हो गया। जब उनके आठवाँ गर्भ रहा, तब किसी ने कंस को यह कह कर भुला दिया कि आठ पदार्थों को कुण्डलाकार रखने से उनमें से कोई भी आठवाँ कहा जा सकता है। कंस आत्मबध के भय से ऐसा चलितधैर्य हो गया था कि उसने पूर्ण कादरपन दिखलाते हुए वसुदेव के उन छहों बच्चों का बध कर डाला और देवकी समेत उन्हें कारागृह में डाल दिया। इधर रोहिणी के संकर्षण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसकी रक्षा के निमित्त वसुदेव ने उसे रोहिणी समेत अपने मित्र नन्द गोप के यहाँ गोकुल भेज दिया। यह स्थान मथुरा से प्रायः १४ मील की दूरी पर है।

भादों मास की कृष्णाष्टमी को अर्द्धरात्रि के समय देवकी के गर्भ से श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ। कंस ने इनके वचन का विश्वास न करके इन्हें कारागार में बन्द किया था, इसलिये इन्होंने अपने को राजा से वचनबद्ध न समझ कर इस पुत्र के बचाने का प्रयत्न किया तथा रातों रात पुत्र को गोकुल पहुँचा कर नन्द की स्त्री यशोदा से उसी रात्रि में उत्पन्न हुई उसकी कन्या से अपना पुत्र बदल लिया। कहते हैं कि यह भेद यशोदा ने भी न जाना और कृष्ण को अपना ही पुत्र समझ कर उनका पालन पोषण किया। बौद्ध ग्रन्थ घटजातक में लिखा है कि यह बदलाव चोरी से न होकर प्रेमपूर्वक हुआ। जब कंस ने सुना कि देवकी के कन्या उत्पन्न हुई, तब उसने बड़ा आश्चर्य माना, क्योंकि भविष्य वाणी के अनुसार इसी बार उसका मारने वाला पुत्र होने को था। फिर भी किसी प्रकार का संदेह न रहने के विचार से उसने कन्या को भी मारकर अपना मुख काला किया। कुछ दिनों में उसे यह पता लग गया कि वसुदेव ने अपना आठवाँ पुत्र नन्द के यहाँ छिपा रक्खा था। उसने इस पुत्र को मारने के अनेक गुप्त उपाय किये, किन्तु वे सब निष्फल हुए।

श्रीकृष्ण की शारीरिक वृद्धि साधारण से बहुत अधिक हुई, यहाँ तक कि बारह वर्ष की ही अवस्था में उनके शरीर में युवा पुरुष के समान बल आ गया। इसी वर्ष उन्होंने अपने मामा कंस के पातक

असह्य समझ कर उसे युद्धार्थ प्रचारा और उसका वध कर डाला। राजा कंस ने केवल बाल वध और प्रजा पीडन ही नहीं किया था, वरन् वह अपने पिता उग्रसेन को कारागार मे डालकर राजा हुआ था। अब श्रीकृष्ण ने अपने बूढे नाना के अग्रज भाई को कारागृह मे निकाल कर फिर से उन्हे राज्य दिया। वास्तव मे उग्रसेन राजा न होकर सघ मुख्य मात्र थे, किन्तु कहे राजा ही जाते थे। दूसरे सघ मुख्य कृष्ण हुये। जिस काल श्रीकृष्णचन्द्र नन्द के यहाँ गोकुल और पीछे मे वृन्दा-वन मे रहते थे, तब इन्होने गान, वाद्य और नाच मे विशेष रुचि दिखलाई थी। इनके रासो मे वृषभानु की पुत्री राधा भी सम्मिलित होती थी, अतः इन दोनों मे भी बड़ी मित्रता होगई थी। पहले राधा का विवाह श्रीकृष्णचन्द्र के ही साथ होने वाला था, किन्तु जब यह प्रकट हुआ कि ये नन्दात्मज गोप न होकर वसुदेव-पुत्र यादव हैं, तब वृषभानु ने अपनी पुत्री का विवाह अजान गोप के साथ कर दिया। काली नामक एक नाग-सरदार वृन्दावन के निकट जमुना के किनारे रहता था। उसे भी द्वन्द्व युद्ध मे हरा कर श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी थी कि तुम जाकर अपने देश मे समुद्र के निकट रहो। सकर्षण और श्रीकृष्ण ने कस को जीत कर मथुरा का प्रबन्ध दृढ किया। श्रीकृष्णचन्द्र ने संकर्षण समेत शस्त्रो तथा शास्त्रो की शिक्षा अवन्तीपुरी निवासी सान्दीपनि ऋषि से प्राप्त की।

उधर कंस के मरने पर जरासन्ध की दोनो कन्याओं ने आकर पिता से अपनी विपत्ति कह सुनाई। जरासन्ध कंस वध से पहले ही क्रुद्ध था, सो अपनी दो कन्याओं को विधवा देखकर वह बहुत ही झुँझलाया। अब उसने एक प्रचड सेना सजाकर तथा वङ्गनरेश चित्रसेन, चेदिपति शिशुपाल, क्रथकैशिक पति और अनेक पूर्वोक्त अन्य राजाओ को साथ लेकर मथुरा पर आक्रमण किया। कई दिन तक भारी युद्ध हुआ और सकर्षण उपनाम बलराम से स्वय जरासन्ध ने गदायुद्ध किया। ये दोनो वीर गदायुद्ध मे परम पटु थे, इसलिये एक दूसरे को हरा न सके। एक लडके को गदायुद्ध में पराजित न कर सकने पर जरासन्ध विषण्णमन होकर सेना सहित मगधदेश को लौट गया। कुछ दिन में अपनी विधवा पुत्रियो की

करुणा से दु:खित होकर जरासन्ध फिर से मथुरा पर चढ़ दौड़ा किन्तु फल प्रथम आक्रमण के समान ही रहा।

इसी भाँति सम्राट् जरासन्ध ने मथुरा पर सत्रह धावे किये, किन्तु श्रीकृष्ण और बलराम ने यादवी दल को इस प्रवीणता से लड़ाया और वे भी अपने प्राचीन राज्य पर भारी सङ्कट समझ कर ऐसे जी तोड़कर लड़े कि भारत का यह सम्राट् उन्हें अपने वश में न कर पाया। फिर भी प्रति आक्रमण में यादवी शक्ति कुछ कुछ कम होती गई और जब जरासन्ध ने अट्ठारहवीं बार २० अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा को घेरने का प्रबन्ध किया, तब विकद्रु नामक यादव ने श्रीकृष्ण से कहा, "अब हम लोग जरासन्ध से एक बार लड़ने में भी नितान्त असमर्थ हैं।" इस बात का समर्थन कृष्णचन्द्र के पिता स्वयं वसुदेव ने भी किया। तब कृष्ण भगवान् ने कहा, "जरासन्ध को आप लोगों से कोई वैर नहीं है वरन् केवल हमसे और बलराम से है। इसलिये हम लोग उसके देखते हुये यहाँ से चले जायँगे, तब वह यादवों को कुछ भी कष्ट दिये बिना हमारे ही पीछे दौड़ेगा और आप लोग प्रसन्नता-पूर्वक रहियेगा। हम दोनों आदमी बाहर जाकर किसी न किसी भाँति इससे पीछा छुड़ा लेवेंगे।" इस बात पर सब की सम्मति स्थिर हुई और जरासन्ध के आने पर बलराम और कृष्ण ने कुछ देर लड़ कर दक्षिण का रास्ता लिया।

जरासन्ध सूनी मथुरा में किसी को सताना अपने महत्व के प्रतिकूल समझ कर इन्हीं दोनों भाइयों को खोजता हुआ सेना समेत दक्षिण को चला। राम और कृष्ण कई देश झँझाते हुए सह्याद्रि पर पहुँचकर वेणु नदी के किनारे वटवृक्ष के नीचे भीष्म के गुरु परशुराम से मिले। इन्होंने प्रणाम करके उनसे अपनी कथा कहकर सम्मति माँगी। उन्होंने कहा, "आप लोग इस काल करवीरपुर में हैं, जिसे यदु के पुत्र ने बसाया था। उनके वंशधरों को पराजित करके इस काल राजा शृगाल यहाँ राज्य करता है। वह बड़ा क्रूर पुरुष है, इसलिये आप का यहाँ ठहरना ठीक नहीं है। हम आपके साथ चलकर मार्ग बतलाते हैं। हम लोगों को वेणु नदी पार करके यज्ञ गिरि पर एक रात बसकर दूसरे दिन खद्योत नगर पार करना चाहिये।

यहाँ यदुपुत्र सारस का रचा हुआ क्रौंचपुर है। वहाँ के राजा महाकपि से मिलकर हम लोगों को गिरि गोमन्त (वर्तमान गोवा) को चलना होगा। उस स्थान पर जरासन्ध तुम्हें नहीं पा सकेगा।" इन लोगो ने ऐसा ही किया और गिरि गोमन्त से परशुरामजी राम और कृष्ण को वहीं छोड़ कर अपने स्थान को चले गये।

रामकृष्ण को वहाँ रहते हुए थोड़े ही दिन बीते थे कि जरासन्ध ने सेना समेत गिरि गोमन्त को आ घेरा। ढूँढने से इन दोनों भाइयो को न पाकर उसने चारो ओर से इस पर्वत पर आग लगा दी। पहाड़ पर अनेक झरने जलपूर्ण थे इसलिये जरासन्ध के जलाने से वह न जला और गड़बड़ में बहुत से योद्धाओं को मारकर ये दोनों निकल गये। इस प्रकार विफल-मनोरथ होने से जरासन्ध अपने अनुयायियों समेत बहुत हतोत्साह होकर मगध देश को चला गया, अकेला चेदिपति शिशुपाल अपनी सेना समेत वहीं रह गया। यह कृष्ण बलराम की फूफी का पुत्र था। इसलिये उनसे मिल कर बोला "मैं जरासन्ध के भय से उससे मिलकर रहता था और अब तुम्हारा अनुगामी बनूँगा। इस काल मैं चाहता हूँ कि मेरी सेना की सहायता लेकर आप मेरे लिये राजा शृंगाल से करवीरपुर जीत दीजिये।" यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र ने करवीरपुर घेर कर युद्ध में राजा शृंगाल का बध किया। यह देख पद्मावती नाम्नी उसकी पटरानी ने अपने पुत्र शक्रदेव को कृष्ण के सम्मुख खड़ा करके विनती की, 'जिस राजा को आपने मारा है उसी का यह पुत्र हाथ जोड़ कर आपके सम्मुख खड़ा है। इसलिये आप जो आज्ञा दें उसी का यह पालन करे।" यह सुन कर भगवान् को दया आगई और शिशुपाल की इच्छा के प्रतिकूल आप ने उसी बालक का अभिषेक करके उसे करवीरपुर का राजा बना दिया। इसके पीछे राजा शृंगाल के हरिताश्व रथ पर चढ़कर कृष्ण बलदेव मथुरा पधारे और शिशुपाल भग्नमनोरथ हो कर चेदिदेश को चला गया।

कुछ दिनों के पीछे श्रीकृष्ण को समाचार मिला कि कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी अपना विवाह उन्हीं के साथ करना चाहती थी और उसके पिता की भी यही सम्मति थी किन्तु

उसका भाई स्वयंवर करता था। यह सुन श्रीकृष्ण भारी सेना समेत कुण्डिनपुर पहुँचे और राजा कैशिक के यहाँ ठहरे। उन्होंने इनका उचित आतिथ्य किया। कृष्णागमन से चिन्तित होकर नृपसमूह भीष्मक के सभासदन मे मंत्र करने लगा। उस स्थान पर जरासन्ध ने इनकी सारी कथा कह कर प्रस्ताव किया कि इनके साथ सन्धि करनी चाहिये। राजा सुनीथ ने जरासन्ध की सम्मति का प्रतिपादन किया। राजा दंतवक्र ने भी कहा कि श्रीकृष्ण ने कभी अपनी ओर से किसी से वैर नही बढाया और वे अब भी कलह बचा कर क्रथ-कैशिक के यहां ठहरे है। जिसने इनसे नाहक वैर बढाया, केवल उसी को इन्होंने दण्ड दिया है। इसलिये इन्हे कलह के योग्य न समझ कर हम लोगो को इनके पास जाकर मित्रवत् मिलना चाहिये। राज-कुमारी जिसको चुनेगी, वही उसको पावेगा। इसलिये आपस में विग्रह से कोई लाभ नही है। यह सुन राजा शाल्व ने कहा कि पहले उनसे वैर बढाकर अब इस प्रकार दैन्य दिखाना क्या शस्त्रधारी क्षत्रियो को शोभा देता है? इसलिये हम लोगों को अपनी शान छोडना उचित नही और वैर प्रीति का निबाहना ही अच्छा है। यह सुन सब मानी राजा चुप हो रहे और उस दिन कुछ निश्चित न हो सका।

दूसरे दिन सब राजा लोग फिर राजसभा मे एकत्रित हुए। इतने में राजा क्रथकैशिक का भेजा हुआ देवदूत सभा मे पहुँचकर कहने लगा, 'क्रथकैशिक ने कहा है कि कृष्ण से निष्कारण वैर बढाने मे कोई लाभ नही है। इसलिये जरासन्ध, शाल्व, रुक्म और सुनीथ नामक चार भूपाल अशून्य हित कुण्डिनपुर में रह जावें और शेष सब राजे यहां पधार कर श्रीकृष्ण का अभिषेकोत्सव देखें, ऐसी मेरी विनती है।" यह सुन जरासन्ध की आज्ञा लेकर सब राजाओं ने ऐसा ही किया। क्रथकैशिक के यहां श्रीकृष्ण का राज्याभिषेक हुआ और एकत्रित राजाओं का वासुदेव ने वसन, रत्न और हाटक से पूजन किया। श्रीकृष्ण ने राजा भीष्मक को समझाया कि मुझे स्वयंवर में कोई विघ्न नही डालना है; आप, जिसे चाहे, सुखपूर्वक अपनी कन्या दे सकते हैं। यह कह कर श्रीकृष्णचन्द्र वहां से चल दिये और

उनके प्रभाव से चिन्तित होकर भीष्मक नरेश ने सब राजाओं के साथ कुण्डनपुर आकर सभा एकत्रित करके सारे भूपालों से कहा कि अब स्वयंवर में बड़ा विघ्न समझ पड़ता है, इसलिये आप मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिये।

यह सुन जरासन्ध, शाल्व, सुनीथ, दन्तवक्र, महाकर्म क्रथकैशिक, श्रीशत वेणुदार और काश्मीरनरेश मन्त्र करने के लिये वहीं रह गये और शेष राजे भीष्मक से विदा होकर मलिनमन अपने अपने देश को चले गये। अब इन सब की सभा जोड़कर राजा भीष्मक ने जरासन्ध को सम्बोधित करके कहा, "आप सब लोग नीतिनिपुण हैं और आपही की सम्मति से मैंने यह काम किया था। इसलिये अब उचित मन्त्र दीजिये।" इतना कह कर राजा भीष्मक ने अपने युवराज रुक्मी की ओर देखकर कहा, "वसुदेव-देवकी धन्य हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण सा पुत्र पाया। परमेश्वर सब को ऐसा ही पुत्र दे अथवा अपुत्र रक्खे।" यह सुन राजा शाल्व बोला, "हे भीष्मक! आपने क्रोध करके अपने पुत्र की निन्दा तो की किन्तु यह निन्द्य नहीं है, क्योंकि इसने भी परशुराम से शस्त्र-विद्या सीख कर प्रचण्ड शौर्य उपार्जित किया है। कृष्ण के सिवा रुक्मी का जीतने वाला संसार में कोई नहीं है। इसलिए मेरा कहना मान कर राजसमाज को चाहिये कि राजा कालयवन की सहायता लेकर श्रीकृष्ण का मान मर्दित करें।"

इस बात को सभी ने पसन्द किया और जरासन्ध ने भी कहा, "यद्यपि मेरा आश्रय छोड़कर नृपसमाज कुलटा पत्नी की भाँति अपराश्रित होना चाहता है, तथापि समय को विचार और सब का भला समझ कर मैं भी इसमें सहमत हूँ। मैं स्वयं पराश्रय ग्रहण करने के बदले युद्ध में लड़ना श्रेष्ठतर समझता हूँ, किन्तु आप लोगों को इस कार्य से न रोक कर समुचित दूत भी बताये देता हूँ। राजा शाल्व विहिताविहित-विचारी और बड़े ज्ञानी हैं। इनके पास आकाशगामी सौभ नामक विमान भी है। इसलिए इन्हीं को दूत बना कर कालयवन के पास भेजिए।" यह कहकर जरासन्ध ने शाल्व को आज्ञा दी, "तुम राजा कालयवन के पास जा मेरे आदेशानुसार व्यवहार बढ़ाकर उससे श्रीकृष्ण के जीतने का मन्त्र करना।" शाल्व ने इसको स्वीकृत

किया। तब आकाश-मार्ग से वे कालयवन के देश को प्रस्थित हुए और शेष राजे अपने अपने स्थान को चले गये।

शाल्व को देखकर राजा कालयवन ने मन्त्रियो समेत आगे बढ़कर अर्घ्यपाद्य देना चाहा, पर इन्होंने कहा कि हम इस काल अर्घ्य के योग्य नहीं हैं, क्योंकि जरासन्ध आदि राजाओं ने हमे दूत बना कर भेजा है और राजा के लिये दूत अर्घ्यार्ह नहीं है। यह सुन कालयवन ने कहा, "इस अवसर पर आप और भी अधिक पूज्य है क्योकि आपकी पूजा से सभो की पूजा हो जाती है।" यह कहकर दोनो राजे आनन्दपूर्वक मिले और एक ही सिंहासन पर जा बैठे। अब कालयवन ने पूछा, "जिस जरासन्ध की कृपा से हम सब राजे भयहीन रहते है, उसने क्या आज्ञा दी है सो कहिए।" यह सुन कर शाल्व ने कृष्ण-सम्बन्धी विग्रह का सारा वृत्तान्त कहकर कहा, "हम सब लोग केवल आपको कृष्ण के जीतने योग्य समझते हैं। इसलिए आप ही कृष्ण को मारकर राजमण्डल को आनन्द दीजिये और ससार मे उत्तम यश प्राप्त कीजिए। आपके पिता ने आपको ऐसी शिक्षा दी है कि कोई भी माथुर वीर आपके सम्मुख ठहर नहीं सकता।" यह सुनकर परम प्रसन्न हो कालयवन ने निवेदन किया, 'हे भूपालमणे! मै आज पृथ्वी पर धन्य हुआ और मेरे पिता का शिक्षण भी सफल हो गया, क्योकि सम्राट् जरासन्ध समेत सारे नृपमण्डल ने मुझे जगद्विजयी राम कृष्ण के जीतने योग्य समझ यह महत् कार्य सौंपकर युद्धार्थ निदेश दिया है। सब नृपगण के आशीर्वाद से मैं अवश्य जय प्राप्त करूँगा। यदि सब राजाओं के कार्य में मेरा शरीरपात भी हो जावे तो करोड विजयों से श्रेष्ठतर है।" यह कह कालयवन ने ब्राह्मणो को प्रचुर दान देकर युद्धार्थ तैयारी की और उसी क्षण परम शुभ मुहूर्त समझ कर तुरन्त मथुरा की ओर सेना समेत प्रस्थान किया।

उधर अभिषेक पाने के पीछे जब श्रीकृष्ण मथुरा पहुँचे तब राजा उग्रसेन ने इन्हे भूपाल समझ कर अर्घ्य देना चाहा किन्तु आपने निवारण करके कहा कि आपके लिए जैसे हम थे वैसे ही सदा रहेगे। पीछे कंस की माता ने कंस का सारा कोष भगवान को अर्पित किया, किन्तु

उदारतापूर्वक उसे भी वापस करके इन्होंने कहा कि मथुरा के राज्य और कोष में हमें कुछ प्रयोजन नहीं है। अब श्रीकृष्ण पूर्ववत् रहने लगे। थोड़े ही दिनों में कालयवन सम्बन्धी सारा समाचार सुनकर आपने निश्चय किया कि सब राजाओं से शत्रुता करके हम क्षेमपूर्वक मथुरा में नहीं रह सकेंगे। इस विचार से गरुड़ नामक अपने मित्र से सम्मति करके आपने रैवत गिरि के समीप एकलव्य की रची हुई द्वारकापुरी में रहना स्थिर किया। राजा उग्रसेन ने यह विचार सुनकर विनती की कि हम सब लोग भी आपकी सहायता बिना यहाँ नहीं रह सकेंगे, इसलिए हमें भी द्वारका ले चलिए। भगवान ने यह सम्मति स्वीकार की और सब यदुवंशी मथुरा छोड़ द्वारका को चले गये। द्वारका के स्वामी ने इनका रोकना अपनी शक्ति से बाहर समझ कर किसी प्रकार की आपत्ति न की और यदुवंशी लोग सुखपूर्वक वहाँ बस गये। सब को यथासम्भव पूरा सुपास देकर श्रीकृष्णचन्द्र अकेले मथुरा लौट गये।

इतने में कालयवन ने सेना समेत वहाँ पहुँच कर दुन्दुभी बजाई। श्रीकृष्ण ने उससे कुछ युद्ध करके एक ओर का रास्ता लिया और वह सेना समेत इनके पीछे लगा। श्रीकृष्णचन्द्र ने भागते हुए बहुत दूर जाकर उस गिरि गुहा में प्रवेश किया जिसमें राजा मुचकुन्द सोते थे। आप वहीं छिप रहे। कालयवन ने भी दो चार अनुयायियों समेत उसी में घुस मुचकुन्द को कृष्ण समझ कर एक लात लगाई। यह राजा मुचकुन्द बड़ा बलवान् था, सो पाद प्रहार से क्रुद्ध होकर इसने उठते ही कालयवन का वध कर डाला। स्वामी का वध देखकर उसकी सेना तितर बितर हो गई। अब राजा मुचकुन्द से उचित वार्तालाप करके श्रीकृष्ण द्वारका चले आये और महाराजा मुचकुन्द हिमाचल पर जा कर तपस्या करने लगे।

द्वारका जाकर श्रीकृष्ण के मतानुसार यादवों ने उस पुरी का निर्माण किया। अब असीम उदारता दिखलाते हुए श्रीकृष्ण ने उग्रसेन को वहाँ का भी राजा बनाया और उनके पुत्र अनाधृष्ट को सेनापति किया। उद्धव, कङ्क, विकद्रु, गद, स्वफलक, विपृथु, चित्रक, पृथु और सात्यकि विविध विभागों के मन्त्री बनाये गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने

९ मन्त्रियों की प्रणाली बनाई, जैसे इधर शिवाजी ने अष्ट मन्त्रियों की स्थापना की। सात्यकि युद्धसचिव बनाये गये, सान्दीपनि ऋषि पुरोहित और दारुक स्वयं कृष्ण के सारथी। राजा रैवत ने अपनी पुत्री रेवती का विवाह बलराम के साथ किया।

कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक का वर्णन ऊपर आ चुका है। ये महाशय यदुसुत क्राष्टा के वंशज थे। विदर्भ भीष्मक के पूर्व पुरुष थे। इनका राज्य विन्ध्य शैल के दक्षिण विदर्भ देश में था और उसकी राजधानी कुण्डिनपुर थी। जरासन्ध के पूर्व पुरुष बृहद्रथ के पिता उपरिचर वसु के वंश में दमघोष नाम का राजा हुआ था। यह दमघोष उपरिचर वसु के मागध वंश से पृथक् था। इसका राज्य चेदि देश में था। श्रीकृष्ण की फूफी श्रुतिश्रवा इसको व्याही थी। इन्हीं दोनों का पुत्र चेदिपति शिशुपाल था। शिशुपाल को जरासन्ध ने सदैव पुत्रवत् माना। उपर्युक्त सम्बन्धों के वर्णन से प्रकट है कि यद्यपि श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव राजा न थे, तथापि तात्कालिक कई राजाओं से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। कुन्तिभोज, कंस, शिशुपाल और पाण्डु इनके निकट के सम्बन्धी थे।

राजा भीष्मक ने रुक्मी के मत से विवश होकर अपनी कन्या रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ स्थिर किया। तब रुक्मिणी जी ने ब्राह्मण द्वारा श्रीकृष्ण के पास पत्री भेजी, "आप मुझ को इस दुर्घटना से बचाइये।" यह सुन बलराम के साथ एक भारी सेना लेकर श्रीकृष्णचन्द्र कुण्डिनपुर पहुँचे। जब रुक्मिणी गौरी का पूजन करके लौटने को हुई, तभी उपयुक्त समय समझ कर श्रीकृष्ण ने उन्हें रथ पर बिठला द्वारकाका रास्ता लिया और बलराम सेना समेत मार्ग रोक कर युद्धार्थ खड़े रहे। अब दोनों दलों में प्रचण्ड युद्ध होने लगा, किन्तु इसे व्यर्थ समझ कर रुक्मी ने श्रीकृष्ण के पीछे अकेले जाने का विचार किया। उसने प्रतिज्ञा की, 'यदि श्रीकृष्ण को मार कर रुक्मिणी न वापस लाऊँ, तो लौट कर इस नगर का मुख न देखूँगा।" ऐसा कह और प्रचण्ड कोदण्ड उठाकर रथारोही रुक्मी श्रीकृष्ण के पीछे परम वेग से धावित हुआ। राजा अंशुमान, वेणुदार तथा श्रुतर्वा रुक्मी के साथ चले। इन लोगों ने नर्मदा के पास जाकर श्रीकृष्ण से प्रचण्ड

युद्ध किया। श्रीकृष्ण ने सहज ही में अंशुमान और श्रुतर्वा को मूर्छित कर दिया और वेणुदार का दक्षिण बाहु छेद दिया। रुक्मी ने कृष्ण के साथ बहुत देर तक भारी युद्ध किया किन्तु अन्त में श्रीकृष्ण उसे मूर्छित करके रुक्मिणी को साथ लिये द्वारावती चले गए। राजाओं को युद्ध में जीतकर बलराम भी द्वारका वापस आये। उधर श्रुतर्वा रुक्मी और शेष दोनों साथियों को रथ पर डालकर कुण्डिनपुर की ओर चला। रास्ते में चेत कर रुक्मी प्रतिज्ञा भङ्ग होने के कारण कुण्डिनपुर में प्रवेश न करके वहाँ से दक्षिण भोजकट नामक नया नगर बसाकर वहीं रहने लगा।

इधर श्रीकृष्णचन्द्र ने रुक्मिणी के साथ विधिवत ब्याह करके दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम यह थे—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, सुषेण, चारुगुप्त, चारु, चारुबाहु, चारुविन्द, भद्रचारु और चारुक। इनके अतिरिक्त चारुमती नाम्नी एक कन्या भी हुई। रुक्मिणी के अतिरिक्त श्रीकृष्ण के सात और पटरानियाँ थीं अर्थात् कालिन्दी उपनाम यमुना (सूर्य की पुत्री), मित्रविन्दा (अवन्तिराज की कन्या), सत्या (अवधनरेश नग्नजित् की पुत्री), जाम्बवती (जाम्बवान् ऋक्ष की पुत्री), भद्रा उपनाम रोहिणी (केकय-पति की पुत्री) सुशीला (मद्रराज की कन्या) और सत्यभामा (सत्राजित् की लड़की)। इनके अतिरिक्त शैव्यराज की पुत्री लक्ष्मणा इनकी नवम रानी थी। सभी रानियाँ पुत्रवती थीं। पुत्रों में प्रद्युम्न, साम्ब, सट सारण और गद की प्रधानता थी। साम्ब मुल्तान में सूर्य्य मंदिर बनवा कर शाकद्वीप से ब्राह्मणों को लाये। आर्य भट्ट और वराहमिहिर शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। प्रद्युम्न ने काल शम्बर तथा वज्रनाभ नामक प्रसिद्ध नरेशों को युद्ध में मारा। भगवान के पौत्रों में अनिरुद्ध और वज्र प्रधान थे। समय पर रुक्मी की कन्या सुभागी का स्वयम्बर हुआ और उसने कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न को पति चुना। यह विवाह प्रेमपूर्वक हुआ। इन दोनों के पुत्र कुमार अनिरुद्ध हुए।

समय पर रुक्मिणी ने रुक्मी की पौत्री के साथ अनिरुद्ध का विवाह रुक्मी को पत्र लिख कर स्थिर किया। इस विवाह में रुक्मी ने खोटाई करके बलराम जी के साथ द्यूतारम्भ किया और जब वे हारे

तब हँसी मजाक मे अनेक दुर्वचन कहे। जब बलरामजी जीते, तब भी रुक्मी और उसके साथी राजाओ ने बेईमानी करके अपनी ही जीत बतलाई। इस पर सभासदो ने बलराम के ही पक्ष मे निर्णय किया। अब राम ने क्रुद्ध होकर मोहरो की भरी हुई एक थैली उठा कर रुक्मी के हृदय मे जोर से मार दी जिससे उसका शरीरान्त हो गया। कलिङ्ग-पति दाँत निकाल कर हँसा था, अतः उसके मुँह पर लात मार कर इन्होने उसके दाँत गिरा दिये। यह करके आपने जनवासे मे जाकर श्रीकृष्ण से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होने भावी गति कहकर रुक्मिणी को समझाया और विवाहोपरान्त सब द्वारका लौट आये।

भगवान् श्रीकृष्ण ने प्राग्ज्योतिष नरेश नरकासुर का अधर्म सुनकर उसकी राजधानी मे जा और उसका बध करके बहुत सी कुमारिकाओ का कष्ट मोचन किया। फिर उसके पुत्र भगदत्त को राजा बनाकर आप वापस चले आये। इन्होने उग्रसेन की आज्ञा से काशी पुरी मे पौंड्रक को युद्ध मे मारा। श्रीकृष्ण ने धर्मराज्य स्थापन करने का पूर्ण प्रयत्न किया। आपने युद्ध मे शौर्य और विजय मे क्षमा का सदैव पूर्ण आदर्श दिखलाया। इन्होने उजडी हुई द्वारका को लिया किन्तु किसी और विजित राजा का राज्य नही छीना। अपने सब संबन्धियों के साथ इन्होने सदैव यथायोग्य व्यवहार किया और यादव संघ को चिरकाल तक भली भाँति चलाया। व्यवहार (क़ानून) का सुस्थापित न होना तथा नेताओ के सम्बन्धी अथच इतर तरुणों का अनियन्त्रित हो जाना, संघो पर विपत्ति लाते हैं।

भगवान के समय यादवो मे अन्धक, वृष्णि, यादव, कुकुर और भोज नामक पाच विभाग थे। ये पाँचो बाहर वालों के लिये मिले रहते थे, किन्तु आन्तरिक प्रबन्ध में हर एक को स्वतन्त्रता थी। भोजो के नेता अक्रूर थे तथा इनमे बलदेव जी का भी सहयोग था। श्रीकृष्ण से मुख्य होड करने वाले प्रतिद्वन्दी बभ्रु थे, किन्तु मुशल पर्व के पूर्व वास्तविक युद्ध नही हुआ। केवल पैतडेबाजी सी रहती थी। श्रीकृष्ण और उग्रसेन संघ मुख्य थे। मुशल युद्ध के पीछे भी बभ्रु बच गये। शान्ति पर्व राजधर्म २१वें अध्याय मे भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि

सकर्षण बल मे मस्त रहते है. गद सुकुमारता और प्रद्युम्न सौन्दर्य मे तथा स्वयं भगवान को अच्छे सहायक नही मिलते अथच आहुक और अक्रूर अधिकार प्राप्त करते जाते है। यादवो का संघ (Confederation) मात्र था जो अन्त मे बिगड कर मिट गया जैसा कि आगे के अध्याय मे आवेगा। प्राचीन भारत मे प्रजातन्त्र को गण कहते थे और सूद मुरक्कब (Compound interest) को चक्रवृद्धि। सरस्वती एव दृषद्वती से प्रयाग तक मध्यदेश था। बौद्ध ग्रन्थो मे बिहार तक इसी मे है। इसकी पूर्वी सीमा कजगल (सन्थाल परगना का कांकजोल) है। इसके पूरब, दक्खिन, पच्छिम और उत्तर के देश क्रमश. प्राची. दक्षिणापथ, अपरान्त या पश्चिम तथा उत्तरापथ है। यह अन्तिम नाम बहुधा पञ्जाब का है।

अब भगवान श्रीकृष्ण का कथन फिर से उठाया जाता है। गान, वाद्य तथा नृत्य मे इनकी अलौकिक गति थी। इन सरस गुणो को रखते हुये भी दर्शन-शास्त्र मे नीरस विषय पर भी इनका प्रगाढ अधिकार था। भगवद्गीता का जगत्प्रसिद्ध ज्ञान इन्ही ने संसार को सिखलाया, जिसका वर्णन यथास्थान किया जावेगा। धर्म और पूजन मे इनकी उपयोगितावाद पर विशेष रुचि थी। इनकी बाल्यावस्था मे गोप लोग इन्द्र का पूजन करने वाले थे, तब इन्होने शिक्षा दी थी कि गोपो के लिये इन्द्र की अपेक्षा गोवर्धन गिरि विशेषतया पूज्य है, क्योंकि गिरि और कानन से हमारा गोधन प्रसन्न रहता है और जिसकी जीवनवृत्ति जिस पदार्थ से है उसके लिये वही पूज्य है। इनके इस उपयोगितावाद को गोपो ने स्वीकार किया था और तभी से इनको गोविन्द की उपाधि मिली थी। श्रीकृष्ण की उदारता विजित राजाओ तथा उग्रसेन से जैसा व्यवहार हुआ उससे विदित होती है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणो को इन्होने कई बार बहुत दान दिया। सुदामा का दान इस कथन का उदाहरण है। ससार मे अनेकानेक गुणी हो गये हैं और बहुत से लोगो न अनेक गुणो मे भी योग्यता सपादन की है, किन्तु जितने और जैसे अनमिल गुणो मे भगवान का प्रगाढ अधिकार था वैसा दूसरा उदाहरण ससार मे पाना कठिन है। आप मित्रवत्सल ऐसे थे कि इन्ही की सहायता से राजा युधिष्ठिर सम्राट् हो गये,

किन्तु इन्होंने सामर्थ्य रखते हुए भी अपने लिये सम्राट् क्या राजपद की भी कभी इच्छा न की। परम प्रभावशाली हो जाने पर भी आपने अपने बालसखाओं को न भुलाया और प्रभास क्षेत्र पर गोप-गोपियों को निमन्त्रित करके उनके साथ पूर्ववत वात्सल्य भाव दिखलाया। भारत मे विष्णु भगवान् के दस अवतार माने गये हैं, जिनमे चार की भारी प्रधानता है, अर्थात् वामन, रामचन्द्र, कृष्ण और गोतम बुद्ध की। पंडितों ने श्रीकृष्णचन्द्र को इन्हीं कारणों से कदाचित षोडश कला का पूर्ण अवतार माना है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अवलोकन से विदित होता है कि "देवकीनन्दन कृष्ण" दर्शन-शास्त्र मनन करने के उत्साही थे। स्वामी शंकराचार्य्य का निराधार कथन है कि ये दर्शन शास्त्री कृष्ण घोर वंशी ब्राह्मण थे न कि वासुदेव कृष्ण। उनके पास कोई ऐसा आधार अवश्य होगा जो अब अप्राप्त है। यदु-वंश का यह इतिहास हरिवंश और श्री भागवत के आधार पर लिखा गया है।

इस काल के आर्य राजा लोग परम धार्मिक तथा दृढ़प्रतिज्ञ हुए और ब्राह्मणों का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता गया। राजाओं में वृद्धावस्था आने पर राज्य छोड़कर वानप्रस्थाश्रम का विधान दृढ़ता को प्राप्त हुआ और बहुत से राजाओं ने अपने उदाहरण द्वारा इस रीति को आदर दिया। वानप्रस्थ का विधान ब्राह्मणों, राजपुत्रों तथा साधारण प्रजा मे भी बड़ी दृढ़ता से स्थिर हुआ और इसके नियमापनियम पुष्ट करने के विचार से आरण्यक नामक ग्रन्थों की रचना हुई। बहुत से ब्राह्मणों ने शस्त्रविद्या मे भी प्रवीणता प्राप्त की और समय समय पर ऋचीक, जमदग्नि, दो परशुरामों, अगस्त्य और द्रोणाचार्य्य ने इस विषय मे ख्याति पाई। क्षत्रियों ने युद्ध-विद्या की अच्छी उन्नति की और सारे भारतवर्ष में ब्राह्मण सभ्यता का विस्तार किया।

इस काल उत्तरी भारत से शोणितपुर को छोड राक्षसों दैत्यों आदि का अधिकार पूर्णतया उठ गया और मध्य तथा पश्चिमी भारत मे भी आर्य-सभ्यता पूर्णरूपेण फैल गई। राज्य छीनने के लिये कोई राजा दूसरे को प्राय नहीं जीतता था। राजाओं मे विजय बहुत करके प्रभाववर्धनार्थ ही होती थी। किसी नवीन शक्ति के उठने पर सब

राजा लोग मिल कर उसे दबाने का प्रयत्न करते थे। यह रीति इसी काल में स्थिर होकर मुसलमान काल पर्यन्त भारत में पाई जाती है। इस काल के राजाओं में आपस में भाईचारे का व्यवहार बहुत दृढ़ देख पड़ता है। किसी भारी घटना के होने पर बहुत से राजा आपस में मिल कर प्रायः मन्त्रणा किया करते थे। राजा भीष्मक की सभा में सब राजा कृष्ण से मेल करना चाहते थे, किन्तु अकेले शाल्व ने सब की राय फेर दी और सभा ने शत्रुता ही की सलाह ठीक रक्खी। राजकुमार विद्या-प्राप्ति के लिये प्रवीण गुरुओं के यहाँ दूर देशों में जाकर परिश्रम करते थे। इस कथन के उदाहरण भीष्म कर्ण रुक्मी और श्रीकृष्णचन्द्र हैं।

चातुर्वर्ण्य की प्रणाली बहुत दिनों से जन्मज हो गई थी। इसकी दृढ़ता दिनोंदिन बढ़ती गई किन्तु विविध वर्णों में विवाहादि बराबर होते थे। एक ही गोत्र में भी विवाहों की विधि थी तथा मामा, फूफू आदि की कन्याओं के साथ विवाह की कोई रोक न थी। विविध वर्णों में खान-पान सम्बन्धी कोई निषेध न था और जातियों में ऊँच-नीच के विचार नहीं उठे थे। व्यापार बहुत करके बनजारा आदि के द्वारा चलता था। समुद्र यात्रा का कथन बहुतायत से नहीं है। पाश्चात्य पण्डितों का विचार है कि भारतवासी यूनानियों को ही यवन कहते थे किन्तु हम इसी काल से ही भारतीयों का कालयवन से सम्पर्क देखते हैं। यह नहीं विदित होता है कि कालयवन कहाँ का राजा था किन्तु जान पड़ता है कि यह कहीं बाहर से भारत में बुलाया गया था। रावण का पुष्पक और शाल्व का सौभ नामक विमान आकाश में उड़ते थे। उपरिचर वसु के पास भी व्योमयान था। इनके अतिरिक्त व्योमयान केवल देवताओं के पास कहे गये हैं। जान पड़ता है कि ये बने तो अवश्य थे किन्तु इनकी उन्नति नहीं हुई थी। सारांश यह कि इस काल में प्रायः सभी बातों में भारतीयों ने अच्छी उन्नति की।

पन्द्रहवाँ अध्याय



महाभारत

दसवीं शताब्दी बी० सी०

यह अध्याय मुख्यतया महाभारत पर आधारित है। गत अध्याय मे कौरवो पांडवो की उत्पत्ति का कथन हो चुका है। अपने भ्रातृकुल मे बहुत से कुमारो के होने से प्रसन्न होकर पितामह भीष्म ने उनकी शिक्षा का प्रबन्ध उत्तम रीति से करना चाहा। महाराजा शन्तनु ने दो अनाथ ब्राह्मण बालको (बालक-बालिका) को एक तालाब के किनारे मे उठवा कर पाला था। उनके नाम कृप और कृपी रक्खे गये। कृप ने शास्त्राभ्यास भली भाति करके परशुराम से शस्त्रविद्या भी सीखी। इन्होने वृष्णि यादव आदि कुल के अनेक राजकुमारो को विद्या देकर आचार्य पदवी पाई थी। कृपाचार्य्य जनक के पुरोहित शतानन्द के वशधर थे। कृपी का विवाह प्रसिद्ध धनुर्धर द्रोणाचार्य के साथ हुआ था। इन्होने भी पूरा शास्त्राध्ययन किया और शस्त्र-विद्या मे भी बडी उत्कट प्रवीणता प्राप्त की थी। ये महाशय महर्षि भरद्वाज के पुत्र अथवा वशज थे। पहले इन्हे शस्त्र-विद्या-प्राप्ति की भारी उत्कण्ठा न थी। इन्होने मुख्यतया शास्त्राध्ययन किया था। एक बार धन मागने के लिए महात्मा परशुराम के पास द्रोणाचार्य ऐसे समय मे पहुँचे, जब कि वे अपना सारा धन ब्राह्मणो को बाट चुके थे और जगल जाने वाले ही थे। उन्होने इनकी धनेच्छा समझ कर नम्रतापूर्वक कहा, "प्रियवर! मै अपनी सारी पृथ्वी कश्यप को दे चुका हूँ और सारा धन-धान्य ब्राह्मणो को बॉटकर इस काल बन-वास ही के लिए चलने को हूँ। अब तो मेरे पास केवल शस्त्र-विद्या और शरीर शेष हैं, इसलिये इन दोनो मे से जो आप मांगें वही

प्रस्तुत हैं"। यह सुनकर द्रोणाचार्य ने विनती की, "हे दानिशिरोमणे! आप प्रयोग, संहार तथा रहस्य विधान सहित सब अस्त्र शस्त्र मुझे दीजिए।" तब गुरुवर परशुराम ने द्रोणाचार्य को उनकी इच्छा के अनुसार शस्त्रास्त्र-विद्या भली भांति सिखला दी और इन्होंने भी उस को पूर्णतया सीख कर अद्वितीय गौरव प्राप्त किया। अनन्तर अग्निवेश ऋषि से आपने आग्नेयास्त्र पाया। यह अस्त्र उन्हें भरद्वाज ही ने दिया था।

इधर पौरव राजकुमारों को कृपाचार्य शस्त्र एवं शास्त्र की शिक्षा देते थे। भीष्म-पितामह की इच्छा हुई कि कोई प्रवीणतर गुरु पौत्रों की शिक्षा के लिए बुलाना चाहिये। एक दिन भारत-राजकुमारगण गुल्ली-डंडा खेल रहे थे कि गुल्ली अकस्मात् एक निर्जल कूप में जा पड़ी। उसी के पनघट पर द्रोणाचार्य विराजमान थे। सब कुमार गुल्ली निकालने के अनेक प्रयत्न करके विफलमनोरथ रहे। यह देख द्रोणाचार्य ने हँस कर कहा, "तुम लोग भरतवंशज होकर कुएँ में से एक गुल्ली नहीं निकाल सकते? देखो मैं ब्राह्मण होकर गुल्ली क्या एक मुंदरी तक सींकों से बेधकर बाहर निकाले देता हूँ। यह कह कर द्रोणाचार्य ने धनुष उठा कर सींक से गुल्ली बेध दी और दूसरी सींक से उस सींक को बेधा। इसी प्रकार बेधते हुए सींकों के ही द्वारा गुल्ली कुएँ के बाहर कर दी। यह देख राजकुमार युधिष्ठिर ने एक मुद्रिका कुएँ में डाल कर बिनती की कि वह भी निकाली जाय। द्रोणाचार्य ने उसे भी गुल्ली की भांति सींकों के ही द्वारा निकाल दिया।

यह देख कुमारों ने परम प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य का विवरण भीष्म पितामह को जा सुनाया। यह सुन गांगेय ने समझ लिया कि जैसा उपयुक्त गुरु वे चाहते थे वैसा ही अकस्मात् मिल गया। अब परम प्रसन्न होकर स्वयं भीष्म पितामह द्रोणाचार्य के पास पधारे और प्रणाम करके सब हाल पूछने लगे। द्रोणाचार्य ने अपनी शिक्षा का वर्णन करके कहा, "कृपाचार्य की भगिनी कृपी से मैंने पितृवियोग के अनन्तर पुत्रेच्छा से विवाह किया था, जिससे अश्वत्थामा नामक तनय प्राप्त हुआ। मैंने धन की कभी इच्छा न की थी, इसलिए मेरे पास एक गौ तक न थी, किन्तु पुत्र वणिकसुतों को दूध पीते देख उसके लिए मचलने

लगा। दूध के अभाव में मैं चावल बाट, पानी में घोल, पुत्र को दूध कहकर पिला देता था और वह बाल्यवश उसको पीकर आनन्द में नाचता था। यह दशा देख मेरे पड़ोसी कहने लगे कि इस ब्राह्मण द्रोण को धिक्कार है जिसे कहीं धन ही नहीं मिलता और जिसका पुत्र क्षीर समझ पिष्टोदक-पान से नाचता है। यह सुन मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई और मैंने समझा कि मेरी गृहस्थी भली भांति नहीं चल रही है। मैं तपस्या छोड़ धनोपार्जन का कार्य निन्द्य समझता था और शुद्ध प्रतिग्रह छोड़ दूषित दान नहीं लेना चाहता था। इसीलिए मुझे इतना कष्ट हुआ।"

द्रोणाचार्य ने फिर कहा, 'बालवय में पांचाल राजकुमार द्रुपद महर्षि अग्निवेश के आश्रम में मेरा सहपाठी था और मुझसे कहता था कि वयस्क होने पर उसका राज्य मेरे ही अधीन रहेगा। इसीलिए इस विपत्ति में पड़कर अपने बालसखा द्रुपद का स्मरण करके मैं सकुटुम्ब पांचाल देश पहुँचा और द्रुपद को राज्याभिषिक्त सुनकर प्रसन्न हुआ, किन्तु मिल कर जब मैंने उसे मित्र कहकर सम्बोधित किया, तब मिथ्या आत्मगौरव के घमण्ड में वह ऐसा चूर हुआ कि मेरे कथनों से अपनी भारी मानहानि समझ कर कहने लगा कि ऐसे भिखमंगों के सखा राजा नहीं होते। उसका यह अनुचित गर्व देख कर मैं एक मानसिक प्रण कर चुका हूँ, जिसे समय पर पूरा करूँगा। अब मैं यहां उपस्थित हुआ हूँ और आपकी कामना पूरी करने को तय्यार हूँ। इसलिये आप जो कहें सो मैं करूँ।" यह सुन पितामह ने कहा, "आप मुझे भाग्यवश मिल गये, अब मुझ पर अनुग्रह करके यहीं विराजिये। कुरु कुल में जो वित्त है उसके आप ही स्वामी हैं और जो यह राज्य है उसके आप ही राजा हैं। यह कुरुवश आज से आप ही का हो चुका। आपको जो कुछ वाञ्छित हो उसे तुरन्त संपादित समझिये और इन पुत्रों को सद्विद्यादान कीजिये।" यह कहकर द्रोण का सविधि पूजन करके भीष्म ने विविध भांति के धन-धान्य से युक्त चारु सदन उन्हें समर्पित किया और कौरव-कुमारों को शिष्य बनाने के लिये उन्हें सौंप दिया।

द्रोणाचार्य ने इस योग्य सत्कार से परम प्रसन्न हो कर नियम के

साथ कुमारों को शस्त्र-विद्या सिखलाना आरम्भ किया। अर्जुन और कर्ण धनुर्विद्या में श्रेष्ठ हुए और दुर्योधन तथा भीम गदायुद्ध में। पीछे से इन दोनों ने श्रीकृष्ण के भाई बलराम से भी गदायुद्ध की उच्च शिक्षा पाई। कर्ण ने द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र सीखने का भी प्रस्ताव किया किन्तु इन्होंने उत्तर दिया कि ब्रह्मास्त्र का प्रयोग केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय के योग्य है न कि शूद्र के। यह सुन द्रोण से विद्या-प्राप्ति में भग्नोत्साह हो कर पराक्रमी तथा महत्त्वाकांक्षी कर्ण महेन्द्रगिरि पर चला गया और अपने को ब्राह्मण कह कर परशुराम से पूरी विद्या प्राप्त करने में समर्थ हुआ।

एक बार कर्ण की जंघा पर शीश रखकर परशुराम सो गये। उसी समय अकस्मात् एक कीड़ा नीचे से आकर कर्ण की जांघ को ऐसे स्थान पर काटने लगा कि जहां बिना जांघ उठाये उसका निवारण नहीं हो सकता था। कर्ण ने गुरु की निद्रा भंग न करने के विचार से जंघा नहीं हिलाई, यद्यपि कृमि के काटने से उसमें रुधिर की धारा बहने लगी। शोणित के सिर में लगने से महर्षि परशुराम जाग पड़े और सारा वृत्तान्त सुन कर कर्ण के कष्टों पर बड़े दुखित हुए, किन्तु यह भी ताड़ गये कि कष्ट में इतना शारीरिक धैर्य ब्राह्मण के लिये कठिन है, अतः यह मेरा शिष्य कोई क्षत्रिय समझ पड़ता है। उनके पूछने पर कर्ण ने सारा हाल कह सुनाया। परशुराम ने उसकी झुठाई पर कुछ क्रोध किया किन्तु उसके असीम धैर्य एवं शस्त्र-प्राप्ति की उद्दाम इच्छा से मुग्ध होकर उसे शिष्यत्व से अलग नहीं किया और श्रम करके पूरा वीर एवं शस्त्र विद्या-पारंगत बना दिया। अंत में गुरु से आशीर्वाद पाकर कर्ण अपने घर वापस गया।

इधर द्रोणाचार्य कौरव पाण्डवों को विधिवत् शस्त्र-विद्या सिखलाते रहे। इसी बीच में किराताधीश हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य द्रोणाचार्य से शस्त्र-विद्या सीखने के लिये आया। इन्होंने किरात को नीच समझ कर शिष्य न बनाया, किन्तु उसने इनकी मृन्मयी मूर्ति सामने रखकर जंगल में शस्त्राभ्यास करना प्रारंभ किया और थोड़े ही दिनों में ऐसी योग्यता संपादित कर ली कि एक बार शिकारी कुत्ते के भोंकने पर जब तक वह मुंह बन्द करे तब तक इसने उसके मुख को पांच बाणों

से भर दिया। इसका पराक्रम देख कर अर्जुन को भी ईर्ष्या उत्पन्न हुई पर पीछे से उन्होंने एकलव्य से अधिक योग्यता संपादित करली। द्रोण का महत्व सुनकर भारत भर से देश देश के राजपुत्र आ आकर इनसे शस्त्र विद्या सीखते थे।

उचित समय पर जब भारत राजकुमार अस्त्र-विद्या मे निपुण होगये, तब द्रोणाचार्य ने यह शुभसंवाद धृतराष्ट्र से कह सुनाया। उस काल सभा मे वाल्हीक, कृपाचार्य, सोमदत्त, भीष्म, विदुर और भगवान् वेदव्यास भी वर्तमान थे। सभा ने द्रोण की भारी प्रशंसा की और धृतराष्ट्र ने संतोष प्रकट कर के कहा, कि हे भरद्वाज नन्दन! आप ने बहुत बडा कार्य किया है। यह कह कर महाराजा धृतराष्ट्र ने विदुर को आज्ञा दी, "द्रोणाचार्य की इच्छानुसार कुमारो के शस्त्र-नैपुण्य-प्रदर्शनार्थ उचित प्रबन्ध करा दीजिये और नगर मे डौंडी पिटवा दीजिये जिससे सर्वसाधारण भी कुमारो का यह महत्कार्य अवलोकन करके प्रसन्नता प्राप्त करें और समझें कि हमारे रक्षणार्थ कैसे कैसे प्रबन्ध किये गये हैं।" विदुर ने ऐसा ही किया और शुभ दिन पर पुरजन समेत कौरव राज-समाज कुमारो की प्रवीणता देखने को एकत्रित हुआ। रानियां भी यथास्थान उपस्थित होकर इस शुभ अवसर की शोभा बढाने लगी और दर्शनागार प्रेक्षको तथा अधिकारियो से खचाखच भर गया।

उचित समय पर श्वेत पट एवं श्वेत माला पहिने हुए अस्त्र-सिन्धु-आचार्य द्रोण अश्वत्थामा तथा शिष्यों समेत दर्शनागार में पधारे। इतने मे राजा की आज्ञा से विविध प्रकार के बाजे बजने लगे तथा धर्मधुरीण आचार्य ने विधिवत् क्षेत्र पूजन किया और ब्राह्मण लोग वेद मन्त्र पढने लगे। अब कुमारों ने अपनी अपनी शिक्षा दिखलानी प्रारंभ की। सब से बडे होने के कारण युधिष्ठिर ने ही सब से पहिले अपनी कला दिखलाई। इनके भाई भीम और धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन एक ही दिन उत्पन्न हुए थे। स्थिर तथा चल लक्ष्यवेध मे कुमारो ने अच्छी प्रवीणता प्रदर्शित की और भांति भांति के वाहनों पर चढ चढ़कर भिन्न प्रकार के लक्ष्यवेध में नैपुण्य दिखाया। फिर भीम और दुर्योधन गदा ले लेकर कृत्रिम युद्ध दिखाने लगे, किन्तु इसमें प्राचीन

साथ कुमारों को शस्त्र-विद्या सिखलाना आरम्भ किया। अर्जुन और कर्ण धनुर्विद्या में श्रेष्ठ हुए और दुर्योधन तथा भीम गदायुद्ध में। पीछे से इन दोनों ने श्रीकृष्ण के भाई बलराम से भी गदायुद्ध की उच्च शिक्षा पाई। कर्ण ने द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र सीखने का भी प्रस्ताव किया किन्तु इन्होंने उत्तर दिया कि ब्रह्मास्त्र का प्रयोग केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय के योग्य है न कि शूद्र के। यह सुन द्रोण से विद्या-प्राप्ति में भग्नोत्साह हो कर पराक्रमी तथा महत्त्वाकांक्षी कर्ण महेन्द्रगिरि पर चला गया और अपने को ब्राह्मण कह कर परशुराम से पूरी विद्या प्राप्त करने में समर्थ हुआ।

एक बार कर्ण की जंघा पर शीश रखकर परशुराम सो गये। उसी समय अकस्मात एक कीडा नीचे से आकर कर्ण की जांघ को ऐसे स्थान पर काटने लगा कि जहां बिना जांघ उठाये उसका निवारण नहीं हो सकता था। कर्ण ने गुरु की निद्रा भंग न करने के विचार से जंघा नहीं हिलाई, यद्यपि कृमि के काटने से उसमे रुधिर की धारा बहने लगी। शोणित के सिर में लगने से महर्षि परशुराम जाग पडे और सारा वृत्तान्त सुन कर कर्ण के कष्टों पर बडे दुखित हुए, किन्तु यह भी ताड़ गये कि कष्ट में इतना शारीरिक धैर्य ब्राह्मण के लिये कठिन है, अतः यह मेरा शिष्य कोई क्षत्रिय समझ पडता है। उनके पूछने पर कर्ण ने सारा हाल कह सुनाया। परशुराम ने उसकी झुठाई पर कुछ क्रोध किया किन्तु उसके असीम धैर्य एवं शस्त्र-प्राप्ति की उद्दाम इच्छा से मुग्ध होकर उसे शिष्यत्व से अलग नहीं किया और श्रम करके पूरा वीर एवं शस्त्र विद्या-पारंगत बना दिया। अंत में गुरु से आशीर्वाद पाकर कर्ण अपने घर वापस गया।

इधर द्रोणाचार्य कौरव पाण्डवों को विधिवत् शस्त्र-विद्या सिखलाते रहे। इसी बीच में किरातधीश हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य द्रोणाचार्य से शस्त्र-विद्या सीखने के लिये आया। इन्होंने किरात को नीच समझ कर शिष्य न बनाया, किन्तु उसने इनकी मृन्मयी मूर्ति सामने रखकर जंगल में शस्त्राभ्यास करना प्रारंभ किया और थोडे ही दिनों में ऐसी योग्यता संपादित कर ली कि एक बार शिकारी कुत्ते के भोंकने पर जब तक वह मुंह बन्द करे तब तक इसने उसके मुख को पांच बाणों

से भर दिया। इसका पराक्रम देख कर अर्जुन को भी ईर्ष्या उत्पन्न हुई पर पीछे से उन्होंने एकलव्य से अधिक योग्यता संपादित करली। द्रोण का महत्व सुनकर भारत भर मे देश देश के राजपुत्र आ आकर इनसे शस्त्र विद्या सीखते थे।

उचित समय पर जब भारत राजकुमार अस्त्र-विद्या मे निपुण होगये, तब द्रोणाचार्य ने यह शुभसंवाद धृतराष्ट्र से कह सुनाया। उस काल सभा मे बाल्हीक, कृपाचार्य, सोमदत्त, भीष्म, विदुर और भगवान् वेदव्यास भी वर्तमान थे। सभों ने द्रोण की भारी प्रशंसा की और धृतराष्ट्र ने संतोष प्रकट कर के कहा, कि हे भरद्वाज नन्दन! आप ने बहुत बड़ा कार्य किया है। यह कह कर महाराजा धृतराष्ट्र ने विदुर को आज्ञा दी, "द्रोणाचार्य की इच्छानुसार कुमारो के शस्त्र-नैपुण्य-प्रदर्शनार्थ उचित प्रबन्ध करा दीजिये और नगर मे डौंडी पिटवा दीजिये जिससे सर्वसाधारण भी कुमारों का यह महत्कार्य अवलोकन करके प्रसन्नता प्राप्त करें और समझें कि हमारे रक्षणार्थ कैसे कैसे प्रबन्ध किये गये हैं।" विदुर ने ऐसा ही किया और शुभ दिन पर पुरजन समेत कौरव राज-समाज कुमारो की प्रवीणता देखने को एकत्रित हुआ। रानिया भी यथास्थान उपस्थित होकर इस शुभ अवसर की शोभा बढाने लगी और दर्शनागार प्रेक्षको तथा अधिकारियो से खचाखच भर गया।

उचित समय पर श्वेत पट एवं श्वेत माला पहिने हुए अस्त्र-सिन्धु-आचार्य द्रोण अश्वत्थामा तथा शिष्यों समेत दर्शनागार में पधारे। इतने मे राजा की आज्ञा से विविध प्रकार के बाजे बजने लगे तथा धर्मधुरीण आचार्य ने विधिवत् क्षेत्र पूजन किया और ब्राह्मण लोग वेद मंत्र पढने लगे। अब कुमारों ने अपनी अपनी शिक्षा दिखलानी प्रारंभ की। सब से बडे होने के कारण युधिष्ठिर ने ही सब से पहिले अपनी कला दिखलाई। इनके भाई भीम और धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन एक ही दिन उत्पन्न हुए थे। स्थिर तथा चल लक्ष्यवेध मे कुमारो ने अच्छी प्रवीणता प्रदर्शित की और भांति भांति के वाहनो पर चढ़-चढ़कर भिन्न प्रकार के लक्ष्यवेध में नैपुण्य दिखाया। फिर भीम और दुर्योधन गदा ले लेकर कृत्रिम युद्ध दिखाने लगे, किन्तु इसने प्राचीन

वैमनस्य होने के कारण कृत्रिम के स्थान पर वास्तविक युद्ध होने लगा। यह देख पिता की आज्ञा से अश्वत्थामा ने बीच में खड़े होकर इन दोनों का युद्ध निवारण किया। इसके पीछे शूरशिरोमणि अर्जुन ने सब से बढ़कर अपना कौशल दिखलाया।

ज्योंही अर्जुन ने कार्य समाप्त किया कि द्वार में एकायक भुजदण्ड ठोंकने की वज्राघात के समान ध्वनि सुन पड़ी। सभों ने आश्चर्यित हो कर उधर ही को और दृष्टि लगाई और लोग इधर उधर हट गये तथा महाबली कर्ण ने मार्ग पाकर रंगस्थल में आ सब का निरीक्षण किया। उसने पांचों पाण्डवों को द्रोणाचार्य के साथ खड़े पाया और धृतराष्ट्र पुत्रों को अश्वत्थामा के पास। कर्ण के सिंह-समान शरीर पर सहज कवच एवं कर्णकुण्डल शोभा देते थे और वह सूर्य के समान प्रकाशमान हाथ में धनुषबाण लिये गुरुकार्य में चरणगामी पर्वत के समान शोभित था। रंग का भली भांति निरीक्षण करके परशुराम के इस प्रिय शिष्य ने कृपाचार्य और द्रोण का सादर नमस्कार किया। 'यह कौन आया' इसी विचार में बहुत लोग चकित थे कि कर्ण ने दर्पपूर्वक ये गम्भीर वचन कहे, 'हे अर्जुन! मैं अधिरथ एवं राधा का पुत्र कर्ण तुम्हारी वीरता को तृणवत् मानकर तुम्हारे दिखलाये हुए कौशल से कहीं बढ़कर नैपुण्य दिखलाता हूँ।" यह सुनकर अर्जुन को साथ ही साथ लज्जा और क्रोध ने आ घेरा तथा दुर्योधन परम प्रसन्न हुआ। अनन्तर द्रोणाचार्य की आज्ञा पाकर कर्ण ने अर्जुन के दिखलाये हुए सारे कार्य फिर से कर दिखाये।

यह देख दुर्योधन ने उसका भारी सम्मान करके कहा, "तुम मुझे भाग्यवश मिल गये; राज्य सहित मेरी जो कुछ संपत्ति है, उसका तुम यथेष्ट भोग करो।" इस महासत्कार को नमितमूर्धा होकर स्वीकार करते हुए वीर कर्ण ने अर्जुन के साथ द्वन्द्व युद्ध करने की इच्छा प्रकट की और द्रोणाचार्य की आज्ञा पाकर वीर अर्जुन भी अमोघ कोदण्ड धारण करके युद्धार्थ सन्नद्ध हुआ। यह देख कर्ण और अर्जुन दोनों के अपने प्रिय पुत्र होने से महारानी कुन्ती बन्धु-विरोध से चलितधैर्य होकर ऐसी घबराई कि मूर्छित ही हो गई। विदुर ने यह

अनर्थ देख चंदनादि उपचार से महारानी की मूर्छा भंग की। रनिवास की इस गड़बड़ में खिन्न होकर आचार्य कृप ने युद्ध को अनुचित मान कर्ण से कहा, "द्वन्द्व-युद्ध शास्त्रानुसार सम वय, बल और प्रतिष्ठा युक्त पुरुषों में हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिये तुम्हारे सूत-पुत्र होने के कारण तुम कुलीन अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध करने के योग्य नहीं।" यह सुन कर्ण ने कुछ भी न कहा किन्तु दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया, "हे आचार्य! शास्त्रानुसार राजयोनि तीन प्रकार से समान होती है, अर्थात शूर, कुलीन और सेनाधीश; ये तीनों समभाव से पूज्य क्षत्रिय हैं और किसी कुलविशेष में जन्म ग्रहण करने से क्षत्रियत्व की दृष्टि में कोई ऊंच नीच नहीं। यदि वीर कर्ण को राज्यरहित समझकर अर्जुन इनसे युद्ध नहीं करता, तो मैं इन्हें अंग देश का राज्याभिषिक्त भूपाल बनाता हूँ।" यह कह कर दुर्योधन ने विधिपूर्वक कर्ण का अभिषेक करके राज्य चिह्न दिये और वीर कर्ण छत्र चामरों से सुशोभित हुआ। इस सम्मान से प्रसन्न होकर कर्ण का पालक पिता अधिरथ शिथिलाङ्ग होने पर भी यष्टि के सहारे चलता हुआ कर्ण के पास पहुँचा और पुत्र ने उसके पैरों पर अपना सिर रख दिया तथा उसने कर्ण को हृदय से लगाकर अभिषिक्त शिर का आघ्राण किया और हर्ष-अश्रुओं से उसका सिंचन करके अपने को धन्य माना। युद्ध सबन्धी दो-चार साधारण वादविवाद होने के पीछे अब सूर्य भगवान अस्ताचल को पधारे और सब लोग प्रसन्न मन अपने अपने निवासस्थान को चले गये। इस दिन युधिष्ठिर को यह भय हुआ कि कर्ण के समान योद्धा पृथ्वी-मंडल पर नहीं था।

कृतास्त्र हो जाने पर भारत कुमारों ने द्रोणाचार्य से गुरुदक्षिणा मांगने के विषय में निवेदन किया और आचार्य ने कहा, "पांचाल राज द्रुपद को युद्ध में पकड़ कर तुम सब लोग मेरे पास बांध लाओ।" यह सुन कौरवी सेना ने युद्धार्थ तैयार होकर प्रस्थान किया और राजकुमारों ने द्रुपद पुर काम्पिल्य पर दलबल समेत आक्रमण किया। द्रुपद ने वीरता के साथ इनका सामना किया, किन्तु अर्जुन के आगे उसकी एक न चली और इन्होंने सहज ही में उसे पकड़ कर द्रोणाचार्य के सम्मुख उपस्थित कर दिया। अब द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा पूरी हुई

और इन्होंने द्रुपद की दृष्टि में भी अपना पद उसके समान करने के लिये उसका आधा राज्य उत्तर पांचाल लेकर शेषार्द्ध दक्षिण पांचाल पर उसे पुनः प्रतिष्ठित किया। द्रोणाचार्य ने कुछ दिन तक इस राज्य का पालन किया, किन्तु इसे कब और कैसे छोड़ दिया इसका वर्णन महाभारत में नहीं मिलता। जान पड़ता है कि राज्यशासन-कार्य अपने अनुकूल न पाकर द्रोणाचार्य ने थोड़े ही दिनों में द्रुपद का आधा राज्य भी उसे वापस दिया होगा। जो हुआ हो, वे युद्ध काल में रहते हस्तिनापुर ही में थे।

अब सब कुमार फिर से सुख पूर्वक हस्तिनापुर में रहने लगे और थोड़े दिनों में राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को युवराज पद दे दिया। युधिष्ठिर को राज्य पाने का अधिकार था अथवा नहीं इस प्रश्न पर मतभेद सभव है। शास्त्रानुसार निरिन्द्रिय अथवा जन्मान्ध पुरुष राज्य नहीं पा सकता, किन्तु उसके पुत्र अव्यङ्ग न होने पर पा सकते हैं। फिर भी यदि कोई राजा एक बार किसी कारण से गद्दी पा जावे तो उसके पीछे उसी के उत्तराधिकारी राज्य पावेंगे न कि उसके पहिले वाले के। यहां धृतराष्ट्र के जन्मान्ध होने से पाण्डु उचित प्रकार से राजा हुए, किन्तु उन्होंने पुत्र जन्म के पूर्व रानियों समेत स्वेच्छापूर्वक राज्य छोड़ दिया। उस काल पर्यन्त धृतराष्ट्र के भी कोई पुत्र न था। जिस नेत्र-दोष के कारण धृतराष्ट्र विचित्रवीर्य के उत्तराधिकारी नहीं हुए थे, उसी कारण पाण्डु के भी नहीं हो सकते थे। विदुर दासी पुत्र होने से राज्य के अधिकारी नहीं थे और उचित उत्तराधिकारी भीष्म राज्य चाहते न थे। इस कारण से जन्मान्ध होते हुए भी धृतराष्ट्र ही राजा हुए और तब पाण्डवों और धार्तराष्ट्रों का जन्म हुआ। पाण्डवों के जन्म काल में पाण्डु का राज्याधिकार शेष न था और थोड़े ही दिनों में धृतराष्ट्र भी पुत्रवान हो गये। धृतराष्ट्र का उत्तराधिकारी उनका बड़ा पुत्र दुर्योधन था। इसलिए शास्त्रानुसार दुर्योधन को ही युवराज होना चाहिये था, किन्तु इन बातों का विचार उस काल हस्तिनापुर में नहीं हुआ और युधिष्ठिर युवराज बनाये गये।

पाण्डवों का दुर्योधन से बाल्यकाल से ही वैर चला आता था।

लड़कपन के खेल-कूद में ही भीम ने कई बार दुर्योधन के भाइयों को इतना तंग किया था कि इन्होंने एक बार भीम को जहर पिलाकर गंगा जी में फिंकवा दिया था, किन्तु कुछ नाग लोगों ने औषध करके बे-सुध भीम की प्राण-रक्षा की थी। पाण्डवों से ही विजय पाने के लिए दुर्योधन कर्ण का भारी सम्मान करता था। अब युधिष्ठिर के युवराज होने से उसकी राज्य-कामना मुर्झाती हुई देख पड़ी और उसने नीतिज्ञ कणिक द्वारा अपने पिता को राजनीति का उपदेश कराया। अनन्तर किसी प्रकार से विवश करके उसने धृतराष्ट्र को इस बात पर सहमत किया कि वारणावत नगर में पाण्डव लोग लाक्षागृह में फूँक दिये जायँ। इसका प्रबन्ध दुर्योधन ने पुरोचन नामक एक प्रवीण शिल्पी द्वारा किया। वारणावत को अब बरनावा कहते हैं जो मेरठ के उत्तर-पश्चिम १९ मील की दूरी पर स्थित है। पाण्डव लोग फुसलाये जाकर सैर के लिए वारणावत भेजे गये। उनके जाते समय विदुर ने धृतराष्ट्र से सारा भेद जानकर युधिष्ठिर को पहले ही से म्लेच्छ भाषा में साव-धान कर दिया। वारणावत पहुँचकर इन लोगों ने प्रकट में असावधानी रक्खी किन्तु गुप्त भाव से भागने की सुरंग तय्यार कर तथा स्वयं पुरोचन को लाक्षागृह में भस्म करके सुरंग के मार्ग से गंगातट का रास्ता लिया और विदुर की भेजी हुई नौका से गंगापार करके जंगल ही जंगल एकचक्रपुर का मार्ग पकड़ा।

कनिंगहम का विचार है कि एकचक्रपुर वर्तमान आरा नगर को कहते हैं, किन्तु यह मत संदिग्ध है। चकर नगर नामक एक स्थान वर्तमान इटावा के दक्षिण पश्चिम सोलह मील पर स्थित है। डाक्टर फ्यूरर का मत है कि उस काल का यही एकचक्रपुर है। वहां जाते हुए पाण्डवों की हिडम्ब नामक राक्षस से भेंट हुई। इसकी बहिन हिडम्बा भीम पर आसक्त हो गई। इसी बात पर हिडम्ब का भीम से युद्ध हुआ और वह मारा गया। अब युधिष्ठिर की सम्मति से न चाहते हुए भी इन्हें हिडम्बा से विवाह करना पड़ा जिससे घटोत्कच नामक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। पाण्डवों ने ब्राह्मण बनकर दस मास पर्यन्त माता कुन्ती समेत एकचक्रपुर में निवास किया। अन्त में वहाँ के अन्यायी शासक वक नामक राक्षस से इनका विरोध हो गया और भीम ने उसका

वध कर के नगर को सकटमुक्त किया। अब इनकी व्यास भगवान से भेट हुई और उनकी सम्मति से ये लोग द्रौपदी का स्वयबर देखने के लिए द्रुपदपुर (काम्पिल्य) को गये।

मार्ग मे अर्जुन का अगारपर्ण नामक गन्धर्व से युद्ध हुआ और उसने पराजित होकर बहुत से घोड़े इनको दिये जो थाती की भाँति उसी के पास रक्खे गये। द्रुपदपुर मे बहुत से राजा लोग स्वयवर के लिए उपस्थित हुए। एक भारी धनुष सभा मे रक्खा गया और कहा गया कि जो कुलीन वीर पुरुष इसे ज्यायुक्त करके ऊपर घूमते हुए मत्स्यलक्ष्य के प्रतिबिम्ब को नीचे रक्खे हुए तेल के कडाह मे देख-कर केवल पाँच बाणो से लक्ष्य का भेद कर देवेगा, उससे द्रौपदी विवाह करेगी। सीता स्वयबर के समय धनुष चढने पर विवाह करने के लिये प्रत्येक मनुष्य का अधिकार माना गया था किन्तु द्रौपदी के स्वयबर मे यह अधिकार केवल कुलीनो को प्राप्त था। यह अन्तर दोनो समयो के प्रचलित विचारो का अच्छा उदाह-रण है।

इस स्वयबर मे राम और कृष्ण भी उपस्थित थे। उन्होने पाण्डवो को देख कर पहचान लिया और उनका लाक्षागृहदाह-सम्बन्धी शोक दूर हो गया। जरासन्ध, शिशुपाल, शल्य, दुर्योधन, अश्वत्थामा, प्रभृति राजाओ और वीरो ने धनुष चढ़ाने का प्रयत्न किया किन्तु ये सब विफलमनोरथ हुए। अनन्तर वीरवर कर्ण ने ज्यायुक्त करके उसपर बाण चढ़ाया किन्तु द्रौपदी ने कहा, 'मै सूतसुत कर्ण के साथ विवाह नही कर सकती क्योकि वह कुलीन नही है।' इस बात पर कर्ण ने प्रत्यंचा उतार कर धनुष रख दिया। इसके पीछे कई और वीरो के प्रयत्न निष्फल हुए। अन्त मे उठ कर अर्जुन ने धनुष चढा कर नियमानुसार पाँच बाणो से मत्स्य-लक्ष्य का निपात किया और द्रौपदी ने उसके गले मे जयमाल डाल दी। अब पाण्डव लोग द्रुपद-कन्या को लेकर अपने निवास-स्थान कुम्हार गृह को चले गये। कई कारणो से अर्जुन तथा माता कुन्ती की इच्छानुसार द्रौपदी का पांचो पाण्डवो के साथ विवाह होना स्थिर हुआ। द्रौपदी तथा उसके कुटुम्बी भी इस बात पर कुछ तर्क-वितर्क करके व्यास भगवान् की सम्मति

से सहमत हुए। कृष्ण-बलराम ने भी पाण्डवों से मिलकर उनके लाक्षा-गृह से बचने पर प्रसन्नता प्रकट की और सर्वसम्मति से इन्होंने ब्राह्मण वेष छोड कर अपना पाण्डव होना प्रसिद्ध किया। अब इन लोगों का विवाह हो गया और आपस में नियम करके इन्होंने प्रत्येक पाण्डव के लिये द्रौपदी के सालभर में दो दो महीने और १२-१२ दिन बाँट दिये। अब पाण्डव लोग प्रसन्नतापूर्वक द्रुपदपुर में रहने लगे।

लाक्षागृह के दाह से कौरवों को यह समझ पडा था कि पाण्डव लोग उसी में जल मरे। इसलिये सभा ने उनके सम्बन्ध में मरणान्तर संस्कारादि भी कर डाले थे। विदुर को उनके भागने का समाचार ज्ञात था किन्तु उन्होंने इसका हाल किसी से न कहा। भीष्म और द्रोणाचार्य को पाण्डव-विनाश सुनकर बडा खेद हुआ और महाराजा धृतराष्ट्र भी बडे दुःखित हुए थे। पीछे से स्वयंवर-समाचार सुनकर उनका जीवित रहना ज्ञात हुआ। इस पर महाराजा धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण, विदुर और संजय की सम्मति ली तो इन सभों ने कहा कि कुल बातों पर विचार करके आधा राज्य पाण्डवों को दे दिया जाय और आधा कौरवों के पास रहे। इसी सम्मति के अनुसार महाराजा धृतराष्ट्र द्वारा प्रेरित होकर विदुर पाण्डवों को द्रौपदी समेत द्रुपदपुर से बुला लाये और महाराजा धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार युधिष्ठिर ने आधा राज्य लेना स्वीकार करके इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली) में अपना निवास-स्थान बनाया।

अर्जुन कई कारणों से थोड़े दिन के लिये भारत-भ्रमण को निकले। इसी भ्रमण में आपने नागसुता उलूपी तथा मणिपुर-नरेश की कन्या चित्राङ्गदा से विवाह करके दोनों में एक एक पुत्र उत्पन्न किया। उलूपी का पुत्र इरावान् हुआ तथा चित्राङ्गदा का बभ्रुवाहन। मणिपुर-नरेश के कोई पुत्र न था, इसलिये उन्होंने बभ्रुवाहन को लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया। घूमते हुए अर्जुन द्वारावती पहुँचे। उस काल वहाँ बलराम की बहिन सुभद्रा का स्वयंवर हो रहा था। इस कन्या रत्न को देखकर अर्जुन का चित्त चंचल हुआ और श्रीकृष्ण की गुप्त सम्मति एवं महाराजा युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर

इन्होंने युक्ति से सुभद्राहरण कर लिया। यह हाल सुन यादव लोग युद्धार्थ सन्नद्ध हुए किन्तु श्रीकृष्ण के समझाने पर उन्होंने अर्जुन को बुलाकर सुभद्रा के साथ उसका विवाह कर दिया। इधर शेष चारों पाण्डवों ने भी एक एक विवाह किये। पाण्डवों ने एक एक अपना अपना पुत्र द्रौपदी से उत्पन्न किया और एक एक द्वितीय स्त्री से। सुभद्रा के अभिमन्यु नामक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पांडवों के दस पुत्र हुए और घटोत्कच, इरावान तथा बभ्रुवाहन को भी मिलाने से इनकी संख्या तेरह होती है। राजा दुर्योधन के लक्ष्मण पुत्र और लक्ष्मणा कन्या हुई। कर्ण के पुत्रों में वृषसेन और वृषकेतु मुख्य थे। द्वारावती से लौट कर अर्जुन ने खाण्डवप्रस्थ नामक जंगल जला कर बहुत सी भूमि कृषि के योग्य निकाली। उस जलते हुए जंगल से आपने मय नामक दानव की रक्षा की जिसने राजा युधिष्ठिर के लिये एक बड़ी विचित्र सभा तय्यार की। इसी से जरितर, द्रोण, सारीस्रक और स्तम्बमित्र नामक चार वे मन्दपाल ऋषि के पुत्र बचाये गये जो शूद्रा से उत्पन्न थे और प्राय: अन्तिम वेदर्षि हुये। इन के मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल में हैं। यह कथन कुम्ब कोनम म० भा० (XIII ५३,२१-२२) का है। खाण्डव-वन के कथन तैत्तिरीय आरण्यक (V १,१) पंच विंश ब्राह्मण (XXV ३,६) और शात्यायन में भी है।

इस प्रकार अपने प्रताप की भारी वृद्धि देख कर श्रीकृष्ण-चन्द्र की सम्मति से राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया जिसमें उनको सम्राट् पद भी प्राप्त हो जाय। इस अभिलाषा का सब से बड़ा बाधक जरासन्ध ही समझ पड़ा। इसी ने श्रीकृष्ण से मथुरा का राज्य छीन कर अपने वश में किया था और सब राजाओं को जीत कर बहुत काल से यह सम्राट् पद का भोग भी कर रहा था। श्रीकृष्णचन्द्र ने विचार किया कि यदि वे भीम और अर्जुन को साथ लेकर छद्म वेष में मगधपुर जावें और जरासन्ध से द्वन्द्व-युद्ध मांगें, तो शौर्याभिमान से वह अवश्य लड़ेगा और मारा भी जायगा, नहीं तो सेना के साथ लड़ने में क्या परिणाम होगा, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। इस बात पर भीम तथा अर्जुन की भी रुचि

देख कर युधिष्ठिर ने इसे स्वीकार किया और कृष्ण भीम एवं अर्जुन ब्राह्मण बन कर मगधपुर पहुँचे। इन लोगो ने ब्राह्मणोचित चिह्नो के साथ बहुमूल्य वसनाभरण भी धारण किये और अपने उन्नत शरीरो को चन्दनादि से सुशोभित किया। इन्होने जरासन्ध के महल मे फाटक से न घुस कर तीन कक्षाये फलाग कर प्रवेश किया और ये लोग एकायक उस के सामने जा खडे हुए। इनके इन अनुचित कर्मो पर क्रुद्ध न होकर सम्राट् जरासन्ध ने इन्हे पूजनयोग्य विचार कर इनसे कुशलप्रश्न किया। भीमार्जुन अपने अनुचित कर्म के कारण ऐसी सभ्यता के व्यवहार की आशा नही रखते थे, सो जरासन्ध की मृदुलता पर किंकर्तव्यविमूढ होकर अवाक् खड रह गये, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र ने बात बनाकर कहा, 'हमारे दोनो साथी मौनव्रती होने से केवल रात्रि मे बात कर सकते है।" यह सुन जरासन्ध ने इन्हे मखालय में स्थान दिया और इनके आतिथ्य का प्रबन्ध करके वह स्वय अन्त.सदन को चला गया।

सन्ध्या को वह इन लोगो के पास फिर आया और तब इन्होने कहा, 'हम लोग अतिथि होकर दूर से आपके पास आये हैं, इसलिये जो दान मांगे वह आप कृपा कर दीजिये।" यह सुन सम्राट् ने कहा, "हे छद्मवेषी ब्राह्मणो! आप लोग यही बैठिये।" अब ये चारो आदमी वही बैठे और तब जरासन्ध ने इनके वेष की निन्दा करते हुए कहा, 'स्नातक लोग गन्धमाल्य समेत नही फिरा करते। तुम्हारे शुण्डादण्ड समान भुजदण्ड ज्याघात से अंकित हैं और कर्मों से अब्राह्मणत्व पूर्णतया प्रदर्शित है।" यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा, "शत्रुसदन में अद्वार से ही प्रवेश उचित है। आपने क्षत्रियो को पकड कर कारागार में डाल दिया है और अब उनकी रुद्र बलि करने का भी विचार आप कर रहे हैं। अब तक हमने मनुष्य का ऐसा अपमान न कही देखा न सुना। आप स्वय क्षत्रिय होकर दूसरे क्षत्रिय का पशु के समान बलिदान करना चाहते हैं, यह किस शास्त्र का विधान है, सो हमारी समझ मे नही आता। ऐसा प्रचंड पापी समझ कर हम लोग आपके मारने के लिये यहां आये हैं। सैन्य बाहुल्य अथवा बल दर्प से कोई मनुष्य नर-जाति का ऐसा प्रचण्ड अपकार करके

राक्षस ही कहलाने के योग्य रह जायगा। हम ब्राह्मण नहीं हैं और तुमसे युद्ध चाहते हैं। हम स्वयं वासुदेव कृष्ण हैं और ये दोनों भीमार्जुन हैं। इसलिये आप या तो सब बन्दी राजाओं को छोड़ दीजिये या हमसे लड़कर यमपुरी का मार्ग लीजिये।'

श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर जरासन्ध ने उत्तर दिया, "बिना युद्ध में जीते हमने एक भी राजा नहीं पकड़ा है। दुःखद जीवधारियों का दमन करना क्षत्रियों का धर्म है और मेरा विचार है कि जीतकर पकड़े हुए मनुष्य से कोई चाहे जैसा व्यवहार करे। इसलिये जिन राजाओं को देवतार्थ पकड़ रक्खा है, उन्हें किसी प्रकार न छोड़ूँगा। मैं सहसैन्य से सहसैन्य और अकेले से अकेला लड़ने के लिये सदैव सन्नद्ध हूँ तथा दो तीन से भी अकेला लड़ता हूँ।" सम्राट् से युद्ध निश्चित समझ कर श्रीकृष्ण ने पूछा, 'हम तीनों में से जिसके साथ आप युद्ध करना चाहें वही सज्जित हो"। जरासन्ध ने उत्तर दिया, 'अर्जुन अभी लड़का है और तुम भगोड़े हो क्योंकि मेरे भय से तुमने मथुरा छोड़कर सिन्धु की शरण ली। अतः तुम भी युद्ध के योग्य नहीं हो, सो मैं भीमसेन से लड़ूँगा।" कार्तिक की प्रथमा प्रतिपदा को युद्ध होने लगा और चौदह दिन तक बराबर मल्लयुद्ध होता गया। ये लोग दिन भर लड़ते और रात्रि को विश्राम लेते थे। चौदहवें दिन भीम ने सम्राट् जरासन्ध को स्ववश करके उसका वध किया। फिर जरासन्ध के रथ पर चढ़कर इन तीनों ने बन्दी राजाओं का मोचन करके उन्हें युधिष्ठिर के राजसूय में आने के लिए निमन्त्रित किया। इन राजाओं ने हेममणि से इनका पूजन किया। अनन्तर जरासन्धपुत्र सहदेव का राज्याभिषेक करके ये तीनों वीर इन्द्रप्रस्थ वापस आये। यज्ञ-सम्बन्धी शुभ दिन स्थिर हुआ और तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र, युधिष्ठिर एवं भीम के पदवन्दन करके तथा तीनों कनिष्ठ पांडवों से वन्दित होकर द्वारका चले गये।

थोड़े दिनों में राजा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों द्वारा भारतविजय का विचार किया और इसलिए इन्होंने विजयार्थ चारों भाइयों को चारों दिशाओं में भेज दिया। अर्जुन उत्तर दिशा को गये, सहदेव दक्षिण को, भीम पूर्व को और नकुल पश्चिम को। अब हम महा-

भारत के अनुसार इन लोगो के जीते हुए देशो तथा राजाओं का कथन करते हैं। प्राचीन स्थानों के वर्तमान नाम जहाँ तक ज्ञात हो सके हैं कोष्ठको मे दर्ज कर दिये गये हैं।

अर्जुन ने अपनी विजय यात्रा कुलिन्द (सहारनपुर) से प्रारम्भ की। वहाँ से उलूक के राजा बृहन्त को जीतकर आपने देवप्रस्थ नरेश सेनाबिन्दु को जीता और फिर मोदापुरी के निकटस्थ सब राजाओं को हराया। वहाँ से पौरव राजा विश्वगश्व को जीतते हुए काश्मीर के राजा लोहित एव उरग देश (जिला हजारा) मे अभिसारीपुरी (हज़ारा) के भूपाल रोचमान को पराजित किया। फिर सिंहपुर, बाल्हीक (बलख़ या व्यास एव सतलज नदियो के बीच का देश), काम्बोज (अफगानिस्तान) तथा सुम्भ के नरेशो को जीतकर आप ऋषिक लोगो के देश मे पहुँचे और विकराल युद्धानन्तर उनको वश कर सके। अनन्तर श्वेतगिरि (सफेद कोह) नरेश को जीतकर शाक-द्वीप (मध्य एशिया) में आपने प्रतिबिन्ध्य आदि राजाओं को पराजित किया। वहाँ से तिब्बत की ओर जाकर अर्जुन ने उस देश मे घुसना चाहा। तब वहाँ के राजसेवियो ने कहा, "इस देश मे भारतीय मनुष्य जीवित नही रह सकता, इससे तुम यहाँ मत आओ, हम लोग तुम्हारी कामना योंही पूरी किये देते हैं।" यह कहकर उन लोगो ने दिव्य भूषण वसन तथा मणिगण कर-स्वरूप देकर अर्जुन को सतुष्ट किया और तब इन्होंने मानस सरोवर जाकर ऋषियों के दर्शन किये तथा गन्धर्व रक्षित देश जीत कर किंपुरुषों (शिकिम वालों) को हराया। वहाँ से हाटक, गुह्य देश जीतते हुए आपने प्राग्ज्योतिष (कामरूप उपनाम आसाम) के नरेश भगदत्त को जीतकर उससे कर लिया। उक्त देशो और नरेशो के अतिरिक्त अर्जुन ने आनर्त पति, कालकूटपति, राजा सुमडल, किरातों, पहाडी जातियों वा चीनियो को जीता और फिर अन्तर गिरि, बहिर्गिरि व उपगिरि को जीतकर वामदेव, सुदाम, सुकुल, उत्तर उलूक, उत्सव सकेत की अनार्य जातियां, त्रिगर्त, कोकनद, सुभल, दरद, निष्कुट गिरि, दक्षिणी साइबेरिया और पश्चिमी चीन को पराजित किया। आपने उपर्युक्त सभी देशो के राजाओं से दड स्वरूप कर लेकर इन्द्रप्रस्थ को प्रस्थान किया।

भीमसेन की विजय-यात्रा पांचाल देश (रुहेलखड से काम्पिल्य तक दो भागो से) प्रारंभ हुई। वहाँ के राजा द्रुपद से साम द्वारा कर लेकर आपने कोसल (अवध) नरेश बृहद्बल तथा अवधपुरी (अयोध्या) नरेश धर्मात्मा दीर्घयज्ञ को हराया।

वहां से कुमाराधीश श्रेणिमान् तथा काशिराज सुबाहु को जीतकर आपने कुण्डिन नगर मे शर्म्मक वर्म्मक नामक विदेह राजाओ को पराजित किया। अनन्तर वैदेह जनक को जीता। इन नामो से मिथिला के छोटे-छोटे राजाओ का प्रयोजन समझ पडता है। यहाँ से चल कर मगध (दक्षिणी विहार) मे कर लेते हुए भीमसेन ने अग देश (भागलपूर) से कर लिया और फिर मोदागिरि (मुगेर) और मल्ल (हजारी बाग तथा मानभूमि) नरेशो को जीतकर वङ्ग (मध्य बङ्गाल) नरेश समुद्रसेन को पराजित किया। अनन्तर ताम्रलिप्त (दक्षिणी बङ्गाल), पौड् (उत्तरी बङ्गाल), सप्त किरात (टिपरा), तथा सुम्भ (अराकान) से कर लेते हुये भीमसेन ने मलय (पूर्वीघाट) को जीता। वहा से दशार्ण (छत्तीसगढ), अश्व-मेधपति रोचमान, पुलिन्द (पश्चिमी बुदेलखंड तथा सागर) पति सुमित्र, चेदि (चदेरी) पति शिशुपाल तथा गोपाल वृत्त के राजाओ से कर लिया। फिर वत्स (प्रयाग के पश्चिम) को जीत कर मत्स्य (अलवर तथा जयपुर) से भी कर लिया।

सहदेव ने भी मत्स्य को जीता, जिससे जान पडता है कि उस काल मत्स्य देश मे कई राजे थे जिनमे से कुछ भीमसेन ने जीते और शेप सहदेव ने। दशार्ण देश का राजा उस समय सुधर्मा था, जिसने भीमसेन से अकेले निरायुध युद्ध किया। इन्होने उसे जीतकर अपना सेनापति बना लिया। पौड् नरेश वासुदेव था। ताम्रलिप्त और सुम्भ के राजे म्लेच्छ कहे गये हैं और यह भी कथित है कि भीमसेन ने सागर तट के म्लेच्छो को जीता। भीम ने भड़क, गोपालाच्छ, उत्तरी कौशल नरेश, भल्लट, सुक्ति मति गिरि, सुपर्श के क्रय. मत्स्य, मलद, मदधर गिरि, सोमदेय, वत्स भूमि नरेश भर्ग, निपाद पति, मणिमान, भगवान् पर्वत, दक्षिणी मल्ल, शक, वर्वर, प्रसुम्भ (मिदनापूर), दण्डधर, गिरि व्रज, कौशिकी, कच्छ नाथ, महोजस, समुद्रसेन,

चन्द्रसेन, कर्वत के अनार्य राजे व लौहित्य देश (दक्षिणी आसाम) भी जीते। अनार्य राजाओं ने बहुमूल्य भेंट दी। इस प्रकार पूर्व दिशा के राजाओं को जीतकर भीम उनसे कर लेकर इन्द्रप्रस्थ वापस आये।

सहदेव ने इन्द्रप्रस्थ से चलकर सूरसेनाधिप अर्थात् माथुर नरेश को हराया। इससे जान पड़ता है कि जरासन्ध ने मथुरा का राज्य बहुत जल्द छोड़ दिया था और कोई दूसरा यादव वहां का राजा हो गया था। यही वह सूरसेनाधिप कहा गया है। मथुरा से सहदेव ने मत्स्य देश (अलवर और जयपुर) मे घुसकर कई राजाओ से कर लिया और तब राजपूताना के एक अन्य राजा दन्त वक्र को हरा कर राजा सुमित्र को भी पराजित किया। वहां से गोशृंग गिरि के निषाद राजे जीते गये जिनमे श्रेणिमान भी एक था। नरराष्ट्र को जीत कर सहदेव ने ननिहाल कुन्तिभोज (मालवा मे एक राज्य) मे प्रेम से कर लिया। वहाँ से चम्बल नदी के किनारे बसने वाले जम्भकसुत को हराकर सेक (चम्बल और उज्जैन के बीच) देश जीतते हुए सहदेव ने अवन्ती (उज्जैन) के राजा विन्द और अनुविन्द को परास्त किया। फिर आपने भोजकट (बरार मे अमरावती या इलिचपुर) नरेश भीष्मक को जीतकर वेणा (कृष्णा) नदी तट, महाकान्तार जगल, प्राकोटक नाटक (करनाटक), हेरम्ब, मारुध, नाचीन, अर्बुक तथा वात के राजाओ को हराया। अनन्तर पुलिन्द (पश्चिमी बुंदेलखड तथा सागर) के कुछ राजाओं को जीत कर तथा माहिष्मती के राजा नील से कर लेकर किष्किन्धा, (बीजानगर के निकट) पाण्ड्य, दडकवासी सूरसेन, सुरभिपट्टन (मदरास), ताम्रद्वीप, तिमिंगिल, कर-हाट, केरल (मलाबार), लका तथा कोकण को जीतते हुए और भरुकच्छ, सौराष्ट्र (उपनाम काठियावाड) के राजाओ से कर लेते हुए सहदेव इन्द्रप्रस्थ वापस आये।

कहा गया है कि किष्किन्धा पुरी के राजा उसकाल भी द्विविद और मयन्द नामक दो वानर थे। इन लोगों के साथ सहदेव का सात दिन युद्ध हुआ। ये वानर रामचन्द्र के समकालिक द्विविद मयंद से इतर थे। सभव है कि द्विविद मयद वश-परपरागत नाम हो। राजा नीलाग,

का सहदेव के साथ दो दिन तक युद्ध हुआ। दक्षिण के द्वीपों में उस काल म्लेच्छ, राक्षस और निषादों का वास था। सुरभिपट्टन, ताम्रद्वीप, तिमिङ्गिल, करहाट, केरल तथा कोकण क राजाओ ने दूतो से सदेश सुनकर बिना युद्ध किये ही कर दे दिया। सहदेव ने पतच्चर (मेवाड), कौशल, वेणुमत, नातकेय, हिरम्बक, व मरुध नामक तीन जातियों, कई जगली नरेशा वातापिपुर (बादामी), त्रैपुर, अक्रिति, सुराष्ट्र, सुर्पारक, तालका, पुम्पद, द्रविण आदि जातियो, सामुद्रीय अनार्यों, काला पर्वत, रमक पर्वत, पमन्द उद्र, केरल, अध्र, तलवन, कलिग, अनत्रिपुरी और पवनष्ट को भी जीता।

नकुल ने रोहीतक (रोहतक) सैरीसक, आक्रोश, शिवि (मवान, सिन्धु नदी के दक्षिण तट पर), त्रिगर्त (जालन्धर), पच करपट, मध्यमकेय (मध्यमेश्वर, पच केदारो मे मे एक) और वाटधान देशो को जीता। अन्तिम तीनो के राजे ब्राह्मण थे।। अनन्तर पुष्करण्य, सिन्धुतट के म्लेच्छ और सरस्वती तट के शूद्र राजाओ को जीतकर तथा अभीरो को वश मे करके नकुल ने मत्स्य देश के कुछ राजाओ को जीता। फिर कटपुर, पचनद (पजाब), हारहुण, रामठ, मद्र (रावी और चनाब के बीच, राजधानी साकल), सिन्ध, द्वारिका, मालव और दशार्ण के राजाओ से कर लिया गया। मद्र देश के शल्य नकुल के मामा थे और द्वारका के श्रीकृष्ण पूर्ण सहायक। अतः इन दोनो ने प्रेम पूर्वक भेट दी। रोहीतक के निवासी मत्तमयूर कहे गये हैं और उनसे घोर युद्ध होना लिखा है। सैरीसक पहाड था। सिन्ध देश मे उस काल म्लेच्छों का निवास था। नकुल ने महेत्थ, अम्बष्ट, अमर कोह, वाम ज्योतिष, दिव्यकर, द्वारपालपुरी, रमथ, पश्चिमी कई नरेशों, पल्लहव, वर्वर, किरात, यवन और शको को भी जीता। इनके द्वारा प्राप्त भेटें १० हजार ऊंटो पर लाद कर आई थी। इस भांति नकुल ने भी पश्चिम दिशा को जीत कर इन्द्रप्रस्थ मे प्रवेश किया।

इन विजयो से समझ पडता है कि भारतवर्ष उस काल सैकडो माण्डलिक राजाओ मे बॅटा हुआ था। ठेठ पूर्व, ठेठ दक्षिण, सिन्ध

और पंजाब के कुछ प्रान्तो मे अनार्यों के राज्य थे, किन्तु शेष भारतवर्ष मे सब कही आर्य राजे फैले हुए थे। अनार्यों मे म्लेच्छ, निषाद, राक्षस, वानर, बर्बर, यवन, शक, काम्बोज, किरात और आभीर नाम्नी जातियो की प्रधानता थी। विजय यात्राओ में कही के भी राजा का वध नही हुआ तथा शिशुपाल, शल्य, कृष्ण, कुन्तिभोज नरेश आदि सबन्धियो ने बिना लडे ही कर दे दिया। कर्ण को जीतने की शक्ति भीम मे नही थी किन्तु उसने भी नाम मात्र का युद्ध करके कर देना ठीक समझा। हस्तिनापुर मे घरौआ दुर्योधन से कर लेने कोई गया भी नही। इन बातो से जान पडता है कि यद्यपि राजसूय यज्ञ के करने वाले को सम्राट् पद मिलता था, तथापि यज्ञ के कारण लोग उसका विशेष विरोध नही करते थे।

उचित समय पर महाराजा युधिष्ठिर ने सब राजाओ को बुलाकर यज्ञारम्भ किया। इस अवसर पर सबो ने फिर से रत्न, मणि आदि भेंट में दिए। इस बार पाण्डवो की ओर से भेट लेने का कार्य राजा दुर्योधन ने किया। यज्ञ होते समय एकत्रित महाशयो के पूजन मे यह प्रश्न उठा कि सब से प्रथम पूज्य कौन है और भीष्म पितामह के मतानुसार श्रीकृष्ण को सर्वश्रेष्ठ समझ कर राजा युधिष्ठिर ने सहदेव के द्वारा सब से पहले उन्ही का पूजन कराया। यह देख राजा शिशुपाल बडा क्रुद्ध हुआ और कहने लगा, कि शास्त्रानुसार ऋत्विक्, आचार्य, राजा, हितू, सम्बन्धी और गुणी पुरुष ही पूज्य हैं। उसने कृष्ण मे इन सब गुणो का अभाव बतला कर भीष्म, पाण्डवों और कृष्ण की बडी निन्दा की, तथा वत्सासुर एव पूतना-विनाश के कारण श्रीकृष्ण को गो स्त्रीघातक भी कहा। बहुत देर तक वादविवाद होता रहा, किन्तु जरासन्ध के विनाश के कारण शिशुपाल का क्रोध शान्त न हुआ। उसने भगवान् वासुदेव को सौ से अधिक गालिया दी। इस पर श्रीकृष्ण ने नृप-समाज को सबोधित करके कहा, "इस की माता मेरी फूफी थी, जिसमे वचनबद्ध होने के कारण मैंने शिशुपाल के सौ अपराध पर्यन्त क्षमा करने का प्रण किया था। इस सख्या के बढ जाने से अब मैं इसे उचित दड देता हूँ।" यह कहकर भगवान ने शिशुपाल को प्रचार कर चक्रद्वारा उसका शिर-छेदन किया। अनन्तर

यज्ञ कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया और सब आगन्तुक लोग अपने अपने स्थानो को वापस गये।

मय दानव ने युधिष्ठिर की सभा ऐसी विचित्र बनाई थी कि उसमे जल थल तथा अन्य बातो का भ्रम हो जाता था। राजा दुर्योधन को उसमे कुछ भ्रम हो गया जिस पर द्रौपदी तथा भीम ने उपहास करके कहा कि अंधो के लड़के भी अंधे ही होते हैं। यह बात या तो दुर्योधन ने सुन ली अथवा उनके कानो तक पहुँचाई गई। इससे तथा पाण्डवो की भारी श्रीवृद्धि से उन्हे क्रोध और ईर्ष्या उत्पन्न हुई। हस्तिनापुर जाने पर अपने मामा शकुनि की सलाह से महाराजा धृतराष्ट्र की किसी प्रकार से आज्ञा लेकर उन्होने राजा युधिष्ठिर को हस्तिनापुर बुलाया और वहाँ छल के पाँसे रचकर शकुनि की सहायता से युधिष्ठिर का सर्वस्व जुए मे जीत लिया। राजपाट हार कर राजा ने अपने चारो भाइयो को भी हार दिया और फिर अपने को भी हार कर द्रौपदी तक को फण पर रक्खा। इस बात पर भीष्म द्रोणादि ने उनको बहुत धिक्कारा किन्तु सौबल ने पाँसे फेक कर द्रौपदी को भी जीत लिया। अब राजा दुर्योधन की आज्ञा से कुमार दुःशासन बलात् पकड़ कर द्रौपदी को सभा से घसीट लाये। रानी ने यह प्रश्न उठाया कि जब राजा पहले अपने को हार चुके थे, तब पीछे से उसे नही हार सकते थे। भीष्म और द्रोण ने इस बात का निर्णय द्रौपदी के पक्ष मे करना उचित न समझा और इसका फैसला युधिष्ठिर ही पर रख दिया। फल यह हुआ कि सभा मे कौरव राजकुमारो ने इस अनाथ राज-महिला के भारी अपमान करने तथा उसे वस्त्र-विहीना बनाने के प्रयत्न का कलंक अपने ऊपर लिया। यह दशा देख धृतराष्ट्र ने पाण्डवो के दासत्व का मोचन करके जीती हुई उनकी सारी सपत्ति फेर दी। इतना करके वे भीष्म द्रोण सहित सभा से उठ गये और तब उसी समय अथवा कुछ दिनो के पीछे फिर से द्यूत खेला गया जिसमे यह निश्चय हुआ कि राजा युधिष्ठिर रानी द्रौपदी तथा भाइयों समेत १२ वर्ष वनवास करके तेरहवे वर्ष कही गुप्त रीति से रहे। यदि तेरहवें वर्ष कौरव लोग उन्हे न खोज सके तो उनका राज्य वापस मिल जावे, नहीं तो फिर इसी नियमानुसार वे वनवास करे।

अब पाण्डव लोग सर्वस्व छोड़कर उपर्युक्त नियमानुसार जगल को चले गये और कौरवो ने उनके राज्य पर अधिकार जमाया। जगल मे जाकर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने उनसे मुलाकात की और कहा, "मैने राजसूय यज्ञ मे जो शिशुपाल का वध किया था, उससे क्रुद्ध होकर कलिङ्गनरेश राजा शाल्व मेरी अनुपस्थिति मे द्वारावती (द्वारिका) पर आक्रमण करके पुर तथा उपवनो का भग्न करता हुआ बहुत प्रकार के दुर्वचन कहकर मुझे खोजने चला गया। अपने नगर मे लौट आने पर मैंने जब यह हाल सुना, तब सेना सहित उसकी खोज करता हुआ मै समुद्र के निकट पहुँचा। उसी स्थान पर प्रचड युद्ध हुआ जिसमे शाल्व मारा गया और उसकी सेना ध्वस्त हुई। इसी कारण मै इन्द्रप्रस्थ नही आ सका, नही तो न द्यूत होने पाता और न आप पर विपत्ति आती। अब चोदहवे वर्ष पृथ्वी कौरवो का रुधिर पान करेगी।" इस प्रकार पाडवो को सान्त्वना देकर तथा सुभद्रा आदि को कुछ राजकुमारो सहित साथ लेकर श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका चले गये। राजा युधिष्ठिर ने माता कुन्ती को हस्तिनापुर मे ही विदुर के पास छोड़ दिया था। अब राजा ने द्रौपदी के अतिरिक्त शेष रानियो को उनके पुत्रों समेत अपने अपने मायके भेज दिया और पांचो द्रौपदेयो को लेकर द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न काम्पिल्य को चले गये। तेरह वर्ष के पीछे कौरवो से युद्ध अनिवार्य समझ कर महाराजा युधिष्ठिर को भीष्म, द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य के भारी पराक्रमो से चिन्ता हुई। इस पर अर्जुन ने हिमालय पर जाकर पूर्ण धनुर्विद्या सीखने का निश्चय किया। इसलिए अपने भाइयो तथा रानी द्रौपदी की आज्ञा लेकर उन्होंने हिमाचल पर जा शिव नामक किरात से धनुर्विद्या सीखी और फिर इन्द्र नामक एक प्रतापी पर्वतीय राजा के यहाँ पांच वर्ष निवास किया। उस राजा के हितार्थ अर्जुन ने उसके शत्रु कार्तिकेय (असीरिया वालो) तथा निवातकवची दैत्यो का नाश किया।

इधर राजा युधिष्ठिर ने रानी द्रौपदी और भाइयो समेत लोमश और धौम्य के उपदेश से तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया। इन्द्रसेनादि परिचारक गण उनके साथ अस्त्र, शस्त्र, रथ, आयुध आदि लेकर चले। इस यात्री समाज ने काम्यक वन मे त्रिरात्र निवास

करके स्थान स्थान पर ठहरते हुए यथा समय नैमिषारण्य में पदार्पण किया। यहीं पर धन, तथा गोदान करके ये लोग गंगा यमुना के संगम स्थल प्रयाग पहुँचे, जहाँ सभी ने विधि से क्षौर कराया तथा अक्षयवट, भारद्वाजाश्रम और भृगु तीर्थ के दर्शन किये। अनन्तर ये लोग हेमकूट (रत्नगिरि ज़िला पटना में) गये और कौशिकी नदी (कोसी) के पार उतरे। यहां ऋषि विश्वामित्र का आश्रम विद्यमान था जहां विधि पूर्वक स्नान करके यह यात्रीसमाज गंगासागर (गंगा और समुद्र के संगम स्थल) पर पहुँचा। यहां स्नानादि कर्म से निवृत्त होकर ये लोग समुद्र ही के किनारे चल कर कलिंग (उड़ीसा के दक्षिण और द्रविड के उत्तर) देश की ओर प्रस्थित हुए। मार्ग में वैतरणी नदी को पार करके समुद्र के किनारे चलते हुए ये पुण्य क्षेत्र गोदावरी पर पहुँचे। वहां विधिपूर्वक स्नान करके तथा ब्राह्मणों को दान देकर महाराजा युधिष्ठिर द्रविड़ देश को चले। इन्होंने अगस्त्यनागी (जिला नासिक में) और शूर्पारक (सूरत, सिघार अथवा कोल्हापुर के दक्षिण में कोई स्थान) आदि तीर्थों को देखते हुए प्रभास क्षेत्र में (गुजरात में सोमनाथ मन्दिर के निकट) पदार्पण किया। वहां वृष्णिकुल के मुख्य मुख्य वीर पुरुष पाण्डवों से मिलने आये और उनकी दशा पर शोक मनाते रहे। श्रीकृष्णचन्द्र से विदा होकर पाण्डव लोग वैडूर्य पर्वत और नर्मदा नदी को गये।

अनन्तर सैन्धवारण्य पहुँच कर इन्होंने पुष्कर क्षेत्र में स्नान किया। फिर यमुना, सरस्वती, विपाशा आदि नदियों को पार करते हुए ये लोग कश्मीर में गये जो मानसरोवर का द्वार कहा गया है। यहां इन्होंने प्रख्यात वातिक खंड देखा जहा से गंगा नदी बहती है, जहा मैनाक पर्वत विद्यमान है और जिसे श्वेत मन्दिर पर्वत सुशोभित करता है। इसके उपरान्त यह समाज गन्धमादन पर्वत (जो बदरिकाश्रम से उत्तर पूर्व कुछ दूर से आरंभ होता है) पर गया। यहां से आगे की यात्रा बहुत कठिन देख कर और द्रौपदी से उसका होना असंभव समझ कर धर्मराज चिन्ताकुल हुए। तब राजा तथा द्रौपदी की आज्ञा लेकर भीमसेन ने हिडम्बा-पुत्र घटोत्कच को बुलाया। उसने बहुत से अनुयायियों समेत यात्रा में योग दिया और अशक्त

लोग राक्षसो के कन्धे पर बैठ बैठ कर चले और मार्ग मे बहुत से देश पार किये गये। इस प्रकार जाते हुए इन लोगों ने रम्य पर्वत कैलास के दर्शन किये और उसी के समीप नर-नारायण का आश्रम देखा। इसी स्थान पर इन की यात्रा समाप्त हुई, अर्जुन ने आकर राजा के दर्शन किये और अपनी शस्त्र-शिक्षा की पूर्णता बतला कर उन्हे प्रसन्न किया। अब ये सब लोग फिर इधर उधर जगलो मे बने रहे।

उधर राजा दुर्योधन ने विष्णु यज्ञ करने का विचार किया और तब कर्ण ने उनके लिये भारत मे दिग्विजय की। अनन्तर विधिपूर्वक यज्ञ पूर्ण हुआ। थोडे दिनो मे राजा युधिष्ठिर के वनवास का बारहवां वर्ष समाप्त हुआ और तेरहवे मे मत्स्यपुर जाकर पाण्डव लोग नियमानुसार छद्म वेष मे राजा विराट् की नौकरी करने लगे। यहां विराट् के साले कीचक ने द्रौपदी पर मुग्ध हो और उसे दासी मात्र समझ कर स्ववश करने के अनेक प्रयत्न किये, यहां तक कि भीमसेन को विवश होकर गुप्त रीति से उसका वध करना पडा। होते होते इनका अज्ञात वाला तेरहवा वर्ष भी समाप्तप्राय हुआ और ये प्रकट होने वाले ही थे कि कुछ कौरव राजकुमारो ने राजा विराट् के गोधन का हरण कर लिया। इस काल अर्जुन क्लीव वेष मे विराट् पुत्री उत्तरा को नाचना गाना सिखाते थे।

अब इन्होने युद्ध में कौरवो को पराजित किया और यह गुप्त भेद खुल गया। तब लोकापवाद के भय से विराट् ने अपनी कन्या उत्तरा का विवाह इन्ही से करना चाहा, किन्तु अर्जुन ने यह कह कर कि बालिका उत्तरा मुझे सदैव आचार्य मानती थी और मैं उसे पुत्री समान देखता था, उसका विवाह अपने साथ अनुचित माना और विराट् का आदेश सफल करने को अपने ही पुत्र अभिमन्यु के साथ पाणिग्रहण करा दिया।

अब पाण्डवो ने प्रकट होकर दुर्योधन से अपना राज्य मांगा और बल सचित करना आरभ किया। यह सुन राजा दुर्योधन ने भी अपने पक्षियो को निमन्त्रित किया और दोनों ही ओर सेना एकत्रित होने लगी। राजा युधिष्ठिर की ओर वृष्णि वशी सात्यकि, शिशुपाल

पुत्र चेदिराज धृष्टकेतु, जरासन्ध-पुत्र सहदेव और जयत्सेन, राजा पाण्ड्य और राजा विराट् एक एक अक्षोहिणी सेना लेकर आये, तथा पांचालराज द्रुपद दो अक्षोहिणी सेना लाये। कोई राजा नील भी इनके पक्ष मे थे जो युद्ध मे अश्वत्थामा द्वारा मारे गये। उधर राजा दुर्योधन की ओर प्राग्ज्योतिष पति भगदत्त, बाल्हीक-नरेश सोमदत्त, मद्रपति शल्य, भोजनरेश कृतवर्म्मा, सिन्धु नरेश जयद्रथ, काम्बोजनरेश श्रुतायु माहिष्मती-नरेश नील, अवन्ति के राजा विन्द, अनुविन्द और केकय-राजा सौदार्य आये। भगदत्त नरकासुर नामक एक ब्राह्मण का पुत्र था, किन्तु उसकी सेना मे चीनी योद्धा भी थे (म० भा० II २५,१००८; V १८, ५८४)। महाभारतीय युद्ध के पीछे इस के पुत्र वज्रदत्त ने भी अश्वमेध के सम्बन्ध मे अर्जुन से युद्ध किया। दुर्योधन के सहायको मे से बिन्द और अनुबिन्द के पास दो अक्षोहिणी थी और शेष सहायको के पास एक एक अक्षोहिणी। एक अक्षोहिणी मे हाथी, घोड़े, रथ आदि के अतिरिक्त प्राय: १,६४,००० युद्धकर्ता मनुष्य होते हैं। इनके अतिरिक्त दक्षिण पथ, कुरु जांगल, पजाब, मरुभूमि, रोहित कारण्य (करणवती उपनाम केन नदी के समीप वाले) कालकूट, अहिछत्र, दोआब (अन्तर वेद) आदि देशो के अनेक छोटे मोटे राजे दुर्योधन की ओर आये। अत: दुर्योधन के मुख्य सहायको की सेना ११ अक्षोहिणी थी और इसके अतिरिक्त अमुख्य सहायको की तथा घरू सेना विशेष थी। कृतवर्मा और सात्यकि दोनो यादव थे, किन्तु इन्होने एक दूसरे से प्रतिकूल पक्ष लिये। इससे प्रकट होता है कि इसी काल से यादवो मे दो प्रतिकूल दल हो गये थे, जिनका वैमनस्य श्रीकृष्ण के होते हुए भी न दूर हो सका। इसी विभ्राट् ने समय पर यादवो का विनाश किया जैसा कि आगे ज्ञात होगा। मद्रपति शल्य पाण्डवो के मामा थे, किन्तु सत्कार करके दुर्योधन ने उन्हे अपनी ओर कर लिया। उन्होने शेष पजाबी नरेशो का साथ देकर भी दुर्योधन का पक्ष लिया। देशो के अनुसार पाण्डवो के साथी हुये मत्स्य, चेदि, कारूष, काशी, दक्षिण पांचाल, पाश्चात्य मागध तथा पाश्चात्य यादव गुजरात सुराष्ट्र से। उधर दुर्योधन की ओर पजाबी, उत्तरी, पूर्वी एव दाक्षिणात्य शक्तियां थीं। इन मे प्राग्ज्योतिष, चीन, किरात

(उत्तर पूर्व), काम्बोज, यवन, शक, मद्र, केकय, सिन्धु, सोवीर, भोज, दक्षिणपथ, आन्ध्र (दक्षिण पूर्व), माहिष्मती और अवन्ती भी थे।

पाण्डवी दल का सेनापति द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न हुआ और कौरवी दल के भीष्म पितामह। कई बार दोनो राजाओ के बीच दूत आये गये और युधिष्ठिर ने कहला भेजा कि या तो आधा राज्य दे दो अथवा पाँच प्रान्त ही सही। दुर्योधन ने राजा धृतराष्ट्र तथा अन्य सुहृदों के समझाने पर भी सन्धि का प्रस्ताव न माना और साक्षात श्रीकृष्ण के दूतत्व करने पर कहा, "बिना युद्ध के सून्यग्र भी जमीन न दूँगा।" पलटते हुए श्रीकृष्णचन्द्र ने कर्ण से कहा, "तुम कुन्ती के ज्येष्ठ पुत्र होने से पाण्डु के भी सहोढ़ पुत्र हो। इसलिए सूतज-पन छोडकर पाण्डवपद ग्रहण करो तथा सब से बड़े भाई होने से राज्य भी लो और युधिष्ठिर को युवराज बनाओ।" कर्ण ने इतना भारी उत्कोच भी धर्म के आगे तुच्छ समझा और उत्तर दिया, "अब तक ससार मे परमधर्मी और दानी का यश भोग करते हुए मैं अपने मित्र दुर्योधन से विश्वासघात सा परम गरिष्ठ पातक कैसे कर सकता हूँ?" श्रीकृष्ण के विफल मनोरथ रहने पर माता कुन्ती ने भी कर्ण के पास जाकर यही प्रस्ताव किया और अपने माता के पद का महत्त्व भी उसी मे मिला दिया। कर्ण के पिता सूर्य ने भी इसी बात की सम्मति दी। माता कुन्ती ने यह भी कहा, "जब तुम और अर्जुन एक हो जाओगे, तब दुर्योधन अवश्यमेव सन्धि कर लेगा और क्षात्र-विनाश मिट जायगा।"

इन गौरवपूर्ण सम्मतियो को सुनकर भी कर्ण दुर्योधन का साथ छोडना बडा ही गर्ह्य कर्म मानता रहा और हाथ जोड कर बोला, "हे माता! वीरपुरुष को राज्य-सुखार्थ धर्म छोडना शोभा नही देता। राजा दुर्योधन ने मुझे मन्त्री, भाई, भट, सखा सभी मानकर पाला है और मेरे ही बल के सहारे वह पाण्डवों को पराजित करना चाहता है। ऐसे स्वामी को ऐसे समय छोडना कीर्तिविनाशक और महान् अपराधकर है। अतः मै आपकी आज्ञा न मानने मे विवश हूँ किन्तु मानसिक भय के मिटाने को यह सच्चा प्रण करता हूँ कि अर्जुन को छोड़कर आपके शेष चारो पुत्रो

को नही मारूगा, जिससे पांचो पुत्र जीवित रहेगे अर्थात् अर्जुन के न होने से कर्ण और कर्ण के न होने से अर्जुन विद्यमान रहेगा।" यह सुन कुन्ती ने भावी को अमिट जानकर प्रिय वचन कह कर घर का रास्ता लिया और चलते समय इतना कह दिया कि युद्ध के समय इस प्रण को भूल मत जाना। अब दोनो ओर से युद्ध की अंतिम तय्यारी हुई और दोनो सेनाये युद्धार्थ कुरुक्षेत्र मे पधारी।

जब कौरवो तथा पाण्डवो की सेनाये युद्धार्थ एक दूसरी के सम्मुख उपस्थित हुई तब अर्जुन को निकट के सम्बन्धियो से युद्ध करने मे बडा क्षोभ उत्पन्न हुआ। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने इनका सारथ्य ग्रहण किया था सो उन्होने यह शैथिल्य देख गीता का ज्ञान समझा कर इन्हे युद्धार्थ सन्नद्ध किया। १८ दिन तक घोर युद्ध हुआ। इन १८ दिनो मे कौरवी दल का नेतृत्व भीष्म पितामह ने दस दिन किया, द्रोणाचार्य ने पाँच दिन, कर्ण ने दो दिन और शल्य ने आधे दिन। इसके अलावा बीच मे कई बार मिलाकर ८-१० दिन युद्ध बन्द रहा। इतने दिनो मे अनेकानेक युक्तियो से पाण्डवो ने सारा कौरवी दल अशेष कर दिया और प्रधान पुरुषो मे केवल कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा बच गये। उधर पाण्डवो की सात अक्षोहिणियो मे भी केवल एक ही बची। दुर्योधन को मरणप्राय दशा मे देखकर अश्वत्थामा ने महाक्रोध किया और बचे बचाये कौरवी दल की सहायता से रात मे यह पाण्डवी दल भी अशेष कर दिया। अब पुरुष प्रधानो मे पाण्डवो की ओर भी उन पॉच भाइयो के अतिरिक्त श्रीकृष्ण, सात्यकि और धृतराष्ट्र का वैश्यापुत्र युयुत्सु बच गये।

युद्ध मे भीष्म का पराक्रम सब से बढा रहा और द्रोणाचार्य ने सबसे अधिक पुरुष-प्रधानो का वध किया। कर्ण और अश्वत्थामा ने भी अच्छा पुरुषार्थ दिखलाया। कर्ण ने अर्जुन से इतर चारो पाण्डवों को जीतकर अपने प्रणानुसार छोड दिया पर अर्जुन के हाथ उसका विनाश हुआ। पाण्डवो की ओर अर्जुन सर्वप्रधान थे। उन्ही के बल तथा श्रीकृष्ण की युक्तियो से राजा युधिष्ठिर को विजय प्राप्त हुई। युद्ध समाप्त होने पर अश्वत्थामा ने राजा धृतराष्ट्र की प्रदक्षिणा करके दूर देश का प्रस्थान किया तथा कृत-

वर्मा द्वारावती चले गये और कृपाचार्य हस्तिनापुर जाकर अपने घर मे पूर्ववत् रहने लगे। महाभारत का युद्ध अगहन और पूस मे हुआ। भरद्वाजवशी बहुत से ब्राह्मण एव अन्य कुल आज तक भारतवर्ष मे हैं। वे सब अश्वत्थामा के ही वशधर है। इनके अतिरिक्त कहते हैं कि दक्षिण का पल्लव राजकुल अश्वत्थामा वाली शाखा का भारद्वाज वशधर था तथा प्रसिद्ध वाकाटक सम्राट् भी इसी कुल के थे।

राजा युधिष्ठिर ने अब पूरे कौरवी राज्य पर अधिकार जमाया। इन्होने राजा धृतराष्ट्र का सम्मान पूर्ववत् स्थिर रक्खा तथा कृपाचार्य, विदुर और सजय का भी यथेष्ट मान किया। भीष्म पितामह युद्ध मे बहुत घायल हो गये थे किन्तु उसके पीछे कई मास पर्यन्त जीवित रहे। इन्होने राजा युधिष्ठिर को नीति का उपदेश दिया जिसका विशद वर्णन महाभारत के शान्ति पर्व मे है। महाभारत के युद्ध मे इतना बडा जन-विनाश हुआ कि इस पर लोगो को विश्वास नहीं होता था क्योकि प्राय: ३५ लाख की हताहत सख्या पर विश्वास करना अबतक असभव सा समझ पडता था, किन्तु अब योरोपीय महायुद्ध की हताहत सख्या को देखते हुए महाभारत मे लिखित सख्या को कोई असंभव नही कह सकता।

राजा युधिष्ठिर ने राज्य पाने के पीछे अश्वमेध किया। अर्जुन हयरक्षक होकर गये और इन्होने प्राय: सभी राजाओं को वडी सुगमता पूर्वक परास्त कर दिया। मणिपुर मे इनका अपने पुत्र बभ्रुवाहन के साथ युद्ध हुआ और पुत्रस्नेह वश ये उससे हार भी गये किन्तु पीछे से मेल हो गया और उसने घोड़ा छोड दिया। प्राय· १२ वर्ष हस्तिनापुर मे युधिष्ठिर के समय मे रहकर महाराजा धृतराष्ट्र गान्धारी, कुन्ती और विदुर समेत वनवासार्थ चले गये। थोड़े दिनो के पीछे यज्ञाग्नि से वढकर उस वन में भारी पावकप्रकोप हुआ जिसमे कुन्ती और गाधारी सहित महाराजा धृतराष्ट्र जल मरे। विदुर का शरीरपात उनसे पहले ही हो चुका था।

राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन के पीछे ३६ वर्ष राज्य किया। इस वर्ष यादवों की घरू अशान्ति ऐसी उभडी कि थोडे ही कारण से उनमें युद्ध हो पडा। इस काल वे लोग ऐसे मदोन्मत्त हो गये कि राजधर्म

छोड़ कर ब्राह्मणो पर भी अत्याचार करने लगे थे जिससे कई ब्राह्मणो ने शाप भी दिये थे। फल यह हुआ कि श्रीकृष्णचन्द्र के सामने ही कृतवर्मा और सात्यकि के पक्षियो मे युद्ध होने लगा। श्रीकृष्ण के पुत्र पौत्रो ने सात्यकि का साथ दिया और जब भोजान्धक वंशियो ने सात्यकि, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, गद, चारुदेष्ण आदि कुमारो तथा सरदारो का वध ही कर डाला, तब श्रीकृष्णचन्द्र भी मुशलास्त्र लेकर युद्ध मे प्रवृत्त हुए। फल यह हुआ कि थोड़े ही समय मे यदुवंशियो का सर्वनाश हो गया। यह देख बलरामजी ने समुद्र मे घुसकर अपना शरीर छोड़ दिया। श्रीकृष्णचन्द्र प्रभास के निकट एक वृक्ष के नीचे उदास मन लेटे थे कि एक बहेलिये ने मृग समझ इनके ऊपर विषाक्त बाण चला दिया जिससे इनका भी शरीरपात हो गया। यह दुर्घटना देख दूसरे दिन कृष्ण-पिता वसुदेव भी मारे शोक के स्वर्गवासी हुए। यह बड़ी विचित्र बात है कि अयोध्यावासी रामचन्द्र के पिता दशरथ तथा द्वारकावासी श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव दोनो ही पुत्र-वियोग से मरे। परशुराम के अतिरिक्त भारत मे यही दो सर्वोत्कृष्ट वीर हुए हैं।

जान पडता है कि आपस की फूट के अतिरिक्त कुछ शत्रु लोगो ने भी यादवों पर अत्याचार किये क्योकि अर्जुन के पास दूत भेजते समय श्रीकृष्णचन्द्र ने कहला भेजा था कि तुम्हारे द्वारिका पहुँचने के सात दिन पीछे समुद्र इस नगरी को डुबो देगा। द्वारिकापुरी गुज-रात प्रान्त मे समुद्र तट पर है। शायद बेलजियम और हालैण्ड की भाँति यहाँ भी मोटी भीते बना कर समुद्र से कुछ भूमि ली गई थी और नगर का मुख्य भाग उन्हीं भीतो के सहारे समुद्र से निम्नतर भूमि मे बसा था। शत्रुओ ने शायद इन्ही भीतो को फोड कर नगर का डुबोना चाहा था और इसी के लिये अर्जुन के आने की अवधि दी गई थी। यदि केवल समुद्र द्वारा नगर डूबने की बात होती, तो यादव लोग सारा राज्य छोड़ने के स्थान पर कुछ दूर हटकर नगर बसाने का प्रयत्न करते। समुद्र द्वारा केवल प्राकृतिक शक्तियो से नगर के डूबने मे अवधि भी नही हो सकती थी। जान पड़ता है कि धृत-राष्ट्र वंशी, पंजाबी राजाओ की सहायता से पंचनद मे बसे होंगे। ३६ वर्षो मे बल सम्पादित करके भोजो आदि की सहायता से उन्होंने

यादवो को मारा तथा अर्जुन को हराया। काठियावाड़ के काठी क्षत्रिय अपने को धृतराष्ट्र वंशी कहते भी हैं। काठी लोग सिकन्दरी आक्रमण के समय पंचनद मे रहते थे। यादव विनाश गान्धारी के शाप से हुआ, ऐसा महाभारत मे भी कथित है। जान पड़ता है कि इन्ही के वशधर और साथके वाले यादव विनाश कर्ता मुख्य शत्रु होंगे। इसलिये शत्रु-शका का विचार निश्चित समझ पड़ता है।

दारुक सूत के मुख से श्रीकृष्ण का यह सन्देशा सुनकर अर्जुन अकेले रथ पर चढकर द्वारिका पहुँचे और महाशोक ग्रस्त हो मृत यादवो की दाहक्रिया किसी प्रकार समाप्त करके सात दिन के भीतर धन, स्त्री, बच्चो, सेवका, पुरजनो आदि को, तथा बहुत सा सामान साथ ले कुरुक्षेत्र को रवाना हुए। इसके अनन्तर ही द्वारावती समुद्र के पेट मे लीन हो गई। इस दुर्घटना के पीछे जान पडता है कि कुछ यादव लोग दक्षिण को चले गये और शेष अर्जुन के साथ उत्तर को। समय पर दाक्षिणात्य यादवो ने उस देश पर अपना शासन जमाया जिसका वर्णन यथास्थान आवेगा। इधर हतशेष यादव-समाज लिये हुए अर्जुन जिस काल पञ्चनद मे ठहरे तब निस्सहाय समझ कर लूट के लालच से इन पर आभीरो ने आक्रमण किया। राजसूय सम्बन्धी दिग्विजय मे नकुल ने आभीरो को परास्त किया था। सम्भव है कि उसी का बदला लेने के लिए आभीरो ने कौरवो से मिलकर यह आक्रमण किया हो। शोकमूर्छित होने के कारण अर्जुन इनका सामना न कर सके और इन लोगो ने यादवो का सारा धन तथा सहस्रों स्त्रियाँ लूट ली। बचे-खुचे सामान तथा मनुष्यों को साथ लेकर परम शोक-विह्वल अर्जुन कुरुक्षेत्र पहुँचे।

वहां से हार्दिक्य पुत्र तथा भोजपुर की स्त्रियों को अर्जुन ने मातृकावत नगर मे स्थान दिया तथा इन्द्रप्रस्थ में आकर श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्र को वहां का राजा किया और सात्यकि के पुत्र को सरस्वती-तट का देश दिया। इन तीनों नवीन यादव राजाओं को अर्जुन ने राजनीति का उपदेश किया और द्वारका के पुरजन वज्र को सौंप दिये। मातृकावत वरार के निकट यादवों का पुराना प्रान्त था। पीछे यह भोजो का हो गया था। इन्हीं भोजों की शत्रुता से यादव विनाश

हुआ। ऐसे भोजो को अर्जुन ने मातृकावत दिया होगा, क्योकि वह पहले ही से उन्हीं का था। अब अक्रूर की स्त्रियां तथा सत्यभामा आदि ने सन्यास ग्रहण करके जङ्गल का रास्ता लिया एव रुक्मिणी, हेमवती, जाम्बवती और शैव्या ने अपना अपना शरीर अग्नि मे जला दिया। वसुदेव की रानियों मे से देवकी, रोहिणी, मदिरा और भद्रा पति के साथ सती हो गई थी। इस प्रकार यादवो के पांच लाख योद्धा और असख्य अन्य पुरुष आपस मे ही लड़कर धराशायी हुए। इसके पीछे अर्जुन ने व्यास भगवान् की शरण मे जा सब हाल कहकर मन्त्र पूछा। यह सुन उन्होंने सम्मति दी कि अब तुमको भी भाइयो समेत महाप्रस्थान करना चाहिये।

अनन्तर राजा युधिष्ठिर के पास जाकर अर्जुन ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और व्यास भगवान की अनुमति भी कही। पाँचो पाण्डवो तथा द्रौपदी की भी सम्मति महाप्रस्थान ही की हुई। बभ्रुवाहन को छोड पाण्डवो के बारहो पुत्र महाभारत-युद्ध मे मर ही चुके थे और इन पांचो भाइयो मे केवल अर्जुन का पौत्र परीक्षित एक मात्र सन्तान रह गया था जो अभिमन्यु और विराट पुत्री उत्तरा का पुत्र था तथा महाभारत-युद्ध के कुछ मास पीछे ही उत्पन्न हुआ था। अब इसी युवक परीक्षित का राज्याभिषेक करके महाराजा युधिष्ठिर ने इसे नीति सिखलाई और सारी प्रजा इसी को सौंप दी। प्रजा लोगो ने इनसे महाप्रस्थान-सकल्प छोड़ने को बहुत कुछ कहा, किन्तु इन लोगो ने उसको न छोडा। राजा युधिष्ठिर ने युयुत्सु को राज्य-प्रबन्ध का भार दिया और कृपाचार्य से कहा, "मै बालक परीक्षित आपको सौंपे जाता हूँ।" फिर रानी सुभद्रा से कहा, "तुम अपने पौत्र का नीति से पालन करना और इसकी वज्र से प्रीति सदा स्थिर रहे, ऐसा प्रयत्न करना।" इस प्रकार प्रजा एवं कुटुम्ब का प्रबन्ध करके द्रौपदी समेत पांचो पांडवो ने सुन्दर वस्त्रालङ्कारो का त्याग करके वल्कल वसन धारण किये। उस काल सभो के हाहाकार से पृथ्वी आकाश गूँज गये। इन लोगो ने अपने ऊपर से अग्नि उतार कर पानी मे डाल दी, फिर पूर्व दिशा को प्रस्थान किया। राज-परिवार तथा प्रजा लोग इनके साथ बहुत दूर तक चले गये। तब इन्होंने किसी प्रकार समझा बुझा कर पुरवासियो को

फेरा और फिर परीक्षित, कृपाचार्य और युयुत्सु को भी वापस किया। इनको जाते ही देख अर्जुन की स्त्री नागसुता उलूपी गंगा में धँसकर मर गई और बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा मणिपुर को चली गई। शेष राजमहिलायें रोती हुई परीक्षित को घेर कर हस्तिनापुर वापस आईं।

पूर्व दिशा को चलते हुए राजा युधिष्ठिर, द्रौपदी और भाइयों समेत समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ पर एक ब्राह्मण की सम्मति से अर्जुन ने गाण्डीव धनुष और अक्षय तूणीर समुद्र में डाल दिये। वहाँ से ये पश्चिम दिशा को चले। क्रम से गुजरात में जाकर इन्होंने जलमग्न द्वारिका का निरीक्षण किया। द्वारिका को प्रणाम करके ये उत्तर दिशा को चले और हिमाचल पार करके इन्होंने वहीं से मेरु का दर्शन किया और कुछ बालू-पूर्ण पृथ्वी को पार करके बर्फिस्तान को देखा। सुमेरु पर्वत कोई कोई काकेशस उपनाम काफ पहाड़ को कहते हैं और कोई रुद्र हिमालय को। इसका दूसरा नाम पच पर्वत भी है। इसी में द्रौपदी समेत ४ पांडव मृत हो गये और केवल युधिष्ठिर बचे जो पर्वत पार करके इन्द्रपुरी को चले गये। यह इन्द्रपुरी अथवा अमरावती कौन सा स्थान है इसका निर्णय सुगम नहीं है। कुछ पंडितों का विचार है कि महाभारत युद्ध वास्तव में कुरु सृंजयों की लड़ाई थी। इन दोनों वंशों की मन मैली शतपथ ब्राह्मण (वैदिक अनुक्रमणिका II पृ० ६३) में लिखी है। पतंजलि (IV १, ४) नकुल सहदेव को कौरव कहते हैं। दस ब्रा० जातक (४९५) में इन्द्रप्रस्थ कोरव्य कहा गया है और लिखा है कि युधिष्ठिर वंशी का वहां राज्य था। आश्वलायन गृह्य सूत्र (III ४) में वैशम्पायन महाभारताचार्य्य हैं। उनका नाम तैत्तिरीय आरण्यक (I ७, ५) तथा पाणिनीय अष्टाध्यायी IV ३, १०४) में भी है।

महाभारत के समय का यह सूक्ष्म वृत्तान्त अब यहीं समाप्त होता है और इसके विषय में आधुनिक विचारों का कुछ दिग्दर्शन मात्र शेष है। इसी समय के पीछे से भारत में कलियुग का प्रारम्भ माना गया है। कलि के आरंभ का ठीक समय क्या है इस पर पण्डितों में कुछ मतभेद है। कुछ ज्योतिषियों का विचार है कि

महाभारत का युद्ध ६५३ गत कलि में हुआ। पुराणों मे कलि का आरंभ कहीं कहीं महाभारत युद्ध या श्रीकृष्ण का मरणकाल माना गया है और कहीं परीक्षित का राजत्वकाल। अन्तिम दोनो समय प्रायः एक ही समझने चाहिये।

ब्राह्मण ग्रन्थो मे राजा जनमेजय और परीक्षित के नाम हैं किन्तु पाण्डवों के नही। इसी से कुछ लोग सन्देह करते हैं कि यदि पाण्डव ऐसे प्रतापी थे तो उनके नाम ब्राह्मण ग्रन्थो मे क्यो नही आये? इसी लिए उनका विचार है कि पाण्डव लोग थे ही नही। यह तर्क हमको बिलकुल निस्सार समझ पडता है। ब्राह्मण ग्रन्थ धार्मिक हैं न कि ऐतिहासिक। उनमे राजकुलो का वर्णन केवल प्रसगवश कहीं कहीं आ गया है। इसलिये उनमे किसी नाम विशेष के न आने से उसके अभाव सम्बन्ध मे कोई निश्चित निष्कर्ष नही निकल सकता। इस तर्क का पूर्ण बल मान लेने पर भी इतना ही निष्कर्ष कष्टकल्पना से निकाला जा सकता है कि शायद पाण्डवो का इतना प्रताप वास्तव मे न हो जितना महाभारत मे वर्णित है। किसी वर्णन का अत्युक्तिपूर्ण होना एक बात है और बिल्कुल निर्मूल होना दूसरी। ब्राह्मण ग्रन्थो में देवकी-पुत्र कृष्ण का नाम आया है तथा परीक्षित एव जनमेजय के कई बार कहे गये हैं। बौद्धो के निकाय नामक ग्रन्थो मे लिखा है कि प्राचीन काल से पुराणो के सुनने की सर्वसाधारण मे प्रथा थी। इससे जान पडता है कि प्राकृत पुराण प्रायः नवी शताब्दी बी० सी० से चले आते थे। भगवान् वेदव्यास ने अपने शिष्य लोमहर्षण को इतिहास रक्षित रखने का कार्य दिया था। प्राचीन राजकुलो के वश वृत्त आज तक भली भाँति रक्षित हैं। ऐसी दशा मे यह समझ मे नही आता कि थोड़े ही काल मे नितान्त झूठी कथाये पुराणो जैसे पवित्र ग्रन्थों में स्थान पाकर जन समुदाय मे पूज्य भाव से सुनी जाती। अतः महाभारत की कथा को मिथ्या कहना हमारी समझ मे अयोग्य है। यह बात दूसरी है कि उसके वर्णनो के कुछ अंश अत्युक्तिपूर्ण समझे जायँ।

वर्तमान महाभारत मे बहुत स्थानो पर ऐसे कथन आये हैं कि राजा दुर्योधन के अधिकाश कार्य अधर्मपूर्ण थे तथा पाण्डव लोगो ने

अधिकतर दशाओं में धर्म का ही पालन किया था। यदि यही बात यथार्थ होती तो भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और विकर्ण (दुर्योधन का भाई) से प्रसिद्ध धर्मात्मा पुरुष इस घगाऊ युद्ध मे दुर्योधन का साथ कभी न देते। इससे जान पडता है कि महाभारत मे दुर्योधन का अधर्म तथा पाण्डवो का धर्म बहुत बढाकर लिखे गये हैं। यदि भीष्मादि दुर्योधन को अधर्मी समझते होते तो उसकी नौकरी छोडकर चले गये होते न यह कि द्रोण अपना राज्य तक छोड कर हस्तिनापुर मे डटे ही रहते। जिस काल राजा दुर्योधन मरणावस्था मे पड़े थे, तब अश्वत्थामा ने प्रत्यक्ष कहा था कि मुझे पिता के बध से इतना कष्ट नही हुआ जितना कि आपकी इस दशा से। स्वामि-कष्ट से खिन्न होकर ही अश्वत्थामा ने पाण्डवी दल को अशेष किया और फिर मरते हुए दुर्योधन के कान मे पाण्डव पुत्रों और द्रुपद पुत्रों के बध का सुखद समाचार चिल्लाकर सुना दिया। इस पर दुर्योधन मरने का दुःख भूल हर्षगद्गद् हो गया और बोला, "तुम भीष्म, द्रोण और कर्ण से भी अधिक कार्य करके आज मुझसे उऋण हो गये।"

जिस स्वामी से उसके धर्मवान् सेवक इतने अनुरक्त हो, वह अधर्मी कभी न रहा होगा। यदि वह गर्हित कर्म करने वाला होता, तो पूरा कौरव कुल उसी की ओर कभी न होता। राजा शन्तनु के भाई वाल्हीक देश के राजा थे। उनके लिये कौरव पाण्डव दोनों समान थे किन्तु वे भी पुत्र पौत्रों समेत दुर्योधन के सहायक हुए। वाल्हीक का पौत्र भूरिश्रवा बड़ा यज्ञकर्ता, धर्मी और योद्धा था। वह भी दुर्योधन ही की ओर आया। स्वयं नकुल के मामा शल्य ने दुर्योधन का पक्ष स्वीकृत किया। पाण्डवो की ओर वे ही लोग हुए जो उनसे बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रखते थे। जितने तटस्थ लोग थे वे सब दुर्योधन ही की ओर आये। इस कथन के उदाहरण स्वरूप भगदत्त, विन्द, अनुविन्द, नील आदि एव उपर्युक्त अन्य लोग हैं। जिस काल राजा दुर्योधन मरणावस्था के निकट था, तब उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से वाद करते हुए अपने पक्ष की धार्मिकता और प्राबल्य का प्रतिपादन किया था। इस पर आसमान से उस पर सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि हुई और धन्य-धन्य शब्द हुआ तथा साध्यों और अप्सराओं ने दुर्योधन

का समर्थन किया, जिन बातों से पांडवों सहित स्वयं भगवान का मुँह लटक आया। इस पर आपने भी स्वीकार किया कि यदि पाण्डव लोग अधर्म न करते तो लोकपालों के समान पराक्रमी कौरव सरदार सर्वदा अजेय रहते अथच पांडवों का पराभव होता।

ये कथन महाभारत के गदा पर्व मे आये हैं। इनके असम्भव भाग निकाल डालने से प्रकट है कि उस काल सर्वसाधारण की सम्मति दुर्योधन की धार्मिकताके अनुकूल थी। अग्नि पुराण मे यह भी लिखा है कि पाण्डव शक थे, अर्थात पीछे से आर्य माने गये। जब पाण्डु हिमाचल मे थे तभी पाण्डवों का जन्म हुआ ही था सो ये पहाड़ियों के पुत्र थे ही। उस काल के इन्द्र एक पहाडी राजा थे क्योंकि अर्जुन भी उनसे पहाड ही पर मिले थे। एक स्त्री से कई भाइयों के विवाह की चाल कुछ हिमाचल वालों मे अब भी है। द्रौपदी का विवाह ऐसा ही था। पाण्डव लोग महात्मा अवश्य थे किन्तु उपर्युक्त बाते भी पुराणों मे उनके प्रतिकूल पाई जाती हैं। इन बातों से समझ पडता है कि इस युद्ध मे न्याय दुर्योधन ही की ओर था और पाण्डवों के विजयी होने से धीरे धीरे उनकी महिमा अधिक हो गई, यहां तक कि दुर्योधन का पक्ष धर्महीन कहा जाने लगा। कुल बातों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि पाण्डवों के अस्तित्व पर सदेह करना अनुचित है। ब्राह्मण ग्रन्थों के पढने से भी विदित होता है कि परीक्षित के निकटस्थ पूर्व पुरुषों मे कोई भारी घटना हुई थी। यदि महाभारत का युद्ध वास्तव मे केवल पाञ्चालों द्वारा कौरव-विजय होता, जैसा कि कुछ समालोचकों का कथन है, तो पुराणों मे वास्तविक विजेता को दबा कर कृत्रिम पाण्डवों की विजय-प्रशस्ति बढ़ाने का कोई कारण न था और न ऐसा मिथ्यावाद अति शीघ्र पुनीत इतिहास का पवित्र रूप पा सकता था। इसी वंश के राजा सवर्ण को पांचालों ने जीता था सो उसका भी विस्पष्ट कथन महाभारत में विद्यमान है।

युधिष्ठिर के समय हम देखते हैं कि आर्य-सभ्यता का विस्तार दक्षिण मे भी वैसा ही हो गया था जैसा कि उत्तर मे। इस काल महाकान्तार वन पूर्णतया आर्यों से बस गया था, जिसमे अनेकानेक

राजे थे, जिनको सहदेव ने राजसूर्य के समय जीता। अतः इस समय मे आर्यसभ्यता बढ़ चुकी थी।

राजा दुर्योधन का दामाद कृष्ण-पुत्र शाम्ब था। इसने शाकद्वीपी ब्राह्मण लाकर मुल्तान मे बसाये और वहां सूर्य्य मन्दिर बनवाया। इन लोगो का भी दुर्योधन के वशधरो से मेल रहा होगा। अर्जुन पर आक्रमण पचनद मे हुआ था जो मुल्तान के निकट है। समय पर दुर्योधन के वशधर लोग दक्षिण की ओर बढकर सौराष्ट्र देश मे जा बसे, जो इन्ही के नाम पर काठियावाड कहलाने लगा, क्योकि इन लोगो की जातीय सज्ञा काठी है। इस जाति के कई राजे अब भी काठियावाड मे राज्य करते है। महाभारत के भारी युद्ध से कौरव-वश मे जो फूट पड गई थी, वही इनके पतन का कारण हुई, क्योकि पांडवो की अधीनता मे रहना पसन्द न करके धृतराष्ट्र के वशधर पश्चिम को चले गये, जिससे इनका बल विभक्त होकर दोनो भाग बलहीन हो गये। काठी लोग सौराष्ट्र मे पश्चिम पञ्जाब से आये हैं, यह निश्चित हैं। ये लोग अब भी अपने को धृतराष्ट्र वशी कहते हैं। इसी कौरव-पाण्डव-विच्छेद से कुरुवश के बलहीन हो जाने के कारण इनके द्वारा पराजित जरासन्ध वश समय पर इनसे बढ गया, जिससे बहुत काल के लिए भारत मे मगध की महत्ता स्थापित हुई जैसा कि हम आगे लिखेंगे।

इसी स्थान से महाभारत पर्यन्त भारतीय इतिहास समाप्त होता है और आगे हम कलि के राजवशो का वर्णन करेगे। केवल इतना कहना शेष है कि महाभारत के समय मे दूसरो के अधिकारो का मान बहुत अधिक होने लगा था। कई राजाओ ने अन्यो को पराजित करके सम्राट् पद पाने का प्रयत्न किया, किन्तु किसी राजा ने दूसरे का राज्य नही छीना। इस अच्छे गुण से एक भारी दोष भी उत्पन्न हुआ कि भारत छोटे छोटे राज्यो में विभक्त रहा और सामर्थ्य रखते हुए भी कई महाराजाओ ने सार्वभौम राज्य स्थापित न किया जिससे देश का बल न बढा और महापुरुषों के सार्वभौम प्रभाव प्रायः उन्ही के शरीरो के साथ अस्त हो गये और उनके उत्तराधिकारियो को न मिले। इस कथन के उदाहरण-स्वरूप सुदास, रामचन्द्र, जरासन्ध,

युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण हैं, जिनके उत्तराधिकारी सोमक, कुश, सहदेव, परीक्षित और वज्र नाममात्र को प्रतापी रह जाते हैं। यदि अकबर की भाँति ये लोग भी सार्वभौम राज्य स्थापित कर जाते, तो जहाँगीर, शाहजहाँ के समान इनके अयोग्य सन्तान भी सार्वभौम पद से बहुत शीघ्र वञ्चित न होते। केवल मौर्य्यों ने इस प्रणाली का सम्मान नहीं किया जिससे उन शासकों में कई एक बहुत प्रभावशाली हुए। भारतीयों ने आर्यसभ्यता-गृहीत राजाओं के राज्य निष्कारण नहीं छीने। इन लोगों में युद्धों के कारण राज्यलोभ से इतर होते थे। कालिदास ने कहा भी है कि यहाँ के राजे राज्य-लोभ से विजय न करते थे वरन् केवल यश के लिये। अतः हम देखते हैं कि कभी कभी अच्छे सिद्धान्त भी उचित से अधिक बल पाकर देश का विनाश कर देते हैं।

महाभारत के पीछे द्रोण पुत्र अश्वत्थामा भारतीय २८ वेदव्यासों में एक हुये तथा इनके वंशधर वाकाटक समय पर भारतीय सम्राट् हुये और अन्य पल्लव वंशधर प्रायः छै शताब्दियों तक कांची राज्य के शासक रहे। अश्वत्थामा से ही भरद्वाज गोत्री कई ब्राह्मण वंश भी चले। अपने समय के सप्तर्षि में भी अश्वत्थामा की गणना हुई। दुर्योधन के वंशधर अब तक काठियावाड़ में कई नरेश हैं। श्रीकृष्ण के वंशधर कई पुश्तों तक माथुर नरेश रहे तथा दक्षिण में कई शताब्दियों तक एक अन्य शाखा शासक रही और अन्त में अलाउद्दीन द्वारा पराजित हुई। अर्जुन और कर्ण वंशियों वाले राज्यों के कथन आगे आवैंगे।

सोलहवाँ अध्याय

आदिम कलिकाल

९१४ से ५६३ बी० सी० तक

महाभारत के समय मे हम लिख आये हैं कि चन्द्रवशियो मे तीन घराने प्रधान थे, अर्थात् मागध, कौरव, और यादव। मागधो का नेता जरासन्ध सम्राट् हुआ था किन्तु कौरवो ने उसे जीत कर युधिष्ठिर को सम्राट् बनाया। यादवो का घराना एक प्रकार मे नौ बढ़िया था और उसका महत्त्व श्रीकृष्णचन्द्र के साथ बढ़ कर उन्ही के साथ लुप्तप्राय हो गया। पुराणो मे वज्र के वशधरो मे केवल प्रतिबाहु और सुचारु के नाम लिखे हैं जो उनके पुत्र और पौत्र थे। श्रीभागवत के अनुसार महाराजा वज्र ने इन्द्रप्रस्थ छोड़ मथुरा को राजधानी बनाया। जान पड़ता है कि जब जनमेजय के समय मे नागो की अवनति हुई तभी कौरवों के मित्र वज्र ने अपने कुल की पुरानी राजधानी मथुरा प्राप्त की। वर्तमान जैसलमेर-नरेश का घराना वज्र का वशधर है, किन्तु इसकी उन्नति बहुत पीछे से सम्बन्ध रखती है। आदिम कलि-काल मे वज्र का कोई भी वशधर महत्ता को न प्राप्त हुआ। रामचन्द्र का घराना महाभारत-काल मे बृहद्‍बल, बृहदक्ष, उरुक्षेप आदि पर अवलम्बित था। इन लोगो ने उस काल कोई महत्ता प्रकाशित न की और अपने सकुचित राज्य की रक्षा पर ही ध्यान दिया। मागध घराना राजा बृहद्रथ के कारण बार्हद्रथ राजकुल कहलाता था। इनके प्रतिनिधि सहदेव, सोमाधि आदि ने भी कोई गरिमा न दिखलाई। राजा द्रुपद का पाचाल राजकुल उनके पौत्र धृष्टकेतु से ही समाप्तप्राय हो गया। हैहयो मे भी इस

काल कोई प्रभाव न देख पड़ा। जान पड़ता है कि भारत-युद्ध और यादव-विनाश से यह प्राचीन राजकुल ऐसे थकित-पराक्रम हो गये थे कि थोड़े से धक्के से ही भरभरा कर गिर पड़े। जिन घरानों के राज्य जीवित भी रहे उनकी दशा मृतप्राय रही। पुराणों मे आदिम कलिकालिक तीन राजाओं के वर्णन और शेष की संख्या मात्र लिखी है।

पौरव-कौरव-परीक्षित वंश

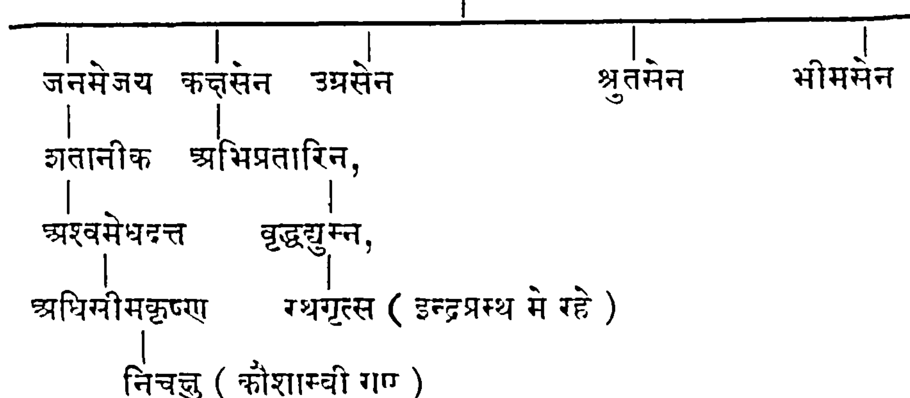
पार्जिटर के अनुसार महाभारतीय युद्ध ९५० बी० सी० के लगभग हुआ, तत्पश्चात ३६ वर्ष राज्य करके पाण्डवों ने महा प्रस्थान किया और अर्जुनात्मज अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित हस्तिनापुर मे सम्राट् हुआ। वायु पुराण के अनुसार परीक्षित का जन्म महापद्मनन्द से १०५० वर्ष पूर्व हुआ, तथा वे महाभारतीय युद्ध के समय गर्भ मे थे। महाभारत उनका राजत्व काल ६० वर्ष बतलाता है और यह भी कहता है कि गद्दी पाने के समय वे ३६ वर्ष के थे एव अन्त पर्यन्त, अर्थात् ९६ वर्ष की आयु तक, मृगयाशक्त रहे। इन कथनों से इनका राजत्व काल उचित से बढ़ा हुआ समझ पड़ता है। राय-चौधरी महाशय की सम्मति है कि पौरव कुल मे एक ही परीक्षित हुए, दो नहीं। इनका नाम अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण और महाभारत मे है। श्रेष्ठ राजा थे। मद्र राजकुमारी मद्रावती से विवाह हुआ। इनके समय राज्य के कुरु जांगल, कुरु और कुरुक्षेत्र नामक तीन भाग थे। तैत्तिरीय आरण्यक इसे पुरु भारत वंश कहता है। महाभारत के अनुसार मृगया के सम्बन्ध मे शृंगी ऋषि के पिता के गले मे मृत सर्प डाल कर ये पुत्र द्वारा शापित हुए। जब कृष्ण के द्वारिका जाने पर जरासन्ध ने मथुरा पर अधिकार किया और उसके मरणोपरान्त वह अधिकार शिथिल हुआ, सम्भवतः तभी नागों ने वहां राज्य जमाया। महाभारतीय युद्ध मे पूर्ण पराजय पाने से पंजाबी रियासतें बिलकुल शिथिल पड़ गई, ऐसा समझ पड़ता है, क्योंकि तक्षशिला में नागों का राज्य स्थापित हुआ। वे मथुरा पर भी अधिकृत हुए और परीक्षित तक का सफल सामना कर सके, जिससे जान

पडता है कि हस्तिनापुर तक पञ्जाब मे उनका सामना करने वाला कोई न था। उन्ही से बिगाड होने पर तक्षक द्वारा राजा परीक्षित मारे गए। नागो का मुख्य राज्य तक्षशिला मे था। महाभारत मे तक्षकनामक नाग के काटने से मृत्यु लिखी है, किन्तु प्रयोजन नाग सरदार का है।

सम्राट जनमेजय और वंश

परीक्षित के सन्तान निम्नानुसार हुए:—

परीक्षित



निचक्षु और रथगृत्स के पीछे कौरवो का महत्व गिर गया। ऐतरेय ब्रा०, (१४) मे वे राजा मात्र थे।

जनमेजय भारी सम्राट् हुए। इन्होने नागो को हरा कर तक्षशिला पर भी अधिकार जमाया। शायद इन्ही के विजयो मे नागो का माथुर राज्य गिर गया और वहाँ कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ यादव का अधिकार जमा। उन्होने नागो के जीतने मे जनमेजय की सहायता की होगी, क्योकि इन दोनो के मित्र राज्य थे। अनन्तर पितृ वध से क्रोधित जनमेजय ने खोज खोज कर नाग सरदारो का वध किया। वासुकि कुलज नीलरक्त, कौणप, पिच्छल, शल, चक्रपाल, हलीमक, कालवेग, प्रकालग्न, सुशरण, हिरण्यबाहु, कक्षक और कालदन्तक सरदार राजा जनमेजय का कोपाग्नि मे जल कर स्वाहा होगए। इनके अतिरिक्त तक्षक पुत्र शिशुरोम और महाहनु मारे गये तथा पुच्छाण्डक, माण्डलक, उच्छिभ, छरभ, भग, शिली, मलकर, मुक, प्रवेपन और

मुद्गर नामक तक्षक वंशी अन्य सरदार भी मरे। और भी ऐरावत, कौरव्य, धृतराष्ट्र आदि के वंशधर असंख्य नागों का वध हुआ (महाभारत)। जनमेजय ने नागवंश को लुप्तप्राय कर दिया और शायद इस पाप के विमोचनार्थ नाग-यज्ञ भी किया। नागराज वासुकि ने अपने भागिनेय आस्तीक को भेज कर जनमेजय से बहुत कुछ विनती कराई। तब इस नागारि ने शेप नाग कुल पर कृपा की। वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में लिखा है कि मथुरा में एक दूसरे के पीछे सात नाग राजे हुए। कालिया नाग को श्रीकृष्ण ने उस प्रान्त से खदेड़ा था। जरासन्ध के समय में अथवा उससे कुछ पीछे किसी शौरसेन राजा ने वहां राज्य किया था और तब नागों का अधिकार जमा था। यह प्रभाव जनमेजय और वज्र ने लुप्त करके वहां फिर से यादव राज्य स्थापित किया। परीक्षित के समय में तक्षशिला और कश्मीर पर भी नागों का अधिकार कथित है। अब तक्षशिला का राज्य जनमेजय के अधिकार में आया।

ब्राह्मण ग्रंथों में जनमेजय भारी विजेता लिखे हैं। महाभारत में वे तक्षशिला जीतते हैं। पञ्चविंश ब्राह्मण में भी उनका सर्प सत्र लिखित है। ऐतरेय ब्राह्मण का कथन है कि जनमेजय सार्वभौम राजा होना चाहते थे। तक्षशिला जीतने से नानिहाल मद्रदेश में भी उनका प्रभाव समझ पड़ता है। यह मध्य पञ्जाब में था। एक पौरव नरेश सिकन्दर से लड़े। Ptolemy टालेमी पाण्डवों को साकल (सियालकोट) का शासक बतलाता है। जनमेजय ने दो अश्वमेध किए। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि एक में इन्द्रदेवापिशौनक ऋत्विज थे तथा ऐतरेय ब्राह्मण दूसरे का ऋत्विज तुरकावषेय को बतलाता है। गोपथ ब्राह्मण के समय जनमेजय एक प्राचीन शूर समझे जाते थे। किसी-किसी का यह भी विचार है कि ये यज्ञकर्ता दो पृथक जनमेजय हो सकते हैं। रामायण II ६४, ४२ में वे प्राचीन भारी नरेश थे। शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण, उनकी राजधानी आसन्दीवन्त कहते हैं। उधर महाभारत, रामायण II (८६) तथा पाणिनीय (२.१०, १) अष्टाध्याय में हस्तिनापुर राजधानी है। सम्भवतः लखनऊ इलाहाबाद या दिल्ली शिमला की भाँति उनकी दो राजधानियाँ हों। जनमेजय के

भाई भीमसेन, उग्रसेन तथा श्रुतसेन शतपथ ब्राह्मण, XIII (५, ४, ३) और शाख्यायन श्रौतसूत्र, XVI (९, ७,) मे कथित हैं। महाभारत मे उनके कुछ भाइयो का होना उल्लिखित है। वायु तथा मत्स्य पुराणो मे निचक्षु तक सब के नाम हैं। इनके समय हस्तिनापुर गगा मे बह गया और कई सौ मील पूर्व हट कर कौशाम्बी बसाई गई। शांख्यायन श्रौतसूत्र का कथन है कि कौरव कुरुक्षेत्र से खदेडे गए। छान्दोग्य उपनिषत् मटूची (वर्षा के पत्थर या टीडी) द्वारा कुरु देश का उजाड होना कहता है। राय चौधरी का कथन है कि जनमेजय के पीछे राज्य के दो भाग हो गए, जिनमे मूल शाखा हस्तिनापुर मे रही, तथा जनमेजय के भाई कक्षसेन के वशधर इन्द्रप्रस्थ मे स्थापित हुए। यह शाखा कौशाम्बी बसने के पीछे तक बनी रही। जनमेजय के पीछे कौरवो पर भारी विपत्तियां आई। एक राजपुत्र तथा बहुतेरी प्रजा पूरब की ओर गई (राय चौधरी)। पार्जिटर ने पौराणिक कथनों के आधार पर लिखा है कि निचक्षु दक्षिण पाचालो तथा सृजयो से मिल कर कौशाम्बी गये। प्रयोजन यह है कि ये तीनो शक्तिया कौशाम्बी (वत्सराज्य) मे एक होगई। समय प्रायः ८२० बी० सी० था।

अब कौरवो का प्रभाव गिर गया और ये मांडलिक नरेश मात्र रह गए। निचक्षु के पहले अधिसीमकृष्ण कुछ प्रतापी थे। इनके समकालिक सूर्यवशी दिवाकर और बार्हद्रथ सेनजित थे, ऐसा पुराणो मे कथित है। अधिसीमकृष्ण को वायु पुराण सुनाई गई। इनके पीछे न० (६०) निचक्षु से (न० ८१) क्षेमक पर्यन्त यह वश पुराणो मे है। निचक्षु वशी उदयन (न० ७७) एक प्रतापी राजा थे, जिनका वर्णन आगे आवेगा। उनके पुत्र वहीनर शूर कहे गए हैं। पुराणो मे अन्तिम नरेश (न० ८१) क्षेमक दुर्वल कहा गया है। प्रधान के अनुसार उदयन ५०० बी० सी० में गद्दी पर बैठे। ३८२ बी० सी० के निटक महापद्म नन्द ने सारे क्षत्रिय राजाओं को नष्ट करके अपना साम्राज्य स्थापित किया। उसी समय यह राज्य भी डूबा।

जनक विदेहों की महत्ता

शतपथ ब्राह्मण V, १,१,१३, तथा बृहदारण्यक मे जनक सम्राट्

हैं। उशस्ति चाक्रायण के समय कौरवों पर विपत्ति पड़ी। ये जनक के यहाँ आते जाते थे। इनके समय कौरवों की महत्ता तथा पतन दोनों कथित हैं। ऊपर शतपथ ब्राह्मण के आधार पर कहा जा चुका है कि इन्द्रोत दैवाप या देवापि शौनक जनमेजय के समकालीन थे। उधर सत्ययज्ञ जनक के समय में थे तथा वे इन शौनक से बहुत पीछे के थे। धृति ऐन्द्रोत शौनक के चेले के शिष्य पुलुषि प्राचीन योग्य थे, जिनके चेले पौलुशि सत्ययज्ञ हुये। छान्दोग्य इन्हें बुडिल आश्वतराश्वि तथा उद्दालक आरुणि का समकालीन कहता है और इन दोनों का जनक के यहाँ होना बतलाता है, बृहदारण्यक V (४,८) तथा III (७,१)। सत्ययज्ञ के एक शिष्य भी जनक से मिले (शतपथ ब्राह्मण XI ६,२, १,३)। शतपथ ब्रा० दसवां अध्याय यों कहता है :—

(शतपथ)

जनमेजय के समय वाले—तुरकावषेय

यज्ञवचस राजस्तम्बायन

कुश्रि	बृहदारण्यक	
शांडिल्य		
वात्स्य		
वामकक्षायण	उद्दालक आरुणि	} जनक वाले
माहित्थि	याज्ञवल्क्य	
कौत्स	आसुरि	
माण्डव्य	आसुरायण	
माण्डूकायनि	प्राश्नीपुत्र आसुरिवासिन	
सांजीवी पुत्र	सांजीवी पुत्र	

सांजीवी पुत्र दोनों शाखाओं में वही है, जिससे सब की समकालीनतायें मिलती हैं। अतएव जनक जनमेजय से ५,६ गुरु शिष्य पीढी नीचे हुए। यह समय डाक्टर राय चौधरी के अनुसार १५० या १८० वर्षों का था। अतएव इस वैदिक साक्षी से जनक परीक्षित से प्रायः २०० वर्ष पीछे हुए। परीक्षित के वंशधर इस काल पुराणों में पांच ही लिखे हैं। पौराणिक से वैदिक साक्षी श्रेष्ठतर मानी जाती है। इससे जान पड़ता है कि अपनी वंशावली में निचक्षु का नम्बर पाँच छ पुश्तों के नीचे होगा।

कोशल और मिथिला राज्यो के बीच मे सदानीर (राप्ती) नदी थी। मिथिला जातको तथा पुराणो मे कथित है। वह नैपाल मे अब जनकपुर कहलाता है। वैदिक अनुक्रमणी I, (४३६) मे नमीसाप्य मैथिली राजा हैं। सम्भवतः पुराण वाले प्राचीन निमि पहले थे और जातको के निमि दूसरे। उद्दालक, आरुणि तथा बुडिल आश्वतराश्वि उपनिषदो के अनुसार जनक तथा कैकय अश्वपति दोनो के यहाँ जाते थे। सम्भवतः अश्वपति वश का नाम था।

जनक के समकालीन अन्य नव राज्यों के कथन

ब्राह्मण तथा उपनिषत् ग्रन्थो से जनक के समकालीन नौ और राज्य मिलते है, अर्थात गधार, ककय, मद्र, उशीनर, मत्स्य, कुरु, पाचाल, काशी और कोशल।

गन्धार

इसका कथन त्रेता तथा द्वापर युग के वर्णनो मे भी आ चुका है। छान्दोग्य VI, (१४) मे उद्दालक आरुणि गान्धारी विद्वत्ता की प्रशसा करते हैं। उद्दालक जातक (४८७) मे उद्दालक तक्षशिला जाकर विद्या सीखते हैं। सेतकेतु जातक (३७७) कहता है कि उद्दालक के पुत्र सेतकेतु ने तक्षशिला मे विद्या पढी। उपनिषदो मे भी इन श्वेतकेतु के बहुत से विवरण हैं। कौटिल्य चाणक्य वहीं के विद्यार्थी थे। गन्धार जातक (४०६) मे कश्मीर और तक्षशिला गन्धार मे थे। गन्धार राज द्रुह्यु-वशी थे। निमि के समय मे गन्धार मे नग्नजीत राजा थे, जिनकी राजधानी तक्षशिला थी (कुम्भकार जतक)। इनके पुत्र सर्वजीत हुए (शतपथ ब्रा० VIII १,४,१०)।

केकय

जनक के समय केकयो का राजा अश्वपति था। शतपथ X,६,२, छान्दोग्य उ० \, ११ ४, कहते है कि अश्वपतिने कई ब्राह्मणो को ज्ञान सिखलाया। इनमे आरुणि, औपवशि, गौतम, सत्ययज्ञ, पौलुशि, महाशाल जाबाल बुडिल आश्वतराश्वि, प्राचीन शाल औपमन्यव और उद्दालक आरुणि के नाम हैं। जैन ग्रन्थ कहते है कि केकय आधा

आर्य है। (Ancient History of Deccon) मे आया है कि केकयो की एक शाखा ८८, १०१, ई० मे मैसूर गई।

मद्र, उशीनर, कुरु

इसका विवरण ऊपर भी आ चुका है। मद्रगार सौंगायनि तथा काप्य पतजल यही के थे बृहदा उ० (७,१,)। काप्य पतजल उद्दालक मे आरुणि के गुरु थे। प्राचीन साहित्य मे मद्र की प्रशसा है, किन्तु महाभारत कर्णपर्व मे निन्दा है। उशीनर का भी विवरण ऊपर आया है। कौशीतकि उपनिषत् कहता है कि गार्ग्यबालाकि कुछ दिनो उशीनर देश मे रहा। यह बालाकि काशीपति अजातुशत्रु और मैथिल जनक का समकालीन था।

शतपथ ब्रा० (XIII ५,४,९,) मे मत्स्य राज्य ध्वसन द्वैतवन अश्वमेध करते है। महाभारत III (२४,२५) मे द्वैतवन झील तथा जगल है। मनु सहिता मे यही ब्रह्मर्षि देश है। जनक के समय मत्स्य देश को कौशीतकि उपनिषत् गौरवान्वित मानता है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि प्रोत कौशाम्बेय, जनक के यहाँ जाने वाले उद्दालक आरुणि के समकालीन थे। इस काल हस्तिनापुर के बह जाने से तथा मट्ची के उपद्रव से कौरव कौशाम्बी गये। अब से इनका प्रभाव गिर गया, किन्तु भारतो का प्रभाव शतपथ ब्रा० के समय तक रहा। *XIII* (५, ४, ११)।

पांचाल

निमि जातक ५४१ मे अन्तिम कराल जनक से ही पूर्व निमि विदेह राज है। प्रवाहण पाचालपति जनक के समकालीन है। बृहदा० उ० *VI* २ तथा छान्दो० उ० (१, ८, १) मे प्रवाहण, आरुणि तथा श्वेतकेतु से ज्ञान कथन करते हैं। दुर्मुख, पांचालपति, निमि के समकालीन थे। वे विजयी थे। जातक ५४९, उत्तराध्यान सूत्र भासकृत स्वप्न वासवदत्ता तथा रामायण, *I* ३२, मे चूलनि ब्रह्मदत्त पांचाल राज का नाम है। रामायण में इन्होने कुश नाम की कुबडी कन्याओ से विवाह किया। कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र मे यही सघ राज्य था।

काशी

अथर्ववेद मे यहां के लोग विदेहो तथा कोशलो के साथ कथित हैं। श्वेतकेतु के समय मे जल जातूकर्ण्य (शांख्यायन श्रौतसूत्र, *XVI* (२९, ५) काशी, विदेह, और कोशल के नरेशो का पुरोहित था। जातक (४०७) मे काशी का एक जनक राजा था। काशीराज पौरव थे। अजातशत्रु तथा धृतराष्ट्र काशी के ऐसे राजे थे जिनके नाम इस काल पुराणो मे नहीं हैं। द्वापर मे एक अजातशत्रु काशीपति हमारे चौथे अध्याय की वशावली मे हैं। पुराणो मे धृतराष्ट्र का काशीशो मे नाम नहीं है। अजातशत्रु उपनिषदो मे शिकायत करता है कि मैथिल जनक की उदारता के कारण पडित लोग उसकी सभा मे आते ही नही। शतपथ ब्रा० मे धृतराष्ट्र काशीराज हैं। पौरवो के पीछे काशी मे जो ब्रह्मदत्त वश स्थापित हुआ, वह शायद वैदेह हो, ऐसा डाक्टर राय चौधरी का मत है। हरिवश मे श्रीकृष्ण के समय काशी मे ब्रह्मदत्त नामक राजा का कथन है। सम्भवत. उसी समय से यह वश वहाँ स्थापित हो गया। जातक (४२१) मे ब्रह्मदत्त वश नाम है। जातक (४१९) मे वह विदेह पुत्र है। उपनिषदो मे अजातशत्रु उद्दालक का समकालीन था। उद्दालक जातक अजातशत्रु को ब्रह्मदत्त कहता है। शतपथ ब्रा० (V ५ ५, १४) मे भद्रसेन, जो अजातशत्रु का पुत्र था, अजातशत्रु ही कहा गया है। गुत्तिल जातक (२४३) काशी को भारत मे मुख्य शहर बतलाता है तथा महावाग भी इसकी प्राचीन महत्ता कहता है। जैनो का कथन है कि काशिराज अश्वसेन ७७७ बी० सी० मे मृत उनके तीर्थंकर (पार्श्व) के पिता थे। काशिराज धृतराष्ट्र अश्वमेध करते थे, किन्तु शतानीक शत्राजित ने उन्हे हराया। बृहच्छत्र जातक (३३६) मे एक काशिराज श्रावस्ती मे घुसकर कोशलेश को वन्दी बनाता है। अन्य जातको के कई ब्रह्मदत्त काशीनरेश कोशल पर अधिकार स्थापित करते है। अस्सक जातक पोतलि अस्सक की राजधानी को काशिराज का शहर बतलाता है।

काशिराज मुज कोशल, अग और मगध को हराता है। विश्वक्सेन, उदक्सेन और भल्लाट समय-समय पर काशिराज थे। सेनजित के

अनुसार काशीराज्य के पश्चिम वत्सराज्य था, उत्तर मे कोशल राज्
और पूर्व मे मगध। समय-समय पर वत्सों, कोशलों और मागधो
काशी जीती। वत्सों और कोशलो की उन्नतियों के बीच मे ब्रह्मद
के समय काशी बढी। इसने बुद्ध से प्राय: १५० वर्ष पूर्व कोशल जी
लिया। ६७५ बी० सी० पर्य्यन्त काशी का अच्छा प्रभाव रहा।

कोशल

यह बहुत करके वर्तमान अवध प्रान्त मे है। रामायण II ३२,१
मे चित्ररथ दशरथ के समकालीन थे। दशरथ जातक मे दशरथ औ
राम वाराणसी के राजा हैं। शतपथ ब्रा० मे कोशल राज्य कुरु पांचा
के पीछे किन्तु विदेह के पूर्व महत्तायुक्त है। प्रश्न उपनि० VI १ तथ
शांख्यायन श्रौत सूत्र XVI ९,१३ मे हिरण्यनाभ कौशल्य का नाम है
शतपथ ब्रा० XIII ५,४,५ मे आप सुकेश भारद्वाज के समय मे थे
ये भारद्वाज प्रश्न I १ मे कौसल्य आश्वलायन के समकालीन थे
मज्झिम निकाय II १४७ मे यही आश्वलायन गौतम बुद्ध
समकालीन तथा सावत्थी के हैं। बुद्ध का जन्म ५६३ बी० सी०
हुआ। अतएव यही समय कौशल्य हिरण्यनाभ का है। यह नाम इ
काल अपनी वशावली मे नही है, जिसमे यह समय महाकोशल
प्रसेनजित या विदूदभ का हो सकता है। हिरण्यनाभ इन तीनों मे
किसी का शायद उपनाम हो। एक हिरण्यनाभ (कुशवंशी), (न० ५६
थे, किन्तु उनका समय इनसे नही मिलता। इन कारणो से डाक्टर रा
चौधरी का विचार है कि हिरण्यनाभ, प्रसेनजित और शुद्धोदन कोश
के अशो के शासक थे। अयोध्या, साकेत ओर श्रावस्ती क्रमश: कोश
की राजधानियाँ हुई। बौद्धकाल में अयोध्या गिर चुकी थी, किन्
साकेत और श्रावस्ती भारत के षट मुख्य नगरों मे थी। घट जात
(४५४) अयोध्या नरेश कालसेन का कथन करता है। वक, महाकोशल
आदि की राजधानी श्रावस्ती थी। महावग्ग XVII (२९४) का कथन
कि ब्रह्मदत्त काशी नरेशो के समय कोशल छोटा सा राज्य था। ६२
बी० सी० के निकट कोशल का अधिकार काशी पर हो जाता है।

अब पुराणो के अनुसार कोशल वश का कथन होता है। रामचन्द्

के पुत्र कुश का वश द्वापर अथवा कलि के आदि मे गिर चुका था। कलि मे श्रावस्ती नरेश लव (रामपुत्र) के वशधर बृहद्द्वण (न० ५४) पहले राजा थे। इनके प्रपौत्र प्रतिव्योमात्मज दिवाकर (न० ५८) पुराणो मे पौरव अधिसीम कृष्ण का समकालीन कहा गया है। वे मध्यदेशान्तगत अयोध्या नरेश कथित हैं, जिससे जान पडता है कि इस काल तक कुशवश का राज्य भी लव वशियो के अधिकार मे आ चुका था। भविष्य पुराण मे दिवाकर का वर्णन वर्तमान काल मे है। आदिम कलि कालि वाले राजाओ के कथन पुराण ग्रथ थोड़े ही मे करते हैं। इनके पुत्र सहदेव विख्यात कहे गए है और तत्पुत्र बृहद्रथ महाशय। (न ६६) किन्नर को विजयी की उपाधि मिली है और (न० ६७) अन्तरिक्ष को महान की। (न ७३) रणजय बुद्धिमान हैं और तत्पुत्र सृंजय युद्धप्रिय। सुमित्र (न० ८०) के विषय मे कथित है कि यह अन्तिम राजा था। इस के पीछे सूर्यवश का राज्य नही चला। विष्णु पुराण मे आया है कि (न० ७५) महाकोशल के भाई शाक्य के पुत्र शुद्धोदन थे जिनके पुत्र गौतम बुद्ध हुए। इनके वशधर क्रमशः राहुल, क्षुद्रक, कुडक, सुरथ और अन्तिम (न० ८२) सुमित्र थे।

अतः दोनों वशों के अन्तिम नरेश सुमित्र होने से यह दूसरी वशावली कुछ सशयाकीर्ण हो जाती है।

अतिम काल मे कोशल, वत्स, अवन्ती और मगध राज्य प्रधान थे। महाकोशल के पीछे प्रसेनजित कोशलेश पाचो राजाओ मे मुख्य थे। उस काल शाक्य वश मे वासभ खत्तिया नाम्नी एक दासी से एक राज-कन्या उत्पन्न थी, जिसका किसी प्राचीन वैमनस्य के कारण शाक्यो ने प्रसेनजित से विवाह कर दिया। इसी विवाह से उत्पन्न विदूदभ पुत्र अन्त मे कोशलेश हुआ। प्रधान के अनुसार ५३३ बी० सी० मे प्रसेनजित गद्दी पर थे। इनके प्रपौत्र सुमित्र को महापद्म नन्द ने ३८० बी० सी० के निकट राज्यच्युत करके कोशल मगध मे मिला लिया।

मत्स्य

इसमे अलवर, जैपुर और भरतपुर के भाग थे। राजधानी वैराट जैपुर मे थी। ऋग्वेद VII (१८, ६) मे मत्स्य लोग सुदास से हारते

है। शतपथ ब्राह्मण XIII ५, ४ ९ में मत्स्यराज ध्वसनद्वैतवन अश्वमेध करते हैं। मनु संहिता में यह ब्रह्मर्षि देश है। कौशीतकि उपनिषत में मत्स्य देश जनक के समय गौरवान्वित है। यहां संघ-राज था। महाभारत V ७४, १६ में राजा चेदि मत्स्य के भी शासक थे। म० भा० II ३२६, ४ में अपर मत्स्य चम्बल के उत्तर पहाड़ी देश के शासक थे। रामायण II ७१, ५, में वीर मत्स्य कथित हैं।

विदेहों का फिर कथन

जातकों में आया है कि एक निमि जनक के पीछे राजा थे। कराल जनक के पीछे यह शाखा लुप्त हो गई। निमि जातक में कराल जनक के ठीक पहले निमि राजा थे। कुम्भकार जातक तथा उत्तराध्ययन सूत्र में पांचालराज दुर्मुख, गन्धार राज नग्नजित तथा कलिंग राज करन्डु के निमि समकालीन थे। दुम्मुख के पुरोहित वामदेवात्मज बृहदुक्थ थे (वैदिक अनुक्रमणी II ७१, १, ३७०)। वामदेव सहदेवात्मज सोमक के समकालीन थे (ऋग्वेद IV १५, ७, १०)। सोमक का विदर्भ राज भीम तथा गन्धार राज नग्नजित में धार्मिक सम्बन्ध था (ऐतरेय ब्राह्मण VII ३४)। अर्थ शास्त्र में कौटिल्य कहते हैं कि ब्राह्मण कुमारी से अनुचित व्यवहार करने से कराल विदेह तथा भोज दाण्डक्य अपने-अपने राज्य तथा सम्बन्धियों के सहित नष्ट हो गए। जनकों का राज्य टूटने पर मिथिला में वज्जिव संघ (प्रजातन्त्र राज्य) स्थापित हुआ। इसमें शायद काशीपति का हाथ था। बृहदा० उ० III, (८, २) में कथित है कि काशी और विदेह राज्यों में झगड़े प्रायः हुआ करते थे।

महाभारत XII, (९९, १, २) में काशीश प्रतर्दन का मिथिलेश जनक से युद्ध कथित है। पालीटीका परमत्थ जोतिका, I (१५८, ६५) कहती है कि जो लिच्छवी वज्जियन संघ में मुख्य थे, वे काशी की राजकन्या के सन्तान थे। पीछे वाले जनक राजाओं के समय में कुछ आर्यों ने विन्ध्य पार करके दक्षिण में राज्य स्थापित किया। इनमें विदर्भ एक था। ऐतरेय ब्राह्मण VII (३४) में विदर्भ राज भीम नग्नजित के समकालीन थे। अतएव निमि के समय विदर्भ राज्य

वर्तमान था। करन्दु कलिंगराज भी निमि के समकालीन थे। अतएव उस काल कलिंग राज्य भी था। महागोविन्द सुत्तन्त II (२७०) में कलिंग राज सत्तभु, मैथिल राज रेणु, तथा काशिराज धृष्टराष्ट्र समकालीन थे। पाणिनि IV (१, १७०) तथा बोधायन I (१, ३०, ३१) कलिंग का कथन करते हैं, जिसकी राजधानी दन्तपुर नगर में थी। इस प्रकार उपर्युक्त साहित्य से सम्राट् जनक, रेणु, नमिसाप्य, निमि और कराल जनक के नाम इस काल के विदेह नरेशों में मिलते हैं।

दाक्षिणात्य रियासतें

महागोविन्द सुत्तत में अस्सक राज्य गोदावरी पर है। वहां का ब्रह्मदत्त, रेणु तथा धृष्टराष्ट्र का समकालीन था। ऐतरेय ब्राह्मण VIII (१४) में भोजराज दक्षिण में है। उसकी प्रजा सत्वत है। शतपथ ब्राह्मण XIII (५, ४, ११, २१) में भोजों के अश्वमेध का घोडा लेकर भरत उन्हें हराते हैं। भरत का राज्य गंगा यमुना के निकट था। उसी के समीप यह भोज राज्य होगा। मत्स्य (४४, ३६) तथा वायु (९५, ३५, ३६) पुराणों में भोज विदर्भों की बिरादरी में थे। कालिदासीय रघुवंश V (३९, ४०) में विदर्भ राज भोज है। ऐतरेय ब्राह्मण में कई भोज राज्य हैं। दंडक भी भोजराज्य था, जहां की राजधानी कुम्भावती थी (जातक ५२२)। इन आर्य राज्यों के अतिरिक्त विन्ध्य के दक्षिण भारत में अनार्य आन्ध्र शबर, पुलिन्द और मूतिव (ऐतरेय ब्राह्मण VIII (१८) भी राज्य करते थे। मत्स्य और वायु पुराणों में शबर और पुलिक दक्षिणापथ के निवासी हैं। कुछ शबर अब ग्वालियर तथा विजगापट्टम के पहाड़ में हैं। राय चौधरी के अनुसार पुलिक नगर दशार्ण के दक्षिण पूर्व विदिशा या भेलसा था। मूतिवों का निश्चय नहीं है। विदेहों के पीछे बिम्बिसार के समय तक वैदिक साहित्य कुछ अधिक नहीं कहता किन्तु बौद्ध साहित्य सहायता देता है। सूत्रकाल में माहिष्मती (मान्धाता), भृगुकच्छ (भरोंच), शूर्पारक (सोपर कोंकन), अस्सम (पोदन्य), मूलक (प्रतिष्टान), कलिंग (दन्तपुर) और उक्कल (उत्कल अर्थात् उत्तरी उड़ीसा) की शक्तियां थीं।

मगध

द्वापर सम्बन्धी विवरण में हम भारतीय युद्ध के पीछे सहदेवात्मज (न० ५४) सोमाधि को गद्दी पर देख आये हैं। इनकी राजधानी गिरिव्रज थी। पुराणों में इस वंश के राजत्वकाल निम्नानुसार हैं:—

नाम राजा	नम्बर वंशावली	वर्षों में राजकाल
सोमाधि	५४	५८
श्रुतश्रवस	५५	६४
अयुतायुस	५६	२६
निरमित्र	५७	४०
सुक्षेत्र	५८	५६
बृहत्कर्मन, सेन	५९	२३
१६ बार्हद्रथ राजे	... .	७२३

इस प्रकार केवल पांच पुश्तों के राजत्वकाल का जोड़ २६७ वर्ष है, जिससे प्रति पीढ़ी का परता साढ़े तिरपन वर्ष है। इसी प्रकार १६ राजाओं में यही परता प्राय. ४५ वर्ष आता है। पुरातत्वज्ञ ऐसे कथनों को अग्राह्य मानते हैं। अन्तिम नरेश न० ७१ रिपुंजय ५६३ बी० सी० में गद्दी पर बैठे तथा ५१३ बी० सी० में अपने मंत्री पुणिक, पुलिक, मुनिक, शुनिक अथवा सुनक द्वारा मारे गए। गौतम बुद्ध का जन्म-काल ५६३ बी० सी० में है। मंत्री का वंश प्रद्योत कहलाता है जिसका वर्णन आगे यथास्थान होगा।

शुद्धोदन और गौतम बुद्ध का शाक्यवंश

सिद्धार्थ उपनाम गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन तथा पुत्र राहुल उपर्युक्तानुसार लव वंश के नरेश थे। शुद्धोदन के पिता का नाम शाक्य लिखा है और पितामह का संजय। संजय में ऊपर वाले पूर्व पुरुषों के नाम क्रमशः रणञ्जय, कृतञ्जय, धर्मा, बृहद्राज, अमित्रजित्, सुपर्ण, अन्तरिक्ष, किन्नर, सुनक्षत्र आदि हैं। ये लोग कपिलवस्तु के राजा (संघ मुख्य) थे। पुराणों से यह पता नहीं चलता है कि इस वंश से अवध का राज्य कब छूटा और इसने कपिलवस्तु में कब शासन जमाया। कपिल वस्तु जिला गोरखपुर के उत्तर में एक विख्यात स्थान

हो गया है। इसकी ख्याति बौद्ध समर्ग पर ही विशेषतया निर्भर है। बौद्धग्रन्थ महावंश लंका में पहली शताब्दी के लगभग लिखा गया। इसका ऐतिहासिक मूल्य पूर्णतया निर्विवाद नहीं है। पण्डितों ने इसमें बहुत सी ऐतिहासिक अशुद्धियाँ पाई है। फिर भी इसके बहुत से वर्णन शुद्ध भी हैं। इसके अनुसार अयोध्या-नरेशों में शाक्यों के अन्तिम पूर्व पुरुष महाराजा सुजात थे। पौराणिक राजवंश में सूर्यवंश का कोई भी राजा सुजात नहीं कहलाता था। महावंश के अनुसार सुजात की पटरानी से पाँच पुत्र और पांच कन्याएँ उत्पन्न हुई और जयन्ती नाम्नी रानी से जयन्त नामक एक छठा पुत्र था। महाराज ने जयन्त ही को अपना उत्तराधिकारी बनाया और पाँच पुत्रों को निर्वासित कर दिया।

ये लोग पाँचों बहिनों को लिए हुए काशीराज के यहाँ रहने लगे जहाँ इनके सुव्यवहार से प्रजा इनपर अनुरक्त हो गई। इस बात से शङ्का मान कर काशिराज ने भी इन्हे देश से निकाल दिया और तब ये लोग उत्तर चलकर महर्षि कपिल के आश्रम में पहुँचे और वहीं ऋषिवर के आदेशानुसार जंगल काट कपिलवस्तु नगर बनाकर बस गये। वहाँ क्षत्रिय जाति के अभाव मे इन पाँचो भाइयो ने अपनी ही एक-एक बहिन के साथ विवाह कर लिया। यह सुन इनके पिता महाराजा सुजात ने विद्वन्मण्डली एकत्रित करके प्रश्न किया कि राजकुमारो का यह कार्य शक्य है अथवा अशक्य। विद्वानों ने आपद्धर्म के विचार से इसे शक्य होने की व्यवस्था दी और तभी से यह राजकुल शाक्य कहलाने लगा। विद्वानो की राजा के प्रतिकूल इस व्यवस्था देने से सिद्ध होता है कि उस काल के भी विद्वान लोग आजकल ही के समान पक्षपात रहित थे।

सुजात नाम को पौराणिक वंशों के किस राजा का उपनाम समझना उचित है, इस प्रश्न का निर्णय कठिन कार्य है। पौराणिक वर्णनो के अनुसार राजा युधिष्ठिर के समकालिक सूर्यवंशी राजा बृहद्‌बल अयोध्यानरेश न थे वरन साकेत (अवध) मे एक दूसरे प्रान्त के स्वामी थे, तथा अयोध्या में एक दूसरा ही राजा था। बृहद्‌बल के वंशधरों ने पीछे अयोध्या का राज्य पाया। इस कुल के अन्तिम राजा

सुमित्र और उसके पूर्व पुरुष पौराणिक वर्णनानुसार स्वयं गौतम बुद्ध की सन्तान थे। महावंश के प्राचीन नाम पौराणिक सूर्यवंश के नामों में नहीं मिलते हैं। यह ग्रन्थ लङ्का में सिंहली भाषा में लिखा गया था। इतनी दूरी पर सुने सुनाये नाम लिखने से विरोध का होना स्वाभाविक ही है और इसके मिटाने का प्रयत्न भी व्यर्थ समझ पड़ता है, क्योंकि गौतम बुद्ध की वंशावली के पौराणिक वर्णन भी निश्चित नहीं समझ पड़ते, जैसा कि ऊपर आ चुका है। विष्णु पुराण द्वारा कथित वंशावली हम दे ही चुके हैं। अब सूक्ष्मतया महावंश का भी कथन लिखे देते हैं।

शाक्यवंशी राजा उल्कामुख के अमृता नाम्नी कन्या हुई जो वयस्क होने पर कुष्ट रोग ग्रस्त हो गई। यह देख राजकुमारों ने उसे हिमाचल की एक गुफा में छोड़ दिया। वहां कोलि नामक राजर्षि के प्रयत्न से राजकन्या रोगविहीना हुई और इन दोनों का विवाह भी हो गया। कोलि और अमृता के पहाड़ ही में रहते हुए ३२ पुत्र उत्पन्न हुए और वयस्क होने पर माता की आज्ञा से ये लोग कपिलवस्तु पहुँचे। वहां शाक्य महाराजा ने इनका अच्छा स्वागत करके रोहिणी नदी के पूर्व स्थान दिया जहां ये लोग कोलिग्राम बसा कर रहने लगे। इन लोगों का शाक्य कुमारियों के साथ विवाह हुआ और ये कोलिय कहलाने लगे। बहुत दिन पीछे देवदह के कोलिय राजवंश में राजा सुप्रभूत के माया और महाप्रजावती नाम्नी दो कन्याएँ और पांच पुत्र उत्पन्न हुए। इधर शाक्यवंश में राजा सिंहनु के पुत्र राजा शुद्धोदन हुए जिन्होंने उपर्युक्त दोनों कन्याओं के साथ विवाह किया। इन्हीं महाराजा शुद्धोदन और मायादेवी के पुत्र प्रसिद्ध महात्मा गौतम बुद्ध हुए।

महाराजा शुद्धोदन परम सच्चरित्र पुरुष तथा प्रजावत्सल संघ मुख्य नरेश थे। इनकी प्रकृति बहुत शान्त थी। अनेक यज्ञादि करने पर शुद्धोदन से पैतालीसवें वर्ष वैशाखी पूर्णिमा की रात्रि में उनकी रानी मायादेवी के गर्भ रहा। बौद्धग्रन्थ ललित विस्तार में लिखा है कि गर्भाधान के थोड़े ही दिन पीछे महामाया ने स्वप्न देखा कि 'एक महात्मा जिसका वर्ण हिम रजत के समान स्वच्छ था और जिसकी

प्रभा चन्द्र सूर्य के समान थी, उसके उदर मे प्रवेश कर गया।" ब्राह्मणो का मत हुआ कि इस स्वप्न का फल यह है कि रानी का बालक या तो चक्रवर्ती राजा होगा या बुद्ध। अब तक शुद्धोदन के कोई सन्तान न थी इसलिए इस गर्भाधान से बडी प्रसन्नता मनाई गई। महामाया की इच्छा थी कि पुत्रोत्पत्ति उसके पिता के घर मे हो। इस विचार से पति की सम्मति ले अपनी बहिन प्रजावती के साथ वह देवदह के लिए प्रस्थित हुई। शाक्य राज्य ही मे राजा के बनवाये हुए लुम्बनी कानन मे उनकी रानिया ठहरी। शुद्धोदन भी लुम्बिनी कानन तक उन्हे पहुँचा कर वापस चले गये। लुम्बिनी मे रात को महामाया ने चार स्वप्न देखे, एक यह कि छः दाँतो वाला एक सुन्दर श्वेत गज उसके उदर मे घुस गया। दूसरा यह कि वह आकाश मे उड़ रही है और अन्तिम दो स्वप्न थे कि वह एक ऊँचे पहाड से उतरता है तथा सहस्रो मनुष्य उसके सामने दण्डवत् करते हैं। इसी कानन मे महामाया को ऐसे समय मे प्रसव वेदना हुई जब वह उद्यान मे सैर कर रही थी। रानी प्रसव-वेदना से विकल हो एक साल-वृक्ष की डाली पकड कर खड़ी हुई थी जब बुद्ध महात्मा का जन्म हुआ। यह शुभ समय माघ पूर्णिमा ५६३ बी० सी० का है।

सूर्यवशी राजाओं का वर्णन हम यहीं समाप्त करते हैं। शेष इतिहास आगे के अध्यायो मे यथास्थान लिखा जायगा। पुराणो मे लिखा है कि उपर्युक्त ऐक्ष्वाकु दिवाकर, के समय पर्यन्त बार्हद्रथ सनजित तथा कौरव राज (अधिसीम कृष्ण) के पीछे महापद्मनन्द तक राजे निम्नानुसार हुए:—२७ पाचाल नरेश, २४ काशिराज, २८ हैहय भूपाल, ३२ कलिंगपति, २५ अश्मक भूपति, २४ ऐक्ष्वाकु नरपति, २६ कौरव-पौरव नराधिप, २८ मैथिल नृप, २३ शौरसेन महीपति और २० वीतिहोत्र नरपाल। इसी काल में विदिशानरेश नागराज शेष का पुत्र भोगी, शत्रुओ को पराजित करने वाला हुआ। वायु पुराण के अनुसार इसका नाम पुरञ्जय था। इसने नाग वंशियो का पराक्रम बहुत बढ़ाया। इसके वशधर रामचन्द्र, चन्द्रांशु, नखवन्त, धनवर्मण, वगर और भूतनद प्रसिद्ध राजे हुए। उपर्युक्त अनेकानेक राजकुलो मे से अनेको का अस्तित्व नाम मात्र को अथच अनिश्चित था। आदिम कालिकाल के

अंत मे इनमे से बहुत कम घराने जीवित पाये गये; जो बच गये वे महापद्मनन्द द्वारा ३८२ बी० सी० तक नष्ट हुये।

सोलह रियासतें

गौतम बुद्ध के समय मगध मे बिम्बिसार नरेश थे। अन्तिम विदेहो के पीछे से बुद्धकाल के पूर्व तक सोलह रियासतों का कथन आया है। बौद्ध ग्रंथ अगुत्तर निकाय इनके नाम निम्नानुसार कहता है—

काशी, कोशल, अग, मगध, वज्जी, मल्ल, चेतिय (चेदि), वस, (वत्स), कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अस्मक, अवन्ति, गन्धार और काम्बोज। ये सब महाजनपद कहलाते थे। ये कलार जातक तथा महाकोशल के बीच मे हुए। यही नामावली जैन भगवती सूत्र मे निम्नानुसार है:—अग, वग, मगध, मलय, मालव, अच्छ, कौच्छ, पाढ़, पाड्य, लाढ (राढ), वज्जी, मोलि, काशी, कोशल, अवह और शम्भुत्तर। मालव शायद अवन्ती एव मोलि मल्ल हैं। इनमें से काशी, कोशल और मत्स्य के विवरण ऊपर आ चुके हैं। जातकों मे लिखा है कि काशी राज्य का फैलाव किसी समय २००० वर्गमील था। कोशल की श्रावस्ती वर्तमान नैपाल मे गोरखपुर से उत्तर पश्चिम ७० मील की दूरी पर है। इस काल कोशलों का राज्य बनारस और साकेत पर भी था और शाक्यसघ इनको अधीश्वर मानता था। कोशल राज्य, दक्षिण मे गगा और पूरब मे गण्डक तक फैल चुका था। किसी कोशलेश वक ने काशी जीतने का प्रयत्न किया तथा कम काशी विजेता कहलाता था।

अग

अग राज्य मगध के पूर्व था। चन्दन नदी दोनो राज्यो के बीच मे थी। राजधानी चम्पा वर्तमान भागलपुर के निकट है। इसके मगध से युद्ध हुआ करते थे। पहले यहाँ महाभारत मे प्रसिद्ध कर्ण का राज्य था। जातक (५४५) राजगृह को अग का शहर कहता है। गौतम बुद्ध के समय चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और बनारस बडे शहर थे। व्यापारी लोग जहाजो पर चम्पा से स्वर्ण-भूमि तक जाते थे। अथर्ववेद (V२२,१४,) मे आगो, मूजवन्तो, गान्धारो तथा

मागधो के कथन हैं। ऐतरेय ब्रा० VIII (२२) मे अग वैरोचन राजा थे। महागोविद सुत्तत मे धतरत्थ अगपति थे। अग के पुत्र दधिवाहन उत्तराधिकारी थे। कहते हैं कि उनकी कन्या चन्द्रबाला स्त्रियो मे पहली महावीर की शिष्या जैन थी। पौराणिक वशावली के अनुसार कोई अग और दधिवाहन त्रेता मे भी पडते है। कौशाम्बी नरेश शतानीक (न० ७६) ने चम्पा पर धावा किया। अगपति ब्रह्मदत्त ने मगधपति भट्टिय को हराया। वत्सपति अगराज के साथी थे। कौशाम्बी नरेश (७७) उदयन ने दृढ वर्मन को फिर से अंगपति बनाया। (प्रिय दर्शिका अक IV, बिम्बिसार ने अपने पिता के समय ब्रह्मदत्त से अग जीत कर मगध मे मिला लिया।

मगध

इसमे वर्तमान पटना और गया जिले हैं। गिरिव्रज या गया के निकट पुराना राजगृह राजधानी थी। ऋग्वेद III ५३,४ मे प्रमगड कीकट नरेश था। यास्क निरुक्त (६,३२) कीकट को अनार्य कहते है। अभिधान चिन्तामणि मे कीकट मगध है। अथर्ववेद V (२२,१४) मे मगध का कथन है। पहले मागध बुरे थे। शाखायण आरण्यक मे इनका मान हुआ। महाभारत में बृहद्रथ पहले मगधपति है। ऋग्वेद I (३६ १८ X ४९,६) मे जरासन्ध स असबद्ध बृहद्रथ हैं। उस काल इसमे ८०००० ग्राम लगते थे और यह विन्ध्याचल तथा गगा, चपा और सोन नदियो के बीच मे था। इमकी परिधि २३०० मील कही गई है (रिजडेविड्स)। गौतम बुद्ध की उत्पत्ति से पीछे वाला मागध विवरण यथा स्थान आवेगा।

वज्जी, वज्जी

इस काल यह प्रजातत्र राज्य था। इसका फैलाव २३०० वर्गमील बौद्ध ग्रथो मे लिखा है। मिथिला वैशाली से उत्तर पश्चिम ३५ मील पर है। इसी के निकट जनकपुर नामक स्थान है। विदेह राज्य टूट कर ही वज्जी सघ बना। इसमे निम्न कथित अष्ट कुल थे —विदेह, लिच्छवि, ज्ञात्रिक, वज्जी उग्र, भाग, ऐक्ष्वाकु और कौरव। पहले चार प्रधान थे। विदेहा की राजधानी मिथिला थी तथा लिच्छवियो की वर्तमान

मुजफ्फर नगर जिले मे वैशाली (प्राचीन विशाला पुरी) थी। ज्ञात्रिको की राजधानियां वैशाली के निटक, कुंडपुर और कोल्लाग थी। इनमे सिद्धार्थ और तत्पुत्र महावीर जिन थे। वज्जी का कथन पाणिन IV (२, १३१) मे है। वैशाली पूरे सघ की भी राजधानी थी। उसके तीन भाग थे। वैशालिक वश के सस्थापक इक्ष्वाकु पुत्र विशाल थे (रामायण के अनुसार) तथा पुराणो मे वे नाभाग के वशधर थे। विशाल के पीछे हेमचन्द्र, सुचन्द्र, धूम्राश्व, सृ जय, महदेव, कुशाश्व, सोमदत्त, काकुत्स्थ और सुमति का होना राय चौधरी कहते हैं। सहदेव और सृजय शतपथ ब्राह्मण II (४४, ३४) मे हैं। लिच्छवि बाहरी न होकर असली क्षत्रिय थे। वे जैनो तथा बौद्धो के सहायक थे। महावीर जिन तथा कुणिक अजातशत्रु की मातायें लिच्छवि थी।

मल्लसंघ

मल्ल के दो भाग थे, जिनकी राजधानियां कुशिनारा या कुशावती, और पावा थीं। चीनी यात्री ह्यूयनसांग के अनुसार यह पहाड़ी राज्य शाक्य के पूर्व और वज्जी के उत्तर मे था, किन्तु अन्यो का विचार है कि यह संघ राज्य वज्जी के पूर्व और शाक्य के दक्षिण मे था। कुसिनारा कसिया के निकट था। पावा वर्तमान पड़रौना है। मल्लो और लिच्छवियों को मनु व्रात्यक्षत्रिय कहते है, शायद इनके जैन बौद्ध प्रेम के कारण। लिच्छवियो ने जाट गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त को अपनी कन्या भी ब्याही। विदेह के समान पहले मल्ल भी राजतन्त्र था। कुश जातक मे ओक्कक (ऐक्ष्वाकु) मल्ल राज थे। अन्य राजा महासुदसन थे। महाभारत II (३०, ३) मे भी एक मल्ल-राज थे। भाग नगर, उलूपिया और उरुवेल-काप्य भी मल्लो के नगर थे। विम्बिसार के पूर्व मल्लसघ था। जैन कल्पसूत्र कहता है कि ९ मल्ल तथा ९ लिच्छवियो ने मिलकर काशी कोशल के १८ गण राजस बनाये। समय पर मगध ने मल्ल भी जीत लिया।

चेतिय या चेदि

इस राज्य के दो उपनिवेष थे, जिनमे एक नैपाल मे और दूसरा

कौशाम्बी के पूर्व पुराने चेदि बुन्देलखंड तथा निकट के देश मे था और कभी नर्मदा तक फैलता था। राजधानी सुक्तिमती थी। ऋग्वेद VIII (५, ३७, ३९) दानस्तुति कशु चैद्यु का कथन करता है। चेतिय जातक यो राजवश देता है.—महासम्मत, रोज, वररोज, कल्यान वर कल्यान, उपोसथ, मान्धाता, वर मान्धाता चर, उपचर या अपचर। शायद यही महाभारत के उपरिचर वसु हो। जातक तथा महाभारत दोनो इनके पांच पांच पुत्र बतलाते है। जातक ४८ कहता है कि काशी से चेदि के मार्ग मे डाकू लगते थे।

वश वत्स

इसकी राजधानी कौशाम्बी (वर्तमान कोसम) प्रयाग के निकट थी। रामायण I (३२, ३-६) तथा महाभारत I (६३, ३१) कहते हैं कि चेदि राज ने कौशाम्बी बसाई। काशी राज (न० ३९) वत्स वशकर थे (हरिवंश २९ १३, महाभारत XII ४९, ८०) शतानीक (दूसरे) पौरव (न० ७६) ने विदेह राजकुमारी से विवाह किया तथा दधिवाहन के समय अग पर आक्रमण किया। जातक (३५३) कहता है कि ससुमार गिरि का भर्गराज्य वत्स का करद था।

कुरु

जातको मे इन्द्रप्रस्थ पर युधिष्ठिर के वशजो का राज्य लिखा है, तथा धनजय कौरव्य और सुतसोम के नाम शासको मे है। राष्ट्रपाल कौरव सरदार था। जैनो के उत्तराध्यान सूत्र मे कुरुदेश के इशुकार नगर मे इशुकार राजा लिखे हैं। सम्भवत. यह परीक्षित की उस दूसरी शाखा के शासक थे, जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ तथा इशुकार थी। अनन्तर कौटिल्य के अनुसार कुरु देश मे सघ राज्य स्थापित हुआ।

पांचाल

यहां के दुर्मुख निमि के समकालीन थे। दुर्मुख विजयी कहे गए हैं। चूलनि ब्रह्मदत्त पाचाल राज्य का कथन जातक (५४६), उत्तराध्यान सूत्र, भासकृत स्वप्न वासदत्ता, तथा रामायण, I ३२, मे है। कौटिल्य यहा भी सघ राज्य बतलाते हैं।

शूरसेन

कच्चान बौद्ध के समय सूरसेनों के राजा अवन्तिपुत्त थे। उनके द्वारा मथुरा प्रान्त मे बौद्ध धर्म फैला। काव्य मीमांसा मे कुविन्द सूरसेन राजा थे। मेगास्थनीज के समय मे शूरसेन लोग थे।

अस्सक (अश्मक)

सुत्तनिपात (९७७) अस्सक को गोदावरी के निकट बतलाता है। यह महाराष्ट्र मे था। पाणिनि IV (१, १७३) मे यह दाक्षिणात्य प्रान्त है। यह जाति उत्तर पश्चिम मे भी थी, जिसे ग्रीक लोग अस्मिकनोई कहते हैं। द्रोणपर्व मे भी अश्मक पुत्र का कथन है। राजधानी पोतन या पोतलि थी। यही महाभारत का पौदन्य था। मूलक इसके दक्षिण था। अनन्तर अश्मकों ने मूलक और कलिंग पर अधिकार किया। सीमनन्द जातक मे अस्सकों का अवन्ति से सम्बन्ध है। वायु पुराण ८८ (१७७, ८) मे अश्मक और मूलक ऐक्ष्वाकु है। ये दक्षिण कोशल के सूर्यवशी राजे थे। महागोविंद सुत्तन्त मे निम्न लिखित लोग समकालीन है:—ब्रह्मदत्त अस्सक राज, सत्तभु कलिंगराज, वेस्सभु अवन्तिराज, भरत सोवीर राज, रेणु विदेहराज, धतरत्थ अङ्गराज, धतरत्थ काशिराज। चुल्ल-कलिंग जातक मे अरुण अस्सक राज कलिंग जीतता है।

अवन्ती

जब वीतिहोत्र और अवन्ति का बल समाप्त होगया तब एक मंत्री ने राजा को मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाया। इसी को चण्ड प्रद्योत भी कहते थे। चौथी शताब्दी बी० सी० मे अवन्ती मगध राज्य मे आ गई थी।

गन्धार

निमि के समय गन्धार मे नग्नजीत थे, जिनकी राजधानी तक्ष-शिला थी (कुम्भकार जातक)। इनके पुत्र सर्वजीत हुए। छठी शताब्दी बी० सी० मे पुक्कसाति गन्धार पति थे, जिन्होंने बिम्बिसार

को पठौनी भेजी तथा युद्ध मे प्रद्योत को हराया। पाण्डवों ने गन्धार को धमकाया तथा फारस ने उसे जीत लिया। ५१६ बी० सी० वाले डेरियस की प्रजा मे गन्धार लोग भी थे। गन्धार मे पूर्वी अफगानिस्तान और उत्तरी पश्चिमी पजाब थे। राजधानी तक्ष-शिला थी।

काम्बोज

यह प्रान्त उत्तरापथ मे गन्धार के निकट था। राजपूर इसका राज घर था। ह्य् यन्त्साग का राजपुर पुच के दक्षिण या दक्षिण पूर्व था। इसकी पश्चिमी सीमा काफ़रिस्तान से मिली थी। यास्क के समय काम्बोज भारतीय आर्यो से पृथक थे। वश ब्रा० मे काम्बोज औपमन्यव ऋषि हैं। भूरिदत्त जातक, (५४३) मे उनके जगली रिवाज थे। ह्यन्त्साग भी ऐसे ही कथन करते हैं। नन्दिनगर काम्बोजो का शहर था। महाभारत मे चन्द्र वर्मन और सुदक्षिण काम्बोज थे। उस काल यह राज शक्ति है किन्तु कौटिल्य मे सघ शक्ति। राजधानी द्वारिका थी।

उपरोक्त १६ रियासतो के विवरण मे जहाँ आधार नही लिखा है, वहा डाक्टर राय चोधरी या रिजडेविड्स का आधार समझना चाहिए।

कर्ण पर्व मे पांचाल, कुरु, शाल्व, मत्स्य, शूरसेन, नैमिष और चेदि प्रशसनीय है, तथा आगो, गन्धारो एव मद्रको की निन्दा है। महाभारत के विविध वर्णनो के समय अनिश्चित है, क्योकि जय के रूप मे उसके प्राचीन ग्रथ होने पर भी उसमे परिवर्द्धन इतने होते आये है कि यह नही कहा जा सकता, कि उसका कोई कथन किस काल के भारतीय विचारो का द्योतन करता है? भारतीय विविध प्रान्तो की सभ्यता के विषय मे आपस्तम्ब और बोधायन के विवरण यथा स्थान आवेंगे, जिनके कथन समय की दृष्टि मे दृढ है।

पहले काशी कोशलो के युद्ध हुए। काशी वाले पहले युद्ध जीत कर अन्त मे नष्ट हो गए। महाकोशल और प्रसेनजित काशी पर भी अधिकृत थे। कोशल नरेश के पाच मातहत थे, अर्थात काशी,

यायाति, सेतव्या नरेश, हिरण्य नाभ कौशल, और कपिलवस्तु के शाक्य। महाकोशल के समय मगध मे बिंबिसार राजा थे।

बुद्ध के समय मे ये सोलहो राज्य वर्तमान न थे वरन् इनमे से कुछ लुप्त हो चुके थे जैसा कि ऊपर दिखाया गया है। फिर भी बौद्धो के अगुत्तर और विनय ग्रन्थो मे इन सोलह राज्यो की नामावली लिखी है जिससे जान पडता है कि यह कुछ प्राचीनतर समय से सम्बन्ध रखती है। दक्षिण के राज्यो का वर्णन इसमे नही है। कुछ बौद्ध ग्रन्थो मे पैठण उपनाम पतिस्थान का नाम आया है। यह आंध्रो की राजधानी थी। दक्षिणपथ का भी नाम है। इसमे दक्षिण देश का अर्थ निकलता है। महाभारत मे भी सहदेव के विजय मे दक्षिणपथ का नाम मिलता है। निकाय ग्रन्थो मे कलिङ्ग के वन का नाम लिखा है और यह भी कहा गया है कि उस काल दूर देशो मे समुद्र यात्रायें होती थी तथा जहाज़ चलते थे। कालिंग उपनिवेश की राजधानी दन्तिपुर मे थी। वाल्मीकीय रामायण इन प्राचीन बौद्ध ग्रन्थो से पुरानी है। उस में लिखा है कि रामचन्द्र के समय मे ठेठ दक्षिण मे चोल और पाण्ड्य राज्य थे। इस कथन से इतना अवश्य सिद्ध होता है कि वाल्मीकि के समय वाले उत्तरी आर्य लोग दक्षिण का हाल बहुत कुछ जानते थे। बहुतेरे पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि आर्य लोग पजाब से पूर्व की ओर गगा और यमुना के निकट से आये। रिस डेविड्स का कथन है कि इन मार्गो के अतिरिक्त आर्य लोग सिन्धु नदी के किनारे कच्छ होते हुए अवन्ती गये और कश्मीर से पहाड के किनारे किनारे कोशल होते हुए शाक्य, तिरहुत, मगध और अग देशो मे पहुँचे।

छठी सातवीं शताब्दी बी० सी० के कुछ भारतीय मुख्य नगरो का वर्णन कर देना भी उचित समझ पडता है। (१) अयोध्या कोशल देश में सरयू के किनारे स्थित थी। इसका वर्णन ऊपर कई बार आ चुका है। सूर्य-वंशियों की यह प्रधान राजधानी थी किन्तु महाभारत और बुद्ध के समयो मे इसकी कोई प्रधानता न रही। (२) काशी उपनाम वाराणसी सदैव से अपने वर्तमान स्थान पर स्थित है। बौद्धकाल के पीछे इस राज्य का फैलाव ८५ मील का कहा गया है। (३) चम्पा अङ्ग

देश की राजधानी थी। यह भागलपुर के पूर्व २४ मील पर स्थित है। भारतीय उपनिवेशियों ने कोचीन-चाइना में इसी नाम की एक पुरी बसाई। कश्मीर में भी चम्पा नामक एक नगर था। (४) काम्पिला उत्तरी पाञ्चाल की राजधानी थी। (५) कौशाम्बी (कोसम्भी) पुरी को कौरव राजा ने हस्तिनापुर के डूब जाने पर बसाया, ऐसा महाभारत में लिखा है। यह यमुना नदी के किनारे काशी से २३० मील की दूरी पर है। पीछे से यह वत्सों की राजधानी हुई। बौद्ध ग्रन्थों में इसका वर्णन बहुतायत से आया है। (६) मथुरा यमुना नदी के किनारे अब भी स्थित है। इसमें बहुत से प्राचीन चिह्न मिलते हैं। बुद्ध के समय में मथुरानरेश को अवन्तिपुत्र भी कहते थे। इससे जान पड़ता है कि उसकी माता उज्जैन के घराने की थी। गौतम बुद्ध भी यहाँ पधारे। मथुरा का पुराना नाम मधुपुरी था। पीछे से मधु के वंशियों से छीनकर इस पर रामचन्द्र के भाई शत्रुघ्न ने राज्य जमाया। इनके भी वंशजों को निकाल कर यादव भीमरथ ने इसे अपनी राजधानी बनाया। बुद्ध के समय में इसकी बहुत अवनति हो गई थी किन्तु मिलिन्द के काल (१५७ बी० सी०) में यह फिर उन्नत दशा में थी। इसके नाम पर दक्षिण में भी एक नगर बसाया गया। (७) मिथिला विदेह-नरेश की राजधानी तिरहुत में थी। (८) राजगृह उपनाम राजगिरि बिम्बिसार का बसाया हुआ है। इस नामके दो नगर थे जिन में से पुराने को गिरिव्रज कहते थे। बिम्बिसार ने नया राजगृह बसाया। (९) रोरुक सौ-वीर (सूरत) की राजधानी थी। यहाँ वणिज व्यापार बहुत होता था। कहते हैं कि यहूदी राजा सालोमन के जहाज भी व्यापारार्थ यहाँ आते थे। पीछे से इसका नाम रोरुआ भी हो गया। (१०) सागल भारत के उत्तर पश्चिम में था। यह मद्र देश की राजधानी थी और महाभारत के समय से साकल कही जाती थी। राजा मिलिन्द यहीं राज्य करते थे। (११) साकेत (वर्तमान सुजानकोट) जिला उन्नाव (अवध प्रदेश) में सई नदी के किनारे पर था। प्राचीन काल में यह कई बार कोशल का राज-निवास था। बुद्ध के समय में कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी जो साकेत से ४५ मील पर थी। हिन्दुस्तान के ६ बड़े नगरों में उस काल यह भी एक था।

(१२) श्रावस्ती (सावत्थी) पुरी सूर्यवंश के राजा श्रावस्त की बसाई हुई थी। इसका स्थान जानना कठिन है। यह साकेत से ४५ मील उत्तर, राजगृह से ३३७ मील उत्तर-पश्चिम, सांकाश्य से २२५ मील, अचिरवती नदी के किनारे स्थित थी। बुद्ध के समय में यह राजा प्रसेनदि की राजधानी थी। (१३) (उज्जैनी) उज्जैन प्राचीन काल में भी अपने वर्तमान स्थान पर थी। अशोक पुत्र महीन्द्र यहीं उत्पन्न हुआ। इसी ने लका में बौद्धमत फैलाया। (१४) वैशाली लिच्छवी राजकुल की राजधानी थी। बुद्ध के समय में यहां वज्री लोग रहते थे जिनसे अजातशत्रु का युद्ध हुआ। यह तिरहुत प्रदेश में गङ्गाजी से २५ मील की दूरी पर थी। इनके अतिरिक्त २० मुख्य नगरों में निम्न भी थे:— आलवी, इन्द् पत्त, ससुमार गिर, कपिल वत्थु, पातलिपुत्तक, जेतुत्तर, सकस्स, कुसिनारा और उक्कथ (राय चौधरी)। इस काल में निम्न स्थानों पर विश्वविद्यालय थे:—

(१) तक्षशिला (तक्कसीला) (२) कन्नौज, (३) काशी, (४) उज्जैन, (५) मिथिला, (६) मगध, (७) श्री धन्य कटक, (८) राजगृह, (९) वैशालि, (१०) कपिलवस्तु, (११) श्रावस्ती, (१२) कौशाम्बी, (१३) जेतवन, और (१४) नालन्द। यहां पर दूर दूर से विद्यार्थी आ आकर विविध विद्याओं की शिक्षा पाते थे।

इस काल भारत में नगरों की न्यूनता और ग्रामों की बहुत प्रधानता थी और ग्राम-निवासी किसी प्रकार गिरे हुए अथवा नीच नहीं समझे जाते थे। वे अपने ही लिए काम करते और मजदूरी करना अपनी महत्ता के प्रतिकूल समझते थे। उनको अपने ग्राम, कुटुम्ब और पद का अभिमान था और बहुत करके उन पर उन्हीं के मुखियाओं का शासन था जिनको वे स्वय चुनते थे। रिस डेविड्स कहते हैं कि उस काल प्रत्येक गांव एक छोटा सा प्रजातन्त्र राज्य था। दास प्रथा इस काल भारत में अज्ञात थी। राजा युधिष्ठिर के समय में कुछ दास अवश्य थे जिनकी गणना हब्शियों की भांति नीच श्रेणी में न हो कर साधारण गार्हस्थ्य सेवकों की भांति होती थी। ३०५ बी० सी० वाले यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने लिखा है कि भारत में दास प्रथा

अज्ञात थी। इससे जान पड़ता है कि दास-प्रथा ने भारत मे कभी जोर नही पकड़ा।

कौटिल्य के अर्थ शास्त्र से दासो का अस्तित्व प्रकट है, किन्तु ग्रीक राजदूत उनका अभाव बतलाता है। जान पड़ता है कि दास कहे जाने वालो की सख्या इतनी कम थी और उनसे ऐसा सुव्यवहार था कि राजदूत ने उन्हे भी अदास समझा।

जातको के देखने से प्रकट होता है कि बौद्ध काल के पूर्व सब जातियो के मनुष्य अपनी जातियो से इतर व्यापार भी करने लगे थे। ब्राह्मण लोग व्यापार करते थे तथा धनुर्विद्या, मृगया, कपड़ा बुनना, पहिया बनाना आदि के भी काम करने लग गये थे। वे खेती बहुतायत से करते और गाएँ तक चराने लगे थे। क्षत्रिय लोग व्यापार करते थे और धनुर्विद्या के काम की नौकरी भी। एक क्षत्रिय के विषय मे लिखा है कि उसने कुम्हार, माली, बावर्ची और झाड़ू बनाने वाले के काम किये थे। फिर भी इन लोगो की जातियो मे कुछ गड़बड़ नही हुआ।

मुर्दो के जलाने की इस काल कई प्रथाये थीं। बड़े आदमियो के शव जलाये जाते थे और उनकी राख इकट्ठी करके गाड़ दी जाती थी तथा उसी पर स्तूप बनाया जाता था। साधारण मनुष्यो के शव जलाये जाते और कभी कभी मैदानो मे रख दिये जाते, जहां या तो उन्हे पशु पक्षी खा जाते अथवा वे सड़ कर नष्ट हो जाते थे। कुछ ऐसी ही प्रथा पारसियो मे भी अब तक है। उस समय के प्रचलित व्यापारो के नाम महाराजा अजातशत्रु और गौतम बुद्ध की बातचीत से कहे गये है। यद्यपि यह छठी शताब्दी बी० सी० की है तथापि यही दशा बौद्धकाल के कुछ पहले थी। व्यापारो के नाम निम्नानुसार हैं:—(१) हाथी सवार, (२) घुड़-सवार, (३) रथी, (४) धनुर्धारी, (५—१३) सेना की भिन्न भिन्न ९ श्रेणियां, (१४) दास, (१५) बावर्ची, (१६) नाई, (१७) नहलाने वाले, (१८) हलवाई, (१९) माली, (२०) धोबी, (२१) जुलाहे, (२२) टोकरी बनाने वाले, (२३) कुम्हार, (२४) मुहर्रिर, (२५) मुनीम, (२६) किसान।

इनके अतिरिक्त १८ प्रकार के कारीगर भी प्राचीन पुस्तकों में मिलते हैं जिनमें लकड़ी, पत्थर, धातु आदि पर काम करने वालों को समझना चाहिये। चमड़ा और हाथी दांत का काम, रँगने, जौहरीपन, मछली मारने कसाई, मल्लाह, चित्रकार आदि के भी कार्य बहुतायत से होते थे। इनके अतिरिक्त सौदागरों की भी संख्या बहुत थी तथा इनकी रक्षा के लिये स्वेच्छासेवक पुलिस भी होती थी। रेशम, मलमल, जिरह बख्तर, कारचोबी, कम्मल, दवायें, जवाहिरात, हाथीदांत आदि के व्यापार बहुतायत में होते थे। सौदा में बदलौअल नहीं होती थी वरन् मुद्राओं का व्यवहार था। महाभारत आदि में सोने की मुद्राओं का वर्णन है। बौद्धकाल में तांबे के सिक्के चिपन का हाल लिखा है किन्तु चांदी के सिक्कों का वर्णन नहीं है। सौदागर एक दूसरे पर हुंडी काटते थे। सूद का लेना उचित समझा जाता था। मनुस्मृति में सवा रुपया सैकड़ा मासिक सूद लिखा है और कहा गया है कि इससे अधिक लेने वाला पापभागी होता है। रिस डेविड्स ने लिखा है कि गरीबी कहीं नहीं दीखती थी। किसी स्वतन्त्र मनुष्य का मजदूरी करना मात्र बड़ी विपत्ति समझी जाती थी। जमींदार लोग उस काल में न थे और प्रजा को पर्याप्त भूमि जोतने को मिलती थी।

व्यापारिक मार्गों का हाल रिस डेविड्स ने अच्छा लिखा है। श्रावस्ती से पतिट्ठान (पैठण) पर्यन्त मार्ग माहिष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत होकर था। श्रावस्ती से राजगृह का रास्ता सीधा न था वरन् पहाड़ की तराई होकर। मार्ग में सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशिनारा, पावा, हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्द पड़ते थे। पूर्व से पश्चिम का रास्ता बहुत करके नदियों द्वारा था। गंगा में सहजाति और यमुना में कौशाम्बी पर्यन्त नावें चलती थीं। व्यापारियों का निम्न स्थानों को जाना भी लिखा है:—विदेह से गंधार को, मगध से सौवीर को, भरुकच्छ (भड़ोच) से बर्मा को, और दक्षिण से बावेरु (बैबिलोन) को। चीन का आना जाना पहले पहल मिलिन्द के ग्रन्थों में मिलता है। रेगिस्तानों में लोग रात को चलते थे और मार्ग बताने वाले नक्षत्रों के

सहारे रास्ता ठीक रखते थे। लंका का नाम नहीं आया है। ताम्रपर्णी द्वीप का कथन है जिससे लंका का प्रयोजन समझ पड़ता है।

वैदिक समय से सम्बन्ध रखने वाला साहित्य-काल इसी समय के साथ समाप्त होता है। आर्य सभ्यता ने भारत में राजनीति, धर्म, समाज, साहित्य, व्यापारादि की जो जो उन्नति की, उसका वर्णन हम ऊपर दे आये हैं। अब तक भारतीय समाज ने प्राचीन परिपाटियों का उचित मान करके धीरे धीरे विकास करते हुए सभी विभागों में उन्नति दिखलाई किन्तु दस्यु-पराजय से इतर कोई क्रान्ति अथवा भारी उथलपथल नहीं हुआ। प्रायः सभी बातों में ऋषियों, राजाओं, सुधारकों आदि ने प्राचीनता का उचित मान रखकर नवीन परिशोधनों में मन लगाया। जैसे एक दिन का शिशु बढ़ते बढ़ते पूरा जवान होकर बुड्ढा तक हो जाता है, किन्तु किसी दिन उसमें भारी परिवर्तन देखने में नहीं आता, इसी प्रकार हमारा भारतीय आर्यसमाज उन्नति करता हुआ शैशव एवं युवावस्था को पार करके आदिम कलिकाल के प्रारम्भ में वृद्ध दशा को पहुंच गया। वैदिक विचारों की उन्नति चरम सीमा के भी आगे निकल गई और ऋग्वेद का सीधा सादा धर्म ब्राह्मण ग्रन्थों में उन्नति करता हुआ सूत्रों के तनाव में ऐसा उलझा कि विधि-निषेध ही ने उसका स्थान ले लिया और यही धर्म के मुख्याङ्ग बन बैठे। अतः हमारा भारतीय हिन्दू-समाज सरल धर्म, सरल मत एवं सरल आचारों के विचार को खो कर बड़े बड़े पण्डितों की पोथियों का हर बात में आश्रित सा हो गया। यहां तक कहा गया है कि इन्द्र से विद्यार्थी, बृहस्पति से गुरु और दिव्य सहस्र वर्ष अध्ययन काल होने पर भी व्याकरण का अन्त नहीं मिलता है। यही दशा भारतीय धार्मिक सिद्धान्तों की हुई। हमारी विद्याओं में आ सब कुछ गया किन्तु भारी ग्रन्थों के गूढ़ीकरण में सरल सिद्धान्तों का ज्ञान ऐसा दुर्ज्ञेय हो गया कि साधारण समाज को कर्तव्य जानने के लिए अड़चन पड़ने लगी। इन सब कारणों से भारतीय समाज का ऐसा समय आ गया कि जब क्रान्ति का होना अनिवार्य सा हो जाता है। इसी लिए हम देखते हैं कि थोड़े ही दिनों में जैन और बौद्ध धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। गौतम बुद्ध और महावीर

हिन्दू समाज के पहले भारी डिसेंटर (विरुद्ध-मत-प्रवर्तक) थे। इन्हीं के प्रादुर्भाव से हमारे साहित्य और मत में वैदिक समय का अन्त हो गया और बौद्ध तथा पौराणिक विचारों का पुष्टिकरण होने लगा। भगवान् बुद्ध की उत्पत्ति भारतीय इतिहास में एक नवीन युग सा स्थापित कर देती है।

अब प्रजातन्त्र रियासतों, मागधों तथा एक दो स्फुट विषयों पर कथन करके हम यह अध्याय समाप्त करेंगे।

प्रजातंत्र रियासतें

उपर्युक्त १६ रियासतों में वैशाली के वज्जियन तथा पावा और कुशिनारा के मल्लों के प्रजातन्त्र राज्य महत्तायुक्त थे। छोटे प्रजातन्त्रों में निम्न की गणना है :--कपिलवस्तु के शाक्य, रामगाम के कालिय, संसुमार पहाड़ में भग्ग, अल्लकप्प के बूलिय, केसपुत्त के कालाम, और पिफ्फलिवन के मोरि। प्रजातन्त्रों की यह नामावली रिस डेविड्स में है। राय चौधरी ने भी इसे लिखा है। शाक्यों में बहिनों से भी विवाह होता था (रायचौधरी)। भग्गों का कथन ऐतरेय ब्रा० VIII ८ में है जहाँ भार्गायण राजा कैरिशि सुत्वन का विवरण है। छठी शताब्दी बी० सी० में ये लोग वत्सराज के अधीन थे। केशिपुत्त केशिन लोगों का कथन शतपथ ब्रा० (वैदिक अनुक्रमणी) में है। मोरिय लोगों में स्वयं चन्द्रगुप्त मौर्य थे।

राजाओं के नाम

उस काल गन्धार के राजा पुक्कुसाति थे, सौवीर (सिन्ध नदी के निचले देश) में रोरुक के रुद्रायपण, शूरसेन के अवन्तिपुत्त सुबाहु और अंग के ब्रह्मदत्त।

अनार्य राज्यों में यक्ष आलवक की राजधानी आलवी थी। अन्य यक्षराज्य भी थे।

ऐन्द्र महाभिषेक

निम्न सम्राटों के ऐसे अभिषेक हुए :--

'परीक्षित से पूर्व, शार्यात, विश्वकर्मा, सुदास, मरुत्त और भरत।

परीक्षित के पीछे-जनमेजय, शतानीक, अश्वमेधदत्त युधाश्रौष्ठि, और अंग।

(रायचौधरी)

बार्हद्रथ कुल के अन्तिम राजा रिपुञ्जय को उसके मत्री पुलिक, (मुनिक, सुनिक अथवा शुनक) ने मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाया। इसके वशधर पालक, विशाखयूप, जनक और नन्दि-वर्धन ने एक दूसरे के पीछे राज्य किया। पुराणो के अनुसार इनका राजत्व-काल १३८ वर्षों का है। प्रद्योत के विषय मे लिखा है कि उसने पड़ोसी राजाओं पर अपना अधिकार जमाया और भला मनुष्य होने पर भी २३ वर्ष अधर्मपूर्ण राज्य किया। इस वंश का विशेष कथन यथास्थान होगा। परीक्षित से शिशिनाग तक (शिशुनाग को छोड़ के) का समय पुराणो मे इस प्रकार से दिया है--

विष्णु पुराण—१०५० वर्ष।

भागवत—११५० वर्ष।

मत्स्य और वायु पुराण—१०५० वर्ष।

प्रद्योतो के पीछे मगध मे शिशुनाग ने अपना राज्य जमाया। यह नही लिखा है कि शिशुनाग कौन था और किस प्रकार राजा हुआ ? केवल इतना कहा गया है कि प्रद्योतो का बल चूर्ण करके यह नरेश बना। कुल मिलाकर दस शैशुनाग राजे हुए जिनका राजत्व-काल ३६० वर्ष पुराणो मे लिखा है। इन्ही मे से राजा अजातशत्रु ने २५ वर्ष राज्य किया और उसके पिता विम्बिसार ने २८ वर्ष। ये दोनो गौतम बुद्ध के समकालिक थे।

पार्जिटर महोदय ने महाभारत काल से मौर्य पर्यंत शासको के समय निम्नानुसार दिए है.—

राजे और महाराजे।	समय बी० सी०
सेनजित बार्हद्रथ गद्दी पाए।	८५०
सेनजित और उनके पीछे १५ बार्हद्रथ राजे।	२३८ वर्ष।
प्रद्योतो का अधिकारारम्भ।	६१९
पाँच प्रद्योत राजे	५२ वर्ष

शिशुनाग अधिकारारम्भ।	५६७
दस शिशुनाग राजे।	१६५ वर्ष
महापद्मानन्द का राज्यारम्भ।	४०२
महापद्म और उसके आठ पुत्र।	८० वर्ष
चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारम्भ।	३२२

इस अध्याय के लिखने मे डाक्टर राय चौधरी तथा रिस डेविड्स से सहायता ली गई है।

सत्रहवाँ अध्याय

ब्राह्मण साहित्य काल (रचनाएँ)

९५०–६०० बी० सी०

हम ऊपर कह आये है कि यजुर्वेद और अथर्ववेद की रचना दसवी शताब्दी बी० सी० के पीछे तक होती रही। फिर भी ऋक् की मुख्यता के कारण वैदिक समय दसवी शताब्दी पर्यन्त ही माना गया है। सामन्, यजु और अथर्व के विषय मे हमे जो कुछ कहना था वह सब ऊपर के अध्यायो मे कहा जा चुका है। यहां केवल इतना कह देना शेष है कि ये वेद भी प्राचीन काल से ही बनते आये थे, सो इनके सभी कथन पीछे से ही सम्बन्ध रखने वाले न समझने चाहिएँ। जैसे अथर्ववेद मे मागध और आङ्ग लोग अनार्य माने गये हैं। इस बात से यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता कि छठी सातवी शताब्दी तक यही दशा रही। वेदो के विषय मे यहा केवल इतना कह कर अब हम ब्राह्मण काल की मुख्यताओं का कथन करते है।

ब्राह्मण ग्रन्थ वेदाङ्ग माने जाते हैं, किन्तु हम इस कथन का विरोध न करते हुये भी केवल संहिता भाग को वेद कहते आये है। ऐसा ही प्राय अन्य विद्वानो ने भी किया है। ब्राह्मण ग्रन्थो मे एक प्रकार से वेदो की व्याख्या की गई है। ये सख्या मे बहुत थे किन्तु अब प्राय ५० ही मिलते है। इनके दो मुख्य विभाग हैं, अर्थात कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते है और ब्राह्मण ग्रन्थ कहने से सहसा कर्मकाण्ड ही पर ध्यान जाता है। यद्यपि उपनिषद् ब्राह्मण ही के अङ्ग है, तथापि इन दोनो मे विषय का बहुत बडा अन्तर है। प्रत्येक ब्राह्मण मे एक न एक उपनिषद् अवश्य है, किन्तु प्रत्येक उपनिषद् किसी न किसी ब्राह्मण का अङ्ग नहीं है, क्योकि कुछ उपनिषद् केवल आरण्यको से सम्बन्ध रखते है, और शेष ब्राह्मण और

आरण्यक दोनो से पृथक् हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों मे अनेकानेक याज्ञिक विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले नियमोपनियम हैं। आरण्यकों मे वानप्रस्थाश्रम सम्बन्धी नियम हैं। उपनिषदों को निकाल डालने से आरण्यकों मे ब्राह्मणों की अपेक्षा ज्ञान कथन बहुत विशेष है। ज्ञान की दृष्टि से भी उत्तरोत्तर वृद्धि के अनुसार आरण्यकों को ब्राह्मणों और उपनिषदों के बीच मे स्थान मिलेगा।

रैप्सन कृत कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया के प्रथम अध्याय मे कथित ब्राह्मण साहित्य पर मुख्य विचारों का सारांश यहां देकर हम अपने विचार लिखेंगे। पंच विंश ब्राह्मण का गद्य शायद यजुर्वेदीय गद्य से भी पुराना हो। गोपथ ब्राह्मण कौशिक और वैतान सूत्रों से भी पीछे का है। उपनिषदों मे बृहदारण्यक और छान्दोग्य सब से पुराने हैं। जैमिनीय उपनिषत् सामवेदीय जैमिनीय ब्राह्मण का अंग है। उपर्युक्त उपनिषदों तथा केन और काठक के अतिरिक्त कोई उपनिषत् बुद्ध से पुराना नही है। बहुतेरे सूत्रों मे जो श्लोक हैं वे उन सूत्रों से बहुत पुराने है। ब्राह्मण काल मे सभ्यता का केन्द्र कुरुक्षेत्र है। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणों मे पाश्चात्यों की निन्दा है। उत्तर कुरु तथा उत्तर मद्र हिमालय के उस पार थे। अनन्तर कोशल, विदेह, मगध और अंग की ख्याति होती है। आन्ध्र, पुण्ड्र, मूतिब, पुलिन्द, शबर और नैषध के भी कथन है। यास्क कृत निरुक्त प्राय ५०० बी० सी० का है। अथर्व वेद मे मूजवन्त, गान्धार और महावृष के कथन है। छान्दोग्य रैक्यपर्ण को महावृष मे मानता है। यास्क कहते है कि काम्बोज की भाषा साधारण बोलचाल से कुछ पृथक् थी। वैदर्भ भीम का कथन ऐतरेय मे है तथा भीम का जैमिनीय उपनिषत् ब्राह्मण मे। कौरव राजधानी आसन्दीवन्त, पाञ्चाल राजधानी काम्पील तथा काशी पति की राजधानी वरणावती पर काशी के भी यहां कथन है। इस उपनिषत् मे आया है कि सरस्वती नदी विनशन की बालू मे लुप्त होकर ४४ दिनो की यात्रा पर प्लक्ष प्रासवण मे फिर निकलती है। इस ब्राह्मण मे नागरिक जीवन का विकास है। भारतों के स्थान पर हम कौरवों और पांचालों के कथन पाते है। पाचालों मे क्रिवि, अनु, द्रुह्यु, सृंजय, वशी, उशीनर आदि होंगे।

कुरु पाचाल आर्य्य सभ्यता के नमूने है। उनके यज्ञ तथा भाषा श्रेष्ठतम हैं। वैदिक साहित्य उन मे कोई शत्रुता नहीं बतलाता। अथव-वेद परीक्षित को भारी कौरव राजा कहता है। प्रति सुत्वन उन के पौत्र थे और प्रतीप प्रपौत्र। शतपथ ब्राह्मण जनमेजय का अश्वमेध यज्ञ बतला कर आसन्दीवन्त को राजधानी कहता है। बृहदारण्यकोपनिषत् परीक्षित वशियो के पतन का कथन करता है। पर अत्नार कोशल और विदेह दोनो का राजा लिखा है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि माथव विदेघ सदानीर (गण्डक) पार करके विदेह मे स्थापित हुये। कौशीतकि उपनिषत् भी काशी और विदेह का सम्बन्ध बतलाता है। जल जातूकर्ण्य कोशल, विदेह और काशी के नरेशो का पुरोहित था। इस से इन तीनो का मेल सम्भव है। अथर्व वेद मे अग और मगध एक दूसरे से दूर हैं। मगध मे खनिज पदार्थो का बाहुल्य था। यदि कीकट (गया) मगध मे माना जावे तो ऋग्वेद मे भी उसकी निन्दा है। ऋग्वेद के समय ऋषि गण तथा राजन्यवर्ग बहुत कुछ वश परम्परागत वर्ग थे किन्तु लोग एक से दूसरे मे हो जाया करते थे। विवाहो के प्रतिकूल बन्धन कम थे। अनन्तर भेद प्रकट होने लगे, विशेपतया विशो मे। ये भेद व्यापारानुसार बढे। रथकार पृथक् वर्ण से हो गये। समय पर आर्यो मे शूद्रा स्त्रियो के विवाह बढ़ने से आर्य्य रुधिर की शुद्धता के प्रश्न उठे। सूत्रो मे पुरुषो के विवाह अपनी या नीची जातियो मे हो सकते थे। कुछ सूत्रो मे आर्य्यों को शूद्राओ से विवाह की आज्ञा थी। ब्राह्मण ग्रन्थो मे सगोत्रीय विवाह तीन ही चार पुश्तो तक वर्जित थे। वत्स और कवश की माताये शूद्रा थी। राजकन्याओ के साथ ब्राह्मणो के विवाह प्रायः होते थे। ऋग्वेद मे विश्वामित्र केवल ऋषि हैं किन्तु पच विश और ऐतरेय ब्राह्मणो मे राजा जह्नु के वंशधर भी हैं। वेदानुक्रमणी मे कई राजन्य वेदर्षि भी हैं। जनक वैदेह, अश्वपति कैकय, काशिराज अजात शत्रु, पाचाल राज जैवलि प्रवाहण ब्राह्मणो को ज्ञानोपदेश करते हैं। सत्य काम जाबाल अज्ञात पिता के पुत्र होकर भी ब्राह्मण माने जाते हैं। कोई वैश्य या शूद्र ब्राह्मण न हो सका।

ब्राह्मण काम मे राज्य दडे बडे भी हो जाते है तथा यज्ञो मे रीतिया

बढ जाती हैं। निम्न लोग रत्नि कहलाये जाते हैं—पुरोहित, राजन्य, महिषी, वावाता (प्यारी महारानी), परिवृक्ती (त्यक्ता महारानी), सूत, सेनानी, ग्रामणि, चत्री (Chamberlain), सग्रहीत्रि (सारथी या कोषाध्यक्ष), भाग दुग्घ (कर वसूल करने वाला), अक्षवाय (जुये का निरीक्षक), और स्थपित (जज)। सभा या समिति का व्यवहार घटता है। राजा फौजदारी (दड विधान) व्यवहार का अध्यक्ष था। अब तक कानून मुआहिदा न था। पुत्री से पुत्र अच्छे थे। स्त्री का पद कुछ गिर चुका था। कब्जे का व्यवहार कुछ कुछ था। राजाओ मे वहु विवाह चलता था। खेती की उन्नति हुई। गेहूँ, जौ, सरसों, चावल आदि का प्रचार बढा। शिल्प की भारी उन्नति होकर व्यापारो की सख्या बढी।

अब अन्य आधारो के अनुसार कथन होता है। यजुर्वेद को छोड देने से ब्राह्मणो से पुराना समस्त आर्य्य-जाति का गद्यग्रन्थ कोई नही है। ब्राह्मणो के सारांश का नाम कल्प सूत्र है। प्रत्येक वेद मे अनेक ब्राह्मण सम्बन्ध रखते हैं। ऋग्वेद के ब्राह्मण ऐतरेय और कौशीतकि हैं। कौशीतकि का अग सांख्यायन है। सांख्यायन नामक एक ऋषि थे जिन्होने कल्पसूत्र और गृह्यसूत्र बनाये। इन्ही के नाम पर यह ब्राह्मण है। जान पड़ता है कि इसी नाम के इनके कोई पूर्व पुरुष थे जिन्होने यह ब्राह्मण बनाया होगा। हिन्दू शास्त्रानुसार वेदो की भांति ब्राह्मण ग्रन्थ भी अनादि और अपौरुपेय है। महात्मा सायणाचार्य ने महर्षि जैमिनि के आधार पर वेदो और ब्राह्मणो को अपौरुपेय सिद्ध किया है। ऐतरेय ब्राह्मण महीदास ऐतरेय के नाम पर है। काशी के राजा अजातशत्रु ने बालाकि नामक ब्राह्मण को ब्रह्मविद्या बताई। राजा प्रतर्दन का नाम कौशीतकि ब्राह्मण मे आया है। सामवेद के ब्राह्मणो मे ताण्ड्य, षड्विंश, सामविधान, वश, आर्षेय, देवताध्याय, सहितोपनिषत्, छान्दोग्य, जैमिनीय उपनाम तवलकार, सत्यायन और भल्लवी प्रधान है। इन सब मे ताण्ड्य की मुख्यता है। षड्विंश ब्राह्मण मे मूर्ति का कथन है। ब्राह्मणो मे पातको की सख्या मे निम्नलिखित बाते भी है—मलिन वस्तु का खाना, राजा से नजर लेनी, हिंसा, बड़े भाई के अविवाहित रहते हुए छोटे का व्याह करना, वैश्य या शूद्र की नौकरी करनी,

मन्दिरो मे नौकरी करनी और आलस्य। षड्विंश ब्राह्मण मे फलित ज्योतिष का वर्णन एव यजुर्वेद के अतिरिक्त पहले पुनर्जन्म का कथन है। इस ब्राह्मण मे देवकीपुत्र कृष्ण एक विद्वान् माने गये हैं। कुमारिल्ल भट्ट ने सामवेद के आठ ब्राह्मणो के नाम लिखे हैं। सायणाचार्य ने उन पर भाष्य लिखा है। छान्दोग्य ब्राह्मण विशेषतया छन्दो मे है। कुछ पाश्चात्य पण्डितो ने लिखा है कि कई ब्राह्मण ग्रन्थो मे बौद्ध मत का कुछ प्रभाव देख पडता है।

कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण केवल तैत्तिरीय है। इसमे जरासन्ध के पिता राजा बृहद्रथ का नाम आया है। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण शतपथ है। यह ब्राह्मण ग्रन्थो मे सर्व प्रधान है और वैदिक ग्रन्थो मे ऋग्वेद तथा अथर्व को छोड कर इसकी ऐतिहासिक महिमा शेष सभी ग्रन्थो से बढी चढी है। यह ब्राह्मण काल के प्रायः अन्त मे बना। इसमे सौ अध्याय हैं। अतएव इसका नाम शतपथ है। इसमे विदेहराज जनक तथा याज्ञवल्क्य के नाम आये है और विष्णु की महिमा कुछ बढी हुई है। शतपथ के देखने से समझ पडता है कि कुरु और पाञ्चालो मे कोई शत्रुता नही थी किन्तु परीक्षित के घराने मे कोई भारी घटना हुई थी। मेगास्थनीज के समय मे महाभारत मे कथित कृष्ण और पाण्डवो का सम्बन्ध भारत मे ज्ञात था। शतपथ मे परीक्षित पुत्र जनमेजय का नाम आया है और पिजवन के पुत्र सुदास का भी। नरमेध के विषय मे शतपथ ब्राह्मण मे साफ लिखा है कि मनुष्य का बलिदान कभी नही होता था, वरन उसकी प्रतिमा मात्र का। फिर भी कुछ पाश्चात्य पादरी लोग यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं कि वैदिक समय मे नर-बलि अवश्य होती थी किन्तु ब्राह्मण-काल मे सभ्यता का विचार बढ जाने मे नर-बलि का निषेध होकर नर-प्रतिमा मात्र की बलि का विधान रह गया। अपने इस दुराग्रहपूर्ण कथन का आधार स्वरूप वे केवल शुनःशेप का उदाहरण देते है। इसके अतिरिक्त किसी भी हिन्दू ग्रन्थ मे उनको नर-बलि का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इस अवसर पर भी वास्तविक नर-बलि नही हुई।

शतपथ ब्राह्मण विशेषतया याज्ञवल्क्य-कृत समझ पडता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण मे लिखा है कि द्विज देवताओ मे हुए और शूद्र असुरो से। यहाँ देवताओ तथा असुरो से आर्यों और अनार्यों से प्रयोजन समझ पडता है। प्रलय के समय मनु मत्स्य की सहायता से उत्तरीय पर्वतो की ओर चले गये। वहाँ इन्होंने पाकयज्ञ किया जिससे इडा नाम्नी स्त्री उत्पन्न हुई। उसीसे मनु ने सन्तान उत्पन्न की। ब्राह्मण ग्रन्थ मे यह मछली अवतार नहीं मानी गई है और यह कौन मनु थे सो भी नहीं लिखा है। शतपथ ब्राह्मण मे विष्णु को वामन कहा गया है। एक पाश्चात्य पण्डित का कथन है कि वैदिक मन्त्रो मे मनुष्य देवताओ से डरता है, ब्राह्मण ग्रन्थो मे (मनुष्य) देवताओ को पराजित कर देता है और उपनिषदो मे (मनुष्य) देवताओ की कुछ परवा नही करता। अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ कहलाता है। ब्राह्मण ग्रन्थो मे मुख्यतया ६ विषयो का कथन रहता है, अर्थात् विधि, अर्थवाद, निन्दा, शसा, पुराकल्प और परकृति का। इनमे वर्णन यज्ञ सम्बन्धी रहते हैं। महर्षि जैमिनि कहते है कि यही सब बातें वेदो मे भी पाई जाती हैं।

पाश्चात्य पण्डितो का विचार है कि जब वेदमन्त्र बहुत अधिक हो गये और अधिकतर मन्त्रो की आवश्यकता न रही तब ब्राह्मणो ने अपनी भारी उत्पादिनी शक्ति को याज्ञिक विधि और अर्थवाद के फैलाव मे लगाया। यही दशा कुछ कुछ यजुर्वेद से ही प्रारम्भ हो चुकी थी किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थो मे इसकी विशेष उन्नति हुई। ब्राह्मण ग्रन्थो का मुख्य कार्य मन्त्रो और याज्ञिक विधि का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाना और उनका धार्मिक भाव प्रकाशन है। कुछ कथा भागो और चमत्कारिक भावो को छोड देने से ब्राह्मण ग्रन्थो का साहित्यिक मूल्य कुछ भी नही है। ब्राह्मण जाति यजुर्वेद से ही जन्मज हो गई थी और अथर्ववेद मे ही उसका प्रभाव बढ गया था। यह ब्राह्मण ग्रन्थो मे और भी बढ़ा हुआ देख पड़ता है। वेदो की प्रधानता उच्च विचारो और प्राकृतिक वर्णनो मे है, किन्तु ब्राह्मणो की केवल रस्म-रिवाजो मे दिखाई देती है। पहले ब्राह्मण ग्रन्थ वेदो के फैलाव मात्र माने जाते थे किन्तु पीछे मे उनकी महिमा बढ़ गई और वे वेदाङ्ग समझे जाने लगे। ब्राह्मण ग्रन्थो मे विधि का पूरा वर्णन नही है

क्योकि ये ग्रन्थ यज्ञ कराने वाले मे इस का कुछ ज्ञान पहले से मान लेते हैं।

बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त हो गये है क्योकि प्रस्तुत ग्रन्थो मे बहुत से ऐसे ग्रन्थो के उद्‌धृत भाग है जो अब अप्राप्य हैं। कुल मिला कर सारे ब्राह्मण ग्रन्थो मे एक प्रकार का साम्य पाया जाता है, किन्तु ध्यानपूर्वक पढने से इनके निर्माणकाल का पता उन्ही की रचना के ढङ्गो से लगता है। यजुर्वेद के पीछे पञ्चविंश और तैत्तिरीय ब्राह्मण सब से पुराने हैं, तथा इनके पीछे जैमिनीय, कौशीतकि और ऐतरेय। ब्राह्मणो मे शतपथ सब से नया है। गोपथ और सामवेद के छोटे छोटे ब्राह्मण उससे भी नये है। ब्राह्मणो मे कुछ गाथाये पद्य मे भी हैं। विचार किया जाता है कि ऐतरेय ब्राह्मण कुरु पाचाल देश मे बना। कौशीतकि ब्राह्मण से प्रकट होता है कि उत्तरीय भारत मे पठन-पाठन-प्रणाली सब से अच्छी थी और वहां के पठित विद्यार्थियो का अधिक मान था। शतपथ ब्राह्मण मे राजा जनमेजय का नाम लिखा है और आसुरि नामक एक आचार्य का नाम कई बार आया है। ये सांख्यशास्त्र के एक बडे आचार्य कहे गये हैं। इन के नाम आने से विदित होता है कि साख्यशास्त्र के मुख्य आचार्य महर्षि कपिल शतपथ ब्राह्मण के बहुत पहले हुए। आसुरि कपिल के शिष्य कहे गये हैं। कपिल दो थे, एक स्वायम्भुव मनु की पुत्री देवहूति के पुत्र और दूसरे सगरात्मजो के मारनेवाले। यह निश्चय नही है कि साख्यकार कपिल इन्ही दोनो मे से एक थे अथवा कोई तीसरे व्यक्ति। स्वायम्भुव मनु के दौहित्र कपिल वैदिक समय से भी पहले के हैं। उस काल मे अध्यात्मज्ञान का इतना बढना कि साख्यशास्त्र ही बन जाना, नितान्त सन्दिग्ध है। सगर के समकालिक कपिल भी साख्यशास्त्र निर्माण के लिये उचित से अधिक पुराने समझ पडते हैं। इस शास्त्र का निर्माण उपनिषत्काल मे समझ पडता है। साख्यकार कपिल बुद्ध काल से पहले के माने जाते हैं।

कालिदास ने विक्रमोर्वशी और शकुन्तला नाटको मे महाराजा पुरूरवा और दुष्यन्त के वर्णन किये हैं। पुरूरवस और उर्वशी का कुछ कथन ऋग्वेद मे भी आता है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। ये दोनो कथाये शतपथ मे विस्तार पूर्वक लिखी हैं। महा प्रलय का

भी वर्णन इसी ब्राह्मण में है।

ब्राह्मण-काल में गुरुओं और गुरुद्वारों की परिपाटी स्थिर हो चुकी थी। हम स्वारोचिष मन्वन्तर में लिख आये हैं कि ऋषियों का जंगलों में रहना उसी अवैदिक समय में प्रारंभ हो गया था। इस परिपाटी ने वैदिक समय में बहुत बल पाया। ऋग्वेद में लिखा है कि ब्रह्मचारी को कृष्ण मृगचर्म धारण करना चाहिये। ब्राह्मण काल में वर्तमान विश्वविद्यालयों की भांति परिषद नाम्नी संस्थायें स्थिर हुई जिनमें गुरुद्वारों से निकले हुए प्रवीण विद्यार्थी अध्ययन करते थे। इन परिषदों में बड़े बड़े आचार्य अपने प्रिय विषयों की शिक्षा देते थे। कुरुओं और पांचालों की परिषदें सर्वश्रेष्ठ थीं। इन्हीं के कारण ब्राह्मण ग्रन्थों के अवलोकन से प्रकट होता है कि उत्तरी भारत में पठित विद्यार्थियों का मान अधिक होता था।

ब्राह्मण ग्रन्थों का परम सूक्ष्म वर्णन हम ऊपर दे आये हैं। इनके पीछे आरण्यकों का विषय आता है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। आरण्यक का शाब्दिक अर्थ "वन सम्बन्धी" है। ब्राह्मणों की उन्नति होने से आरण्यकों का नम्बर आया। कुछ लोग कहते हैं कि आरण्यक वानप्रस्थ लोगों के लिये बनाये गये और इसीलिये इनका यह नाम पड़ा। कुछ अन्य लोग यह भी अनुमान करते हैं कि यह नाम इस कारण पड़ा कि यह बढ़ी हुई आध्यात्मिक विद्या नगरों में न सिखलाई जाकर वनों में ही सिखलाई जाने योग्य थी। बहुत से आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के सम्बन्ध में ही लिखे गये। ऐतरेय आरण्यक इसी नाम के ब्राह्मण से सम्बन्ध रखता है। इसमें पांच खण्ड और अट्ठारह अध्याय हैं, जिनमें अन्तिम दो सूत्र साहित्य से मिल जाते हैं। कौशीतकि ब्राह्मण का कौशीतकि आरण्यक है। आरण्यकों के कुछ भाग ब्राह्मण ग्रन्थों के समान हैं और अधिकांश उपनिषदों के। इसलिये जो कथन ब्राह्मण और उपनिषदों के विषय में किया जाय वही इनके विषय में भी घटित होता है। आरण्यकों में बृहदारण्यक सर्वप्रधान समझ पड़ता है। इसका विषय ऐसा आध्यात्मिक है कि यह उपनिषत् भी समझा जाता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों की मुख्य महिमा उपनिषदों पर ही अवलम्बित है।

यदि इस चमत्कारी रत्न को ब्राह्मण साहित्य से निकाल डाले तो वर्तमान पडितो के लिए ब्राह्मणो की गरिमा लुप्तप्राय हो जाय। उपनिषदो मे जगदुत्पत्ति, जीवात्मा और परमात्मा पर विचार किये गये है। वैदिक धर्म की गरिमा उपनिषदो पर ही अवलम्बित है, इसीलिये इन्हे वेदान्त कहते है। पाश्चात्य पण्डित शोपिनहार का कथन है, "उपनिषदो से मुझे जीवन मे शान्ति मिली है और मरणानन्तर भी इन्ही से शान्ति मिलने की आशा है।" प्रसिद्ध पण्डित मैक्समुलर कहते है कि उपनिषत् मानव मस्तिष्क के बड़े ही चमत्कारिक फल है। इनसे ससार भर के प्रत्येक देश, प्रत्येक समय और प्रत्येक साहित्य को गरिमा प्राप्त हो सकती है।

उपनिषत् का शब्दार्थ गुरु के पास बैठ कर सीखने की विद्या है। महर्षि पाणिनि ने इस शब्द से रहस्य विद्या का प्रयोजन लिया है। इसके कई अन्य अर्थ भी लगाये जाते है किन्तु हमे यही दो प्रधान समझ पड़ते है। छान्दोग्य मे इसका वही अर्थ किया गया है जो प्राय. साधना का है। शकराचार्य कठोपनिषत् की प्रस्तावना मे इसका अर्थ करते हैं, "पुनरागमन तथा पुनर्जन्म भर का नाश करने वाली विद्या।" उपनिषदो की सख्या अनिश्चित है। ये १०३ से ११९४ तक माने गये है। मुख्य उपनिषत गणना मे दस हैं, अर्थात्—

ईश, केन, कठ प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक।

इनके अतिरिक्त कौशीतकि और श्वेताश्वतर की भी प्रधानता है। इनमे मुख्यता इस बात की है कि साम्प्रदायिक मतसकीर्णता का अभाव दिखाई पड़ता है। अथर्ववेद के उपनिषत् नवीन एव साम्प्रदायिकत्व से पूर्ण है। ऋग्वेद के उपनिषत् उसके ब्राह्मणो के नाम पर ऐतरेय और कौशीतकि कहलाते है। कृष्ण यजुर्वेद के प्रधान उपनिषदो मे तैत्तिरीय तथा मैत्रायणीय है और शुक्ल यजु के ईश और बृहदारण्यक। छान्दोग्य उपनिषत् सामवेद का है। अथर्ववेद के उपनिषत् सख्या मे बहुत अधिक है, जिनमे कठ और मुण्डक प्रधान है। ये अथर्ववेद के उपनिषत् तीन प्रकार के है अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी, योग सम्बन्धी और शिव अथवा विष्णु सम्बन्धी। प्राचीन उपनिषत्

प्रधानतया गद्य ग्रन्थ हैं। इनमे कहीं पद्य भी पाया जाता है और कुछ उपनिषत् पद्य के भी हैं। प्राचीन उपनिषत् ब्राह्मण ग्रन्थो के समकालिक तथा रचनाशैली मे उन्ही के समान है, किन्तु विषयो मे बहुत बड़ा अन्तर है। नवीन उपनिषत् बहुत पीछे तक बनते गये। बडे ग्रन्थो मे कुछ गाथाये पाई जाती हैं। इनमे कही कही गुरुओ और शिष्यो मे प्रश्नोत्तर भी मिलते है। प्रश्नोपनिषत् मे पिप्पलाद ऋषि गार्गी आदि अपने छ शिष्यो को उपदेश देते है और कठोपनिषत् मे यम नचिकेता को ज्ञान सिखाते हैं।

कहते है कि मोक्ष के लिये दो मार्ग है, अर्थात ज्ञान और उपासना। जो लोग परमात्मा को समझ सकते है वे सभी पदार्थों मे उसी को देखते हैं। जिनकी बुद्धि इतनी दूर न पहुँचे वे वेदविहित कर्म्मो को करे। कठोपनिषत् के निर्माण-क्रम, रचना शैली और विचार-क्रम बहुत ही उत्तम हैं। इसमे यमराज नचिकेता को जीवात्मा और परमात्मा का अन्तर सिखलाते है। इसकी प्रथम वल्ली मे जीव का अस्तित्व सिद्ध किया गया है। बृहदारण्यक मे विराज का क्रम उत्तमता से कहा गया है और उसी मे ऐसा सृष्टिक्रम दिखाया गया है कि विराज ही से क्रमशः कई नर मादाओ के जोडे हुए, जिनसे सर्वप्राणी उत्पन्न हुए। काशिराज अजातशत्रु द्वारा बालाकि गार्ग्य का शिक्षण इसी उपनिषत् मे लिखा हुआ है। महाराजा अजातशत्रु के समकालिक विदेहराज जनक थे। अजातशत्रु को इस बात की शिकायत थी कि पण्डित लोग उसके यहाँ नही रहते थे और मिथिलेश जनक को अपना संरक्षक समझते थे। जनक के यहाँ एक बार बहुत बडा यज्ञ हुआ, जिसमे कुरु पांचाल के बहुत से ब्राह्मण भी सम्मिलित थे। मिथिलेश ने एक हजार गौवे सर्वप्रधान पण्डित को दान की। इस पर जब किसी को भी उन्हे लेने का साहस न हुआ तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने उन्हे ग्रहण किया। अब शेष पण्डित लोग उनसे वाद करने लगे, किन्तु सब पराजित हुए। इन वादियो मे विदग्ध उपनाम सकल्ल प्रधान था। छान्दोग्य उपनिषत मे आरुण के पुत्र उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को ज्ञान सिखाया। इस उपनिषत् मे बहुत से ऋषिगण केकय-पुत्र अश्वपति के पास परमात्मा का ज्ञान सीखने

गये है। श्वेताश्वतरोपनिषत् मे साख्याचार्य कपिल का नाम लिखा है। शकराचार्य ने इस उपनिषत् की एक बडी टीका लिखी। इस टीका मे सांख्य और वेदान्त के मतभेद मिटाने का प्रयत्न किया गया है।

वेदान्त के पाच प्रधान भेद है अर्थात अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैत। अद्वैत मे एक ईश्वर माना गया है, द्वैत में ईश्वर और जीव तथा विशिष्टाद्वैत मे ईश्वर, जीव और प्रकृति। फिर भी प्रकृति और जीव ईश्वर के विशेषणमात्र हैं। शुद्धाद्वैत मे भी ये तीनों माने गये हैं, किन्तु ईश्वर, जीव और प्रकृति मे क्रम से आनन्द और चित्त का आवरण माना गया है। द्वैवाद्वैत भेद तथा अभेद दोनों को मानता है तथा द्वैत ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को सत के समान कहता है। अत. ये तीनो ही ईश्वर को मान कर चलते है। उधर सांख्य मे ऐसा द्वैतवाद है जो न केवल प्रकृति और जीव को मानता है वरन् ईश्वर को असिद्ध समझता है। हिन्दू-दर्शन-शास्त्र के छ प्रधान अग हैं, अर्थात साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमासा तथा उत्तरमीमासा। इनके मुख्यकर्ता क्रम से कपिल, पतञ्जलि, गौतम, कणाद, जैमिनि और व्यास हैं। ये सब मुनि ब्राह्मण काल के नही हैं, किन्तु इन छओ दर्शनों के मूल विचारों का प्रादुर्भाव ब्राह्मणकाल ही मे या कुछ ही पीछे हुआ। पीछे से जिस जिस आचार्य ने जिस जिस शास्त्र को उन्नत बनाया, उसी के नाम पर वह कहलाने लगा। कपिल और जैमिनि बुद्ध पूर्व के समझे जाते है। केनोपनिषत् मे ईश्वर की शक्ति बहुत अच्छी तरह दिखलाई गई है, और एक उदाहरण द्वारा सिद्ध किया गया है कि बिना ईश्वरीय बल के अग्नि अथवा मरुत् एक तिनके को भी जला या उडा नही सकते। माण्डूक्य उपनिषत मे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय अवस्थाओं का वर्णन है और ॐ शब्द की महिमा भी कही गई है। शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष को हमारे यहाँ वेद का षडङ्ग कहते है। इन सबके नाम मुण्डकोपनिषत् मे आये है। इससे विदित होता है कि इन छओं वेदाङ्गों की स्थापना ब्राह्मण काल मे हो गई थी।

उपनिषदों का सदुपदेश मुख्यतया ईश्वरवाद है। यह ईश्वरवाद तर्क पर अवलम्बित है, न कि अन्धभक्ति पर। सत्यता की सब से बड़ी महिमा कही गई है। इसके मनोगत कराने के लिए सत्यकाम जाबाल का उदाहरण छान्दोग्य उपनिषत् में दिया हुआ है। कहते हैं कि जब यह महात्मा शिष्य होने के लिए गुरु के पास गये तब उन्होंने इनके पिता का नाम पूछा। इस पर अपनी माता से पूछ कर जाबाल ने गुरु से कहा, "मेरी माता मेरे पिता का नाम नहीं जानती, क्योंकि मेरे गर्भाधान के समय उसके पास कई मनुष्य आये थे जिस लिए वह किसी एक से मेरा पितृत्त्व स्थापित नहीं कर सकती।" जाबाल की इस सत्यप्रियता से प्रसन्न होकर गुरु ने इस बालक की माता जबाला के नाम पर इसका नाम सत्यकाम जाबाल रक्खा और अपने शिष्यों में इसको सर्वप्रधानता दी। छान्दोग्य उपनिषत् का मत है कि प्रारम्भ में ईश्वर केवल एक था। उसने अग्नि का उत्पादन किया, जिस से जल हुआ और जल से पृथ्वी। ऋग्वेद में स्वर्ग नरक का विचार नहीं है। ब्राह्मणों में स्वर्ग, कर्म, प्रकृति, भविष्य-स्थिति आदि पर विवाद पाया जाता है। उपनिषदों में पुनर्जन्म के विचार उन्नत हो गये हैं। उपनिषदों का मत है कि ज्ञान ने संसार को बनाया, ज्ञान ही उसे स्थिर किए है और ज्ञान ही ईश्वर है।

जैसे कि वैदिक समय में पुरूरवा, नहुष, ययाति, वैवस्वतमनु, चाक्षुष मनु, पृथु, अम्बरीष आदि राजपुरुषों ने वेद रचना में भाग लिया था, वैसे ही ब्राह्मणकाल में जनक, अजातशत्रु, अश्वपति, जैवलि आदि राजपुरुषों ने उपनिषदों में पूरा योग दिया। जैवलि पांचालराज थे और उन्होंने श्वेतकेतु को ज्ञान सिखाया। उपनिषदों और वेदों में कुछ भाग लेते हुए भी राजन्य पुरुषों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में कोई प्रधानता नहीं दिखलाई। आरण्यकों के विधि सम्बन्धी भागों में भी उनकी प्रधानता नहीं है। इससे प्रकट होता है कि कर्मकाण्ड केवल ब्राह्मणों की रचना है, किन्तु ज्ञान काण्ड में उनको क्षत्रियों से सहायता मिली। यह सहायता जैन और बौद्ध काल में शत्रुता में परिवर्तित हो गई जैसा कि हम आगे लिखेंगे। कुछ लोगों का यह भी विचार है कि मुख्यतया ज्ञानकाण्ड का आविर्भाव बढ़े हुए कर्म-

काण्ड पर क्षत्रियो की अश्रद्धा से हुआ।

उपनिषदो के समय मे याज्ञिक अग्नि सब आर्यों के घर जला करती थी और दैनिक हवन सबके यहाँ होते थे। दैनिक पच महा-यज्ञ मे देवपूजन, पितृपूजन, अतिथिपूजन, ससारपूजन तथा गृह्यदेव-पूजन होता था। इस प्रकार अतिथिसत्कार हमारे यहाँ सभ्यता मात्र न होकर धर्म का अग था। मानुप कर्तव्यो मे उपनिपदो का क्या विचार है, इसके विषय मे तैत्तिरीय उपनिपत् का एक छोटा सा अवतरण यहाँ लिखा जाता है। "सत्य बोलो, स्वकर्तव्य पालन करो, वेदाध्ययन को न भुलाओ, उचित गुरुदक्षिणा देने के पीछे विवाह करके पुत्रोत्पादन करो, सत्य से मत हटो, कर्तव्य से मत हटो, लाभ-दायक पदार्थो को मत भुलाओ, महत्त्व को मत भुलाओ, वैदिक शिक्षा को मत भुलाओ, देवयज्ञ और पितृयज्ञ को मत भुलाओ, माता को देवी के समान मानो, पिता को देवता के समान मानो, अनि-न्दित कर्मो पर श्रद्धा रक्खो, औरो पर नही, हमारे द्वारा किये हुये उचित कार्यो पर श्रद्धा रक्खो।"

विधवा विवाह ब्राह्मण काल मे उचित माना जाता था। ज्योतिष, शिक्षा, व्याकरण, दर्शन और धर्मशास्त्र पर उस काल बहुत ध्यान दिया जाता था। ये सारे शास्त्र धार्मिक नीतियों से निकले हैं और इनका परस्पर सम्बन्ध भी है। आज कल के विद्वानो ने इसी बात को कसौटी माना है कि जिन शास्त्रों का धर्म से सम्बन्ध हो वे अवश्य भारतीय समझने चाहिये। वेदाङ्ग ज्योतिप की उन्नति ब्राह्मण काल मे बहुत हुई। हमारे यहाँ चान्द्र वर्ष का चलन था, जिससे यह सौर वर्प से सदैव कुछ पीछे हट जाता था। इसी लिए आजकल प्राय: अधिमास अर्थात लौद का प्रयोग होता है। लौंद का चलन वैदिक समय मे भी था क्योंकि ऋग्वेद मे लिखा है कि यह मास इन्द्र ने बनाया। ब्राह्मण काल मे लौद मास मोटे प्रकार से प्राय' पाचवे वर्ष पड़ता था। अट्ठाईस नक्षत्रों का हाल भी ज्ञात था। वैदिक समय मे इनकी गणना पुनर्वसु से चलती थी, आजकल के समान अश्विनी से नही। सायनमेप का भी ज्ञान ब्राह्मणो का हो गया था। ब्राह्मण-काल मे वैदिक समय के धर्म ने कुछ उन्नति अथवा अवनति की थी।

अवैदिक समय मे यहाँ तरु, पर्वत, भूत प्रेतादि का पूजन चलता था। यह अनार्य्यों का धर्म था। आर्य्यों ने अपने साथ वरुण और इन्द्र के पूजन के विचारो को लाकर फैलाया। धीरे धीरे तैंतीस वैदिक देवताओं का विचार उठकर पुष्ट हुआ और महर्षि विश्वामित्र के काल मे एकेश्वरवाद चला तथा देवताओ की यह सख्या बढकर ३३३९ हो गई। पुरुष, विराज, प्रजापति, विश्वकर्मा, स्कभ आदि नामो से ईश्वर का पूजन विधान उठकर पुष्ट हुआ। यही विचार कभी कभी इन्द्र और अग्नि द्वारा भी प्रकट किया गया है। हवनो, यज्ञो, बलि आदि की स्थापना वैदिक समय मे ही भली भाँति हो गई थी। अग्निहोत्र आदि के लिये कभी न बुझने वाली स्थिर अग्नि का विधान इसी काल मे हो चुका था। ब्राह्मण काल मे याज्ञिक रीतियों में बड़ा विस्तार हुआ और उचित रीति से मन्त्रोच्चारण एव उचित मंत्रो के साथ यज्ञ रीतियो के सम्पादन पर ऐसी श्रद्धा बढी कि वास्तविक धर्म दृढ़ रीतियो के उलझाव मे कुछ दब सा गया, यहां तक कि बहुत करके रीतियों ने ही धर्म का आसन ग्रहण किया। वेदो के पढ़ने से जो प्रत्येक ऋषि की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और श्रद्धा के विचार सभी स्थानो पर पाठक के चित्त मे अङ्कित रहते हैं, उस स्वावलम्बी श्रद्धा एव दृढ़ता को ब्राह्मण ग्रन्थो मे हम नही पाते हैं। यही वैदिक और आदिम ब्राह्मण धर्मो का मुख्य भेद हैं। इसीलिए जान पड़ता है कि इसी रीति-सम्बन्धी दृढ़ता से ऊब कर लोगो ने उनके शिथिलीकरणार्थ वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम के विचार चलाये, जिससे यह सिद्ध किया गया कि निरग्निक सत्कर्मी का दर्जा अग्निवान् से भी ऊँचा है। आरण्यको का विधान इसी लिए उत्पन्न हुआ जान पड़ता है। आरण्यको से औपनिषद्विचारो का उठना परम स्वाभाविक था और ऐसा ही हुआ भी। इसी समय में जीवात्मा का अस्तित्व सिद्ध किया गया और पुनर्जन्म-सम्बन्धी आवागमन के विचार दृढ हुए। कार्मिक सिद्धान्तो की भी स्थापना एवं दृढ़ता इसी शुभ काल मे हुई। कठोपनिषद् में एक बड़े सुन्दर उदाहरण द्वारा दिखलाया गया है कि ब्रह्मविद्या की पदवी सभी सांसारिक पदार्थो से उच्चतर है। नचिकेता

यम से ब्रह्मविद्या जानना चाहता है। यम उसे धन, धान्य, पुत्र, पौत्र राज्य आदि सभी सांसारिक प्रलोभन दिखलाकर इससे हटाना चाहते हैं, किन्तु वह इन सब को तुच्छ मानकर इसी की खोज मे ही लगा रहता है। इस दृढता को देखकर ही यमराज उसे इस विद्या का पात्र समझ कर यह उत्तम ज्ञान सिखाते हैं। प्रयोजन यह है कि बिना सांसारिक प्रलोभनो के छोडे कोई ब्रह्म विद्या को प्राप्त नही हो सकता। उपनिषदो ही द्वारा ससार मे पहले पहल ईश्वर का विचार, पूर्ण दृढता और ज्ञान के साथ प्रसिद्ध किया गया। ससार के सबन्ध में माया का विचार पहले पहल श्वेताश्वतर मे आया। संसार माया है और ईश्वर मायी। छान्दोग्य उपनिषत मे लिखा है कि यह सारा ससार वही है अर्थात सत् एव परमात्मा। हे श्वेतकेतो ! तू भी वही है। इसी स्थान पर शकराचार्य संबन्धी "तत्त्वमसि" के विचार बीज रूप से छान्दोग्य उपनिषत् मे पाये जाते हैं।

उपनिषदो का विचार है कि परमानन्द पूर्ण ज्ञान ही से प्राप्त होता है। शकराचार्य का मत है कि परमात्मा तथा जीवात्मा मे केवल अविद्या का भेद है। यह विचार भी बीजरूप से उपर्युक्त उपनिषत् के कथन मे आ गया है। कामिक विचारो की वृद्धि से जीवन और मृत्यु का भेद उठ जाता है और वह एक ही उन्नति के विविध रूप मात्र रह जाते है। ऐतरेय और शतपथ मुख्य ब्राह्मण हैं। पाश्चात्य पडितों ने समयानुसार उपनिषदो के चार भाग किये हैं। वे पहली कक्षा मे बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और कौशीतकि को रखते है। यह उपनिषदो के लिए प्राचीनतम कक्षा है। प्रश्न, मुडक और केन के कुछ भाग इनके पीछे आते हैं। दूसरी कक्षा में कठ, ईश, श्वेताश्वतर, और महानारायण रक्खे गये हैं। तीसरी मे मैत्रायणीय और माण्डूक्य, और चौथी में अथर्ववेदीय उपनिषत्। याज्ञवल्क्य ने महाराजा जनक से सवाद करते हुए सिद्ध किया है कि ईश्वर का अन्वयात्मक कथन असिद्ध है क्योंकि उसका शुद्ध वर्णन व्यतिरेक द्वारा ही किया जा सकता है। अन्वयवाची कथन उसे कहते हैं जिसमे किसी पदार्थ में मुख्य मुख्य गुण आरोपित करके उसका वर्णन किया जाय। व्यतिरेक मे 'वह क्या नहीं है' ऐसे कथनो द्वारा उसका ज्ञान

कराया जाता है। महर्षि याज्ञवल्क्य आदि ने ईश्वर को व्यतिरेक द्वारा अस्पृश्य, अविनाशी, अपरतन्त्र, अचल आदि कहा है। आरण्यकों, उपनिषदों आदि में ईश्वर मुख्यतया निर्गुण है। अरूप तो वह है ही, किन्तु गुणों की भी स्थापना उस में कम है। मनुष्य की निर्बलता में उसे गजग्राह की सी पुकार सुनने वाले व्यक्तिमापन्न ईश्वर की मानसिक प्रेरणा रहती है। ऐसा ईश्वर न पाकर केवल परब्रह्म के युक्ति सगत भाव से समाज सन्तुष्ट न रह सका। इस काल तक वैष्णव ईश्वरत्व कम था और विशेषता शैव ईश्वरत्व की थी। उपर्युक्त असन्तोष से बृहस्पति का चार्वाक मत लोकायत विचारों में निकला तथा महर्षि कपिल और जैमिनि के अनीश्वर वाद दार्शनिक रूपों में प्रकट हुये, जिससे सर्व साधारण में अनीश्वर वाद का मान हो गया तथा शैव ईश्वरत्व भी गिर सा गया। समय पर आचारात्मक बौद्ध धर्म चला, जिसने अपने मत में ईश्वर और वेदों को भी स्थान न दिया। वाल्मीकीय रामायण तथा कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र की साक्षी से उस काल (छठी से पहली दूसरी शताब्दी बी० सी०) तक जो मत सर्व साधारण में प्रचलित मिलता है, वह वैदिक रूप लिये हुये कुछ मोटिया पन भी धारण किये था। अनन्तर पाचवीं शताब्दी बी० सी० के निकट बादरायण व्यास द्वारा गीता का निर्गुण सगुण ईश्वर युक्त आचारात्मक धर्म निकला।

ब्राह्मण काल का यह साहित्यिक इतिहास इसी स्थान पर समाप्त होता है। वैदिक समय में प्राकृत शक्तियों का व्यक्तीकरण और एक प्रकार से देवताओं का बहुलीकरण हुआ, किन्तु ब्राह्मण काल में उस बहुलीकरण से एकीकरण का भाव बड़ी दृढता के साथ दिखलाया गया। वैदिक समय की रचनाओं में साहित्य की प्रधानता है और ब्राह्मणकाल में तर्क पूर्ण दर्शन की। वैदिक समय में उत्पादिनी शक्ति बलवती थी, किन्तु ब्राह्मण काल में स्थिरीकरण का भाव प्रधान रहा। वैदिक कवि बालकों के समान सभी पदार्थों पर आश्चर्य प्रकट करते है, किन्तु उपनिषदों के कवि प्रगाढ पंडित की भाँति जटिल दार्शनिक प्रश्नों को हल करते हैं। दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति आश्चर्य से है, ऐसा पंडितों का मत है।

जब कोई व्यक्ति किसी अज्ञात पदार्थ को देख कर उसे मामूली नहीं समझता और उसके तत्त्व पर विचार करता है तभी पूर्ण ज्ञान के अभाव में उस पर आश्चर्य प्रकट करता है। ज्ञानोन्नतिकरण का यह आश्चर्य सर्वप्रधान सहायक है। हमारे वैदिक ऋषियों ने प्रकृति को मामूली न मानकर उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया और अपने प्राथमिक ज्ञानानुसार उसके निगूढ रहस्यों का साहित्यपूर्ण वर्णन किया। वे लोग इस काव्य में इतने नहीं भूल गये कि जगतपिता को जान ही न पाते, किन्तु जगत्पिता पर उनका ध्यान कम था और जगत पर विशेष। इधर ब्राह्मण काल वाले ऋषिगण बाहरी प्रकृति पर मुग्ध होना छोडकर उसके निगूढतम रहस्यों में घुस गये और अपने परिश्रम का चामत्कारिक फल उपनिषदों के रूप में छोड गये हैं, जिस जाज्वल्यमान प्रतिभापूर्ण रचना पर आज सारा संसार मुग्ध है। जिस भाव से वैदिक प्रश्न हाथ में लिये गये थे उसका स्वाभाविक फल औपनिषत् ज्ञान था। इसीलिये जहाँ पुरानी रचनायें वेद कहकर पुकारी गईं, वहीं इनका वेदान्त कह कर आदर किया गया। इसी के साथ यह भी कहा जाता है कि जहाँ वैदिक ऋषि जीवन के उल्लास में मग्न हैं, वहीं ब्राह्मण ग्रन्थों का ऋषि दुःखवादी जीवन विचार की जड जमाता है। हिन्दू शास्त्र सांसारिक जीवन को दुःख मूलक समझता है। उसी की जड मुक्ति के रूप में ब्राह्मण काल में जमती है।

अट्ठारहवाँ अध्याय

सूत्र साहित्य काल

७०० से १०० बी० सी० पर्यन्त (मुख्यतया)

अब तक हमारे ऋषियों ने वेदों और ब्राह्मणों की ओर ध्यान रक्खा तथा आरण्यकों और उपनिषदों को दृढ किया था। हमारे यहाँ ब्राह्मणों में अब तक लेखन-प्रणाली का अच्छा प्रचार नहीं हुआ था, जिससे ये भारी तथा बहुसंख्यक ग्रन्थ बन कर शताब्दियों पर्यन्त स्मरण-शक्ति द्वारा ही रक्षित रक्खे गये। वे महानुभाव कोटि कोटि धन्यवाद के भाजन हैं जिन्होंने पराई रचनाओं को केवल संसार के हितार्थ इतने दिनों तक स्मरण-शक्ति द्वारा रक्षित रक्खा। फिर भी इस अधिकता से पण्डितों को शिष्यवर्ग मिलते रहे कि इतना परिश्रम करते हुए भी लेखन-कला के विशेष प्रचार की आवश्यकता न प्रतीत हुई। तथापि ज्यों ज्यों ग्रन्थों की संख्या तथा आकार बढते गये, त्यों त्यों उनके रक्षण-सम्बन्धी कठिनता का भी बोध होने लगा। इसलिए हमारे ऋषियों को भारी भारी तर्क समुदाय के याद दिलाने को छोटे छोटे सूत्रों की आवश्यकता पड़ी, जिनकी भाषा तार द्वारा भेजे हुए समाचारों से भी अधिक सङ्कुचित है। ऋषियों ने संक्षिप्त गुण को इतना बढाया कि किसी सूत्र से बिना भाव घटाये अर्ध मात्रा भी घटा पाने से उन्हें पुत्रोत्पत्ति के समान प्रसन्नता होती थी। इन्हीं संक्षिप्त से संक्षिप्त लेखों को सूत्र कहते हैं। हमारे भारतीय साहित्य में ब्राह्मण के पीछे इसी उपर्युक्त प्रकार के सूत्र-काल का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध ग्रन्थों से सिद्ध है कि गौतम बुद्ध के समय से पूर्व भी देश में लेखन का अच्छा प्रचार था, किन्तु आर्यों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का लिखना पसंद न करके कई शताब्दियों पर्यन्त उन्हें फिर भी स्मरण-शक्ति द्वारा ही रक्षित रक्खा। इसीलिए लेखन-प्रचार के कई शताब्दी पीछे पर्यन्त सूत्रकाल चलता रहा। फिर भी लेखन-कला

के कारण नाटक तथा इतिहास ग्रन्थ भी इसी काल से बनने लगे जिनका जन्म ही लेखन-कला के प्रचार से हुआ क्योंकि वैदिक ग्रन्थों की भाँति इनके स्मरण रखने की कोई पर्वाह नहीं करता था। अब हम सूत्रों का कुछ संक्षिप्त कथन करके इस काल के अन्य साहित्यिक प्रस्तारों का वर्णन करेंगे।

सूत्र तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात श्रौत सूत्र, धर्म सूत्र और गृह्य-सूत्र। इनके पीछे अथवा साथ ही साथ व्याकरणादि के सूत्र बने। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि सूत्रों का समय वैयाकरण पाणिनि के समय से कुछ कुछ मिलता है। कुछ सूत्र इनसे पीछे लिखे गये और अधिकांश इनसे बहुत पहिले। बहुत से पण्डित पाणिनि का समय ६०० बी० सी० के निकट मानते हैं, किन्तु मंजु श्री मूल कल्प नामक आठवीं शताब्दी के एक प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थ में वे महापद्मनन्द के दरबार में माने गये हैं। यह चौथी शताब्दी बी० सी० का आदि में था। एकाध महाशय अब भी पहला ही समय ठीक मानते हैं। श्रौत सूत्रों में प्रधान यज्ञों की विधियों के वर्णन हैं। किसी सूत्र-समुदाय में एक प्रकार के ऋत्विजों के कर्तव्य का कथन है और किसी में दूसरे का। कई सूत्र-समुदाय पढ़ने से ऋत्विजों के पूरे कर्तव्यों का बोध होता है। ऋत्विज् तीन प्रकार के हैं अर्थात होता, अध्वर्यु और उद्गाता। ब्रह्मा इन सब का निरीक्षक होने से चौथा ऋत्विज कहा जा सकता है। भारतीय पंडित गृह्य सूत्रों को ही धर्म सूत्र भी कहते हैं, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने इनको पृथक माना है। गृह्यसूत्रों में गृहस्थों के आन्हिक तथा इतर कर्तव्यों के विधान हैं। धर्मसूत्रों में सामाजिक एवं न्याय (कानून) संबन्धी नियमों के कथन हैं। इन तीनों प्रकार के सूत्रों के मुख्य आधार वेद ही हैं। इन सूत्रों के वर्णन इतने पूर्ण हैं कि जिसने कभी यज्ञ न देखा हो वह भी इनके द्वारा यज्ञों तथा अन्य कथित विषयों का पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। भारतीय सामाजिक उन्नतियों एवं आचारों का इतिहास जानने में सूत्र ग्रन्थ बड़े उपयोगी हैं। सूत्रों तथा वेदों के अर्थ लगाने में प्रातिशाख्य सूत्र अच्छी सहायता देते हैं। प्रातिशाख्य सूत्रों के अतिरिक्त व्याकरण सूत्र और वैदिक अनुक्रमणिका प्रधान

है। अनुक्रमणिकाओं में प्रत्येक सूक्त के कवि देवता आदि के वर्णन हैं।

ऋग्वेद से सांख्यायन और आश्वलायन सूत्रों का सम्बन्ध है। सांख्यायनकार कविगण पीछे से उत्तरी गुजरात मे पाये गये थे और आश्वलायन वाले कृष्णा और गोदावरी के बीच मे रहते थे। राजाओं के बडे यज्ञो के वर्णन सांख्यायन मे आश्वलायन से अधिक विस्तार से कथित हैं। सांख्यायन मे १८ काण्ड है, और आश्वलायन मे १२। साख्यायन सूत्रो का सम्बन्ध सांख्यायन ब्राह्मण से है और आश्वलायन का ऐतरेय से। आश्वलायन ऋषि शौनक के शिष्य थे। इन्होने ही ऐतरेय आरण्यक भी लिखा। सामवेद के तीन श्रौत सूत्र उपलब्ध है अर्थात् मशक, लाट्यायन तथा द्राह्यायन। मशक का आर्षेय कल्प भी कहते हैं। लाट्यायन मे मशक के उद्धरण हैं। शुक्ल यजुर्वेद का कात्यायन सूत्र है जो चौथी शताब्दी बी० सी० मे बना। कात्यायन ने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर वार्तिक भी लिखे। प्राकृत व्याकरण भी इन्ही का बनाया हुआ है। कथासरित्सागर के अनुसार ये नन्द-कुल के मंत्री थे। कहा जाता है कि मुद्राराक्षस के राक्षस मंत्री ही का नाम वररुचि कात्यायन था। कात्यायन गाभिल के पुत्र और शौनक के शिष्य थे। ये चौथी शताब्दी बी० सी० मे हुए। इनका शुक्ल यजुर्वेद पर श्रौत सूत्र २६ अध्यायो का है। कृष्ण यजुर्वेद के ६ श्रौत सूत्र हैं जिनके रचयिताओ मे आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बोधा-यन और भारद्वाज की प्रधानता है। वैखानस (श्रौत सूत्र) तथा मानव श्रौत सूत्र भी इसी वेद से सबन्ध रखते है। मनुस्मृति का मानव श्रौत सूत्र से सबन्ध अवश्य है। अथर्ववेद का वैतान सूत्र मात्र है। यह कात्यायन सूत्र के अनुसार चला है तथा अति प्राचीन नही है।

गृह्य सूत्र भी श्रौत सूत्रो की भाँति वेदो ही के अनुसार चलते हैं। ऋग्वेद से सबन्ध रखने वाले सांख्यायन, शाम्बव्य तथा आश्वलायन गृह्य सूत्र हैं। शाम्बव्य गृह्य सूत्र मे पितृयज्ञ का विधान है। इससे जान पड़ता है कि इस काल मे पितृपूजन भली भाँति स्थिर हो चुका था। सामवेद के गोभिल और खदिर गृह्य सूत्र है। शुक्ल यजुर्वेद का गृह्य-

सूत्र पारस्कर उपनाम कातीय अथवा वाजसनेय है। यह कात्यायन सूत्र से बहुत सम्बन्ध रखता है। कृष्ण यजुर्वेद के ७ गृह्य सूत्र हैं और इनके रचयिता प्राय: इस वेद के श्रौत सूत्रकार ही हैं। अथर्ववेद का कौशिक गृह्य सूत्र है जिसमे भारतीय जीवन का अच्छा चित्र खिंचा है। संस्कारो का वर्णन विशेषत: गृह्य सूत्रो ही मे है, जिनके अनुसार ४० संस्कार श्रेय है, अर्थात् १८ शारीरिक और २२ याज्ञिक। शारीरिक संस्कारो मे पुंसवन (पंचमासा), जातकर्म, नामकरण, चूडाकरण (मुण्डन), गौदान (दाढी बनवाना), उपनयन, विवाह और अन्त्येष्टि प्रधान है। याज्ञिक संस्कारो मे पंचमहायज्ञ (ब्रह्म, देव, पितृ, मनुष्य और भूत) और अन्त्येष्टि उपनाम सपिण्डीकरण मुख्य हैं। इन्ही सूत्रो मे श्राद्धो का भी वर्णन पूर्णतया मिलता है। जान पडता है कि पितृपूजन का विधान भारत मे सूत्रकाल मे बहुत पुष्ट हुआ। पितरो की प्रशंसा ऋग्वेद मे भी पाई जाती है और यजुर्वेद के ३५वे मंडल मे पितृयज्ञ का विधान भी है, जिससे पितृ-पूजन की प्राचीनता प्रमाणित होती है। श्राद्धो मे कैसे ब्राह्मण निमंत्रित होने चाहिये और उनका कैसा मान सत्कार हो, यह सब उनमे वर्णित है।

धर्मसूत्रकारो मे आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बोधायन, गौतम, वशिष्ट आदि प्रधान हैं। धर्मसूत्रो की महत्ता ऐतिहासिको के लिए श्रौत तथा गृह्यसूत्रो से अधिक है। धर्मसूत्रो ही से बढ़कर समय पर स्मृतियों का निर्माण हुआ। आपस्तंब सूत्र मे ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ आश्रमो आदि के धर्मो का वर्णन है। इसमे भोज्याभोज्य के कथन हैं और शुद्धिकरण, प्रायश्चित्तादि के भी विवरण आये हैं। विवाह, दाय और अपराधो के वर्णन भी आपस्तम्ब ने किये हैं। उत्तरी लोगो की निन्दा से प्रकट है कि ये महाशय दाक्षिणात्य थे। इनकी भाषा पाणिनीय व्याकरण के पहले की समझ पडती है, जिससे जान पडता है कि ये चौथी शताब्दी बी० सी० से पहले के है। बूलर ने इन्हे चौथी शताब्दी बी० सी० मे माना हैं। हिरण्यकेशी का ग्रन्थ आपस्तम्ब से सम्बन्ध रखता है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र मे अन्य ग्रन्थकारो से कोई विशेष मतभेद नही है, जिससे जान पडता है कि इनके कई शताब्दी पूर्व

हिन्दूमत दक्षिण में पूर्ण स्थिरता के साथ स्थापित हो चुका था। यदि उस काल दक्षिण में हिन्दू मत नया होता, तो इनका ग्रन्थ प्रचीन आर्य ग्रन्थो के समान सारे देश मे सम्मानित कभी न होता, क्योंकि उस मे स्थानिक बातें आये बिना न रहती।

बोधायन धर्म सूत्र भी आपस्तव ही के समान विषयो पर कथन करते हैं और ये महाशय भी दक्षिणात्य हैं। बूलर का कथन है कि ये महाशय चौथी शताब्दी बी० सी० के पहले के हैं। इनमे भी हमारे उपर्युक्त कथन को पुष्टि मिलती है। बोधायन के धर्मसूत्र में कुछ श्लोक भी हैं जो प्रक्षिप्त समझे जाते हैं। दत्त महाशय बोधायन को छठी शताब्दी बी० सी० के समझते हैं। बोधायन ने भारत को तीन भागों मे विभक्त किया है। आप गगा यमुना वाले देश को सर्वोत्कृष्ट कहते हैं, दक्षिणी तथा पूर्वी बिहार, दक्षिणी पजाब, सिन्ध, गुजरात, मालवा और दक्षिण दूसरे दर्जे के, तथा बंगाल, उडीसा, और ठेठ दक्षिण तीसरे दर्जे के। ये दर्जे आर्यसभ्यता के प्रचारानुसार थे। दूसरी श्रेणी के मनुष्य मिलित जाति के कहे गये हैं। जो कोई पजाब के आरट्ट, ठेठ दक्षिण के कारस्कर, बगाल एव उडीसा के पुण्ड्र, वग तथा कलिंग, दक्षिणी पजाब के सौवीर और प्रानन लोगों मे कहीं गया हो, उसे पुनीत होने को यज्ञ करना पड़ेगा। बोधायन निम्न स्थानों के निवासियो को मिश्र जातियो के मानते हैं:—मुल्तान, सूरत, दक्षिण, मालवा, पश्चिमी बंगाल और बिहार। बौद्ध ग्रन्थ कोशलो को शुद्ध अमिश्र जाति वाले मानते हैं। सूत्रों में पहले पहल (मोहनजोदड़ो के पीछे) देवताओ की प्रतिमाओ के कथन हैं, जैसे ईशान, मीढ़ शी, जयन्त, क्षेत्रपति। धर्म सूत्र ग्रन्थो मे कुटुम्बों का न होकर समाज का विशेष कथन है। बोधायन के अनुसार दाक्षिणात्यों के विशेष चलन निम्नानुसार हैं.—अपनी स्त्री अथवा बिना जनेव हुये बालकों के साथ भोजन करना, बासी खाना खाना, मामा या फूफू की कन्या के साथ विवाह करना। उन्हीं के अनुसार उत्तर वालों के निम्न कथित चलन हैं:—ऊनका व्यापार करना, शराब पीना, शस्त्रास्त्र का व्यापार करना, समुद्र यात्रा करनी आदि। आपस्तम्ब तथा बोधायन की भाषा देखते हुये गौतमीय भाषा पाणिनीय नियमो

पर विशेष चलती है।

गौतम ने यद्यपि अपने ग्रन्थ को धर्मशास्त्र कहा है तथापि वास्तव में वह धर्मसूत्र ही समझा जाता है। यह ग्रन्थ कल्पसूत्र का अंग नहीं है जैसा कि आपस्तम्ब और बोधायन के हैं। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि बोधायन धर्मसूत्र के कुछ भाग गौतम धर्मसूत्र पर अवलंबित हैं और कुछ उनसे लिये भी गये हैं। गौतम उत्तरीय ब्राह्मण थे और बोधायन दाक्षिणात्य। उस काल किसी ग्रन्थ का उत्तर से दक्षिण को जाना शताब्दियों का काम था। इससे गौतम का काल चौथी पाँचवीं शताब्दी बी० सी० से पूर्व समझ पड़ता है। कुमारिल्ल का कथन है कि गौतम सूत्र सामवेद से सम्बन्ध रखता है। वशिष्ठकृत धर्म-शास्त्र में गौतम के अवतरण हैं और मनुस्मृति में वाशिष्ठ धर्म-शास्त्र के उद्धरण पाये जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वशिष्ठ का समय गौतम और मनुस्मृति के बीच में है। वशिष्ठ ने मानव सूत्र के भी अवतरण दिये हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि मनुस्मृति मानव-सूत्र के आधार पर बनी।

शुल्व सूत्रों में वेदी आदि बनाने के ढङ्ग लिखे हैं। इनसे रेखा-गणित का अच्छा ज्ञान विदित होता है। कुछ लोगों का विचार था कि ब्राह्मणों ही ने इन सब धार्मिक रीतियों तथा विधियों को चलाया, किन्तु अब यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि यद्यपि ब्राह्मणों ने इनकी उन्नति बहुत अधिकता से की और इन सब को क्रम-बद्ध करके अपना बुद्धि-वैभव दिखलाया, तथापि इन सब का मूल प्राचीन आर्य सभ्यता में वर्तमान था। इसके उदाहरण स्वरूप आर्यों तथा पार्सियों के यज्ञ, सोम, यज्ञोपवीत, अग्नियज्ञ, विवाह की सप्तपदी आदि से सम्बन्ध रखने वाले विचार हैं। लकड़ियों को रगड़ कर अग्नि उत्पन्न करने का भी ढङ्ग दोनों जातियों में एकसा पाया जाता है।

सूत्रवत वैदिक ग्रन्थों के हमारे यहाँ ६ भाग माने गये हैं, जिन्हें वेदाङ्ग कहते हैं। इनके नाम शिक्षा (उच्चारण), छन्द, व्याकरण, निरुक्त (शब्दविभाग), कल्प (धार्मिक विधि) और ज्योतिष हैं। शिक्षा का कुछ वर्णन हम वैदिक अध्यायों में कर आये हैं। छन्द का विधान पिङ्गल से सम्बन्ध रखता है। कहते हैं कि शेषनाग ने छन्दों का विधान

किया। इससे जान पड़ता है कि छन्दःशास्त्र नागों का बनाया हुआ है। व्याकरण के सबसे पहले आचार्य पाणिनि प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अष्टाध्यायी की रचना की। इनसे पहले का कोई व्याकरण ग्रन्थ अब हस्तगत नहीं होता, किन्तु स्वयं पाणिनि ने अपने पूर्व के ६४ वैयाकरणों के नाम लिखे हैं। यास्क भी एक प्रकार से वैयाकरण थे, यद्यपि अब उनकी महत्ता केवल निरुक्त पर ही अवलम्बित है। यास्क पाणिनि से बहुत पहिले के हैं। इनके समय में भी व्याकरण का ज्ञान बहुत फैल चुका था, क्योंकि इन्होंने व्याकरण सम्बन्धी दो शाखायें उत्तरी और पूर्वी कही हैं तथा प्रायः २० वैयाकरणों के नाम लिखे हैं जिनमें शाकटायन, गार्ग्य और शाकल्य प्रधान हैं। पाणिनि का व्याकरण ऐसा उत्कृष्ट बना कि इनके पहले वाले सभी वैयाकरणों के ग्रन्थ और यश लुप्त हो गए और यदि यास्क ने निरुक्त न लिखा होता तो उनके ग्रन्थ की भी वही दशा होती जो औरों की हुई।

शांख्यायन गृह्य सूत्र में सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल के नाम हैं तथा आश्वलायन सूत्र में भारत और महाभारत के। शाम्बव्य सूत्र भी महाभारत का कथन करता है। नवीन सूत्र उसी समय के हैं जब भारत और रामायण बनीं। शतपथ ब्राह्मण में जनमेजय थोड़े ही दिन पहले के महाराजा हैं। वैशम्पायन और व्यास के नाम तैत्तिरीय आरण्यक में हैं, किन्तु महाभारत से उनका सम्बन्ध अकथित है। कात्यायन के वार्तिक में पहले पहल कुरु पाण्डवों का कथन है। (हाप्किंस)।

मैकडानेल महाशय के अनुसार यास्क सूत्रकाल के आदि में हुए। पाणिनि के समय का कथन ऊपर आ चुका है। इनके पीछे वाले व्याकरणकारों में कात्यायन और पतञ्जलि प्रधान हैं और ये तीनों मुनित्रय कहाते हैं। कात्यायन नंद वंश के मंत्री होने से चौथी शताब्दी बी० सी० के ही थे और पतञ्जलि पुष्यमित्र के समकालिक होने से दूसरी शताब्दी बी० सी० के। कात्यायन ने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर वार्तिक लिखे, जिससे पाणिनि इनके पूर्व ठहरते हैं। हम ऊपर कह आये हैं कि बोधायन चौथी पांचवीं शताब्दी बी० सी० के थे। इनके ग्रन्थ में महाभारत का हवाला मिलता है। डाक्टर जॉली के

मतानुसार गौतम पांचवी या छठी शताब्दी बी० सी० के हैं, तब बोधायन आते हैं, फिर आपस्तम्ब, अनन्तर वशिष्ट। डाक्टर जायसवाल आपस्तम्ब के विषय मे जॉली से सहमत होकर उन्हे प्राय: ४५० बी० सी० का मानते है, किन्तु गौतम को आपस्तम्ब से पुराना नहीं समझते वरन् उन्हे ३५० बी० सी० के निकट का बतलाते हैं। मूलत: बोधायन का ग्रन्थ आपस्तम्ब से पुराना है, किन्तु उस ग्रन्थ का वर्तमान रूप दूसरी शताब्दी बी० सी० तक आ जाता है। वशिष्ठ १०० शताब्दी बी० सी० से पहले का न होगा। अतएव प्राय: सातवी शताब्दी मे चल कर सूत्रकाल प्राय. पहली शताब्दी बी० सी० तक चला।

पुराणो के वर्णन मे हम महाभारत की प्राचीनता के प्रमाण लिखेगे। उधर यास्क पाणिनि से और भी अधिक प्राचीन समझ पडते हैं, क्योंकि इन दोनो के बीच मे बहुत भारी भारी वैयाकरणो के नाम आये हैं। निरुक्त एव ज्योतिष का वर्णन हम ब्राह्मणो के अध्याय मे कुछ कुछ कर आये हैं। परिशिष्ट, प्रयोग, पद्धति और कारिका नामक ऐसे चार ग्रन्थ हैं जो सूत्रो से कुछ कुछ मिलते हैं। अनुक्रमणिका ग्रन्थ मे कात्यायन कृत सर्वानुक्रमणिका प्रधान है। विधि आदि के विषय पर पूरा बल प्रयोग करते हुए भी हमारे ऋषियो ने आचार ही की प्रधानता रक्खी। वशिष्ठ का वचन है, "जैसे स्त्री की सुन्दरता अन्धे को कोई प्रसन्नता नही देती, उसी प्रकार षडङ्गो तथा यज्ञो समेत सब वेद उसके लिए शुभ नही होते जिसका आचार ठीक नही हैं।" सूत्रकाल के ज्योतिषकारों मे पराशर और गर्ग की प्रधानता है, किन्तु इन लोगो के नामों पर जो ग्रन्थ मिलते हैं वे ईसा से एक ही दो शताब्दी पहिले के है।

हम ब्राह्मण-काल के साहित्य-विवरण मे लिख आये है कि षड-दर्शन के मूल सिद्धान्त बीज-रूप से ब्राह्मण ग्रन्थो मे मिलते है। इनका विकास सूत्रकाल मे कुछ अच्छा हुआ। ऊपर गौतम कृत धर्म सूत्र का वर्णन कर आये है। जान पडता है कि यही सूत्रकार गौतम न्याय-शास्त्र के भी आचार्य थे। हमारे यहाँ का न्याय शास्त्र अँगरेजी लाजिक ही के समान नही है, वरन लॉजिक के सिद्धान्तो को कहकर वह और भी बहुत सी बातो का कथन

करता है। गौतम ने पहले सोलह पदार्थों का सम्बन्ध बता कर यह सिद्ध किया कि उनसे मुक्ति किस प्रकार मिलती है? इनके थोड़े ही पीछे आचार्य कणाद हुए जिन्होंने न्याय से सम्बन्ध रखने वाले वैशेषिक शास्त्र को प्रकट किया। इनका सिद्धान्त एक प्रकार का परमाणुवाद है और खेतों से बीन कर केवल कण खाने के कारण इनको कणाद कहते है। इनका वास्तविक नाम क्या था सो अब ज्ञात नहीं है। उलूक गोत्री होने के कारण ये औलूक कहलाते थे। हमारे षड्दर्शन में सांख्य और पूर्वमीमांसा अनीश्वरवादी हैं। सांख्य केवल प्रकृति और पुरुष को मान कर चलता है अथच ईश्वर का अस्तित्व नहीं मानता। कपिल ने २५ तत्त्वों को लेकर संसार-सृष्टि बताई है। इन षड्दर्शन वाले वर्तमान ग्रन्थों में एक दूसरे तथा बौद्ध दर्शनों के भी हवाले हैं। इस से इन वर्तमान ग्रन्थों के नवीन भाग दूसरी तीसरी शताब्दी ईसवी के पीछे के हैं।

उपर्युक्त दोनों अनीश्वरवादी शास्त्रों के प्रादुर्भाव से हिन्दू मत में अनीश्वरता का पहले पहल शास्त्रीय रूप में बीजारोपण हुआ और पण्डित-समाज में बड़ी खलबली पड़ी। इसलिए महर्षि गौतम तथा कणाद ने ईश्वरवाद के पक्ष को दृढ़ किया। पूर्व मीमांसा में वेदों की महत्ता सिद्ध की गई है और उन पर पाण्डित्य-पूर्ण विचार प्रकट किए गये हैं। जान पड़ता है कि इसी समय या इस से बहुत पूर्व चार्वाक् का शरीरवाद फैला जिसके अनुसार शारीरिक सुख सभी धर्मों का मूल है। महर्षि जैमिनि ने बृहस्पति के इस विचार का खण्डन भी किया है। जैमिनि एक बहुत प्राचीन आचार्य थे, क्योंकि यास्क के ग्रन्थों में इनके सिद्धान्तों का कथन आया है, जिससे इनका यास्क के पहले होना प्रकट होता है। उधर कणाद गौतम के पीछे हुए।

गौतम, पराशर, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ आदि ने मनु का उल्लेख किया है। भृगु, गौतम, शौनक, अत्रि आदि के विचार मनु में पाये जाते हैं। भृगु ने मनु के सिद्धान्तों को एकत्र करके मानव धर्म सूत्र रचा।

पांचवीं शताब्दी बी० सी० के लगभग बादरायण व्यास ने उत्तर मीमांसा के आदिम रूप का निर्माण किया। पूर्व मीमांसा में कर्म-

काण्ड की विशेष प्रधानता रही, किन्तु उत्तर मे ज्ञान की। मोटे प्रकार से पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा का वही सम्बन्ध है जो ब्राह्मण और उपनिषदो का है।

जैन पडित हेमचंद्र का कहना है कि न्याय के भाष्यकार पच्चिल चाणक्य ही थे। जैमिनि वेदो का महत्व स्वीकार करते है किन्तु उनका अनादि होना नही मानते। गौतम ईश्वर को मानते हैं किन्तु उसकी सृष्टि-शक्ति को नही।

भारतवर्ष मे वेदान्त या दर्शन की १९ शाखायें थीं। हिन्दू वेदान्त प्रथम ईश्वरवादी था, किन्तु पीछे से अनीश्वरवादी भी हो गया। मुक्ति की समस्या को सब एक मत से मानते है।

बृहस्पति कृत चारवाक का मत है कि (१) कष्टप्रद कार्य मत करो। (२) हिंसा न करो। (३) भाग्य नही, पुरुषार्थ मुख्य है। आलसी भाग्य पर भरोसा करते हैं। आत्म निर्भर रहो। आत्म-निर्भरता ही शक्ति है। उसी से मोक्ष होती है। (४) परमेश्वर अथवा अन्य लोक नही है। (५) वेद और ईश्वर मे विश्वास मत करो, क्योकि वे कृत्रिम और धोखेबाज हैं। (६) सदा बुद्धि पर चलो। बुद्धि बिना धर्म नही। (७) आत्मा अमर है और वह क्षिति, जल, पावक और समीर से बना है, अग्नि से भी नही। (८) केवल प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सब से पहले बृहस्पति ने अनीश्वरवाद चलाया था और ब्रह्मा ने अथर्व दर्शन। अनीश्वरवाद शूद्र राज्यों मे तथा ब्राह्मण वेदान्त क्षत्रिय-राज्यो मे उन्नत हुआ।

जैनो के मुख्य तीन सिद्धान्त है अर्थात (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् ज्ञान, और (३) सम्यक् कर्म। सम्यक् कर्म मे ५ उपभेद है अर्थात (१) सत्यभाषण, (२) अस्तेय, (३) ब्रह्मचर्य/इच्छाध्यान, (४) पवित्रता (मानस, वाचिक एव कायिक), और (५) अहिंसा।

महाभारत मे लिखा है कि आर्य जैन और म्लेच्छों के कारण लोग संदिग्ध हो गए थे। हिरण्यकशिपु और अश्वग्रीव सबसे पहले अनीश्वर-वादी थे। अश्वग्रीव ने वैदिक धर्म को संसार से हटाने का प्रयत्न किया और वेद को चुरा लिया।

ब्राह्मण-काल-पर्यन्त जो वेदों और ब्राह्मणों की रचनायें हुई थीं वे सब अपौरुषेय कहलाती हैं, किन्तु सूत्रकाल के ग्रन्थ मनुष्यकृत हैं ऐसा कट्टर पण्डितों का भी कथन है। वैदिक, ब्राह्मण और सूत्र नामक तीन काल कहे गये है। इन तीनो कालों में भाषा भी एक दूसरे से भिन्न थी। वैदिक समय मे आर्यो की भाषा आसुरी कहलाती थी जिसमे ऋग्वेद एव सामवेद का गान हुआ। यह आर्यो की सबसे पुरानी भाषा थी। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद की भाषा इससे कुछ उन्नत समझ पडती है। यद्यपि यह भेद सभी स्थानो पर दृष्टिगोचर नहीं होता, तथापि कुल बातों पर विचार करने से यह भाषा ऋग्वेद से कुछ विकसित अवश्य है। यह विकास ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों की भाषा मे और भी स्पष्ट होता है। सूत्रकाल मे साहित्य का गौरव और लेखकों की संख्या इतनी बढ़ी कि धीरे धीरे नियमो की रचना होने लगी। इन नियम-सम्बन्धी ग्रन्थो का नाम व्याकरण पडा। इसी व्याकरण के दृढ़ होने से भाषा का सस्कार हुआ, जिससे उसका नया नाम सस्कृत पड़ गया। व्याकरण का आदि काल सूत्रकाल के आरम्भ से ही समझ पड़ता है, और पाणिनि के समय मे वह दृढ़ता को प्राप्त हुआ। पाणिनि के पूर्व वाले वैयाकरण भी भाषा का सस्कार करने के प्रयत्न मे लगे रहे किन्तु उस मे सफलता पाणिनि को हुई। व्याकरण सम्बन्धी विचारो के बहुतायत से समस्त सूत्रकाल की भाषा सस्कृत कही जा सकती है। अत. वैदिक समय की भाषा आसुरी हुई और सूत्रकाल की सस्कृत। ब्राह्मणकाल की भाषा इन दोनो के बीच मे थी। इन तीनो को हम आर्य-भाषा कह सकते हैं। नवीन परिष्कृत संस्कृत भाषा का आरभ काल यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थो से है। यह धीरे धीरे दो स्थितियो मे सुधर कर वर्तमान रूप को पहुँची है।

ब्राह्मण-काल-पर्यन्त आर्य-भाषा ही की महत्ता रही और प्राकृत भाषा इसके संसर्ग से उन्नति अवश्य करती गई किन्तु उसने ऐसा विभव नहीं प्राप्त किया कि उसमे ग्रन्थ लिखे जाते। यदि कुछ प्राकृत ग्रन्थ उस काल बने भी हों तो वे ऐसे नीरस और शुष्क थे कि बहुता-यत से रक्षित नही रह सके। सूत्रकाल से ही हम प्राकृत को पहले

पहल साहित्य क्षेत्र मे अवतीर्ण होते देखते हैं। ब्राह्मण लोग सूत्रकाल पर्यन्त उच्च विषयो मे लगे रहे। इसीलिए उन्होने राज-यश गान अपनी महत्ता के प्रतिकूल समझा। यही कारण है कि राजनीतिक इतिहास रक्षित करने का भार सूत लोगो पर पडा। कहते है कि जब महर्षि वेदव्यास ने अपने शिष्यो मे वेद को बाँटा, तब पुराणो का विषय लोमहर्षण सूत को सौंपा। इससे जान पडता है कि जब इस विषय को क्षुद्र समझ कर ब्राह्मणो ने इसका तिरस्कार किया, तब सूतो ने इसे अपनाया। यह सूत लोग आर्य-भाषा मे प्रवीण न रहने के कारण प्राकृत की ही ओर झुकते थे। उसी भाषा का साधारण जन-समुदाय मे व्यवहार भी विशेष होगा। इसलिए पुराणो के विषय-वर्णन के साथ प्राकृत का पहला लेखन-काल प्रारम्भ हुआ। राजा लोग भी अपना तथा अपने पूर्व पुरुषो का वृत्त एकत्रित करने का प्रयत्न करते थे। सबसे अधिक वंशावलियो पर ध्यान रहता था। यह ऐतिहासिक मसाला भी प्राकृत ही मे एकत्रित होता था। जान पड़ता है कि वर्तमान ब्रह्मभट्ट और चारणो की भाँति पूर्व काल मे इन बातो पर सूतो ने विशेष ध्यान दिया और इसीलिए राजाओ ने वंशवृत्त-रक्षणार्थ उन्ही से काम लिया। ये वृत्त भी पहले स्मरण शक्ति द्वारा रक्षित रहे, किन्तु लेखनकला के चलन से सब से पहले उसका प्रयोग भी इन्ही विषयो पर हुआ।

सर्व साधारण तथा स्त्रियों भी इतिहासो के सुनने का चाव रखती थी। शायद इसीलिए कहा गया है कि पुराण स्त्रियों तथा शूद्रो ही के लिए है। अतः प्रकट होता है कि राजाओ, सूतो, स्त्रियो तथा शूद्रो के प्रोत्साहन से हमारे यहाँ पहले पहल इतिहास का प्रादुर्भाव हुआ। पार्जिटर महाशय ने सिद्ध किया है कि प्राचीनतम संस्कृत-पुराण-ग्रन्थ प्राकृत पुराणो के आधार पर बने और बहुत स्थानो पर श्लोक प्राकृत से जैसे के तैसे उठाकर संस्कृत मे अनुवादित हो गये, यहाँ तक कि कहीं कहीं भविष्य पुराण मे प्राकृत शब्द के स्थान पर वैसा ही संस्कृत शब्द लाने का प्रयत्न करने से व्याकरण तथा छन्दादि की भी अशुद्धियाँ हो गई। यदि उन स्थानो पर प्राकृत शब्द रक्खे जायँ तो वह अशुद्धियाँ दूर हो सकती है। बौद्ध निकाय ग्रन्थो से विदित होता

है कि ऐसे प्राचीन समय में भी सर्वसाधारण में पुराण सुनने की प्रथा थी जब संस्कृत के पुराण ग्रन्थ न बने थे। इन बातों से सिद्ध होता है कि प्राकृत में श्लोकबद्ध पुराण भी बने थे और सर्वसाधारण में उनका गान होता था। उनमें साहित्यिक चमत्कार विशेष न था, इसीलिए संस्कृत पुराण ग्रन्थ बनने के कारण उनका लोप हो गया। श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलरामजी की तीर्थ-यात्रा के वर्णन में लिखा है कि नैमिषारण्य में उन्होंने किसी सूत को व्यासासन पर बैठे हुए सहस्रों श्रोताओं को पुराण सुनाते देखा। उस श्रोतृ-समाज में अनेक ब्राह्मणों को भी देखकर बलरामजी को पौराणिक सूत की अनुचित महिमा पर इतना क्रोध आया कि इन्होंने तत्काल उसका वध करके एक ब्राह्मण को उसके स्थान पर पुराण बाँचने के लिए नियत किया। (इस कथन का आधार १२वें अध्याय में है।) इस बात से सिद्ध होता है कि उस काल भी पुराण बाँचने की प्रथा थी और सूतों के अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण लोग भी इसमें पटु हो गये थे।

लेखन-कला का भी चलन भारत में सूत्रकाल से ही हुआ। बौद्ध इतिहासकार रिज डेविड्स ने अनेकानेक प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से अवतरण देकर सिद्ध किया है कि छठी शताब्दी बी० सी० में लेखनकला भारत में सर्वसाधारण में प्रचलित थी। इनके अनुसार छठी शताब्दी बी० सी० के मध्य अथवा आठवीं के प्रारम्भ में द्राविड़ व्यापारी लोग समुद्रमार्ग से बैबिलोन को प्रायः जाते आते थे। यह देश पश्चिमी एशिया में है। वहीं से इन लोगों ने फारसी की भाँति दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाने वाली लिपि सीखी और उसका भारत में प्रचार किया। हमारे यहाँ की प्राचीन ब्राह्मी लिपि भी इसी प्रकार लिखी जाती थी। इसी के पीछे भारत में खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ जो वर्तमान लिपि की भाँति बाईं ओर से चलती है। सब से पुरानी लिपि भारत में मोहनजो दडो और हड़प्पा में मिली है। यह अभी पढ़ी नहीं गई है। पुरा शास्त्र वेत्ताओं ने इस का समय ३२५० से २७५० बी० सी० में कभी माना है। अष्ट करणी गायों का कथन ऋग्वेद में होने से उस काल भी लेखन का कम से कम कुछ प्रयोग सिद्ध है।

श्याम शास्त्री का मत है कि हमारे यहां की लेखन-विद्या का प्रादुर्भाव देव-पूजन से हुआ, अर्थात् जिस काल प्रतिमाएँ न थीं, तब विविध सांकेतिक चिह्नों द्वारा पृथक् पृथक् देवताओं का पूजन होता था। समझा जाता था कि इन सांकेतिक चिह्नों में देवताओं का निवास है, अर्थात् ये देवनगर हैं। इन्हीं से समय पर लिपि निकली और वह देवनागरी कहलाई। इस मत को मानने से भारतीय लिपि-प्रणाली का बैबिलोन से आना असिद्ध ठहरेगा। जनरल कनिंघम का भी मत है कि भारत में लिपि प्रणाली बैबिलोन व पश्चिमी एशिया से असंबद्ध है और यहां पण्डितों ने स्वयं अपनी लिपि का प्रादुर्भाव किया। मोहंजोदड़ो और हड़प्पा के पीछे अशोकादि के प्राचीन शिला-लेख सब खरोष्ठी में मिलते हैं। अशोक-काल से प्राचीन-तर केवल एक पाषाण लेख नेपाल की तराई में मिला है जिसमें १४ अक्षर मात्र हैं। प्राचीन प्राकृत पुराण ग्रन्थों के अस्तित्व से प्रकट होता है कि भारत में लेखनकला का चलन आठवीं शताब्दी बी० सी० में अवश्य है। जिस काल महर्षि व्यास ने महाभारत बनाई, उस काल पुराण-लेखन में स्मरण से काम नहीं लिया जाता था, क्योंकि महाभारत ही में लिखा है कि व्यासदेव इसे बना बना कर लिखाते गये। इस ग्रन्थ का आदिम नाम जय था जो छठी सातवीं शताब्दी बी० सी० का कहा जाता है।

यहाँ तक हम सूत्रकाल की विद्या विषयिणी उन्नतियों का विवरण करते आये हैं। अब उन्हीं के सहारे सामाजिक अवस्था का कुछ वर्णन किया जायगा। धर्म सूत्रों ही से बढ़ कर समय पर स्मृति ग्रन्थों का निर्माण हुआ। सब से पहला स्मृति ग्रन्थ मानव-धर्म शास्त्र अथवा मनुस्मृति है। कण्व वंशी तीसरे राजा नारायण के राजकवि भास कहे जाते हैं। इन्होंने १३ नाटक रचे। नारायण पहली शताब्दी बी० सी० में थे। इतना प्रकट है कि मानव-धर्म-शास्त्र भास से पहले का है। मनुस्मृति का समय पाश्चात्य पण्डितों ने दूसरी शताब्दी बी० सी० से दूसरी शताब्दी ईसवी तक के बीच का माना है पर इस ग्रन्थ का समय निरूपण कठिन कार्य है क्योंकि यह कई बार रचा गया और क्षेपक पूर्ण भी है। कुछ मिला कर भारतीय पण्डितों का विचार है कि

इसका आदिम रूप महाभारत के पीछे का नही है। आज कल मुख्य स्मृतियां १८ मानी गई हैं। स्मृतिकारों मे मनु, अत्रि, हारीत, शख-लिखित (दोनो ने मिल कर एक ही स्मृति रची), पराशर, व्यास, नारद, विष्णु, वशिष्ट और याज्ञवल्क्य मुख्य हैं। सतयुग के लिए मनुस्मृति की प्रधानता मानी गई है, त्रेता मे गौतम की, द्वापर के लिए शख-लिखित की तथा कलियुग मे पराशर की।

प्रसिद्ध १८ स्मृतियों के रचयिता निम्नानुसार है—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अगिरा, यम, आपस्तंब, सवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शख-लिखित, गौतम, शातातप और वशिष्ट। स्मृतियो का काल बी० सी० पाचवीं मे कई शताब्दियो तक चलता है। सामाजिक विवरण के लिये स्मृतियो से बहुत कुछ मसाला मिलता है किन्तु उन्हे छोड़ कर केवल सूत्र ग्रन्थों से भी अच्छा सामाजिक विवरण प्रकट होता है। स्मृतियो का विवरण आगे के भाग से सम्बद्ध है।

सब से पहले हम स्त्रियो के अधिकारो तथा विवाहो के विषय मे विचार करेंगे। नारद, देवल तथा पराशर ने स्त्रियो को सबसे अधिक अधिकार दिये। इनके विचार मे मासिक ऋतु से भूत जार की शुद्धि होती है और गर्भ तक रह जाने से प्रसव के पश्चात् स्त्री शुद्ध हो जाती है। यह भी कहा गया है कि यदि किसी का पति बेपता हो जाय तो जाति के अनुसार वह दो से लेकर यथाक्रम ८ वर्षो के पीछे दूसरा पति कर सकती है। पचापत्तियो मे भी इन्होने स्त्रियो के लिये दूसरे पति का विधान किया है। निकट के सम्बन्धियो मे विवाह वर्ज्य किया गया है, यद्यपि युधिष्ठिर के समय तक यह प्रथा जारी थी। मिलित विवाहो की प्रथा सूत्रकाल मे भी चलती रही। स्वय गौतम बुद्ध से एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या ब्याहने को कहा था और फिर वही कन्या राजा उदयन को ब्याही गई। उदयन कुलीन क्षत्रिय थे, किन्तु उनकी तीन रानियो मे से एक ब्राह्मणी थी, एक क्षत्रिया तथा एक वैश्या। इसके बहुत पीछे तक यह चाल चलती रही।

वर्णाश्रम धर्म की प्रथा बहुत प्राचीन काल से हमारे यहाँ चली आती थी। वर्ण विभाग के ही अन्तर्गत जातिभेद भी था। सूत्र-काल

मे ब्राह्मण-काल की अपेक्षा जातिभेद की अधिक दृढता हुई किन्तु आश्रमभेद की परिपाटी मे कुछ शिथिलता आने लगी। आदिम काल मे अधिकांश विद्यार्थी गुरुओ के यहां जाकर ब्रह्मचर्य-विधान से विद्या ग्रहण करते थे। अनाथ बालको के लिये भी शिक्षा का प्रबंध था और वे पुण्य शिष्य कहलाते थे। यह संस्था सूत्रकाल मे बहुत कम हो गई और वानप्रस्थ तथा सन्यास की परिपाटी भी कमी को प्राप्त हुई। हिन्दू धर्म के अनुयायी बढ़े और अनेकानेक आदिम निवासी इसमे आये। प्रारंभ मे ब्राह्मण और क्षत्रिय बहुत कम थे। उत्तरी भारत मे प्राय: वैश्यो ही का प्राधान्य था। उत्साही, स्वतंत्र स्वभाव द्रविडो के बहुत से लोग बंगाल और कलिंग को गये और वहा उन्होंने राज्य स्थापित किये। उनमे से जो लोग आर्य आगमन समय तक पूर्ण हिन्दू बनने से बच रहे थे उनको इन्होने अपने मे मिला लिया। उनमे से बहुत लोग वैश्य हो गये तथा शेष शूद्र रहे। पतित या जातिच्युत आर्य भी शूद्र ही कहाते थे। इन ४ वर्णो के अतिरिक्त एक बड़ी जाति निषाद भी थी। अब वे अछूतो मे हैं और उनकी संख्या प्राय: २५ प्रतिशत है। बहुतेरे विदेशीय भी समय पर जातियो में सम्मिलित हो गये। ग्रीक, पार्थियन, सीदियन, शक, तुर्क, हूण, कुशान आदि सब हिन्दू हो गये। स्वच्छ आचरण के कारण शूद्र भी रसोइया बनाया जा सकता था। स्त्री और पुरुष सब लम्बे बाल रखते थे, विशेष कर वशिष्ठ गोत्र वाले अवश्य ऐसा करते थे। शिखा का उल्लेख प्रथम शतपथ ब्राह्मण मे आया है। जो जन-समुदाय कोई विशेष कार्य करता था, उसकी एक पृथक् जाति सी होती थी। अम्बष्ठ, निषाद, उग्र, मागध, वैदेहक, सुनार, बढ़ई, लोहार, कुक्कुटक, चाण्डाल, आदि अनेकानेक जन-समुदाय इस प्रकार के थे। वशिष्ठ, बोधायन और गौतम के अनुसार कुछ जातियों की उत्पत्ति मिश्रित थी, जैसे—चाण्डाल = शूद्र + ब्राह्मणी, वैन = शूद्र + क्षत्रिया, अन्यवासिन = शूद्र + वैश्या; रमक = वैश्य + ब्राह्मणी; पौल्कस = वैश्य + क्षत्रिय; सूत = क्षत्रिय + ब्राह्मणी, अम्बष्ट = ब्राह्मण + क्षत्रिया, उग्र = क्षत्रिय + वैश्या; निषाद = वैश्य + शूद्रा। इनको उपजाति भी कहते थे। शांति पर्व में लिखा है कि काले, मिश्रित जन्मी मनुष्य,

जो अपवित्र, क्रूर स्वभाव वाले, लालची तथा सब कर्म्मकर्त्ता थे, शूद्र कहलाये। कहीं कहीं आया है कि मूलतः शूद्र आर्यों और दस्युओं के मेल से उत्पन्न दास श्रेणी के मनुष्य थे। प्रायः वे द्रविड़ (Dravidian) जाति के परिवर्तित लोग थे। कोई कोई यह भी सोचते हैं कि शूद्र मूलतः अनार्य्यों की कोई भारी जाति थी, और पीछे कुछ आर्य्यों एवं अन्यों को मिलाकर इसका व्यापक नाम हो गया। अंतिम वेदों में उनको निषाद जाति अर्थात् शिकारी कहा है। ये लोग जैसे के तैसे हिन्दूधर्म मे आ गये और इनकी जाति जैसी की तैसी बनी रही। इन लोगो को चार ही जातियो मे स्थान मिलना था, क्योकि शास्त्रकारो ने लिखा है कि हिन्दुओ में कोई पचम वर्ण नहीं है। इसलिये इन लोगो को अपने अपने सामाजिक प्रभावानुसार चातुर्वर्ण्य के किसी न किसी विभाग मे स्थान मिल गया। स्थानानुसार ब्राह्मणो के भी दस विभाग हो गये जिनमें उत्तरीय पंचगौड़ कहलाये और दाक्षिणात्य पचद्राविड़। पचगौडो मे सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल और उत्कलो की गणना है, तथा पचद्राविड़ो में महाराष्ट्र, द्रविड़, तैलग, कारनाटक और गुर्जर की।

वैदिक समय मे आर्यसभ्यता का केन्द्र पंजाब एव कुरु क्षेत्र रहा, ब्राह्मण-काल में कुरुक्षेत्र तथा बिहार और सूत्र समय मे कान्यकुब्ज (कन्नौज)। बौद्ध काल मे यही केन्द्र मगध हो गया। कश्मीरी ब्राह्मण सारस्वत हैं तथा सनाढ्य और कुछ बगाली ब्राह्मण कान्य-कुब्ज हैं। कहते हैं कि कान्यकुब्जो के ५ घराने बङ्गाल मे गए थे, जिनसे बंगाली कान्यकुब्जो का वश चला। ये लोग शेष बङ्गाली ब्राह्मणो को बेटी प्रायः नही देते थे। जैसे ब्राह्मण-काल मे वानप्रस्थाश्रम के लिये नियमोपनियम बने थे, उसी तरह सूत्रकाल मे गृहस्थ तथा संन्यासाश्रम के रचे गये तथा अन्य आश्रमों के भी दृढ हुए। यज्ञो की परिपाटी वैदिक समय मे उठकर ब्राह्मण काल मे पुष्ट हुई थी। सूत्रकाल में उसकी विशेष उन्नति तो न हुई और बल पतनोन्मुख रहा, किन्तु फिर भी किसी न किसी भांति वह चलती गई।

सूत्रकाल में विशेष ध्यान गार्हस्थ्य नियमो तथा सामाजिक अधिकारो पर रहा और हिन्दू समाज-वर्धन मे अच्छी सफलता दिखलाई

गई। महाभारत युद्ध के समय भारत के ठेठ पूर्व, ठेठ पश्चिम और ठेठ दक्षिण मे अहिन्दुओं का निवास था, किन्तु सूत्रकाल मे वे सब हिन्दू हो गये और समस्त भारतवर्ष मे अहिन्दू बहुत कम रह गये। अतः जैसे ब्राह्मण काल में आर्यों ने राजनीतिक उन्नति को चरमसीमा पर पहुँचाया था, उसी प्रकार सूत्रकाल मे धार्मिक विस्तार चरमसीमा को पहुँच गया। मोहजो दडो और हड़प्पा के अतिरिक्त महाभारत युद्ध पर्यन्त भारत मे प्रतिमा-पूजन का कोई भी उदाहरण नहीं मिलता। यदि ढूँढ खोज कर कोई एकाध उदाहरण दिखला देवे, तो इतना अवश्य कहा जायगा कि देश मे प्रतिमा का चलन बहुत ही कम था। प्रकृति पूजन से मानस प्रतिमा पूजन निकला। सूत्रकाल में प्रतिमा-पूजन का चलन कुछ कुछ हुआ किन्तु यह समाज के अधोभाग मे ही रहा और ऊँची श्रेणियों मे न आया। प्रतिमा की मुख्यता विशेषतया बौद्धमत विस्तार के साथ दूसरी शताब्दी से है। गौ ब्राह्मण महिमा इस काल मे और भी बढ़ी और अनजान मे भी इनके हिंसक को कठोर दण्ड दिया गया।

व्यापार-सम्बन्धिनी जातियों के हिन्दूमत मे सम्मिलित होने से इसमें भी जाति संबन्धी दृढ़ता का समावेश होने लगा। ये व्यापारी जातियाँ खान पान, बेटी व्यवहार आदि का सबन्ध अपनी सस्था के बाहर प्रायः नही करती थी। इनके उदाहरण का प्रभाव शेष हिन्दुओं पर भी बहुत पड़ा और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि मे जो वैवाहिक और खान पान सम्बन्धी स्वच्छन्दता थी, उसका चलन समय के साथ कम होता चला। इसलिये यद्यपि मिलित विवाहादि नितान्त लुप्त नही हुए, तथापि इनका चलन दिनों दिन घटता ही गया। यद्यपि शूद्रो की सभी जातियाँ शास्त्रानुसार आपस मे सम्बन्ध कर सकती हैं, तथापि वास्तव में ऐसे विवाहों का चलन समाज मे नही है।

इन लोगों के हिन्दूमत मे आने से इनके प्राचीन भूतप्रेतादि के पूजन विधान तथा कराल देवताओ के विचार भी इस मे घुसने लगे। अब तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश का पूजन विधान लोक में प्रचलित नही हुआ था। यद्यपि विष्णु और शिव के नाम ऋग्वेद में हैं और यज्ञ में इन्हें भी भाग मिलता था, तथापि इनकी गणना अमुख्य देवताओ में थी और ईश्वर के प्रधान स्थानापन्न होने का गौरव इन्हे बिलकुल

नहीं प्राप्त हुआ था। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में हम शैव ईश्वरत्व पाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में देवताओं में विष्णु को अधिक मान मिला किन्तु कृष्ण का पूजन उस समय तक नहीं चला था। शतपथ ब्राह्मण ही मे दक्ष और पार्वती को बलिप्रदान का उल्लेख है। श्रीदेवी का आवाहन प्रथम तैत्तिरीयारण्यक में किया गया। कृष्ण ने सरस्वती का तथा शाम्ब ने सूर्य का पूजन चलाया। सूत्रकाल मे अनार्य्यों द्वारा बहुतायत से हिन्दूमत ग्रहण होने के कारण उनकी धार्मिक योग्यतानुसार कुछ साधारण देवताओं की प्रधानता हिन्दू-मत मे बढ़ने लगी। इसलिये रुद्र की उन्नति फिर से होने लगी और उनके अनुयायियों मे भूत-प्रेतादि भी सम्मिलित हो गये। महा-भारत-काल मे बगाल मे अनार्यों की वस्ती प्रचुरता से थी। सूत्रकाल मे इन लोगो के समूह के समूह एक वारगी हिन्दू हो गये। इनमे कराल देवताओं की परम प्रचुरता थी। इसलिये वगाली हिन्दू धर्म मे चक्र-पूजन, काली, भैरव, कापालिक आदि की प्रधानता हो गई।

जब रुद्र का महत्त्व अनार्यों के कारण वढ़ा और उनको संहार का कार्य मिलने का समय आने लगा, तब जगदुत्पादक की भी आवश्यकता पड़ी और इसलिये ब्रह्मा का विचार उठने लगा। ब्राह्मण-काल पर्यन्त ईश्वर से पृथक् ब्रह्मा का कोई विचार नहीं समझ पडता और विष्णु भी जगत्सचालक नहीं ज्ञात होते। सब से पहले नारायण ने ब्रह्मा को जाना। सूत्रकाल में इन तीनों विचारो के उठने का मसाला एकत्रित हो गया और बौद्ध काल मे उनके त्रिरत्न के जोड पर हिन्दुओ मे त्रिमूर्ति का भाव उठकर उसकी दृढ़ता हुई तथा अवतारो का विचार भी पुष्ट हुआ। इस प्रकार वर्तमान हिन्दूमत के इन हिन्दू विचारो का बीजारोपण भी सूत्रकाल मे हो गया, और समय पर ब्राह्मण धर्म से ही हिन्दू धर्म निकला।

प्राचीन हिन्दू धर्म ब्राह्मण-काल-पर्यन्त रहा और नवीन बौद्धकाल के पीछे से है। धार्मिक उन्नति के लिए सूत्रो तथा बौद्धो के समयो को परिवर्तन-काल मान सकते हैं। वैदिक समय मे हिन्दूमत का बीजा-रोपण हुआ, ब्राह्मण-काल मे उसका पुष्टीकरण देखा गया तथा सौत्र काल मे प्रस्तार एव परिवर्तनारम्भ। बौद्धकाल मे यह परिवर्तन पूरा

हुआ और पीछे से वर्तमान हिन्दूमत की दृढ़ता देखने मे आई।

मोहजो दड़ो और हड़प्पा मे सिंह वाहिनी मातृदेवी या पृथ्वी देवी की मूर्तियां बहुधा मिलती है। यही शक्ति पूजन का मूल था। त्रिनेत्र शिव भी पशुपति के रूप मे (हाथी, चीता, भैंसा और गैंडा के निकट) मिलते हैं अथच योनि (अर्घे) और लिंग के रूप मे भी। वे दो मृग चर्मो पर बैठे हैं। जानवरो का भी पूजन था तथा सीग देवत्व का चिन्ह था। गिरिपूजन भी चलता था। ऋग्वेद मे शिव केवल ३३ देवताओं में से थे, इन्द्र मुख्य थे और विष्णु उपेन्द्र। शक्ति ईश्वर में ही थी, किन्तु मुख्यता इन्द्र, अग्नि और वरुण की थी। यजुर्वेद और अथर्ववेद में शैव ईश्वरत्व है जो औपनित्काल तक चला। यजुर्वेद से यज्ञों का महत्व बढ़ा जो ब्राह्मण काल मे कर्म काण्ड के साथ वृद्धिंगत हुआ। आरण्यको और उपनिषदो के साथ ज्ञान काल सबलता पूर्वक चला तथा परमेश्वर के निर्गुण भाव पर बल बढ़ा। निर्गुण परमात्मा निष्कल परब्रह्म परमेश्वर था, और सगुण सकल, अपरब्रह्म ईश्वर। अनन्तर बृहस्पति, कपिल, जैमिनि और बुद्ध के साथ शकावाद उठकर पुष्ट हुवा तथा आचारात्मक बौद्ध धर्म स्थापित होकर शैव ईश्वरत्व शिथिल पड़ा। यह शकावाद लोकायत विचारों से चला था। निर्गुण ब्रह्म पर साधारण जन समुदाय की श्रद्धा न जमने का यह फल था। कपिल का प्रादुर्भाव गौतम बुद्ध (५६३ बी० सी०) के पूर्व हो चुका था। बृहस्पति शायद कपिल से भी पूर्व के थे और जैमिनि कपिल और बुद्ध के बीच में समझ पडते हैं। बौद्धमत का प्रचार याज्ञिक रीतियों से अश्रद्धा तथा निर्गुण ब्रह्म की ओर लोक रुचि की कमी से हुआ। इन विचारो के कारण ईश्वरवाद को भारी धक्का लगा।

ऐसी दशा में महर्षि वादरायण व्यास ने पांचवी शताब्दी बी० सी० के लगभग भगवद्गीता का मूल रूप रचा जिसमे हिन्दू निर्गुणवाद के साथ सगुणवाद मिलाकर ईश्वरभक्ति को दृढ किया। अब तक देश में वेदों का मत साहित्यात्मक था, उपनिषदो का तर्कात्मक, तथा बुद्ध का आचारात्मक। आपने गीता मे इन तीनों गुणों के साथ सगुण विश्वासात्मक मत भी जोड़कर हिन्दू मत को सर्व-

साधारण में फैलने के योग्य बनाया। सगुणत्व के एक मोटिया भाव होने से आपने गीता मे कम से कम विश्वासात्मिकता रक्खी अथच यथासाध्य स्थूलता न आने दी। अतएव इस काल हमारे सामने बौद्ध तथा गीता के दो मत ऐसे आये जो दो महोपदेशको द्वारा प्रचारित थे। इधर वाल्मीकीय रामायण (छठी से तीसरी शताब्दी बी० सी०) तथा कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र (तीसरी से पहली शताब्दी बी० सी०) मे हमें एक तीसरा मत मिलता है जो महोपदेशको द्वारा तो समर्थित न था, किन्तु देश मे प्रचलित खूब था। इसी के सुधारने के बुद्धदेव और बादरायण ने असफल प्रयत्न किये।

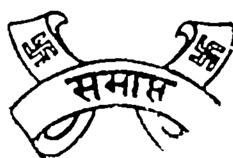
इस प्रचलित मत मे अवतार नही हैं, तथा वैदिक देवता एव काम, कुबेर, शुक्र, कार्तिकेय, गगा, लक्ष्मी, उमा आदि देवी-देवता हैं। विष्णु और शिव की महत्ता है। नाग, वृक्ष, नदी, तड़ागादि पूजित हैं। देवताओ के मन्दिर और प्रतिमाये हैं किन्तु शिव लिंग नही। पशुवलि है। आवागमन सिद्धान्त की पूरी उन्नति नहीं है। तीसरी शताब्दी बी० सी० के महानारायणीय उपनिषत् मे विष्णु वासुदेव हैं। प्रतिमा कल्प सूत्र मे है किन्तु उसके पूजन का आदेश नही। प्राचीन ग्रीक लेखको की साक्षी से गगा स्नान मे पुण्य माना जाता था। यह पुण्य गीता की गगा मे नही है। अर्थशास्त्र मे छोटे बड़े देवता हैं। पहाड़ों, नदियों, वृक्षों, आग, चिड़ियो, नागो, गायों आदि के पूजन मरी आदि से बचने को किये जाते थे, तथा इसी अभिप्राय से रीतियो, मन्त्रों और जादू के काम कराये जाते थे। आवागमन, कर्म और मुक्ति के कथन नही हैं। यह धर्म कुछ-कुछ अशोक वाले के समान है।

बादरायण व्यास ने वासुदेव मत को वेद विरुद्ध मान कर उसकी समीक्षा की है। इधर गीता मे स्वय कृष्ण विष्णु और वासुदेव हैं तथा शैव माहात्म्य गिरा हुआ है। चौथी शताब्दी से पूर्व वाले बोधायन ने गीता का एक अवतरण दिया है, तथा तीसरी शताब्दी बी० सी० में प्राप्त निद्देश नामक बौद्ध ग्रन्थ मे व्यूह-पूजन है, किन्तु वह गीता मे नही है। इससे गीता का अस्तित्व पांचवी शताब्दी बी० सी० मे जाता है। फिर भी उसमें वासुदेव का वैष्णवपन प्राप्त है जो मत

बादरायण के प्रतिकूल है। इससे गीता मे पीछे भी घटा-बढ़ी हुई ऐसा प्रकट है। पाश्चात्य पडितो ने उसमे पहली दूसरी शताब्दी तक के कुछ विचार दिखलाये हैं। समझ पडता है कि बादरायण ने गीता में पहले केवल वैष्णव ईश्वरत्व कहा, किन्तु जब आगे चलकर वासुदेव से विष्णु का एकीकरण हुआ, तब वासुदेव सम्बन्धी वैष्णव विचार भी उसमें जुड़ गये। गीता के थोडा ही पीछे से व्यूह-पूजन का बल बढा। इसमे बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी ईश्वरांश माने जाते हैं।

बुद्ध के पूर्व की प्रतिमा मोहंजोदडो के अतिरिक्त अब केवल श्री की मिलती है, सो भी साकेतिक। प्रयोजन यह है कि प्रतिमा है नहीं किन्तु सकेत से उसका अस्तित्व बतलाया गया है। प्राचीन बौद्ध मूर्तियां भी इसी प्रकार सांकेतिक हैं। आगे चलकर बौद्धमत और कुशान साम्राज्य के प्रभाव विस्तार से देश मे प्रतिमा पूजन का बल बढा। इसका विवरण दूसरे भाग मे यथा स्थान होगा।

यह भाग अब इसी स्थान पर समाप्त होता है। इस अध्याय मे बुद्ध से पीछे के भी कुछ विवरण आ गये हैं। कारण यह है कि यह विषय बुद्ध पूर्व से उठकर तीसरी शताब्दी बी० सी० तक चला गया है।



मुद्रक—श्रीगिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।

बुद्ध पूर्व का भारतीय इतिहास

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	७	वनियर	बर्नियर
१५	११	भरद्वाज, अग्निवर्चस वशिष्ठ, मित्रयु सावर्णि, सामदत्ति	भरद्वाज-अग्निवर्चस वशिष्ठ-मित्रयु सावर्णि-सोमदत्ति
१७	१	खड	बुन्देलखण्ड
२८	१४	इन्द्रद्युम्न परमेष्ठि	इन्द्रद्युम्न—परमेष्ठि
२८	१९	७	६
२९	३	शुक्ल (कृष्ण भाई)	(शुक्ल कृष्ण भाई)
२९	२२	खष्टांग	खट्ट्वाग
२९	२५	शाल	—शाल
३१	४	रुरुक	रुरुक के
३१	१०	शेप	शेप
३२	१८	वाह,	वाहु
३४	४	शास्त्रोच्चार	शाखोच्चार
३४	१०	३०	३५
३५	५	श्रुतायुस	श्रुतायुस—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५	२१	३५	— —
३५	२६	१० कारन्धम—अवीक्षित	कारन्धम—१० अवीक्षित
३६	९	अभयद	अभयद—
३८	८	सजय	सृ जय
३८	१३	वेदपि	वेदर्पि
३८	२३	चायमान	चयमान
४१	१२	उपयुक्त	उपर्युक्त
४१	१९-२०	३०.जह्नु—अजक	जह्नु—३० अजक
४३	८	ज्यामत	ज्यामघ
४७	२१	के	के पिता
४७	अन्तिम	सत्य—शिवस्त	सत्य शिवस्त
४८	६	गुरु कावशेय	तुरुकावशेय
४८	७	पुराण	एव पुराण
५६	१७	पशाखाये	प्रशाखाये
५८	१८	ध्र मवर्ण	धूम्रवर्ण
६५	२३	प्राकृति कसदनो	प्राकृतिक सदनो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७२	१	सावरिण	सावर्णि
८१	१६	जाते ही थे	जाते ही न थे
९६	अन्तिम	५६	६५
९८	१०	१९०	१९१
९९	१९	मातरिश्वम्	मातरिश्वन्
१०१	७	पुरुकुम्त	पुरुकुत्स
१०६	२३	चार	चार में
१०७	१२	७९व	७९वां
१०९	३	पतवारो	बादबाना
११३	२	तुर्ग	दुर्ग
११३	१४	पतवारों	बादबानों
११६	७	हुइ	हुई
११८	शिरोभाग	६	७
१२३	अन्तिम	वध्य्रश्व	वध्र्यश्व
१२६	११	पराद्ास	परादास
१३२	४	माई	भाई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४३	९	रक्खे	रक्खो
१४४	१५	दैन्य	दैत्य
१४७	अन्तिम	वतन	वर्तन
१६९	५	भाग	भोग
१७४	अन्तिम	प	पौड्र
१८१	१६	पांचाल	कोशल
१८६	१७	उत्तरायथ	उत्तरापथ
१९०	२३	योवनावस्था	यौवनावस्था
१९०	२८	सभव:	सभवत:
१९३	१२	बाहर की	बाहर भी
२००	३	कन्द	स्कन्द
२०४	२	थे	ये
२०४	१२	सुयाम	सुदाम
२०४	२१	जयल	जयत
२०८	८	शर्फात	शर्यात
२०८	१६	विदेध	विदेघ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१३	१७	मृगायार्थ	मृगयार्थ
२१४	१२	द्रोग	द्रोण
२२४	११	पारव	पौरव
२२९	९	३५	३४
२३७	२६	यश	यह
२४०	१६	तोवश	तौर्वश
२४०	२५	मर्दनापुर	मदनापुर
२४२	१२	वश नाम था	(वश नाम था)
२४३	१२	अयागव	अयोगव
२४४	१२	चाज्ञुस	चाज्ञुप
२४६	२१	तिमिध्वज, शम्बर	तिमिध्वज शम्बर
२४८	११	शिवि	शिव
२५२	१९	वैराग्य	वैराग्य,
२५७	१७	रहुँचे	पहुँचे
२६०	शिरोभाग	१२	१३
२६४	२७	सिहिका	सिंहिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६८	१९	है	है"
२६९	११	महात्म्य	माहात्म्य
२७५	४	व्यवहार	व्यवहार मे
२७६	१८	पुर्वोक्त	पूर्वोक्त
२७९	२५	कवल	केवल
२८७	१०	वाध्य	त्रध्य
३०२	१०	वार्ष्णया	वार्ष्णयो
३२१	अन्तिम	इमेन	इनमे
३२८	२८	शायाभिमान	शौर्याभिमान
३३४	९	अतत्रिपुरी	अतत्रिपुरी
३३६	१४	फण	पण
३५५	१३	आर	और
३५६	८	कालिया	कालिय
३६९	२०	बाहद्रथ	बार्हद्रथ
३७३	२८	वासदत्ता	वासवदत्ता
४०३	१३	आदि मे	आदि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१७	२३	लाहार	लोहार
४१७	२८	क्षत्रिय	क्षत्रिया
४१८	२९	गाहस्थ्य	गार्हस्थ्य

नोट—ग्रन्थ मे बिन्दु, मात्रा आदि कही कहीं छापने में टूट गये हैं। उन्हे शुद्धिपत्र मे स्थान देने से विस्तार बहुत हो जाता। आशा है कि पाठक महाशय ऐसे स्थानों को सुगमता पूर्वक शुद्ध रूप मे पढ़ लेंगे।

मिश्र बन्धु